प्रेमचन्द के उपन्यासों और कहानियों

का

आलोचनात्मक अध्ययन

[इलाहाबाद युनिवर्सिटी की डी० फ़िल्० उपाधि के लिये प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध]

शीला गुप्त एम० ए०

इलाहाबाद युनिवर्सिटी
१९६२ ई०

विषय-सूची

अध्याय–६

अध्याय–७

अध्याय–८

परिशिष्ट

सहायक – सामग्री

भूमिका

भूमिका

१- हिन्दी साहित्य में आधुनिक दृष्टि से कथा-साहित्य की सृष्टि १६ वीं० श० के उत्तरार्द्ध से आरम्भ होती है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके सहयोगियों ने हिन्दी-साहित्य को सर्वांग बनाने की अथक चेष्टा की और उन्हें निसन्देह सफलता भी प्राप्त हुई । जहां साहित्य के अन्य अंगों की ओर उनकी दृष्टि गयी, वहां उन्होंने कथा-साहित्य की रचना की ओर भी ध्यान दिया । वास्तव में १६ वीं० श० उत्तरार्द्ध में पश्चिमी सभ्यता के साथ सम्पर्क के फलस्वरूप उत्पन्न बौद्धिक जागरण और मध्यम-वर्ग के परम्परा के प्रति विद्रोह के फलस्वरूप आधुनिक-हिन्दी-कथा-साहित्य का जन्म हुआ । मध्यम-वर्ग ने नवीन शिक्षा प्राप्त कर अनेक सुधारवादी आन्दोलनों को जन्म दिया और इस सुधारवादी चेतना का उन्होंने माध्यम नाटक और उपन्यास को बनाया । कथा-साहित्य हिन्दी प्रदेश की नवीन चेतना का प्रतीक बना, किन्तु विषय-चयन, विषय-प्रतिपादन, कथा-संगठन, चरित्र-चित्रण कथोपकथन आदि रचना तत्वों की दृष्टि से १६ वीं० श० उत्तरार्द्ध का कथा-साहित्य अपनी सीमाएं लिए हुए था । उसे हम नितान्त आधुनिक नहीं कह सकते थे । उसमें प्राचीन लोक-कथाओं, उपदेश देने की प्रवृत्ति कथा-वाचकों की विन्यास-शैली आदि अनेक ऐसे तत्वों का प्रमुख स्थान मिलता है, जिनके कारण १६ वीं० श० उत्तरार्द्ध का कथा-साहित्य नितान्त आधुनिक नहीं कहा जा सकता । सुधारवादी प्रवृत्ति के पश्चात् उस समय उपन्यास मनोरंजनका साधन भी बना और १६ वीं० श० के अंतिम दशाब्द में हिन्दी में जासूसी और ऐयारी का प्रचार हुआ । हिन्दी का पाठक उस समय चन्द्रकान्ता, चन्द्रकान्ता सन्तति, नरेन्द्र-मोहनी, कटोरा भरा खून, भूतनाथ, लालपंजा जैसी रचनाओं से अपना मनोरंजन करने लगा । जासूसी और ऐयारी उपन्यासों की रचना होते देखकर हिन्दी के गम्भीर लेखक चिन्तित हुए बिना न रह सके । उन्होंने बंगला के प्रसिद्ध उपन्यासों के अनुवाद करने आरम्भ किए । इस प्रकार १६ वीं० श०

उत्तरार्द्ध में एक अन्त तक हिन्दी कथा-साहित्य अपने जीवन के ऊबड़-खाबड़ मार्ग पर चलता रहा ।

२- ऐसे ही समय में प्रेमचन्द, वृन्दावन लाल वर्मा, जयशंकर प्रसाद, तथा अन्य समकालीन लेखकों के प्रादुर्भाव से हिन्दी कथा-साहित्य का रूप परिष्कृत हुआ । इन उच्च-कोटि के लेखकों ने अपने ढंग से हिन्दी-कथा-साहित्य को समृद्धि प्रदान की और उसे पूर्णत: `आधुनिक` की संज्ञा प्रदान की । वृन्दावन लाल वर्मा हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों के एक मात्र श्रेष्ठ लेखक हैं । उनकी लेखनी से प्रसूत उपन्यासों ने हिन्दी-साहित्य को गौरव प्रदान किया है । ऐतिहासिक क्षेत्र में जो स्थान वृन्दावन लाल वर्मा का है वही स्थान सामाजिक उपन्यासों के क्षेत्र में प्रेमचन्द का है । स्वयं प्रेमचन्द ने चन्द्रकान्ता और भूतनाथ पढ़ना प्रारम्भ किया था किन्तु प्रेमचन्द का ऐतिहासिक दायित्व इस बात में है कि वे हिन्दी उपन्यास साहित्य को भूतनाथ से `गोदान` तक ले आए । प्रेमचन्द महावीर प्रसाद द्विवेदी के समकालीन थे द्विवेदी जी ने आलोचना के क्षेत्र में हिन्दी पाठक की विचारधारा मोड़ने में योग प्रदान किया । ये कार्य-विवाद और तर्क से सम्पन्न हुआ । किन्तु प्रेमचन्द ने जो कार्य किया उसने हिन्दी पाठक की समूची आत्मा, उसका समूचा व्यक्तित्व मान लिया, साथ ही भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से चली आ रही कथा-साहित्य की रूढ़ परम्परा तोड़ने और २० वी० श० की शिथिलता को दूर करने में प्रेमचन्द ने अपने ऐतिहासिक उत्तरदायित्व का पूर्ण निर्वाह किया । कहानी के तो वे प्रारंभिक लेखकों में से थे । इस प्रकार प्रेमचन्द भारतेन्दु से चली आ रही परम्परा को पचाकर उसे विविधात्मपूर्ण और व्यापक बनाकर एक महान साहित्य सृष्टा का कार्य किया । साहित्य के प्रति प्रेमचन्द में एक पूज्यभाव था और साहित्य को वे मानवात्मा के उत्थान में सहायक मानते थे । प्रेमचन्द ने हिन्दी-पाठक के मानसिक-विकास में पूर्ण योग दिया और हिन्दी कथा-साहित्य को रूढ़ परम्पराओं की कारा से मुक्त किया । प्रेमचन्द जीवन-सापेक्ष कलाकार थे ।

उन्होंने अपने व्यक्तित्व को अपने युग में पूर्णत: घुला-मिला दिया था। यद्यपि अपने युग-धर्म का निर्वाह करने में उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, तो भी वे ठहरे अथवा हारे नहीं। वे क्रमश: विकास की ओर बढ़ते ही गए। विषय की दृष्टि से ही नहीं वरन कथोपकथन, मनोविज्ञान, चरित्र-चित्रण आदि की दृष्टि से भी प्रेमचन्द ने अपने युग के प्रति अपनी जागरूकता प्रकट की। युग के प्रतिनिधि-कलाकार का यही लक्षण होता है। प्रेमचन्द ने जीवन के अजस्र उत्साह को कभी अवरुद्ध नहीं होने दिया। उन्होंने हिन्दी पाठकों को आदेश नहीं दिया, न निर्देश ही दिया। उन्होंने उसे विस्तृति और जाग्रति प्रदान की। वास्तव में प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं और अपनी विचारधारा हिन्दी को भारतवर्ष की अन्य भाषाओं के बीच गौरवपूर्ण स्थान दिलाया।

३- प्रयाग-विश्व-विद्यालय के विभाग में शोध-कार्य आरम्भ करते समय, हिन्दी के ऐसे महान् कलाकार की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक ही था। इसीलिए मैंने अपने अध्ययन का विषय : "प्रेमचन्द के उपन्यासों और कहानियों का आलोचनात्मक-अध्ययन" को चुना। प्रेमचन्द पर बहुत सी आलोचनात्मक पुस्तकें[१] लिखी जा चुकी हैं, जिनमें से हंसराज रहबर की `प्रेमचन्द : जीवन और कृतित्व` डा० राम विलास शर्मा की `प्रेमचन्द और उनका युग` मन्मथनाथ गुप्त की `उपन्यासकार प्रेमचन्द` आदि आदि रचनाएं उल्लेखनीय हैं, किन्तु दुर्भाग्यवश इन रचनाओं में कोई भी रचना ऐसी नहीं है, जिसे हम प्रेमचन्द साहित्य की दृष्टि से प्रमाणित मान सकें। साथ ही

---

१. डा० रामदीन गुप्त ने अपने शोध-प्रबन्ध `प्रेमचन्द और गांधीवाद` में विस्तार से प्रेमचन्द और उनके साहित्य से सम्बन्धित सभी आलोचनात्मक पुस्तकों का उल्लेख किया है।

इन पुस्तकों में पिष्टपेषण भी बहुत मिलता है। इसी कारण प्रेमचन्द साहित्य के वैज्ञानिक अध्ययन की अत्यधिक आवश्यकता थी। खोज-कार्य की दृष्टि से डा० राजेश्वर गुरु, डा० रामदीन गुप्त, डा० शंकर नाथ शुक्ल के शोध-प्रबन्ध उल्लेखनीय हैं।

४- इन तीनों शोध-प्रबन्धों में प्रेमचन्द की जीवनी और उनके साहित्य पर ही विस्तार से विचार किया गया है। विद्वान लेखकों ने अपनी दृष्टि से प्रेमचन्द को देखने परखने की चेष्टा की है। इधर हाल ही में प्रेमचन्द के सुपुत्र अमृतराय ने प्रेमचन्द द्वारा रचित अप्रकाशित प्रचुर साहित्य-सामग्री को हिन्दी पाठकों के सामने रक्खा है। उसका परायण करने के उपरान्त, साथ ही उपर्युक्त तीनों शोध-प्रबन्धों के उपयोग के उपरान्त प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का अपना महत्त्व है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में उन बहुत सी बातों का पिष्ट-पेषण नहीं है जो प्राय: प्रेमचन्द सम्बन्धी आलोचनात्मक ग्रन्थों अथवा शोध-प्रबन्धों में मिलती है और जो सर्व प्रचलित है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में प्रेमचन्द की जीवनी और उनके साहित्य के बीच सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा की गयी है। उनके आरंभिक साहित्य के सम्बन्ध में अनेक ऐसी बातों पर विचार किया गया है जो सम्भवत: आगे शोध-कार्य करने वालों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी और जो प्रेमचन्द के लिए अब तक के अध्ययन को एक पग आगे बढ़ाती हैं। इस शोध-प्रबन्ध में अनेक ऐसी बातें हैं : जैसे पात्रों की गणना, जीवनी और उपन्यासों में उल्लिखित नक्शे में स्थान, चार्ट्स, और युग से सम्बन्धि राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक भूमिका जिसने प्रेमचन्द के साहित्य को वास्तविकता और यथार्थता के अत्यधिक निकट ला दिया है। प्रेमचन्द के उपन्यासों और कहानियों की कथा-सामग्री और उनके पात्रों का चरित्र-चित्रण सभी तिथियों के आधार पर मौलिक ढंग से प्रस्तुत किए गए हैं। इन सभी विषयों के सम्बन्ध में यदि मौलिकता का दावा किया जाए तो अनुचित न होगा। प्रेमचन्द के सम्बन्ध में और उनकी रचनाओं के सम्बन्ध में प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध से नवीन प्रकाश पड़े बिना न रह

सकेगा, ऐसी मुझे पूरी आशा है ।

<u>अनुशीलन की दिशा :</u>

५- प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में प्रेमचन्द के साहित्यिक कृतित्व का परिशीलन करते समय प्रमुख बात जिसका ध्यान रखा गया है, वह है "प्रेमचन्द की साहित्यिक विशिष्टता का विवेचन" केवल नामोल्लेखों या समयानुक्रम-संग्रहों से ही अनुशीलन का कार्य पर्याप्त नहीं है । ऐसे अनुसन्धान पूर्णतः असाहित्यिक ही कहे जाएंगे क्योंकि उनमें न तो साहित्य की विशेषता को निर्धारित करने वाली कोई माप-रेखा रहती है और न रचना के सांस्कृतिक या कलात्मक महत्व पर किसी प्रकार का प्रकाश ही पड़ता है । अनुशीलन की मान्यताएं होती हैं, जो कि दृष्टिकोण के रूप में शोध का विषय बन जाती हैं । जब तक साहित्यिक रचना के वैशिष्ट्य का निरूपण न हो, हम सजीव साहित्य के समीप पहुंच कर उसे न देखें, तब तक हमारे अनुशीलन का प्रयोजन ही सिद्ध नहीं होता । विभिन्न आलोचकों अथवा केवल शोध-प्रबन्धों के आधार पर ही मैने अपने विषय की पुष्ठि नहीं की है ।

६- आलोचना एक वैयक्तिक विषय है । किन्तु साहित्यिक-आलोचना-लेखक विशेष की हो अथवा उपन्यास, कहानी, नाटक, गद्य-पद्य किसी भी क्षेत्र की हो, कोई ऐसी छोटी वस्तु नहीं, जिसे कोई व्यक्तिगत मान्यताओं से सीमित कर सके । आलोचना का प्रसार सहस्त्रों वर्षों और सुदूर देशों से होता रहा है । उसके निर्माण और विकास में संसार के अनेक महान मस्तिष्कों ने योग दिया है । साधारणतः आलोचना के दो पक्ष होते हैं—१. सिद्धान्त रूप, २. व्यावहारिक रूप ।

सिद्धान्त-पक्ष :

इसकी शाखाएँ दर्शन और विज्ञान के क्षेत्रों में फैली हुई हैं। दूसरी ओर उसका क्रियमाण या व्यावहारिक-रूप है- जो मानव-मानव, कल्पना और सौन्दर्यचेतना की सांस्कृतिक-भूमि में प्रसारित है। सैद्धान्तिक आलोचना के बहुत से रूप-रूपान्तर और मत-मतान्तर हैं; जिनका सम्बन्ध विभिन्न देशों और कालों की रुचियों और प्रवृत्तियों से है। आलोचना का सैद्धान्तिक-पक्ष, वैज्ञानिक अधिक और साहित्यिक कम होता है।

६- शोध का विषय साहित्यिक है। यद्यपि शोध-कार्य शास्त्रीय-रूप-रेखा की संज्ञा में आता है। लेकिन प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में साहित्यिक अभिरुचि और प्रयत्न के साथ लेखक के मन को व्यक्ति-विशेष में और समाज, राजनीति, धर्म तथा जहाँ तक लेखक प्रेमचन्द के मन की पहुँच है, परखने की पारखी दृष्टिकोण को मान्यता दी है। आलोचना सामाजिक-जीवन और उसमें रचे साहित्य के उपयुक्त हो, इसका आरम्भ से अन्त तक प्रयत्न रहा है। भारतीय समाज और भारतीय आधुनिक साहित्य स्पष्टता: विकासोन्मुख स्थिति में हैं। इसी कारण आलोचना भी उसी के अनरूप सामाजिक विकास की सहकारिणी के रूप में चली है। इस शोध-कार्य को तिथियों के आधार पर क्रमगत अवलोकन की चेष्टा रही है। मान्यता का मुख्य रूप प्रेमचन्द के व्यक्तित्व, उनकी विचार-धारा-जिस पर उनके काल और परिस्थिति का पूर्ण प्रभाव था, उसका अध्ययन किया गया है।

७- हमारे साहित्य में गांधीवाद, समाजवाद, प्रजातन्त्र और मानवतावाद आदि के सिद्धान्तों को लेकर बहुत कुछ विचार-विमर्श होता रहता है। डा० रामदीन गुप्त का शोध-प्रबन्ध `प्रेमचन्द और गांधीवाद`

इस मत की पुष्टि है । प्रस्तुत-प्रबन्ध में आँख मूंद कर किसी 'वाद' पर विशेष बल नहीं दिया गया है । सजगता के साथ इन विचारों को स्पष्ट करने का सफल प्रयास किया गया है । ये विभिन्न विचारधाराएं प्रेमचन्द-साहित्य के लिए कहाँ तक उपादेय हैं, इसका सार्थक प्रयत्न है । सारांशत: आलोचक के महान् कर्तव्य का अभिनन्दन करते हुए सजगता के साथ यह प्रयत्न रहा है कि अपनी पिछली पीढ़ी के निष्ठावान सामाजिक लेखकों में प्रेमचन्द जैसे साहित्यिक नेता की परम्परा को अच्छी तरह पहचानना और उसकी रक्षा करना, साथ ही समालोचक दृष्टि से उचित आसन प्रदान करना है । किसी भी देश का साहित्य केवल शैलियों की सुघड़ता या शब्दों के चमत्कार से बड़ा नहीं बनता । उसके लिए आवश्यकता होती है, अदम्य साहस की । प्रेमचन्द इसी प्रकार के कर्मनिष्ठ लेखकों में थे ।

शंका-समाधान :—

८- प्राय: साहित्यकारों की यह धारणा बन गई है कि आलोचक लेखक के साथ बड़ा अन्याय करता है—उसकी सारी साहित्य-सामग्री को लेकर विभिन्न कटघरों में जड़ देता है, उसके बाद अलग-अलग लेखक-मन की काट-छाँट आरम्भ करता है जबकि लेखक एक ही मन, हृदय एवं दृष्टि से परिवार,समाज, राजनीति को निरखता है और अपनी रचनाओं में यथोचित स्थान देता है । राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक सभी समस्याएं समाज की समस्याएं हैं, समाज के प्राणी-मात्र की समस्याएं हैं, उनका एक दूसरे से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है—कैसे सम्भव है?—उन समस्याओं को अलग-अलग रूपों में विचार किया जाय ? इस प्रकार का आक्षेप अंशत: सत्य भी है । आलोचक को इस आक्षेप से कोई आपत्ति भी नहीं—ऐसा आरोप लगाने वाले यह नहीं सोचते समाज की समस्याओं का जाल 'द्रौपदी की चीर' है जिसका कोई अन्त नहीं । समाज की उतनी

ही—समस्याएं हो सकती हैं जितने समाज के प्राणी——प्रत्येक प्राणी की अपनी अलग व्यक्तिगत विभिन्न समस्याएं होती हैं। मानव के सुख-दुःख का अन्त नहीं, समस्याओं का अन्त नहीं तो लेखक मन की कल्पना, अनुभूति की सीमा को कैसे बांधा जा सकता है ? उसकी कल्पना के तार तो अज्ञात चेतना को स्पर्श करते हैं तो सामाजिक जीवन का कहना ही क्या— ?

<u>आलोचक</u> :— लेखक-मन, उसकी अनुभूति, दृष्टिकोण, से परिचित होने के लिए अथवा विषय का व्याख्यात्मक चित्रण का दायित्व समझता है। इसी दायित्व के सज्ञान अनुभव, अध्ययन तथा साहित्यिक-सहायक-सामग्री की सहायता से परिपूर्ण करने की चेष्टा करता है। शोध की पूर्णता इस का प्रत्यक्ष-प्रमाण है।

६- शोध-प्रबन्ध लिखते समय पूज्य मां श्रीमती शिवरानी देवी जी का शुभार्शिवाद, उनका स्नेह और साथ ही प्रेमचन्द के विषय में व्यक्तिगत जानकारी से मैं विशेष रूप से लाभान्वित हुई हूं। मेरे शोध-प्रबन्ध के अत्यधिक पृष्ठ उन्हीं के निकट बैठ कर, उनके परामर्शों की सहायता से लिखे गए हैं। इसी लिए शोध-प्रबन्ध में व्यक्तिगत प्रभाव अधिक है। इसके अतिरिक्त पात्रों की व्यक्तिगत जानकारी के लिए और नक्शे में उचित स्थानों को प्रस्तुत करने के लिए लमही गांव से मूलरूप में सहायता प्राप्त हुई।

१०- प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में मुझे सामग्री के लिए 'नागरी-प्रचारणी' सभा के पुस्तकालय, "भारती भवन पुस्तकालय" "पब्लिक-लाइब्रेरी" प्रयाग विश्व-विद्यालय" के पुस्तकालय, "हिन्दी साहित्य सम्मेलन" संग्रहालय और लखनऊ विश्वविद्यालय के पुस्तकालय से अनेक प्रकार की सुविधाएं प्राप्त हुई हैं। इन संस्थाओं के अधिकारियों के प्रति आभार प्रकट करती हूं। श्रद्धेय डा० दीन दयाल गुप्त जी के सहयोग से लखनऊ विश्व-विद्यालय के कर्मचारियों

ने मुझको विशेष रूप से सुविधाएं दीं, उसके लिए मैं उनकी अतिशय अनुगृहीत हूं। पूज्य श्री वृन्दावन लाल के लेखों से भी मुझे बहुत बड़ी सहायता मिली। डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी के निर्देशन में लिखे गए शोध-प्रबन्धों से काफी सहायता प्राप्त हुई है। इन थीसिस के प्रति आभार प्रकट करती हूं।

११- प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध श्रद्धेय डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के प्रशस्त निर्देशन में लिखा गया है। व्यस्त जीवन के बहुमूल्य क्षणों में विद्वान निर्देशक ने मुझे जो सतत्-प्रेरणा और सत्परामर्श दिया, उसके लिए मैं अतिशय अनुगृहीत हूं। श्रद्धेय डा० वार्ष्णेय के अतुल प्रोत्साहन और प्रेरणा से अनुसंधान-कार्य काल में मुझे जो स्फूर्ति मिलती रही, उसे शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकती। इसके अतिरिक्त पूज्य डा० वृन्दावन लाल वर्मा के निकट बैठकर उनके परामर्शों से मुझे जो अपने विषय को समझने और प्रस्तुत करने में सहायता मिली, उसके लिए मैं अतिशय अनुगृहीत हूं। श्री कृष्ण दास जी ने अनेक दुर्लभ पुस्तकों और परामर्शों से मेरी सहायता की, उनके प्रति भी मैं अतीव कृतज्ञ हूं। प्रिय भाई कमलेश जी और श्री नर्मदेश्वर उपाध्याय जी ने अपने सुझावों से मेरे शोध-कार्य को सुन्दर और सुघढ़ बनाने का विशेष रूप से प्रयत्न किया, इसके लिए मैं उनका आभार प्रकट करती हूं। शोध-प्रबन्ध में नक्शे और पात्रों के चार्ट्स को अत्यन्त अभिरुचि के साथ शुद्ध प्रस्तुत करने में, मैं अपने दफ्तर के कर्मचारियों को धन्यवाद देती हूं। श्री राम पांडे जी ने और उनकी अस्वस्थता के पश्चात् मेवालाल जी मिश्र ने टाइप की विशुद्धियों के परिहार का पूरा ध्यान रक्खा, इसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देती हूं।

शीला गुप्त
—शीला गुप्त

(२६-४-१९६४)
प्रयाग

प्रेमचन्द के जीवन की परिस्थितियाँ

और

उनका साहित्य

अध्याय—१

प्रेमचन्द के जीवन की परिस्थितियां और उनका साहित्य

(१)- प्रेमचन्द की जीवनी (जन्म सन् १८८०, मृत्यु सन् १९३६ के विषय में हिन्दी के विभिन्न आलोचकों द्वारा विस्तार के साथ इतना लिखा जा चुका है कि अब उसका प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध मे उल्लेख करना पिष्टपेषण मात्र होगा । डा० राजेश्वर गुरु के शोध-प्रबन्ध "प्रेमचन्द एक अध्ययन (जीवन, चिन्तन और कला, १९५८)" में "प्रेमचन्द-कलम का सिपाही" शीर्षक जीवनी भी प्रकाशित हो चुकी है । अत: प्रस्तुत अध्याय का ध्येय प्रेमचन्द की जीवनी के मात्र उन तथ्यों का अध्ययन करना है, जिनका उनके साहित्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है ।

(२)- प्रेमचन्द के पिता मुंशी अजायबराय, (सन् १८३३ तक जीवित रहे) गांव के निवासी थे, प्रारम्भ मे किसान थे और निर्धन थे । उनका जीवन निम्न मध्य वर्ग का था । अत: प्रेमचन्द (सन् १८८०) के घर का वातावरण किसानों का सा था और पारिवारिक जीवन निर्धनता की यातनाओं से पूर्ण था । इन्हीं यातनाओं से पीड़ित होने के कारण प्रेमचन्द के पिता को उनके जन्म के समय डाकखाने मे क्लर्की करनी पड़ी थी । इतना ही नहीं प्रेमचन्द को ग्रामीण जीवन के प्रति आकर्षण का बीज-वपन उनके बाल्य-काल में ही हो गया था । बाल्य-काल में उन्हें जीवन की जिन कठिनाइयों का अनुभव हुआ, उन्होंने उस समय जो विपत्तियां झेली, अपने बाल्य-काल की जो अपूर्ण अभिलाषाएं थीं और दरिद्रता का वातावरण था, उन सब बातों का सम्बन्ध अन्ततोगत्वा उनके साहित्य से स्थापित किया जा सकता है । इन्हीं कारणों से उनके साहित्य में गांव के सुन्दर वर्णनों, किसानों के सजीव चित्रों और निर्धनता एवं दरिद्रता के उल्लेखों का बाहुल्य है ।

इसी प्रकार बचपन में ही मां के स्नेह से वंचित (सन् १८८८) हो जाने (दे० 'निर्मला') के कारण उन्होंने सौतेली मां का अपने आदर्शवाद के रंग में रंग कर वर्णन किया । बचपन मे उनकी शिक्षा उर्दू से प्रारम्भ हुई और तभी से उनमें कथा-साहित्य के प्रति भी प्रेम उत्पन्न हुआ । इसीलिये गरीबी की यातनाएं सहन करते हुए तम्बाकू के

पिन्डों के पीछे बैठ कर उन्होंने तिलिस्म-इ-शोशरुबा, `दास्तान-इ अमीर हमज़ा`, चन्द्रकान्ता (सन् १८९२ ई) `भूतनाथ` (अप्राप्त्य है), रतननाथ सरशार, मिर्जा रूसवा, मौलाना शरर, कुछ पुराणों और रवीन्द्र नाथ की गल्पों का अध्ययन उर्दू के माध्यम द्वारा किया और उर्दु के माध्यम द्वारा ही साहित्य-जगत मे प्रवेश भी किया । इसका परिणाम यह हुआ कि एक ओर न तो वे भारत की प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति का कोई विशेष अध्ययन ही कर पाए और न दूसरी ओर संस्कृत भाषा का ही । अत: उनकी हिन्दी भाषा मे यदि एक ओर उर्दु की चुस्ती, मुहावरेदानी और रवानी पाई जाती है, तो दूसरी ओर उनकी प्रारम्भिक रचनाओं की हिन्दी शिथिल है और उसमें संस्कृत के क्लिष्ट तत्सम शब्दों का अभाव पाया जाता है । ग्राम जीवन के घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण ही उनकी भाषा मे अनेक ग्रामीण शब्दों, कहावतों, मुहावरों आदि का प्रयोग हुआ है ।

प्रेमचन्द के प्रारम्भिक जीवन के अनुभवों का तो उनके साहित्य के साथ सम्बन्ध है ही, उसमें उनके संघर्षों और शिक्षा-दिक्षा का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है, साथ ही सरकारी नौकरी करते समय उन्होंने मध्यम और निम्न वर्ग के लोगों का जो अध्ययन किया वह भी उनके साहित्य मे प्रस्फुटित हुआ है ।

(३)- प्रेमचन्द का जन्म गांव मे हुआ था । उनको प्रारम्भिक शिक्षा भी गांव मे मिली थी । पिता के साथ भी उन्होंने आसपास के ग्राम देखे थे । इसी कारण प्रेमचन्द को बचपन से ही ग्रामीण जीवन की विषाद-रेखाएं दिखाई दे रही थीं । प्रेमचन्द उन सभी कारणों को समझ गए थे जिनसे गांवों की सम्पन्नता, सुख और शान्ति मे बाधा पड़ी थी । उनको गांवों के स्वच्छ, पवित्र, निश्चल वातावरण से मोह था । प्रेमचन्द ने अपना लेखन-कार्य भी लमही मे बैठ कर आरम्भ किया, यद्यपि विवशतावश उनको बनारस, लखनऊ, कानपुर, बम्बई जाना पड़ा । शिवरानी देवी जी ने उल्लेख किया है-- `लमही आने के बाद वे ४०) प्रतिमास पर दो लेख दो कहानी नियम से लिखते थे . . . सुबह उठना . . . फिर अपने रोज़ के काम मे लग जाना । बारह बजे काम से उठ कर नहाना-खाना । इसके बाद एक घन्टे आराम करते थे । फिर इसी तपते हुए मकान

मे दो बजे से लिखने-पढ़ने लग जाते थे, ... फिर बच्चो को लेते और दरवाज़े पर बैठ कर गांव वालों से बात करते । यही उनकी जिन्दगी का क्रम था ।[१]
गांव के मोह का प्रसंग उन्होंने अपने कई पत्रों मे भी दिया है । एक पत्र मे उपेन्द्रनाथ `अश्क` को लिखा था—"भाई, मनुष्य का बस हो तो कहीं देहात मे जा बसे, दो चार जानवर पाल ले और जीवन को देहातियों की सेवा मे व्यतीत कर दें" (६ जुलाई १९३६) देहात से पृथक करके प्रेमचन्द की अनुभूति का ज्ञान असम्भव है । शहर मे रहते हुए भी प्रेमचन्द सदैव गांव की उन्नति तथा उसकी प्रगति के विषय मे सोचते थे । वे जानते थे भारत गांवों मे बसता है । उसकी स्वतन्त्रता और उन्नति ग्रामवासियों की स्वतन्त्रता और उन्नति पर निर्भर है । जब तक ग्रामवासी अन्धी-श्रद्धा, झूठी मर्यादा, अशिक्षा, जहालत और कर्ज के बोझ तले दबे हुए हैं, तब तक भारत भी स्वतन्त्र नहीं हो सकता, वह भी दासता की बेड़ियों मे जकड़ा रहेगा । प्रेमचन्द की ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित कहानियाँ उन भोले भाले निरीह, गरीब, कर्ज के बोझ तले दबे हुए प्राणियों की कहानियां हैं जो रात-दिन मेहनत करके भी भूखे रहते हैं । ये भूखे प्राणी आन की खातिर मर मिटने वाले, बेबस और विपन्न है ।

(४)-प्रेमचन्द की जीवनी का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि वे व्यक्ति-कल्याण और लोक-कल्याण की भावना से प्रेरित कलाकार थे । इसीलिए उनकी कला मे उद्देश्य निहित था । प्रेमचन्द का जीवन स्नेह से प्राय: वंचित रहा था । मां की अकाल मृत्यु ने प्रेमचन्द के बालक-मन पर आघात किया था । प्रेमचन्द इस आघात को कभी भुला नही सके । उन्होंने कहानियों और उपन्यासों में इस आघात का बहुत ही विशाल युक्त ढंग से उल्लेख किया है । यह सच है यथार्थ वस्तु का अभाव मनुष्य को

---

(१)- शिवरानी देवी, "प्रेमचन्द घर में",
प्रका०- दिल्ली, १९५६, पृ० सं०- ५५

कल्पनाशील बना देता है । जीवन में जो पदार्थ प्राप्त नहीं होते, आदमी उन्हें कल्पना में ढूंढता है । बच्चों मे प्यार की एक भूख होती है, जो दूध मिठाई और खिलौनों से भी ज्यादा मादक होती है । इसके अभाव में बालक का स्वाभाविक और सन्तुलित विकास नहीं हो पाता । प्रेमचन्द बालक की इस भूख की अनुभूति कर चुके थे । इसीलिए `प्रेरणा` `कजा की` `चोरी` `विमाता` `घरजमाई` आदि विभिन्न कहानियों मे प्रेमचन्द ने अपनी बचपन की स्मृतियों को सजीव कर दिया है । इन विभिन्न कहानियों के मूल मे प्रेमचन्द का उद्देश्य बालक के अविकसित मन पर परिस्थिति और परिवार के अस्वस्थकर कुप्रभाव को रोकना ही था । प्रेमचन्द के मन मे केवल एक ही प्रेरणा थी कि मनुष्य मर्यादा के साथ जीवित रहे । इसका कारण केवल वह सामाजिक व्यवस्था और स्वयं मनुष्य के अन्त: मन को समझते थे । प्रेमचन्द ने मानव जीवन की समस्याओं को मात्र समस्याओं के रूप मे कभी नहीं उठाया, वरन् उन्हें व्यापक जीवन का अनिवार्य अंग मान कर चित्रित किया । प्रेमचन्द अपने युग से प्रभावित कलाकार थे । अपने प्रारंभिक जीवन की परिस्थितियों तथा जीवन की विषमताओं की ओर संकेत करते हुए वह लिखते है: "पिता जी ने जो मकान ले रक्खा था, उसका किराया डेढ़ रुपया था । निहायत गंदा मकान था । उसी के दरवाजे पर एक कोठरी थी, वही मुझे सोने के लिए मिली । मै दिल बहलाने के लिए बगल मे एक तम्बाकू वाले के मकान मे चला जाया करता । मेरी उम्र उस समय १२ साल की थी ।" ... पिता जी का तबादला गोरखपुर हुआ । मकान यहां भी उसी तरह का था ... यहां भी तम्बाकू वाले की दुकान मुझे मिल गई" ... क्योंकि घर पर कोई दिलचस्पी न थी । वहीं मुझे लिखने का शौक भी हुआ । मैं लिखता और फाड़ता, लिखता और फाड़ता ... ।[१] प्रेमचन्द को अपने जीवन के प्रारम्भिक काल मे ही जीवन की प्रौढ़ता प्राप्त हो चुकी थी । अपनी थोड़ी सी उम्र मे ही उनको उन सब कठिनाइयों का सामना करना पड़ा जो एक गरीब बालक होने के कारण उन्हें झेलनी पड़ी ।

----

(१) शिवरानी देवी, "प्रेमचन्द घर में",
प्रकाशन दिल्ली, १९५६,
पृ० सं०- ३,४ ।

सन् १८६६ की बात है, पिता का स्वर्गवास हुए दो वर्ष हो गए थे, विमाता और भाई का बोझ उनके कंधे पर था, चुनार मे १८)रु० मासिक का अध्यापन कार्य मिल गया था । प्रेमचन्द का बचपन अब बिदा हो चुका था और जीविका का कार्य प्रारम्भ हो गया था । परन्तु लिखना-पढ़ना, जिसमे उनका जीवन बसता था, यथावत था । प्रेमचन्द की मित्रता का प्रारम्भ भी ऐसे ही सज्जनों से हुआ जो साहित्यिक रुचि के थे, और इन मित्रों के सहयोग से प्रेमचन्द को अपने साहित्यिक जीवन में प्रेरणा मिली । मिलने-जुलने वालों मे पहला नम्बर बाबू राधा कृष्ण का था, जो आगे चलकर अवध चीफ कोर्ट के जज हुए उनसे मुन्शी जी की बहुत बनती थी । बराबर अपनी नई नई चीजे उन्हें सुनाते थे । बाबू राधा कृष्ण साहित्यिक रसिक तो जैसे थे ही खुद भी शेर कह लेते थे प० जयराम शास्त्री संस्कृत के प० थे । लेकिन इनकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि बिल्कुल भिन्न थी, इसलिये प्रेमचन्द की मैत्री अधिक साहित्यिक रूप न ले पाई, बाबू राधाकृष्ण से खूब पटती थी जिसका उल्लेख "कलम के सिपाही" मे हुआ है ।(१)

प्रेमचन्द अपने बाल्य जीवन मे ही नारी की मनोदशा और उसके शारीरिक भूख का अनुभव प्राप्त कर चुके थे । इस कारण वे सदैव यह जानने के प्रयत्न मे रहे कि हमारी पारिवारिक विपन्नता का कारण क्या है? और नारी का उसमे कितना सहयोग है? इसलिये उन्होंने विवाह, दहेज, अनमेल-विवाह, बाल-विवाह और विधवा आदि सभी विषयों पर कहानियां लिखीं । दामपत्य जीवन मे पति और पत्नी दोनों एक दूसरे से अनन्य रूप से सम्बन्धित हैं लेकिन व्यवहारिक स्तर पर सारा दायित्व पति पर ही है । पति में चाहे कितने भी गुण अवगुण हों लेकिन पत्नी की सम्पूर्ण मानव चेष्टायें उसका हृदय, उसकी अनुरक्ति सब पति को ही भेट होनी चाहिये, पति से अलग नारी का कोई अस्तित्व न था । प्रेमचन्द से पूर्व साहित्य मे नारी के प्रति यही दृष्टि थी कि चाहे पति कैसा भी क्यों न हो, पत्नी सेविका रूप मे उसकी सेवा करे । प्रत्येक स्थिति मे नारी अपनी सम्पूर्ण अनुरक्ति, सारी समग्रता से पति पर केन्द्रित रहे । स्त्री के लिये पति के सिवाय दूसरी गति न थी उसके लिये पति ही परमेश्वर था ।

---

(१) अमृतराय : "कलम का सिपाही" :
प्रकाशन हंस : इलाहाबाद १९६२, पृ० सं०- ४३,

अपने युग और समाज सुधारकों से प्रभावित होकर प्रेमचन्द ने नारी की इस दयनीय दशा को समझा और अनुभव किया । युगों से पीड़ित नारी के विभिन्न पहलुओं को उन्होंने अपने उपन्यास और कहानी का अंग अपनाया और युगानुसार उसकी नई प्रतिष्ठा की तथा उसकी समस्याओं का विवेचन करके अपने समाधान प्रस्तुत किए । "बरदान" (विरजन), प्रेमाश्रम, की (गायत्री) प्रतिज्ञा, (पूर्णा) को वैध्वय स्वीकार करना पड़ता है, इन सुकुमार नारियों का वैधव्य चिन्तन का आग्रह मांगता है । क्योंकि यह नारी परम्परा रीति के अनुसार वैधव्य स्वीकार कर लेती हैं लेकिन अन्त: मत की भी एक भूख होती है जिससे यह निर्दोष होकर भी कभी कभी मार्ग भ्रष्ट हो जाती हैं । आरम्भ में प्रेमचन्द ने `बरदान` में आदर्शवाद ढंग से स्वीकार किया । विरजन एकान्त सेवनी बन जाती है । साहित्य का सृजन करती है तथा लेखक की काल्पनिक उड़ान मे उसे यथा सिद्धि देकर इतिश्री समझ ली है ।[१] "प्रतिज्ञा" में विधवा का अत्यन्त दयनीय रूप दिखाया है । पूर्णा गिरते गिरते बचती है ।[२] `प्रेमाश्रम` में (गायत्री) का चरित्र पतन `ज्ञान शंकर` के द्वारा होता है । नारी की असहाय अवस्था का पुरुष लाभ उठाता है । इसका उल्लेख प्रेमचन्द ने प्रतिज्ञा में इस प्रकार किया है- `मगर क्या कमला इतना गया बीता आदमी है ? इतना कुटिल, इतना भ्रष्टाचारी ।इतना नीच । फिर और किस पर विश्वास किया जाय? ऐसा धर्मानुरागी मनुष्य जब इतना पतित हो सकता है तो फिर दूसरों से क्या आशा की जाए? जो प्राणी शील और परोपकार का पुतला था, वह ऐसा कामान्ध क्यों कर हो गया । क्या संसार मे कोई भी सच्चा, नेक, निष्कपट व्यक्ति नहीं हैं ।[३] कदाचित् पूर्णा की सरलता दीनता आश्रयहीनता ने उसकी (कमला) की कुप्रवृत्ति जगा दिया था । पूर्णा की कृपणता और कायरता उसके सदाचार का

---

(१) "हृदय ताप और मानसिक दुख ने उसमे उसका वह गुण प्रकट कर दिया जो अब तक गुप्त था` । `बरदान` पृष्ठ संख्या- १२४ ।

(२) `तुम्हारा यौवन और उस पर सरस स्वभाव मेरे लिये घातक होगा ^ ^ ^ मैने तुम्हें अपने साथ रखना शुरु किया ।` प्रतिज्ञा, १११ ।

(३) प्रेमचन्द, `प्रतिज्ञा`, प्रका० हंस इलाहाबाद पृ० सं०- १२८

आधार थी । १६३० के पश्चात् तो प्रेमचन्द पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित नारी वर्ग मे विभिन्न दोषों का अनुभव कर रहे थे । प्रेमचन्द ने नारी के उस रूप को भी लिया जो आर्थिक विपन्नता के कारण उत्पन्न हो गया है साथ ही प्रेमचन्द ने पूंजीवादी समाज के प्रभाव से उत्पन्न दोषों को भी नारी चरित्र मे स्पष्ट किया है ।

`जीवन का शाप` `उन्माद` `नया विवाह` ऐसी ही कहानियां है । `कुसुम`, `विद्रोही`, `वेश्या` `मि० पद्मा,` `विश्वास`, `दोकब्रे` आदि पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित नारी चरित्र के आधुनिकतम रूप हैं । किन्तु ये कहानियां प्रेमचन्द की उस काल की हैं जब कि वे प्रौढ़ावस्था के निकट थे और लेखनकार्य को उन्होंने जीवन और जीविका दोनों रूपों मे अपना लिया था । उनकी अनुभूति समाज-सापेक्ष हो गई थी । वह निरंतर समाज के अवसाद का कारण ढूंढते थे । समाज और राष्ट्र की प्रवृत्तियां उनकी अनुभूति से उनकी रचनाओं मे प्रकाशित हो गयीं थी । प्रेमचन्द के जीवन की निर्भीकता साहस, कर्मपरायणता, पुरुषार्थ उनकी सभी छोटी बड़ी रचनाओं में प्रतिलक्षित है ।

(५)- प्रेमचन्द बचपन से ही स्नेह से वंचित रहे थे । माता का स्वर्गवास उनके बचपन मे ही हो चुका था । विमाता का प्यार न मिला था, इस कारण स्नेह से वंचित मन बार बार उनको नारी सुलभ कोमलता, उसकी विवशता, असमर्थता तथा पुरुषों द्वारा उनके नैतिक पतन आदि पर-सदैव विकल करता था । `असरारे मआविद` में इस संबंध में प्रेमचन्द के विचार प्रकाश मे आए-- "औरत मर्द की शोभा होती है । मर्द अगर फलदार पेड़ है तो औरत लता जो उस हालत मे भी मर्द को बचा कर रखती है जब तूफान के झकोरे उसको हर तरफ से झकझोड़कर जड़ से उखाड़ फैंक देना चाहते हैं ।"[१] `प्रेमचन्द आरम्भ से ही नारी-जीवन के प्रत्येक पहलू को समझ रहे थे । विधवा--विवाह निषेध हिन्दू-समाज मे भयंकर रूप मे उपस्थित था ।

---

(१) प्रेमचन्द : "असरारे मआविद" ;
प्रका०-हंस इलाहाबाद, १९६२, पृ०सं०- ५६,

(६)- प्रेमचन्द को अपने बचपन की तीव्र अनुभूति थी, प्रौढ़ा अवस्था मे भी वह मा के स्नेह के अभाव को भूले न थे। प्रेमचन्द ने अपने साहित्य मे बार बार ऐसे पात्रों की सृष्टि की, जिनकी मा बचपन मे ही अपने बालक को अनाथ छोड़ कर चल बसती हैं। `विमाता` दूसरी शादी `दूध का दाम ऐसी ही कहानिया हैं। कर्मभूमि का अमरकान्त भी ऐसा ही अभागा पात्र है जो बचपन मे ही अपनी मा को खो चुका है।-- "अमर ने विषाद भरे स्वर मे कहा- जिस तरह तुम्हारी जिन्दगी गुजरी, उस तरह मेरी जिन्दगी भी गुजरती तो शायद मेरे भी यही ख्याल होते। मैं वह दरख्त हूं, जिसे कभी पानी नहीं मिला। जिन्दगी की वह उम्र, जब इन्सान को मुहब्बत की सब से ज्यादा जरूरत होती है, बचपन हैं। उस वक्त पौधे को तरी मिल जाए, जिन्दगी भर के लिए उसकी जड़े मज़बूत हो जाती है। x x x मेरी माता का उसी ज़माने मे देहान्त हुआ है और तब से मेरी रूह को खूराक नही मिली x x x वही भूख मेरी जिन्दगी है।"[(१)] आगे की पंक्तियों में पुन: प्रेमचन्द और स्पष्ट शब्दों मे कहते हैं-"दुनिया मे सबसे बदनसीब वह है, जिसकी मा मर गयी हो।"[(२)].

प्रेमचन्द ने विधवा-विवाह की समस्या को क्रमश: १६०६ ई० "हम खुर्मा व हम सवाब" नामक उर्दू उपन्यास मे चित्रित किया। इस उपन्यास मे प्रेमचन्द अपने पात्र अमृतराय का विवाह विधवा पूर्णा से करा देते हैं। ऐसा प्रतीत होता है, अभी प्रेमचन्द किसी निश्चित आदर्श पर नहीं पहुंचे थे, इसी कारण थोड़े परिवर्तन और परिवर्द्धन के साथ पुन: विधवा समस्या को `प्रेमा` उपन्यास मे १६०७ में उठाया और अन्त में १६२७ ई० मे `प्रतिज्ञा` नामक उपन्यास लिखा जो `प्रेमा` के कथानक का ही विकसित रूप था।

---

(१) प्रेमचन्द ; "कर्मभूमि", प्रका०- हंस इलाहाबाद। पृ० सं०- १३५,

(२) कर्मभूमि, पृ०सं०- १३५।

(७)- प्रेमचन्द का पारिवारिक जीवन सुखी न था । वे चाहते थे कि अपनी सौतेली माँ के प्रति अपना उत्तरदायित्व निभाते रहें और अपनी अबोध पत्नी को भी सन्तुष्ट रख सकें । सौतेली माँ के प्रति वे सदैव सजग, त्यागपूर्ण, कर्त्तव्यशील रहे, लेकिन पत्नी और विमाता एक साथ सन्तुष्ट नहीं रही और इसका उल्लेख उन्होंने अपने मित्र दया नारायण निगम के पत्र मे किया था । प्रेमचन्द अनुभूतिशील प्राणी थे, इस कारण परिवार की कटुता में ही उन्होंने पारिवारिक-रचनाएं लिखी, जिनमें प्रेमचन्द के जीवन का स्वरूप देखने को मिलता है । `विमाता` `माता का हृदय` `ममता` `माँ` आदि कहानियाँ, उनके संवेदनशील मन की तुष्टि थीं । जिसका प्रेमचन्द प्रत्यक्ष अनुभव नहीं कर सके थे, उसी का उनकी अनुभूति रसास्वादन कर रही थी । वे माँ के हृदय मे स्नेह की उज्ज्वलता देखते हैं । "माता का हृदय दया का आगार है । उसे जलाओ तो उसमे से दया की ही सुगन्ध निकलती है । पीसो तो दया का ही रस निकलता है । वह देवी है । विपत्ति की क्रूर लीलाएं भी उस स्वच्छ और निर्मल स्त्रोत्र को मलिन नहीं कर सकतीं ।"(१) स्नेह से वंचित प्रेमचन्द ने अपनी बाल-स्मृतियों को माँ के इसी कल्पना लोक में संचित रक्खा था । यही रहस्य था कि प्रेमचन्द अपनी यथार्थ कटुताओं से जूझते रहे परन्तु विचलित नहीं हुए । प्रेमचन्द की अनुभूति का आधार `ममता`(२) पर स्थिर था । " बेटा, ममता बुरी होती है । संसार से नाता टूट जाए, धन जाए, धर्म जाए, किन्तु लड़के का स्नेह हृदय से नहीं जाता । सन्तोष सब कुछ कर सकता है । किन्तु बेटे का प्रेम माँ के हृदय से नहीं निकल सकता । इस पर हाकिम का, राजा का, यहाँ तक कि ईश्वर का भी बस नहीं है ।"(३)

---

(१) प्रेमचन्द, कहानी "माता का हृदय, (मान० भाग-३) संस्करण-६ हंस प्रकाशन इलाहाबाद, १९५६, पृ० सं०- १०४

(२) कहानी ममता, (मान० भाग-५) पृ० सं०- २७६

(३) कहानी ममता, (मान० भाग-५) पृ० सं०- २७६

प्रेमचन्द `विमाता` में भी आदर्श मा' का ही स्वभाव लक्षित करते हैं, क्योंकि वे जिस सुख को अपने जीवन मे चरितार्थ न कर सके, सदैव उसी सुख को उनका मन ढूंढता रहा । प्रेमचन्द की कहानिया' इस मन:संतुष्टि का प्रमाण हैं ।

(८)- प्रेमचन्द सन् १९०१ से १९०५ तक लगातार नारी समस्या पर, नारी के जीवन के उन पक्षों पर, जो अपहरण के कारण देवालयों में नष्ट हो जाते थे तथा विधवा-विवाह पर विरादता और गम्भीरता से विचार कर रहे थे । इसी विचार के बाद सन् १९०५ में इन्होंने शिवरानी देवी नामक एक बाल विधवा से अपना दूसरा विवाह किया ।

(९)- प्रेमचन्द देश की राष्ट्रीय चेतना से पूर्णत: भिज्ञ कलाकार थे, जैसा कि उन्होंने अपने आरंभिक लेखों मे प्रस्तुत किया है । प्रेमचन्द लिखते हैं कहीं कहीं देशी चीजों का जिस जोश और हमदर्दी से स्वागत किया गया है वह उम्मीद दिलाता है कि अब हिन्दुस्तान का व्यापारिक जागरण बहुत दूर नहीं (व्यापारिक जागरण से अर्थ प्रेमचन्द का अपनी देश की बनी चीजों के प्रयोग से था) क्योंकि व्यापारिक उन्नति राष्ट्रीय चेतना का अभिन्न अंग थी । प्रेमचन्द लिखते हैं लाहौर के आर्य समाज मेम्बरों को सर से पैर तक हिन्दुस्तान की बनी चीजों से सजे हुये देखना सचमुच बहुत दिलचस्प और याद रखने के काबिल दृश्य था--- -------- हमको उम्मीद है कि हमारी व्यापारिक उन्नति मे यह लोग उसी सम्मान और धन्यवाद के अधिकारी होंगे जिसके कि वह राष्ट्र और सांस्कृतिक सुधारों में है ।[१]

---

(१) प्रेमचन्द-`देशी चीजों का प्रचार कैसे बढ़ सकता है`
`विविध प्रसंग`(भाग- १) संकलनकर्ता अमृतराय, संस्करण-प्रथम,
प्रकाशन- हंस, इलाहाबाद १९६२
पृष्ठ-संख्या- १७, २२ ।

प्रेमचन्द सामाजिक चेतना के कलाकार थे जनमत मे स्वाधीनता की प्राण प्रतिष्ठा करना चाहते थे उनका विश्वास था कि केवल पढ़े लिखे लोगों के संरक्षक और सहानुभूति से समाज अथवा राष्ट्र कीयथेष्ठ उन्नति नहीं हो सकती । प्रेमचन्द ने अपने प्रारम्भिक लेखों में जागरूकता के संकेत दिये है । अपने एक लेख में वह लिखते हैं `आबादी का वह बड़ा हिस्सा जो दिहातों मे आबाद है मुल्क और कौमी मामलों की तरफ से बेखबर हैं `ऐसी दशा में पढ़े लिखे लोगों के सहारे सफलता की आशा सम्भव नहीं ।(१) लेकिन समाज की दुर्बलताएं जिनका वह अपने दैनिक जीवन में अनुभव कर रहे थे वे भी उनकी लेखनी से उभरीं । `असरारे मआविद उर्फ देवस्थान रहस्य` (जो अक्तूबर १९६२ मे प्रथम बार हिन्दी जगत में प्रस्तुत हुआ है) समाज मे धर्म की ओट में होने वाली विकृत लीलाओं का चित्रण मात्र है । यह उर्दू एवं क्लिष्ट फारसी शब्दों का प्रथम उपन्यास है, जो अक्तूबर १९०३ मे बनारस से निकलने वाले उर्दू साप्ताहिक `आवाज़े-खल्क` मे सिलसिलेवार निकला था । प्रेमचन्द के जीवन मे आर्य समाज और उसके प्रवर्तक दयानंद जी का पूरा प्रभाव था । `असरारे मआविद` में प्रेमचन्द के विचारों की झलक मिलने लगती है, यद्यपि उनके साहित्यिक जीवन का यह प्रभात था । `हम लोगों की यह मंशा नही है कि औरतें घर मे बंद की जाय । मगर हम लोग इस बात को हरगिज़ मुनासिब न समझेंगे कि सांसारिक कर्तव्यों को पूरा करने मे उनको पूरी आजादी दे दी जाये या बिल्कुल निरंकुश कर दिया जाए । अगर औरतों का निकलना कतई तौर पर बंद कर दिया जाए तो उससे दुनिया के कामों मे बड़ा विघ्न पड़े और गरीब लोगों का काम तो दम भर भी न चले । इसलिये यह लाज़िम आया कि औरतों को जरूरतन और मज़बूरी दर्जे घर से बाहर निकलने की इजाज़त दी जाए मगर यह बात ध्यान मे रहे कि वे सीमा से आगे न जाने पाएं ।`(२)

---

(१) प्रेमचन्द, विविध प्रसंग(भाग-१), संकलन- अमृतराय, प्रकाशन; हंस इलाहाबाद, १९६२, पृ०सं०- १७,

(२) प्रेमचन्द, `असरारे मआविद`, प्रका०-हंस इलाहाबाद, १९६२, पृ०सं०- ४४,।

(१०)- प्रेमचन्द का साहित्यिक जीवन जिस समय आरम्भ हुआ (१८९९-१९०५) उस समय लार्ड कर्ज़न और लार्ड मिन्टो की[१] नौकर शाही सरकारी दमन नीति के सहारे भारतीय जनता पर कठोर प्रहार कर रही थी। उधर कांग्रेस (सन् १८८५) भी सचेत थी। स्वतन्त्रता की भावना सारे भारतीय वातावरण मे थी। इस कारण यह स्वभाविक था कि आरम्भ से ही प्रेमचन्द पर उसका प्रभाव पड़ता। प्रेमचन्द का साहित्यिक जीवन जब प्रारम्भ हुआ, उस समय देश में अनेक प्रत्यक्ष और परोक्ष आन्दोलन चल रहे थे और ये आन्दोलन देश के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन पर विशेष प्रभाव डाल रहे थे। कांग्रेस के नेतृत्व मे तो राजनैतिक संघर्ष चल ही रहा था, इसके साथ ही साथ देश के युवकों मे भी एक विशिष्ट प्रकार की जागृत हुई। उन्होंने काली और शक्ति की उपासना की, गीता की शपथ ली और ब्रिटिश शासन के विरुद्ध सशस्त्र-क्रान्ति का आन्दोलन चलाने के लिए अनेक गुप्त संगठन बनाए। बंगाल मे `युगान्तर`और `अनुशीलन` पार्टियां बनी। महाराष्ट्र, पंजाब, उत्तर-प्रदेश आदि में गुप्त संगठनों का एक जाल सा बिछ गया। अंग्रेज शासकों ने इस आन्दोलन को `आतंकवादी-आन्दोलन` कहा, परन्तु यह आन्दोलन सशस्त्र-क्रान्ति के माध्यम से अंग्रेजी शासन को हटाने और स्वदेशी शासन को स्थापित करने वाला था। इस आन्दोलन के फलस्वरूप विद्रोह की एक लहर सी सारे देश मे दौड़ गयी। यह संघर्ष भी प्रेमचन्द कृत `रंग-भूमि`[२] जैसे उपन्यास में प्रतिबिंबित हुआ है।

---

(१) जनवरी १८९९ ई० में लार्ड कर्ज़न भारत का गवर्नर जनरल तथा वाइसराय होकर आया था। लार्ड मिन्टो (१९०५-१०) तक भारत का गवर्नर जनरल तथा वाइसराय रहा।

(२) प्रेमचन्द `रंगभूमि` प्रका० भारतीय इलाहाबाद, पृ० सं०- ४८६--- ४८९

(११)- बंग भंग की समस्या लेकर देश में और कई आन्दोलन उठ खड़े हुये। देश के बड़े नेताओं के अधिनायकत्व में स्वदेशी आन्दोलन का जन्म हुआ। लाला लाजपतराय, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, विपिन चन्द्र पाल आदि ने स्वदेशी आन्दोलन का संचालन किया। उन्होंने विदेशी वस्तुओं विशेषकर इंगलिस्तान की बनी चीज़ों, के बहिष्कार का नारा लगाया। इस आन्दोलन के फलस्वरूप देश के व्यापारियों और उद्योग-पतियों का समर्थन भी राष्ट्रीय आन्दोलन को प्राप्त हो गया। कांग्रेस के नेतृत्व में जो आन्दोलन अभी तक चल रहा था, वह अधिक वास्तविक बन कर जन जीवन को जागृत करने में सफल हुआ। दे० "रंगभूमि" में जान-सेवक का चरित्र।

(१२)- यद्यपि अंग्रेज शासकों की नीति इस युग के पहले यह भी थी कि देश में उद्योग धन्धे विकसित न हों और ब्रिटेन के बने सामान की खपत यथावत होती रहे। फिर भी देशी उद्योग धन्धों का विकास होता रहा। इसके साथ ही मिलों फेक्टरियों में काम करने वाले मज़दूरों की संख्या और शक्ति भी बढ़ती रही। स्वदेशी आन्दोलन से एक प्रकार की जागृति श्रमिक वर्ग में आई, फलतः मजदूर वर्ग ने भी राष्ट्रीय आन्दोलन में रुचि लेना प्रारम्भ किया। दे० "गोदान" में गोबर का चरित्र।

(१३)- अंग्रेजी शासन का सबसे अधिक कुप्रभाव कृषक वर्ग पर पड़ा था। घरेलू उद्योग धन्धो के नष्ट हो जाने से उनकी विपन्नता बढ़ गई। अंग्रेजी सरकार ने ज़मींदारों के एक अतिशय शोषक वर्ग को जन्म देकर किसानों के चिरंतन शोषण का द्वार खोल दिया था, फलतः किसानों का जीवन नारकीय हो गया था। भूमि की उपज से ही उनका भरण पोषण नहीं हो पा रहा था। उन पर कर्ज का भार बढ़ता जाता था। उनका सामाजिक जीवन विश्रृंखलित हो गया था। अशिक्षा, अन्धविश्वास, भाग्यवादिता आदि ने कृषक समाज के जीवन में निराशा और अवसाद भर दिया था, अतः अब राष्ट्रीय आन्दोलन अधिक वास्तविक रूप में चला तो स्वभावतः कृषक-वर्ग ने भी उसमें उत्तरोत्तर अधिक मात्रा में रुचि और भाग लेना शुरु किया। इस प्रकार राष्ट्रीय आन्दोलन अधिक वास्तविक, मांसल और व्यापक

बन गया । इस आन्दोलन ने चतुर्दिक जागृति और क्रियाशीलता को जन्म दिया ।

(१४)- यह था सामाजिक और राजनीतिक परिवेश जिसमें प्रेमचंद का साहित्यिक जीवन प्रारम्भ हुआ । इसलिए प्रारम्भ से ही उनकी विचारधारा, दृष्टि, और सूझ-बूझ को इस विशेष संदर्भ और परिवेश द्वारा संस्कृत होने का अवसर मिला । प्रेमचंद की मूलभूत प्रेरणाओं और शक्ति-स्त्रोतों का सम्यक् अनुशीलन करने के लिए इस संदर्भ का अनुशीलन आवश्यक और अनिवार्य है ।

(१५)- अपने साहित्यिक जीवन के आदिकाल से ही प्रेमचंद ने जिस सामाजिक एवं राजनैतिक चेतना का प्रमाण दिया, वह इस बात का साक्षी है कि प्रेमचंद मूलत: सामाजिक चेतना-सम्पन्न कथाकार थे । वह अच्छी तरह जानते थे कि समाज के अभ्युत्थान के अतिरिक्त कला का अन्य कोई प्रयोजन हो ही नहीं सकता । कला की प्रयोजनशीलता के सिद्धान्त को प्रेमचंद ने सहज ही, शायद अनजाने में स्वीकार कर लिया था । उनकी साहित्यिक रचना का क्रमिक-रूप से जो विकास होता रहा, उसमें उनकी इस सामाजिक चेतना के क्रमिक विकास के प्रमाण मिलते हैं । प्रेमचंद के हृदय में अपनी संघर्ष—रत जनता के लिए सहज सहानुभूति थी और स्वाभाविक रूप से वह स्वयं भी उस संघर्ष में भाग लेने के लिए उद्यत रहते थे । संघर्ष-रत जनता के लिए प्रेमचंद की यह सहानुभूति और संवेदना मात्र बौद्धिक नहीं थी । उनकी विचार-धारा में सामाजिक एवं राजनैतिक चेतना का कोई पूर्वाग्रह भी न था । उनकी इस सहानुभूति एवं संवेदनशीलता का आधार था, उनका निजी अनुभव, वह अनुभव जिसे कृषक—समाज का अभिन्न अंग होने के कारण प्रेमचंद ने स्वयं प्राप्त किया था । ग्रामवासी प्रेमचंद ग्रामीण-जीवन के प्रत्येक अंग और पक्ष से घनिष्ठ रूप में परिचित थे । कृषक-सभ्यता और संस्कृति उन्हें पुश्तैनी उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त हुई थी । वह स्वयं गरीब थे और गरीबी की विपत्ति और अभावों से, उनके संघर्ष और उद्यम से, उनकी अच्छाई और बुराई से, प्रेमचंद भली-भाँति परिचित थे । इसलिए उनके मन में कृषक-समाज और श्रमिक-वर्ग के लिए सहज ही सहानुभूति थी । उनकी यह स्वाभाविक सहानुभूति, उनकी लेखनी से निखार पाकर उनके साहित्य का मुख्य विषय बनी ।

(१६)- अंग्रेजी शासकों और शोषकों ने जिस प्रकार भारतीय उधोग-धन्धों को ध्वस्त किया, जिस प्रकार कृषक-जीवन की आर्थिक-व्यवस्था को नष्ट और भ्रष्ट किया, जिस प्रकार उसकी समृद्धि समाप्त करके ग्राम-जीवन को उजाड़ दिया इस का व्यक्तिगत अनुभव कथाकार प्रेमचंद को था । सामाजिक-चेतना-सम्पन्न कथाकार प्रेमचंद, ग्राम-जीवन की दुर्दशा के चित्रण के अतिरिक्त और कौनसी कथा कह सकते थे ? कलम के धनी, बुद्धि के विलक्षण, सहृदय कथाकार प्रेमचंद ने भारतीय ग्राम-जीवन का वास्तविक चित्र खींच कर उसमें अपनी आखों के आंसू और हृदय के रक्त से रंग भर दिया । प्रेमचंद उसी को सत्य और शिव मानते थे, जिसमें उस पीड़ित, शोषित जनता का लाभ निहित हो । प्रेमचंद ने अपनी प्रत्येक रचना को इसी कसौटी पर सत्य और खरा प्रमाणित किया ।

(१७)- प्रेमचंद ने अपने बचपन में जिस साहित्य का अध्ययन किया था, वह तो अधिकतर राजा-रानी और तिलिस्म और ऐयारी के किस्से थे । वे पढ़ने में बहुत अच्छे लगते थे, शायद वे उनके बचपन के दुखी जीवन के साथी थे; पर प्रेमचंद लिखना कुछ और चाहते थे : "दुनिया का सच्चा परिचय केवल उन लोगों के कारनामें हैं, जो समय-समय पर दुनिया में पैदा हुए । हमारे मनोरंजन की वस्तुएं और वह तमाम चीजें जो हमारी प्रशंसा और सम्मान की अधिकारी हैं, उन्हीं बड़े आदमियों की मेहनतों और सोच विचार का नतीजा हैं । जिस दुनिया में हम रहते हैं वह उन्हीं सजग लोगों के सुन्दर प्रयत्नों का फल है । हमारे विचार, हमारा सांस्कृतिक रूप, हमारे तौर-तरीके उसी सांचे में ढलते हैं जो यह आदमी हमारी नज़रों के सामने पेश करता है । जब हमारी अन्दरूनी आंखें अन्धी हो जाती हैं, हमारे ख्यालात गन्दे हो जाते हैं, हमारे बुरे काम बढ़ जाते हैं, हमारी खुशहाली हमारा साथ छोड़ देती है, हमारा धर्म पुराना हो जाता है और समय की दीर्घता उसमें बहुत से परिवर्तन करके उसे बनावटी लोकाचार का संग्रह बना देती है, हमारे ज्ञान की परिधि संकीर्ण हो जाती है और हम अज्ञान के अथाह समुद्र में डुबकियां खाने लगते हैं तो हम अनायास चाहते हैं कि कोई गौतम बुद्ध,

कोई शंकराचार्य, कोई अरस्तू, कोई मुहम्मद, कोई न्यूटन पैदा हो, अपनी अलौकिक योग्यता से हमारे सोसायटी को लाभ पहुंचाएं, जितने अनिष्टकारी तत्व एकत्र हो गए हों उनको दूर कर दे, नए विचारों की सरिता बहा कर हमारी प्यास को बुझाए और हमारे विवेक के बुझे हुए दीपक को प्रज्वलित करें" (१)

(१८)- तेईस वर्ष की युवावस्था में प्रेमचन्द का मन, हृदय, बुद्धि, विचार, विवेक उन्हें ऊंचा उठाने के लिए प्रयत्नशील थे। यही कारण था कि प्रेमचंद को जीवन की, गृहस्थी की, धन की सभी कठिनाइयां भुगतनी पड़ी। पर उनका लिखना-पढ़ना सतत् जारी रहा। प्रेमचंद का लिखना उनका जीवन था, सुख और शान्ति थी और उनके हृदय और मन की सच्ची भावना थी। उनके सुपुत्र श्री अमृतराय ने उन्हें ठीक ही `कलम का सिपाही` कहा है। वह अपने पथ से कभी नहीं डिगे, इसीलिए तो प्रेमचंद इतनी प्रचुरमात्रा में लिख पाए। उनका अनुभव जो उन्होंने अपने जीवन से, अपने गांव से, स्थान-स्थान पर घूमने फिरने से प्राप्त किया था, उसका पूरा चित्र उनके पात्रों में यथार्थ हो गया है।

(१६)- प्रेमचन्द का यह लेखनकार्य इस प्रकार उनकी नौकरी और दौरों के समय भी चलता रहता था। नौकरी के सिलसिले में चुनार, प्रतापगढ़, इलाहाबाद, कानपुर, महोबा, बस्ती, गोरखपुर आदि स्थानों में १६२० तक प्रेमचन्द को घूमना पड़ा। इस नौकरी के ही काल में प्रेमचन्द को ग्राम-जीवन के साथ ही साथ समाज के व्यापक रूप का अनुभव करने का सुअवसर भी प्राप्त हुआ। प्रेमचन्द राष्ट्रीय चेतना के प्रभाव में आए और १६०४ में ही `सोज़ेवतन` से पूर्व (जो १६०६ में लिखी गई थी), कुछ राष्ट्रीय जागरण के लेख प्रस्तुत किए "देशी चीजों का प्रचार कैसे बढ़ सकता है?" "स्वदेशी आन्दोलन," जो `ज़माना` में जून १६०५, और `आवाज़े खल्क` में १६ नवम्बर १६०५ में निकले थे। इन लेखों से प्रतीत होता है कि प्रेमचंद की विलक्षण बुद्धि युवावस्था से ही

---

(१) प्रेमचन्द, `आवाज़े खल्क` मई १६०३, (विविध प्रसंग-भाग३) सं०कर्ता-अमृतराय, प्रका० हंस इलाहाबाद, १६६२ पृ०सं०- १७-२२ तक

स्वतन्त्र-चेता साहित्यकार के रूप में अपने चमत्कार दिखाने लगी थी । वह गहराई के साथ देश और जन-समुदाय का अध्ययन कर रहे थे ।

(२०)- वास्तव में प्रेमचन्द की जीवनी के अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि स्वयं अपने जीवन में यथेष्ट संघर्ष करना पड़ा था और सरकारी कर्मचारी तथा संवेदनशील व्यक्ति होने के कारण उन्हें समाज के उपेक्षित और पददलित व्यक्तियों एवं वर्गों के अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ था । व्यष्टि और समष्टि के जीवन में जो दुख है, उससे वे परिचित थे । वे स्वभाव से चिन्तनशील थे । अत: उन्होंने अपने साहित्य में जीवन में पाई जाने वाली व्यापक वेदना पर गम्भीरता से विचार किया । उन्होंने मानव के दु:ख के मूल कारणों की ओर ध्यान दिया । जिन समस्याओं को उन्होंने अपने कथा-साहित्य में स्थान दिया उनका समाधान खोजने का भी प्रयत्न किया । प्रारम्भ से ही प्रेमचन्द ने अपनी साहित्य-साधना का उद्देश्य बहुत ही गम्भीर, पवित्र, व्यापक और ऊँचा रक्खा ।

(२१)- प्रेमचन्द के जीवन की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति उनके साहित्य में मात्र छाया के रूप में है। जीवन के मध्यकाल से उन्होंने लेखन-कार्य को जीवन और जीविका रूप में अपना लिया था । सन् १९२० के पश्चात्, सरकारी नौकरी से इस्तीफा देने पर प्रेमचंद के मन पर पड़ा अप्रत्यक्ष प्रतिबन्धों का बोझ एक बारगी उठ गया था । मन और शरीर दोनों एक साथ नीरोग हो गए थे । प्रेमचन्द अब कर्मठता और व्यस्तता के जीवन में उतर आए थे । ऊपर जैसा उल्लेख किया गया है कि वे अब लमही में कलम के बल पर जीवन यापन करने लगे थे । प्रेमचन्द की आकृति जैसी सरल थी, वैसा ही सरल स्वभाव था और वैसा ही सरल उनका साहित्य भी है । कृत्रिमता उनके जीवन में कभी भी नहीं आने पायी । उनका व्यवहार, स्वभाव और साहित्य सभी स्वभाविक थे । अपने स्वभाव और चरित्र की दृढ़ता का परिचय उन्होंने अपने जीवन में अनेक बार दिया।[१]

---

(१) शिवरानी देवी "प्रेमचन्द घर में" प्रका० दिल्ली, १९५६, पृष्ठ०सं०- ४०

स्कूल का इंस्पेक्टर उनके सामने मोटर में निकल गया और उन्होंने उसे सलाम नहीं किया, इस पर वह बहुत बिगड़ा, लेकिन प्रेमचंद का काम के समय ही अपने को सरकारी नौकर समझते थे, उसके बाद नहीं । इसी प्रकार युक्त प्रान्त के गवर्नर[१] मि० हेली ने इन्हें राय साहब का खिताब देना चाहा, लेकिन प्रेमचन्द ने उसे स्वीकार नहीं किया । अपनी पत्नी से स्पष्ट कहा; "जनता की राय सहाबी मिलेगी तो लूंगा, गवर्नमेंट की नहीं ।"[२] एक बार अलवर नरेश ने भी घूमने को मोटर और रहने को बंगला के अतिरिक्त चार सौ रुपए मासिक पर अपने यहां आने का सन्देश भेजा । प्रेमचन्द ने यह कह कर कि मैने अपना जीवन साहित्य-सेवा के लिए लगा दिया है, उस नौकरी को ठुकरा दिया । प्रेमचन्द सद्गृहस्थ थे । अपनी पत्नी और बच्चों को वे अत्यधिक प्यार करते थे । उनकी अभिलाषा बहुत ही सीमित थी । वे चाहते थे कि स्वतन्त्रता-संग्राम सफल हो और मृत्यु-पर्यन्त कुछ ऊंची कोटि की पुस्तकें छोड़ जायं । साहित्य और देश-सेवा का ध्यान उनको जीवन के अंतिम काल तक बना रहा । इसी कारण प्रेमचंद का जीवन स्वयं एक उच्च-कोटि की रचना-स्वरूप बन गया था, जिसकी अभिव्यक्ति उनको साहित्य के विभिन्न रूपों में परिलक्षित हो रही थी ।

(२२)- प्रेमचन्द की रचना का उद्देश्य 'मानवतावाद' था । मानव मानव बना रहे, यही प्रेमचन्द का अंतिम उद्देश्य और लक्ष्य था । अपने पात्रों के लिए प्रेमचंद ने उच्च-घरों के द्वार नहीं खट-खटाए । टूटे-फूटे घरों के खुले द्वारों में निःसंकोच भाव से प्रविष्ट हुए, वहीं से अपने पात्रों को प्राप्त किया

---

(१) शिवरानी देवी "प्रेमचन्द घर में" प्रका० दिल्ली, १९५६,
पृष्ठ०सं०- ११८

(२) शिवरानी देवी "प्रेमचन्द घर में" प्रका० दिल्ली, १९५६
पृष्ठ०सं०- ७१

जो अभी तक पशु समझे जाते थे और समाज के एक बड़े वर्ग से अलग थे । प्रेमचन्द ने एक बहुत बड़ी संख्या के इन प्राणियों के सुख-दुख, राग-द्वेष, रीति-रिवाज को निकट से देखा, समझा और अपनी रचनाओं में उन्हें उतार दिया । प्रेमचन्द ने कभी साहित्यिक-व्यवस्थाओं, रुढ़ियों, अन्ध-विश्वासों, परम्पराओं को नहीं अपनाया इसके विपरीत उन्होंने विद्रोही रूप में इन रूढ़ियों का अवलोकन किया ।

(२३)- प्रेमचन्द अपने जीवन के साथ-साथ साहित्य में भी सदैव प्रगतिशील रहे । वह प्रथम लेखक थे जिन्होंने अपनी साहित्यिक प्रेरणाओं से यह सिद्ध कर दिया कि भारत के `स्वाधीनता-आन्दोलन` का मेरुदंड यहां का किसान-आन्दोलन है, जिसका विकास बाद में क्रियात्मक रूप में कांग्रेस के नेतृत्व में हुआ और गांधी जी उसके प्रणेता हुए । प्रेमचंद ने जन-साधारण की शूरता, धीरता, त्याग, बलिदान, सेवा का चित्रण करके हिन्दी-साहित्य में सदा के लिए वास्तविक जीवन के नायकों को अमर कर दिया था । उन्होंने भारतीय समाज की आन्तरिक एकता को स्थायित्व प्रदान करने का प्रयत्न किया । प्रेमचन्द भारतीय समाज को ध्वस्त करने वाले `पूंजीवाद` के सब से बड़े शत्रु थे--उन्होंने `महाजनी सभ्यता` में उल्लेख किया है-- "इस सभ्यता में सारे कामों की गरज़ महज़ पैसा होती है । देश पर राज्य किया जाता है, तो इसलिए कि महाजनों, पूंजीपतियों को ज्यादा से ज्यादा नफा हो"(१) ऐसी सभ्यता में मनुष्यता का नाम नहीं रह जाता । स्वार्थ-सिद्धि ही इस सभ्यता का सर्वमान्य गुण है । परन्तु प्रेमचन्द ऐसे साहित्य के, जो मनुष्य को पतन के गड्ढे में ढकेलने वाला हो, प्रखर विरोधी

---

(१) प्रेमचन्द "महाजनी सभ्यता"
(प्रेमचन्द स्मृति अंक) चयन अमृतराय, प्रका०- हंस इलाहाबाद १६५६, पृष्ठ०सं०- २५७

और आलोचक थे । प्रेमचन्द सदैव इस बात के लिए प्रयत्नशील रहे कि भारतीय जनता में नया सांस्कृतिक जागरण प्रकट हो और प्रगतिशील साहित्य का उद्भव और विकास हो ।

(२४)- प्रेमचन्द निकटतम भविष्य में एक नए भारत की, जो एकता के सूत्र में बंधा हो, साम्प्रदायिकता न हो, ऐसे अखंड भारत की कल्पना करते थे । वे जन-संस्कृति के महान् और प्रेरणादायक स्त्रोत का संवहन कर रहे थे । यदि काल की पुकार असमय उनकी मृत्यु का आवाहन न करती और अभी यदि कुछ समय तक वह हम लोगों के बीच रह पाते तो अवश्य ही वह अपना ऐतिहासिक कर्तव्य पूरा कर लेते । किन्तु प्रेमचन्द असमय ही अपना अधूरा कार्य छोड़ कर इस संसार से विदा हो गए ।

युग का इतिहास

प्रेमचन्द और उनका युग

प्रेमचन्द-युग की स्थिति :

(क) राजनीतिक

(१)- प्रेमचन्द का समय १६०५ से १६३६ तक है । अत: उनके साहित्य के अनुशीलन को सर्वांगीणरूप देने के लिए उस काल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की रूपरेखा का जानना अनिवार्य है, क्योंकि उसी काल की परोक्ष-स्वीकृति ने प्रेमचन्द के कथा-साहित्य को अधिक संगठित और क्रम-बद्ध कथा-वस्तु दी थी । प्रेमचन्द ने अपने युग की आवश्यकताओं के अनुरूप ऐसे कथा-साहित्य की रचना की थी, जिसके सहयोग से समाज को विकास मिला और समाज का प्राणी अपने को अधिक निकट से पहचान सका । प्रेमचन्द ने अपनी गहरी, सूक्ष्म और व्यापक अनुभूति के द्वारा कथा-साहित्य को नए प्राण दिए, जिसका एक लम्बा क्रम-बद्ध इतिहास है । प्रेमचन्द का युग भारतीय जनता के राष्ट्रीय-संघर्ष का युग था । पराधीनता के कारण प्रत्येक क्षेत्र में भारत का विकास रुका हुआ था और उसकी सभी समस्याओं का निराकरण बिना स्वाधीनता-प्राप्ति के सम्भव नहीं हो पा रहा था ।

(२)- सन् १८५७ के सशस्त्र विद्रोह के पश्चात् ईस्ट इंडिया कम्पनी का राज्य समाप्त हो गया और पहली नवम्बर १६५८ को ब्रिटिश सम्राज्ञी, विक्टोरिया (१८३७-१६०१ ई०) ने एक शाही घोषणा द्वारा भारत का शासन अपने हाथों में ले लिया । महारानी की घोषणा में कहा गया था कि "प्रजा के लोग चाहे वे किसी भी जाति, रंग अथवा धर्म के हों, बिना किसी रोक-टोक और भेद-भाव के सरकारी नौकरियों में अपनी शिक्षा, योग्यता और कार्य-क्षमता के अनुसार ही भर्ती किए जाएंगे" । जिस समय यह घोषणा की गई थी विद्रोह की आग पूर्णतया बुझी नहीं थी, परन्तु नाममात्र को स्थिति काबू में लाने लायक

हो गईं थी और अंग्रेजों में फिर से यह आत्मविश्वास जागृत हो गया था कि अब भारत में सफल ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित हो सकेगा। मुगल साम्राज्य का अंतिम दीपक सदैव के लिए बुझ चुका था। भारत का प्रत्येक व्यक्ति अब यह समझने लगा कि भारत एक युरोपीय जाति के अधीन हो गया है।

(३)- १८५७ के "स्वतन्त्रता-संग्राम" के बाद कुछ वर्षों तक भारतीय लोग अत्यन्त भयभीत रहे। विद्रोह होने से जो राष्ट्रीय-अपमान हुआ था, उसे मन-मार कर लोग सहन कर रहे थे। अंग्रेजों के घोर अत्याचारों ने जनता के दिल दहला दिए थे। एक और तो अंग्रेजी सरकार की यह दमन-नीति चलनी आरम्भ हुई; दूसरी ओर 'भारतीय अर्थ—व्यवस्था' को भी अंग्रेजी सरकार ने क्षति पहुंचाई। ब्रिटेन जिस ढंग से भारतीय अर्थ-व्यवस्था संचालित कर रहा था, उसमें उसका मुख्य लक्ष्य था अधिकतम मुनाफा-कमाना। महारानी द्वारा शासन की बागडोर संभालने के पहले ही ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने भारतीय वस्त्र-उद्योग नष्ट कर दिया था और ब्रिटेन अपने यहां का बना कपड़ा भारत को निर्यात कर रहा था, जिसके परिणाम-स्वरूप भारतीय करघा-प्रथा समाप्त प्राय: हो चुकी थी। ब्रिटेन ने अपने लक्ष्य की पूर्ति में राजनीति की बागडोर के साथ-ही-साथ मुनाफाखोरी, और आतंकवादी-दृष्टिकोण बरता, इसके परिणाम-स्वरूप भारत में दुर्भिक्षों की बाढ़ सी आने लगी। भारत से बड़ी मात्रा में अन्न इंगलैंड भेजा जाता था, जिससे यहां दुर्भिक्ष पड़ने लगे। यह निर्यात भारत में भूखे पेट रहने वालों की संख्या में अनवरत वृद्धि का कारण बना।

(४)- अंग्रेजों की कूटनीति ने ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था का ढांचा ऐसा कर दिया था कि किसान अपनी उपज बेचने को बाध्य थे; यद्यपि वे जानते थे कि वर्ष के बड़े भाग में उन्हें भूखा रहना पड़ेगा। अंग्रेजों ने अपनी कूटनीति का दूसरा प्रमाण ज़मींदारों और सामन्तों की रक्षा करके दिया।

लार्ड लिटन (१८७६-८०) ने पूरे मनोयोग से जमींदारों व सामन्तों को सुविधाएं देकर भारतीय किसानों और गरीबों के दमन की नीति लागू करनी शुरू कर दी । ३० अप्रैल, सन् १८७६ को लिटन ने ब्रिटेन के प्रधान मंत्री डिज़रेली को लिखा— "भारतीय राजाओं-महाराजों से भेंट में मुझे जिस बात ने सब से अधिक आकृष्ट किया, वह है उनका वंशगत उपाधियों और पूर्वजों के यश का महत्वपूर्ण मानना । यहां यह बड़ा सामन्ती कुलीन वर्ग है, जिससे हम छुटकारा नहीं पा सकते, जिसे खुश करने और जिस पर शासन करने के हम इच्छुक हैं ।" इन सामन्ती 'कुलीनों' को अपनी कठपुतली बनाने का अवसर भी अंग्रेजों के हाथ लग गया । इसी साल डिज़रेली ने एक घोषणा की, जिसके अनुसार 'इंगलैंड की महारानी भारत की सम्राज्ञी' कहलाईं । लार्ड लिटन ने इसका स्वागत किया और पहली जनवरी १८७७ को भारतीय नरेशों तथा सामन्तों का दिल्ली में एक समारोह हुआ । इस दरबार में वायसराय ने महारानी की नवीन उपाधि की घोषणा की और लोगों ने अपनी राज्य-भक्ति का प्रदर्शन किया । यह वह समय था जबकि दक्षिण भारत के पचास लाख व्यक्ति अकाल के गाल में समा चुके थे । राष्ट्रीय भारत ने इसका विरोध किया । बड़ी भारी उथल-पुथल मच गई, जिसमें हजारों की संख्या में जनताने भाग लिया । यह एक, पूरा, पक्का 'कृषि-विद्रोह' था । पुलिस ने लगभग एक हजार व्यक्तियों को पकड़ा, किन्तु विदेशी सरकार, उत्सव की खुशी में इस विद्रोह को विशेष महत्व न दे सकी । आर्थिक-शोषण की ये घटनाएं प्रतिवर्ष भारतीय जनता में तीव्रतर होती जा रहीं थीं । विभिन्न आर्थिक रूपों में जनता के शोषण का यह क्रम निरन्तर चलता रहा । इसके विरोध में भारतीय-आत्मा विद्रोह कर उठी और सक्रिय होकर वह मैदान में उतर आई । विद्रोह की यह स्थिति विभिन्न प्रान्तों में अग्नि की चिनगारी के समान फैलती गई । बंगाल में 'इस्तमरारी-बन्दोबस्त' ने एक ऐसी स्थिति पैदा कर दी थी, जिससे १८५९ ई० में 'किसान-विद्रोह' हो चुका था ।

अगले वर्ष १८६१ ई० में बंगाल के काश्तकारों ने फिर मोर्चा लिया । इस बार यह मोर्चा नील के योरपीय प्लान्टरों के खिलाफ़ था । ये प्लान्टर किसानों की एक बहुत बड़ी जन-संख्या को धोखा देकर उनसे लम्बी अवधि के लिए, नील की खेती करने के इकरार-नामे लिखा लिया करते थे । इस प्रकार एक लम्बे युग तक आर्थिक-शोषण का भार बढ़ता ही गया । देश की सत्ता कम्पनी के हाथ से निकल कर महारानी विक्टोरिया के हाथ में जाने के बाद प्रथम १२ सालों में— 'भारत का आर्थिक शोषण चौगुना हो गया था'[१] ये आर्थिक—शोषण जो प्रति वर्ष विभिन्न स्थानों में हो रहे थे, भारतीय शिक्षित समाज की जागृति के लिये वरदान बन कर आए । इसी कारण पं० जवाहर लाल नेहरू ने 'हिन्दुस्तान की कहानी' में लिखा है— "एक बार फिर हमको हिन्दुस्थान में ब्रिटिश राज्य का जन्म-जात विरोधाभास दिखाई देता है । उन्होंने सारे देश को एक राजनीतिक सूत्र में बांधा और इस तरह वे नई सक्रिय-शक्तियां फूट पड़ीं जिन्होंने सिर्फ उस ऐक्य की ही बाबत नहीं सोचा बल्कि उन्होंने हिन्दुस्तान की आज़ादी पर भी लक्ष्य किया ।"[२] नेहरू जी इसी विषय को और स्पष्ट करके लिखते हैं—"सन् १८५७-५८ के विद्रोह के असर से हिन्दुस्तान धीरे धीरे पनपा । ब्रिटिश नीति के बावजूद, ज़बर्दस्त ताक़तें काम कर रहीं थीं और हिन्दुस्तान

---

(१) रमेशचन्द्र दत्त—इंडियन ट्रेड, मैन्युफैक्चर्स ऐन्ड फाइनेन्स-पृ०सं०-१३८, अनु० रामगोपाल, प्रका० ज्ञान मंडल बनारस, सं० प्रथम, संवत् २०११, पृ० सं०- ७६

(२) पं० जवाहर लाल नेहरू, "आखरी पहलू" अनु० रामचन्द्र टंडन संस्करण-प्रथम, प्रका० मार्तन्ड उपाध्याय दिल्ली, पृ०सं०-४०७

को बदल रहीं थीं और एक नई सामाजिक सजगता आ रही थी । हिन्दुस्तान के राजनैतिक एके से, पश्चिम के साथ सम्पर्क से, विज्ञान और मशीनों में तरक्की की वजह से, यहां तक कि सारे देश में उसी गुलामी के दुर्भाग्य से, नई विचार-धारा बनी, धीरे-धीरे उधोग-धन्धों की तरक्की हुई और कौमी आज़ादी के लिए एक नया आन्दोलन खड़ा हुआ । हिन्दुस्तान की जागृति दोहरी थी : उसने पश्चिम की तरफ निगाह की, और साथ ही अपनी तरफ, अपने गुजरे ज़माने की तरफ निगाह की ।"(१)

इसी संदर्भ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म (१८८५ ई०) हुआ । इसको जन्म देने का श्रेय अलेन आक्टेवियन ह्यूम (   ) को है । ह्यूम महाशय एक आई० सी० एस० अधिकारी थे । उन्होंने ऐसे आंकड़े एकत्र किए जिनसे यह पता चला कि यधपि अंग्रेजों ने विद्रोह का दमन तो कर दिया है, परन्तु वह आग बिलकुल बुझी नहीं है । ह्यूम महाशय ने सोचा कि यदि ऐसा कोई मंच तैयार किया जाय जिस पर भारतीय राजनीतिक नेता एकत्र होकर अपने दिल का गुबार निकाल सकें, तो विद्रोह का कोई डर न रह सकेगा और देश में वैधानिकता का बोलबाला हो जाएगा । ब्रिटिश सरकार तथा वायसराय से अनुमति लेकर उन्होंने कांग्रेस को जन्म दिया और कांग्रेस के मंच पर आने के लिए उन्होंने भारत के नेताओं को आमंत्रित किया । कुछ समय से भारतीय नेता भी सोच रहे थे कि देश में एक अखिल-भारतीय राजनीतिक संस्था संगठित की जाए । सर्वश्री सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, दादा भाई नौरोजी, जमशेद जी टाटा, विश्वनाथ माडलिक, मंगलदास नाथुभाई, फरदून जी जैसे लोग जब कभी आपस में मिलते, एक दूसरे से कहते, अगर निरकुंश वायसराय

---

(१) पं० जवाहर लाल नेहरू "आखरी पहलू" अनु० रामचन्द्र टंडन संस्करण- प्रथम, प्रका० मार्तन्ड उपाध्याय दिल्ली पृ० सं०- ४०८

की शान शौकत बढ़ाने के लिए राजों-महाराजों को एक तमाशा खड़ा करने के लिए बाध्य किया जा सकता है तो क्या जनता को संघटित कर वैधानिक उपायों द्वारा निरंकुश शासन की भावना को रोका नहीं जा सकता ?"(१) यह भावना और विचार-धारा धीरे-धीरे बढ़ती गयी और ऐसी विचार-धारा के लोगों के सहयोग से कांग्रेस का भी विकास होता गया ।

(५)- सन् १८८७ तक कांग्रेस ने अपने कार्य का विस्तार वैधानिक राजनीति की परिधि से इतना कर दिया कि वह शिक्षित वर्गों के विशाल समूह की संस्था बन गई । प्रत्येक वर्ष विभिन्न स्थानों में कांग्रेस का अधिवेशन मनाया जाता था जिसमें योजना एवं सुझावों के रूप में कांग्रेस राजनीतिक और सामाजिक मांगों का व्योरा तैयार करती थी । प्रतिनिधि रूप में राष्ट्रीय नेता लिखित मांगे सरकार के सम्मुख उपस्थित करते थे । शिकायतों और अपने दुख-दर्दों को दूर कराने के उद्देश्य से प्रारम्भ होकर कांग्रेस देश की एक ऐसी मान्य संस्था के रूप में परिणत हो गई जो बड़े स्वाभिमान के साथ अपनी मांगे भी पेश करने लगी । शीघ्र ही भारतवासियों की तमाम राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं की ठोस और सत्तापूर्ण प्रतिपादक बन गई ।

(६)- १८८५-१९०० का युग सुधारों का युग कहलाता है । इसमें भारत के सभी अग्रगण्य नेता थे और अधिकतर नेताओं की संख्या उच्च-मध्यम-वर्ग के लोगों की थी । प्रत्येक बड़े नगर में कांग्रेस के वार्षिक-अधिवेशन होते थे,

---

(१) ए० सी० मजूमदार, : इन्डियन नेशनल एवोल्यूशन, पृष्ठ- ३३,- अनु० रामगोपाल, `भारतीय राजनीति` प्रका० ज्ञान मंडल बनारस, संस्करण- प्रथम, संवत् २०११, पृ० सं० ६१.

जिसमें प्राय: नगर के प्रतिनिधि ही सम्मिलित होते थे । जन-साधारण का अभी तक कांग्रेस केवल "शिक्षित-मध्यम श्रेणी" के लोगों की मांगों को ध्वनित करती थी । साथ ही कांग्रेस ने इस समय अपने को "वैधानिक-आन्दोलन" तक ही सीमित रक्खा । वह ब्रिटिश-सरकार के समक्ष अपनी मांगों को अत्यन्त विनम्र शब्दों में उपस्थित करती रही और अपने वार्षिक-अधिवेशनों में कांग्रेस ब्रिटिश सरकार के प्रति अपनी राज-भक्ति प्रकट करती रही और केवल वैधानिक कार्यवाहियों पर ही बल देती रही । कांग्रेस को अपने शैशवकाल में तो अवश्य भारत सरकार की सहानुभूति मिली तथा उसका सहयोग भी मिला । कांग्रेस के नेताओं को यह विश्वास था कि यदि वे अंग्रेजों के समक्ष अपनी उचित मांगें रक्खेंगे तो अंग्रेज उनके साथ न्याय करेंगे और उनकी मांगों को स्वीकार करेंगे । कांग्रेस की इस नीति को इसके आलोचकों ने `राजनीतिक-दरिद्रता` की संज्ञा दी है । कांग्रेस की गति-विधि का अवलोकन कर सरकार सशंकित हो गई और उसके व्यवहार में परिवर्तन आना प्रारम्भ हो गया । प्रारम्भ में तो सरकार ने केवल उदासीनता तथा तटस्थता प्रकट की, परन्तु कालान्तर में उसका कांग्रेस के साथ संघर्ष आरम्भ हो गया और कांग्रेस के दमन के लिए सरकार कुठारहस्त हो गई । डा० बी० पट्टाभि सीतारामैया के शब्दों में : शिकायतों और अपने दु:ख-दर्दों को दूर कराने के उद्देश्य से शुरूआत करके कांग्रेस देश की एक ऐसी मान्य संस्था के रूप में परिणत हो गई जो बड़े स्वाभिमान के साथ अपनी मांग भी पेश करने लगी । शीघ्र ही वह भारत वासियों की तमाम राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं की एक ज़बरदस्त और सत्तापूर्ण प्रतिपादक बन गई । उसका दरवाज़ा सब श्रेणियों और सब जातियों के लोगों के लिए खोल दिया गया । यद्यपि आरम्भ में वह उन प्रश्नों को हाथ में लेती संकोच करती थी जो सामाजिक कहे जाते थे, तथापि उचित समय आते ही कांग्रेस ने इस बात को मानने से इन्कार कर दिया कि जीवन अलग-अलग टुकड़ों में बंटा हुआ है और इन प्राचीन परम्परागत विचारों के आगे जाकर, जो जीवन के

प्रश्नों को सामाजिक और राजनीतिक सीमाओं में बांध देते हैं, कांग्रेस ने एक ऐसा सर्व-व्यापी आदर्श अपने सामने रखा, जिसमें कि सारा देश का जीवन, जो अविभाज्य है, आ गया ।(१)

(७)- डा० पट्टाभि सीतारामैय्या के कथनानुसार कांग्रेस अपने जीवन के प्रथम काल में वैधानिक साधनों तथा शान्ति की नीति में विश्वास करती थी, परन्तु देश के भीतर तथा विदेशों में कुछ ऐसी घटनाएं घटीं जिनके फल-स्वरूप देश के नवयुवकों के एक नए दल का जन्म हुआ जो कांग्रेस के वैधानिक आन्दोलन, शान्ति की नीति, अनुनय-विनय तथा नैतिक-दबाव में विश्वास नहीं रखता था । इस दल का जन्म २० वीं.श.के आरम्भ में हुआ । बाल गंगाधर तिलक, लाजपतराय तथा विपिनचन्द्र पाल इस दल के प्रमुख नेता थे । यह दल `उग्र-दल` के नाम से प्रसिद्ध हुआ और इसने कालान्तर में कांग्रेस के विचारों तथा कार्यक्रम को अत्यधिक प्रभावित किया । यह वह समय था जिस समय प्रेमचन्द ने अपनी लेखनी संभाली थी—"उस समय बंग-भंग का आन्दोलन हो रहा था । कांग्रेस में गर्मदल की सृष्टि हो चुकी थी । इन पांचों कहानियों में स्वदेश-प्रेम की महिमा गाई गई थी"।(२)

(८)- बाल गंगाधर तिलक के आगमन से राजनीति में नवीन मोड़ आया । आरम्भ से ही तिलक उग्र प्रकृति के थे । वे किसी के सम्मुख झुकना नहीं जानते थे । वे राष्ट्र-धर्म के महान् उपासक थे और अपने समाज की मर्यादा

---

(१) डा० बी० पट्टाभि सीतारामैय्या, कांग्रेस का इतिहास, प्रथम-संस्करण, प्रका० मार्तन्ड उपाध्याय, दिल्ली, पृष्ठ-संख्या- १३

(२) प्रेमचन्द, कफन, प्रका०- सरस्वती, प्रथम-संस्करण, पृ० सं०- ६३,

को जानते थे । जब १८९६ ई० में महात्मा गांधी पूना गए तब वे लोकमान्य से मिले और गोखले से भी, जिसका उल्लेख डा० पट्टाभि सीतारामैय्या ने इस प्रकार किया है—"तिलक उन्हें हिमालय की तरह महान्, उच्च, परन्तु अगम्य दिखाई पड़े, लेकिन गोखले गंगा की पवित्र-धारा की तरह जिसमें वह आसानी से गोता लगा सकते थे । ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ यदि स्थूल भाषा का प्रयोग करें तो ‹ ‹ ‹ गोखले 'नरम' थे और तिलक 'गर्म' ‹ ‹ ‹ ‹ गोखले का अखाड़ा था कौंसिल-भवन, तिलक की अदालत थी गांव की चौपाल ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ गोखले का उद्देश्य था 'स्वशासन' ‹ ‹ ‹ तिलक का उद्देश्य था 'स्वराज्य' जो कि प्रत्येक भारत वासी का जन्मसिद्ध अधिकार है ।"[१] तिलक ने लोगों के दिलों में शिवाजी की याद को पुन: जीवित किया और अंग्रेजों के विरुद्ध देशभक्ति की भावना भरने के लिए नाटकों, त्यौहारों व धार्मिक उत्सवों का माध्यम चुना । किन्तु भारतीयों के देश-भक्ति-पूर्ण उत्साह से अंग्रेजों में प्रतिक्रिया का उदय हुआ । बीसवीं शताब्दी के प्रथम पांच वर्ष लॉर्ड कर्ज़न के दमनपूर्ण शासन के थे । भारत को इस दमन का सब से बड़ा धक्का सन् १९०४ में बंग-भंग आन्दोलन से लगा ।

(६)- अंग्रेजी सरकार की 'फूट डालो व राज्य करो' की नीति में लार्ड कर्ज़न के नेतृत्व में सन् १९०५ में बंगाल का जो भाग पूर्वी बंगाल बना, वह पश्चिमी बंगाल के मुकाबले राजनीतिक, आर्थिक और शिक्षा की दृष्टि में पिछड़ा हुआ था । पूर्वी बंगाल में मुसलमान किसानो की आबादी अधिक थी ।

---

(१) डा० पट्टाभि सीतारामैय्या- कांग्रेस का इतिहास
पृ० सं०- २५,

लार्ड कर्ज़न ने इस इलाके को पश्चिमी बंगाल की आन्दोलन-मूलक राजनीति से अलग कर देने का फैसला किया । लार्ड कर्ज़न का विश्वास था कि मुसलमानों को अधिक सुविधाएं देने से वे राजनीति से विमुख रखे जा सकते हैं । अभी अविभाजित बंगाल में अधिक नौकरियां हिन्दुओं को मिलती थीं । अंग्रेजों ने अपनी `फूट डालो और राज करो` वाली नीति से`मुस्लिम सांप्रदायिकता` का विष-बीज भारत में सदा के लिए बो दिया । इसका दुष्परिणाम बाद को आने वाली राष्ट्रीय-चेतना पर पड़ा और उसके विकास के मार्ग में बाधक सिद्ध हुआ । अंग्रेजों ने सदैव अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए भारत में इस प्रकार के सांप्रदायिक दंगों को समाप्त न होने दिया, बल्कि छिपे तौर पर वे उसे प्रोत्साहन ही देते रहे । प्रेमचन्द ने अपने जीवन के प्रारम्भिक काल से ही इन राजनैतिक चालों को खूब समझा था और उनकी अनुभवशील दृष्टि ने शीघ्र ही इस दुर्बलता को अच्छी तरह देख लिया था ।बाद में प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों और कहानियों के माध्यम से राष्ट्रीय विकास की इस बाधा को समूल तोड़ फेंकने का सफल प्रयत्न किया । इसका एक प्रमुख उदाहरण उनके `कायाकल्प` (पृ० १६४) उपन्यास में मिलता है । प्रेमचन्द के पात्र हिन्दू-मुसलिम संकीर्णता से दूर `मानव` रूप में आए । इसी प्रसंग में अपने एक लेख में उन्होंने २२ अगस्त १६३२ में लिखा था--`साम्प्रदायिक भेद की नीति ही आपत्तिजनक है । गवर्नमेंट भारत को राष्ट्र नहीं समझती ,,,, हमें यह दिखाना है--कि तुम चाहे हमें कितने ही टुकड़ों में बांटों, हम परवाह नहीं करते । हम एक राष्ट्र हैं । इस भेद--नीति से हमारी राष्ट्रीयता को कुचलना सम्भव नहीं ।`

(१०)- २० जुलाई सन् १६०५ को बंग-भंग की सरकारी घोषणा हुई, जिसने हजारों नौजवानों को अंग्रेजों के खिलाफ युद्ध करने की प्रेरणा दी । इस युग के नेताओं ने ब्रिटिश-माल के बहिष्कार, स्वदेशी के प्रोत्साहन तथा राष्ट्रीय संस्थाओं की स्थापना पर बल दिया और सरकार का विरोध करने के लिए जनता को प्रोत्साहित किया । स्वदेशी-आन्दोलन के परिणाम-स्वरूप

देशी-उद्योग-धन्धों का पुनरुत्थान और विकास हुआ । अंग्रेजी माल का बहिष्कार अपने आप ही एक अस्त्र की तरह जनता के सामने आ गया । `बायकाट` या बहिष्कार से ब्रिटिश सामान का आयात कम ही होता गया और देशी उत्पादन को बढ़ावा मिला । इस स्वदेशी आन्दोलन का श्रीगणेश ७ अगस्त, १६०५ को हुआ । यह प्रदर्शन भारतीय-जागृति का ऐतिहासिक प्रदर्शन था । इस समय कांग्रेस अपने द्वितीय उदयकाल के मध्यान्ह में थी । इस युग में सार्वजनिक सभाएं और सम्मेलन राजनीतिक कार्यक्रम के दैनिक अंग बन गए थे । इससे भारतीय उद्योगों को प्रोत्साहन मिला और जुलाहों को अपना खोया हुआ पेशा मिला, उनकी भूखी-तड़पती आत्माओं ने राष्ट्रीय-आन्दोलन को दुआएं दीं । इस युग में नवयुवक, विशेषत: छात्र, घूम-घूम कर स्वदेशी का प्रचार किया करते थे । जनता में जोश लाने के लिए `बन्देमातरम्`[१] गाया जाता था । `बन्देमातरम्` हाकिमों के लिए भय का कारण हो गया । पूर्वी बंगाल के नए सूबे की सरकार ने इस गाने को गैर-कानूनी करार दिया और सड़कों पर इसका गाना जुर्म हो गया ।

---

(१) `बन्देमातरम्` बंकिम बाबू द्वारा रचित प्रसिद्ध `राष्ट्रीय-गीत` है । जो लाखों बार कांग्रेस की सभाओं में गाया गया । यह गीत बंकिम बाबू के उपन्यास `आनन्द मठ` (१८८२ में है ।

(११)- एक ओर अंग्रेज हाकिमों की आतंक और दमन-नीति बढ़ रही थी और दूसरी ओर विभिन्न प्रान्तों में घूम-घूम कर देश के नेता नवजागरण का सन्देश जनता को दे रहे थे। गोपाल कृष्ण गोखले,[१] मदन मोहन मालवीय,[२] फीरोज़ शाह मेहता,[३] आनन्द मोहन बसु,[४] विपिन चन्द्र पाल,[५] महादेव गोविन्द रानडे,[६] रमेश चन्द्र दत्त[७] आदि नेता कांग्रेस के अधिवेशनों में देश के विभिन्न अंचलों में संगठित सभाओं में भाषण देकर अंग्रेजी शासन की दमन-नीति का विरोध कर रहे थे और स्वतन्त्रता-आन्दोलन को बलशाली बनाने का प्रयत्न कर रहे थे। इसी संदर्भ में कांग्रेस का बनारस अधिवेशन सन् १९०५ में हुआ और १९०६ में कलकत्ता का अधिवेशन हुआ। "स्वराज्य-हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है" यह नारा इसी ज़माने में राष्ट्रीय नारे के रूप में स्वीकार किया गया। इसके बाद सन् १९०७ में जब सूरत में कांग्रेस का

---

(१) "गोखले का बहुत बड़ा रचनात्मक काम है, भारत-सेवक-समिति। यह ऐसे राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं की संस्था है, जिन्होंने नाम मात्र के वेतन पर मातृभूमि की सेवा करने का प्रण लिया"

(२) "१६ अक्तूबर, १९०५ को जो बंग-भंग किया गया था, उससे देश भर में एक एक नई लहर पैदा हो गयी थी। कांग्रेस के वायुमंडल में उस समय बहिष्कार की भावना छाई हुई थी। बाबू विपिनचन्द्र पाल ने बहिष्कार शब्द को और भी व्यापक रूप दिया ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ मालवीय जी ने उसका अर्थ देशी उद्योग-धन्धों का संरक्षण किया"

(३) "सर फिरोजशाह मेहता उन व्यक्तियों में थे जिनका सम्पर्क कांग्रेस के साथ उसके आरम्भ से ही था।"

(४) "आनन्द मोहन बसु एक प्रसिद्ध सामाजिक और धार्मिक सुधारक थे। ब्रम्ह-समाज की प्रगति में उनका हाथ था।" (५) "विपिन बाबू प्रसिद्ध वक्ता थे।"

(६) "महादेव गोविन्द रानडे, कांग्रेस में एक उच्च शिखर के समान थे। अर्थशास्त्री और इतिहास के रूप में वह स्मरणीय थे।"

(७) "रमेशचन्द्र दत्त कमिश्नर के ऊँचे पद पर रह चुके थे, फिर भी उन्होंने कांग्रेस का साथ दिया था"
(डा० पट्टाभि सीतारामय्या; कांग्रेस का इतिहास, पृ० सं०- १८----३३,)

अधिवेशन हुआ तो वहाँ नर्म दल और गर्म दल में गहरा मतभेद हो गया और दोनों दल अपने-अपने मतों और विचार-धाराओं के अनुसार काम करने लगे । सन् १९०७ के अधिवेशन का महत्व इस बात में है कि अब कांग्रेस ने मात्र प्रस्ताव पास करने की परम्परा छोड़ दी और स्वदेशी के प्रयोग, विदेशी के बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा के प्रसार के लिए ठोस क्रियात्मक कदम उठाना शुरू किया । ब्रिटिश सरकार आन्दोलन के बढ़ते हुए उग्ररूप को देख कर घबड़ा गई और उसने देश के नेताओं को गिरफ्तार करना और निर्वासित करना आरम्भ किया । प्रेस और अखबारों पर भी सख्ती आरम्भ हो गई । `युगान्तर,` `संध्या` `बन्देमातरम्` आदि अखबार बंद कर दिए गए । इसी ज़माने में श्री अरविन्द पर भी तीन मुकदमे चले । १३ जुलाई, सन् १९०८ को लोकमान्य तिलक गिरफ्तार कर लिए गए और उन्हें छः साल तक के लिए देश से निष्कासित कर दिया गया । सन् १९०८ में `राजद्रोही सभा-बंदी कानून` तथा `प्रेस ऐक्ट` सरकार ने पास किया । `क्रिमिनल ला एमेन्डमेन्ट ऐक्ट` भी इसके दो वर्ष बाद बन गया । इन सभी दमनकारी कानूनों से खिन्न और क्रुद्ध होकर गोपाल कृष्ण गोखले ने अंग्रेजी सरकार को चेतावनी दी कि अब "युवक हाथ से निकले जा रहे है और यदि हम उन्हें वश में न रख सके तो सरकार हमें दोष न दे" ।

(१२)- सरकारी दमन को नवयुवको ने चुनौती के रूप में स्वीकार किया और वह गीता, काली, भारत माता की शपथ लेकर सशक्त और सशस्त्र क्रान्ति के मार्ग पर चल पड़े । ३० अप्रैल १९०८ को मुज़्ज़फरपुर में दो बम गिरे, इस अपराध के लिए १८ वर्षों के युवक खुदी राम बोस को फांसी दे दी गई । `युगान्तर` के कालमों में खुल कर प्रतिहिंसा का प्रचार किया गया । `बन्देमातरम्` में श्री अरविन्द ने विद्रोही लेख लिखे । सन् १९०७ में क्रान्तिकारी मदन लाल धींगड़ा ने सर

कर्ज़न वाइली की हत्या लंदन में की, २३ दिसम्बर, १९१२ को लार्ड हार्डिंग्ज़ जब जलूस के साथ हाथी पर नई राजधानी दिल्ली में प्रवेश कर रहे थे, किसी ने उन पर बम फेंका और वह मरते-मरते बचे। इस प्रकार हम देखते हैं कि देश के युवकों ने संगठित होकर सरकारी दमन का विरोध किया। नर्म और गर्म दल का आपसी भेद बढ़ता जा रहा था। नर्म दल को यह विश्वास था कि अंग्रेजी सरकार भारत के साथ न्याय करेगी और वह देश के नेताओं के सुझावों को अमल में ले आएगी। परन्तु गर्म दल वाले अंग्रेजी के वायदे पर विश्वास नहीं करते थे। वह देश की संगठन-शक्ति के सहारे ब्रिटिश साम्राज्य से अपनी बात मनवा लेना चाहते थे। इस प्रकार इन दोनों दलों का आपस का यह भेद चलता रहा।

(१३)- सन् १९१४ में प्रथम महायुद्ध आरम्भ हो गया। उस समय कांग्रेस ने `स्वशासन` की मांग फिर दोहराई। `होम रूल` का महान् आन्दोलन डा० ऐनी बेसेन्ट के नेतृत्व में आरम्भ हो गया। १६ जून १९१७ को डा० बेसेन्ट नज़रबंद कर दी गयीं। १९१५-१६ में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने भी बहुत परिश्रम करके राष्ट्रीय आन्दोलन को पुनर्गठित किया। १९१६ में लखनऊ में हिन्दू-मुसलिम एकता को ध्यान में रख कर, मुसलिम-लीग और कांग्रेस में समझौता करने की प्रक्रिया आरम्भ हो गई। १९१८ में मान्टेगू-चेम्सफोर्ड सुधार की घोषणा ब्रिटिश सरकार द्वारा हुई। इस से भारत के नेता किसी भी प्रकार सन्तुष्ट नहीं हो सके। १९१८ में प्रथम महायुद्ध समाप्त हुआ, उस समय यह आशा की जाती थी कि ब्रिटिश सरकार युद्ध-काल में भारत से किये गए अपने वायदों को पूरा करेगी, परन्तु ऐसा नहीं हुआ। बजाय इसके कि सरकार अपने वायदों को पूरा करती, उसने `हन्टर कमेटी रिपोर्ट`(सितम्बर १९१९) प्रकाशित की और `रोलेट ऐक्ट` (१९१९ फरवरी) लागू किया, जिसके अनुसार देश के राजनैतिक आन्दोलन

को दबाने, कार्यकर्ताओं और नेताओं को फांसी देने, काले पानी की सज़ा देने का पूरा अधिकार सरकार ने प्राप्त कर लिया । इस प्रकार १९१८ के अन्त देश में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध विद्रोह कर देने का समुचित वातावरण तैयार हो गया था ।

(१४)- इसी अवसर पर भारतीय राजनीतिक रंगमंच पर, जन-नायक के रूप में मोहनदास करमचंद गांधी का उदय हुआ । इस युग में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन ने तीसरा मोड़ लिया । इस युग को `गांधी-युग` के नाम से अभिहित किया जाता है । इस काल की मुख्य विशेषता यह थी कि महात्मा गांधी के नेतृत्व में ब्रिटिश शासन के खिलाफ संगठित जन आन्दोलन का व्यापक स्वर आरम्भ हुआ । ब्रिटिश सरकार ने मान्टेग्यू चेम्सफ़ोर्ड सुधार भारत के ऊपर लादने की कोशिश की थी । देश उसे स्वीकार करने को तैयार न था । अंग्रेजों ने भारतवासियों से जो वादे किए थे उनसे मुकर गए । इसलिए उनके प्रति भारतवासियों का अविश्वास बढ़ता गया । `हन्टर-कमेटी` रिपोर्ट और `रोलेट-एक्ट` के लागू होने के कारण देश तिलमिला उठा । महात्मा गांधी ने यह नारा दिया था कि सारे देश में ६ अप्रैल से १० अप्रैल तक, देश के विभिन्न अंचलों में सभाएं करके, जनता अपने असन्तोष और विरोध का प्रदर्शन करे । यह बात सन् १९१९ की है । इस जमाने में और भी अनेक बातें महत्व प्राप्त कर रहीं थी । अंग्रेजों ने तुर्की के खलीफा के विरुद्ध जो कदम उठाए थे उनके कारण मुसलमानों में विद्वेष की भावना बहुत अधिक बढ़ गई थी और वे भी अंग्रेजी शासन का विरोध करने के लिए उतावले हो रहे थे । युद्ध समाप्त होने के बाद व्यापार में सहसा गिरावट आ गई और बेकारी भी बढ़ने लगी । गांधी जी ने सम्पूर्ण परिस्थिति का अच्छी तरह विश्लेषण और अनुशीलन किया और अंग्रेजी शासन का विरोध करने का निश्चय किया । सारे देश में महात्मा गांधी को अपूर्व सहयोग प्राप्त हुआ । महात्मा गांधी ने एक सप्ताह तक विरोधी प्रदर्शन सभा आदि करने का जो नारा दिया

था, उसका पालन अत्यन्त उत्साह-पूर्वक देश के विभिन्न अंचलों में हुआ। पंजाब में अनेक बड़े प्रदर्शन हुए और कई महती सभाएं हुईं। जलियानवाला बाग की सभा इसी देश-व्यापी प्रदर्शन की एक कड़ी थी।

(१५)- `जलियानवाला बाग`का हत्याकांड विदेशी शासकों द्वारा किए गए दमन की ऐसी कहानी है जिसकी कालिमा ब्रिटिश शासन के मुंह पर सदा लगी रहेगी। इस हत्याकांड से भारत की आत्मा तड़प उठी और उसके हृदय में प्रतिशोध की आग जल उठी। सारे देश में इस घटनाके कारण विद्रोह की लहर दौड़ गई, जो लोग अब तक नर्म और उदार दृष्टिकोण के माने जाते थे, वे भी अब गर्म विचारधारा के हो गए। अंग्रेजी शासन का सक्रिय विरोध करना अब उनका धर्म बन गया। इस कठिन और विस्फोटक समय में देश को श्री मोहन दास करमचंद गांधी का सशक्त नेतृत्व प्राप्त हुआ और वह जन-नायक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। स्वयं कांग्रेस का जीर्णोद्धार हो गया, पुरानी निष्क्रियता समाप्त हो गई और पं० जवाहर लाल नेहरू के शब्दों में—`गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस एक गतिशील संस्था बन गई। ,,,,,, कांग्रेस संस्था में गांधी जी जब दाखिल हुए तो फौरन ही उस संस्था के विधान में पूरी तरह तबदीली आ गई। उन्होंने कांग्रेस को लोकतन्त्रीय और सार्वजनिक बना दिया।`(१)

(१६)- पं जवाहर लाल नेहरू ने कांग्रेस के उद्देश्यों और आदर्शों में हुए परिवर्तनों की चर्चा इस प्रकार की है— `,,,,, इस संस्था का मकसद और उसकी बुनियाद थी `सक्रियता`। ऐसी सक्रियता जिसकी बुनियाद शान्ति-पूर्ण ढंग पर थी। ,,,,,, सक्रियता की पुकार दोहरी थी। ज़ाहिर है

---

(१) ले० पं० जवाहर लाल नेहरू,- `हिन्दुस्तान की कहानी`
पृष्ठ-संख्या०- ४४७,

विदेशी राज्य को चुनौती देने और उसका मुकाबला करने की सक्रियता तो थी ही ..... अपनी निजी समाजिक कुरीतियों का मुकाबला करने की सक्रियता भी थी" आगे चल कर नेहरू जी ने अंग्रेजी सरकार की नीति की तर्क पूर्ण व्याख्या की है—[१] "ब्रिटिश राज्य की असली बुनियाद, डर, रौब और उस सहयोग पर थी जो वे लोग मन या बेमन से देते थे, जिनके स्थापित स्वार्थ ब्रिटिश-राज्य में केन्द्रित थे।"

(१७)- गांधी जी ने राजनीति के क्षेत्र में बड़े-बड़े महत्वपूर्ण कार्य किए, जिनके योगदान से पुन: भारतीय आत्मा जो संघर्ष से त्रस्त हो गई थी पुनर्जीवित हो उठी। नेहरू जी ने अपनी 'हिन्दुस्तान की कहानी' में लिखा है— "उन्होंने (गांधी जी ने) हमको गांव में भेजा और सक्रियता के नए संदेश को ले जाने वाले अनगिनत दूतों के काम-काज से देहात में चहल-पहल मच गई। किसान को भकझोरा गया और वह अपनी निष्क्रियता के खोल से बाहर निकलने लगा ....." "आर्थिक, सामाजिक और दूसरे मामलों में गांधी जी के विचार बहुत सख्त थे। उन्होंने इन सब को कांग्रेस पर लादने की कोशिश नहीं की ...." "गांधी जी, खास तौर से, एक धार्मिक आदमी थे, जो अपने अस्तित्व के अन्तरतम से भी हिन्दू थे ..." "गांधी जी अपने आदर्शों और इच्छाओं के अनुसार जिस सांचे में भारत की सृष्टि कर रहे थे, उसको नेहरू जी के शब्दों में ही देखिए—"गांधी जी ने कहा कि उनकी आकांक्षा यह है कि 'हर आंख से, हर एक आंसू पोंछ दिया जाए।"

---

(१) पं० जवाहर लाल नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी- अनु०-श्री रामचन्द्र टंडन, पृष्ठ- ४४६,४५०, ४५१, ४५२,

(१८)- इस तरह सन् १६२० में नेशनल कांग्रेस ने गांधी जी के नेतृत्व में एक निश्चित मार्ग अपनाया । १० सितम्बर सन् १६२० को कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में गांधी जी ने असहयोग का प्रस्ताव रक्खा और बड़े बहुमत से यह प्रस्ताव पास कर दिया गया । इस असहयोग के कार्यक्रम में, सरकारी उपाधियों तथा अवैतनिक पदों को त्याग की मांग जनता से की गई और राष्ट्रीय स्कूल खोलने का प्रयत्न आरम्भ हुआ । दिसम्बर १६२० में नागपुर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ । 'स्वराज्य' प्राप्ति का लक्ष्य ही इसका मुख्य ध्येय था । गांधी जी ने असहयोग को कार्यान्वित करने के लिए सम्पूर्ण देश का भ्रमण किया और जनता को अपनी असहयोग की योजना से अवगत कराना प्रारम्भ किया । गांधी जी को आशातीत सफलता प्राप्त हुई । सैकड़ों व्यक्तियों ने अपनी उपाधियां त्याग दीं, देशबन्धु ने अपनी वकालत छोड़ दी और राष्ट्रीय आन्दोलन में कूद पड़े । व्यवस्थापिकाओं के चुनाव का सफलतापूर्वक बहिष्कार किया गया । स्वदेशी आन्दोलन बड़े ज़ोरों के साथ चला और कताई-बुनाई का कार्य बड़े उत्साह के साथ आरम्भ किया गया । खद्दर हमारा राष्ट्रीय-वस्त्र बन गया और अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखा जाने लगा । जुलाई के महीने में गांधी जी ने विदेशी-वस्त्रों के बहिष्कार का आन्दोलन आरम्भ किया । गांधी जी के असहयोग आन्दोलन का प्रभाव प्रेमचन्द पर भी पड़ा । प्रेमचन्द ने गांधी जी द्वारा राष्ट्रीय जागरण के प्रभाव का इस प्रकार उल्लेख किया है— "यह १६२० की बात है । असहयोग आन्दोलन ज़ोरों पर था । जालियानवाला बाग़ का हत्याकांड हो चुका था । उन्हीं दिनों महात्मा गांधी ने गोरखपुर का दौरा किया । ग़ाज़ीमियां के मैदान में ऊंचा प्लेटफार्म तैयार किया गया । दो लाख से कम का जमाव न था । क्या शहर,

---

प्रेमचन्द,- कफ़न- प्रका०- सरस्वती,
प्रथम- संस्करण, पृष्ठ संख्या—१००,

क्या देहात, श्रद्धालु जनता दौड़ी चली आती थी। ऐसा समारोह मैंने अपने जीवन में कभी न देखा था। महात्मा जी के दर्शनों का यह प्रताप था, कि मुझ जैसा मरा हुआ आदमी भी चेत उठा। उसके दो ही चार दिन बाद मैंने अपनी २० साल की नौकरी को इस्तीफा दे दिया। × × × × × × अब देहात में चल कर कुछ प्रचार करने की मेरी इच्छा हुई।" श्रीमती शिवरानी देवी ने भी असहयोग आन्दोलन के प्रभाव को स्वीकार किया है और इसका उल्लेख यों किया है—"सन् '२० की बात है। असहयोग का ज़माना था गांधी जी गोरखपुर आए। आप बीमार थे; फिर भी मैं, दोनों लड़के, बाबू जी मीटिंग में गए। महात्मा जी के भाषण हुए।"(१)

---

(१) शिवरानी देवी, 'प्रेमचंद घर में'
प्रकाशक—आत्माराम एन्ड सन्स, पृष्ट संख्या ४७,

असहयोग का आरम्भ—

(१६)- उक्त परिस्थितियों में असहयोग की योजना के अनुसार सक्रिय आन्दोलन का आरम्भ १ अगस्त १६२० को हुआ। गांधी जी ने जनता को अनुशासन का पाठ पढ़ाया और उसके उछलते हुए उत्साह को संयम् में रक्खा। तिलक की मृत्यु (३१ जुलाई १६२०) से उग्र राजनीति का दीपक मंद पड़ गया था और गांधी जी देश के सम्मुख विराट शान्ति का पाठ लेकर आए। इस प्रकार देश की राष्ट्रीय चेतना पर पूरा-पूरा गांधी जी का प्रभाव पड़ा और असहयोग-आन्दोलन से देश के सारे राष्ट्रीय कार्य गांधी जी के नेतृत्व में होने लगे। यही कारण था एक युग से जिस का प्रतिनिधित्व गांधी जी कर रहे थे, प्रेमचन्द भी प्रभावित हुए और एक समय तक उनकी रचनाओं पर गांधी जी की छाप मिलती है।[१] प्रेमचन्द ने अपना साहित्यिक जीवन उग्र विचार-धारा से आरम्भ किया था, जिस के प्रवर्तक लोकमान्य तिलक रहे थे। वह उग्र विचार-धारा प्रेमचन्द के अन्दर संस्कार बन गई थी, जिसने उनके अन्तरमन को सदा प्रोत्साहित किया। प्रेमचन्द के आरंभिक संस्कारों का ही परिणाम था कि एक युग तक गांधी जी के साथ चलने पर भी वह उनके मत से पूरी तरह सहमत न हो सके और धीरे-धीरे उग्र और प्रगति-शील

---

(१) "सन् '१६ के अन्त में, भारतीय राजनीति पर गांधी जी का विधिवत् प्रादुर्भाव हो चुका था, प्रेमचन्द गांधी जी की इस प्रगतिशील गति-विधि से पूर्णत: परिचित थे। सन् '२०-२१ के असहयोग में महात्मा गांधी के आह्वान पर प्रेमचन्द ने अपनी बीस वर्षों की पुरानी नौकरी छोड़ दी। प्रेमचन्द की विभिन्न राजनैतिक—रचनाएं उस युग की राजनीति से प्रभावित हैं, जिसका संचालन गांधीजी कर रहे थे। असहयोग के स्वर से मुखरित, इस युग में ही "प्रेमाश्रम" की रचना हुई।" (शिवरानी देवी, प्रेमचन्द घर में, पृ० सं०-६३, ६४,

होते ही गए।[१] आगे हम देखते हैं गांधी-युग में ही प्रेमचन्द की रचनाएं गांधी-मार्ग से नवीन पथ की खोज में आगे बढ़ रही हैं। लेकिन गांधी-युग की घटनाओं का भी प्रेमचन्द पर प्रभूत प्रभाव पड़ा था। इसी कारण साम्प्रदायिक दंगों का,[२] खिलाफ़त आन्दोलन का, चौरी-चौरा कांड का, मजदूर-आन्दोलन,[३] चम्पारन-सत्याग्रह, रचनात्मक कार्यों का—जो जो राजनैतिक घटनाएं उस काल में हो रहीं थीं, इन सब का प्रभाव तथा उनकी झलक प्रेमचन्द की रचनाओं में अवश्य मिलती है।[४]

---

(१) "प्रगतिशील लेखक-संघ के प्रथम अध्यक्षा-पद से भाषण देते हुए प्रेमचन्द ने अपनी धारणाओं को स्पष्ट किया है; हमारी धारणा है कि भारत के नए साहित्य को हमारे वर्तमान जीवन के मौलिक तथ्यों का समन्वय करना चाहिए x x x x x x x x तभी हमों क्रियात्मक शक्ति आएगी"
"मृत्यु से दो माह पूर्व लिखे गए प्रेमचन्द के 'महाजनी-सभ्यता', नामक लेख से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके विश्वासों और मान्यताओं में एक बहुत गहरा क्रान्तिकारी परिवर्तन आ रहा था। वे यथार्थवादी सूक्ष्मता से देश की गतिविधि पहचान रहे थे।" (सभापति भाषण; १६३६, महाजनी सभ्यता-१६३६)

(२) कायाकल्प, पृष्ठ सं०- १६४,

(३) कहानी-डामुल का कैदी, मान० भाग-२, पृ०सं० २३७

(४) 'रंगभूमि' में रियासतों का आन्दोलन, 'कर्मभूमि' में मजदूर-आन्दोलन कहानी- 'जेल' :"पत्नी से पति" 'शराब की दुकान' 'जुलूस' 'मैकू' 'समर-यात्रा' में उस काल की राजनीति और 'कातिल' कहानी में असमान्य रूप से क्रान्ति का घोर निनाद है। विध्वंस के पश्चात् नवीनता की खोज है।

(२०)- असहयोग आन्दोलन के पश्चात् गांधी-युग में देश में प्रमुख घटनाओं का विशेष महत्व रहा । १६२२ से १६२७ तक का काल घोर अशान्ति का काल था और इसमें साम्प्रदायिक-दंगो का प्राबल्य रहा । जिससे देश का सामाजिक जीवन विषाक्त हो गया । इस दूषित वातावरण में गांधी जी को बड़ी व्यग्रता हुई और उन्होंने मेल-सम्मेलन करने की योजना की । इस सम्मेलन की बैठक दिल्ली में सितम्बर १६२४ में हुई । यही वह समय था जब प्रेमचन्द `प्रेमाश्रम` से `रंगभूमि` में उतर आए थे । इसमें बड़े-बड़े हिन्दू तथा मुसलमान नेताओं ने भाग लिया इसी समय दोनों सम्प्रदाय वालों ने जो दुष्कर्म किए थे, उनके प्रायश्चित् के लिए गांधी जी ने तीन सप्ताह का अनशन किया । परन्तु गांधी जी के इन प्रयत्नों का देश पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा और स्थिति ज्यों की त्यों बनी रही । `स्वराज्य पार्टी` (१६२३) और `भारतीय राष्ट्रीय दल (१६२६) आदि दलों ने ``औपनिवेशिक स्वराज्य` को अपना अपना लक्ष्य बनाकर देश-सेवा का व्रत धारण किया । १६२६ के मध्य में देश की राजनैतिक स्थिति भयंकर हो गयी । ६ अप्रैल १६२६ को लार्ड इर्विन भारत में आए । लगभग उसी समय कलकत्ते में बड़ा ही भयानक साम्प्रदायिक दंगा हुआ । इसके बाद ही १६२६ ई० में `साइमन कमीशन` भारतीय स्थिति की जांच करने के लिए आया । भारतीयों ने इसका घोर विरोध किया, भारत में जिन-जिन नगरों में जांच के लिए यह कमीशन गया, काले झन्डों से उसका स्वागत किया गया ।

(२१)- २८, २६, ३० अगस्त १६२८ को लखनऊ में `नेहरू कमेटी रिपोर्ट` पर विचार करने के लिए सर्वदल सम्मेलन की बैठक हुई । इस सम्मेलन का उद्देश्य था कि `औपनिवेशिक स्वराज्य` की स्थापना की जाए । परन्तु सरकार ने इसे स्वीकार नहीं किया । इसके अगले ही वर्ष १६२६ के लाहौर के अधिवेशन में पं० जवाहर लाल नेहरू के सभापतित्व में पहले प्रस्ताव को रद्द

करके, जिसके द्वारा औपनिवेशिक स्वराज्य कांग्रेस का लक्ष्य निर्धारित किया गया था, और पूर्ण स्वतन्त्रता कांग्रेस का लक्ष्य निश्चित किया गया। प्रतिज्ञा का वर्ष समाप्त होकर कार्य का वर्ष आरम्भ हुआ। १६२६ के शुरू में कांग्रेस का यह महत्वपूर्ण मोड़ था। कांग्रेस की सरकार-विरोधी कार्य-पद्धति ने असहयोग के साथ ही दूसरा रूप ले लिया। कलकत्ता अधिवेशन में गांधी जी की अध्यक्षता में एक विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार समिति बनाई गई थी। समिति में बड़ी संख्या में पुस्तिकाएं व पर्चे निकाल कर जनता से विदेशी—वस्त्रों को त्यागने और जला डालने की अपील की थी। सन् १६३० के शुरू में जगह-जगह विदेशी-वस्त्रों की होलियां भी जलीं थीं। इन्हीं दिनों प्रेमचन्द ने 'सुहाग की साड़ी'(१)तथा अन्य राजनैतिक कहानियां लिखीं। गांधीजी ने अहिंसा, सत्य, असहयोग, सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन, नशा-बन्दी, मुद्रा-विनिमय के दर में कमी, नमक-कर-भंग, अछूतोद्धार, खादी-प्रचार, स्वदेशी-आन्दोलन, ग्राम-सुधार हिन्दू-मुसलिम एकता, ज़मींदारों और महाराजाओं को उनके कर्त्तव्य के ज्ञान आदि के द्वारा एक व्यापक जन-चेतना को जन्म दिया। बच्चे, स्त्री, युवक, सभी के हृदयों में उमंग जगी। अनेक प्रकार के राष्ट्रीय गान, राष्ट्रीय-ध्वज-गान, प्रयाण गान बने जो जुलूसों के साथ निकलते समय गाए जाते थे। इन गानों के भीतर भारतीय-स्वाधीनता की कल्पना ने लोगों को विव्हल कर दिया था। कष्ट सहने और बलिदान देने की शक्ति जनता में भर गई थी। किन्तु इसको फूंकने वाले अज्ञान राष्ट्रीय गीत भी थे और उनके रचयिता एकान्त में बैठ कर भारत की क्रियात्मक का अवलोकन कर रहे थे। इसी सक्रियता में उनकी रचनाओं का

---

(१) 'विदेशी कपड़ों की होलियां जलायी जा रहीं थीं। स्वयं-सेवकों के जत्थे भिखारियों की भांति द्वारों पर खड़े हो-होकर विलायती कपड़ो की भिक्षा मांगते थे ‹ ‹ ‹ ‹ नयन-सुख नयन दुख, मलमल मन मल और तनजेब तनबेध हो गए थे' —प्रेमचन्द, पृ० सं० २७१ (मान० भाग०- ७)

प्रतिफलन हो रहा था। यह स्थिति सन् १६२१-१६३० तक विशेष प्रोत्साहन के साथ चली। प्रेमचन्द ने अपनी आँखों से भारतीय-चेतना के इस उभार को देखा ही नहीं था, वरन् वे उस चेतना के वाहक एवं प्रसारक भी थे। व्यक्ति--वादी लेखक न होने के कारण वे अपने को उपयुक्त महत्त्वपूर्ण घटनाओं से अलग नहीं रख सकते थे। गांधी जी की अनेक समस्याओं का प्रेमचन्द ने भी मूलरूप में अनुभव किया और बार-बार अपने साहित्य में उन्हें व्यक्त किया। साम्प्रदायिक मेल जोल, अछूतोद्धार, स्वदेशी-प्रचार आदि बातें तो उनके साहित्य में व्यक्त हुई ही, साथ ही किसानों और गांवों के प्रति प्रेम भी गांधी जी के 'Back to the villages' का ही एक साहित्यिक रूप था।

(२२)- गांधी जी ने राजनीति को आध्यात्मिक रूप दिया, उन्होंने सत्य और अहिंसा पर विशेष बल दिया और सम्पूर्ण राष्ट्रीय-आन्दोलन को संचालित करते समय सत्य और अहिंसा के पालन पर ध्यान दिया और यह प्रयास किया कि जहां तक सम्भव हो, राष्ट्रीय आन्दोलन इस मार्ग से हटने न पावे। महात्मा गांधी का कहना था कि यदि भगवान को भी इस देश में आना है तो उन्हें रोटी के ही रूप में आना पड़ेगा। गांधी जी का कहना था कि जब तक भारतीय जीवन से आर्थिक विषमता का लोप नहीं हो जाता, तब तक शान्ति से बैठना नैतिक अपराध है। इस गरीबी और आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए ही गांधी जी ने स्वदेशी आन्दोलन तथा चर्खा-कर्घा के प्रयोग पर बल दिया था। गांधी जी का कहना था कि जब तक घरेलू उद्योग धन्धों का पूरा विकास नहीं होता तब तक व्यवस्था ठीक नहीं होगी। गांधी जी के अनुसार भारतीय किसान साल में छ: महीने निष्क्रिय बैठे रहते हैं। इसके कारण उनकी गरीबी तो कायम रहती ही है, साथ ही कुमार्ग पर जाने के लिए भी उनको अवसर मिलता है, इसलिए अगर उनके हाथ में चर्खा पकड़ा दिया जाए तो उनके समय का सदुपयोग होगा और उनकी आमदनी भी बढ़ जाएगी। गांधी जी यह भी कहते थे कि इस

आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए वर्ग-संघर्ष और हिंसा अनिवार्य नहीं है। बल्कि जहां कहीं भी आर्थिक विषमता है, वहां अहिंसा और सत्याग्रह के प्रयोग से उसे अवश्य दूर किया जा सकता है। गांधी जी साध्य के साथ ही साधन की पवित्रता पर भी बराबर बल देते थे, इसीलिए जब पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन चला तो गांधी जी ने बार-बार सत्य और अहिंसा पर बल दिया।

(२३)- परन्तु ब्रिटिश सरकार ने राष्ट्रीय आन्दोलन को दबाने के लिए कठोर हिंसा का मार्ग अपनाया। यह समय कांग्रेस के लिए महान संकट का था। सन् १९३०-३५ तक ब्रिटिश सरकार का दमन-चक्र और गिरफ़्तारियां ज़ोरों पर थीं। जैसे जैसे परिस्थितियां बदलती गईं, उसके अनुसार, नये नये आर्डीनेन्स समय-समय पर निकलते गए। इन आर्डीनेन्सों के नियमानुसार हमारे बड़े-बड़े नेताओं को वर्षों के लिये जेलों में ठूंस दिया गया। पुलीस के प्रहारों से जनता के जुलूसों को भंग करने का तरीका ग्रहण किया गया। जेलों में जाने, मार खाने और सख्तियों को सहने के लिए तो सत्याग्रही तैयार ही थे और अनेक तो गोली खाकर मर जाने को भी तैयार थे—लेकिन सरकार की दमन-नीति का यहीं तक अन्त नहीं हुआ, उसने भारतीयों की सम्पत्ति पर आक्रमण किया और सजा देते वक्त उन पर भारी-भारी जुर्माने किए गए। अखबारों को भी बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। बहुत से अखबारों से ज़मानतें मांगी गई बहुतों की ज़मानतें ज़ब्त की गई और बहुत से अखबारों को ज़मानत जमा न कर सकने या प्रेस ज़ब्त हो जाने अथवा सरकारी प्रहार के भय से अपना प्रकाशन ही बन्द कर देना पड़ा प्रेमचंद को भी इन्हीं दिनों अपनी पत्रिका 'हंस' के लिए ऐसे कष्ट का सामना सरकार के समक्ष करना पड़ा था। उन्होंने इसका उल्लेख अपने मित्र जैनेन्द्र से किया है—"'हंस' के

छः अंक निकल चुके हैं। सितम्बर और अक्तूबर में प्रेस और पत्रिका ज़मानत मांगे जाने के कारण बंद पड़े रहे। प्रेस के आर्डीनेंस उठ जाने पर फिर निकले हैं।"(१) आर्डीनेंस का डर हिन्दी के लेखकों को उस काल में सदा बना रहता था। अपनी लेखनी की पराधीनता से लेखकों में भी ब्रिटिश-सरकार के विरुद्ध विद्रोह जाग उठा था। जैनेन्द्र जी ने प्रेमचन्द को आर्डीनेंस के विषय में एक बार पत्र में लिखा था—"प्रेस आर्डीनेंस की खबर पाते ही डर हुआ कि 'हंस' का यह अंक निकल भी गया तो आगे नहीं निकलने दिया जाएगा।" (७ जनवरी, १६३१ का पत्र) इस आतंक और सर्वनाश के बीच भी एक बात बिलकुल स्पष्ट थी। वह यह कि लोगों ने बहुत कम हिंसात्मक कार्य का अवलम्बन लिया था। गांधी जी के उपदेशों से अहिंसा की शिक्षा उनमें जड़ पकड़ चुकी थी, जिसके कारण महीनों तक आन्दोलन जारी रहा, जब कि सरकार चन्ददिनों में ही अपनी क्रूरता से आन्दोलन को दबा देने की आशा करती थी। इन क्रूर, निर्मम, घृणात्मक कार्यों से, जो जनता के दमन के लिए प्रयुक्त किए जा रहे थे, जनता और भी अधिक विद्रोही हो उठी।

(२४)- सन् १६३२ में लगान-बन्दी आन्दोलन आरम्भ हो गया और कांग्रेस के भीतर ही एक मजबूत और बड़ी समाजवादी पार्टी कायम करने की योजना बनायी गयी। समाजवादी पार्टी के विधान का मसविदा तैयार कर लिया गया और गुप्त रूप से जेल से बाहर भेज दिया गया। नेताओं के जेल से छूटने के पूर्व ही १६३३ में बम्बई प्रेसीडेंसी कांग्रेस समाजवादी पार्टी स्थापित हो गई थी। समाजवादियों के सामने सब से पहला काम कांग्रेस के परम्परागत कार्यक्रम का विरोध करना था। इस विरोध का आरम्भ आचार्य नरेन्द्रदेव ने अपने अध्यक्ष पद के भाषण से किया, उन्होंने

---

(१) प्रेमचन्द : चिट्ठी-पत्री, हंस प्रकाशन, संकलनकर्त्ता- आत्माराम, १६६२, पृ० सं०- १०

कहा कि "अब तक यह नीति रही है कि क्रान्तिकारी परिस्थिति में सीधी राजनीतिक कार्यवाही की जाती है, परन्तु जब उसके बाद प्रतिक्रिया का काल आता है तो कांग्रेस जन अपने-अपने स्वभावानुसार या तो रचनात्मक कार्य में लग जाते हैं या विधायक कार्यक्रम अपना लेते हैं।" समाजवादी इस लचर नीति से पूर्णत: असंतुष्ट थे। प्रगतिवादी प्रेमचन्द पर समाजवाद का विशेष प्रभाव पड़ा, क्योंकि स्वयं प्रेमचन्द का मन, हृदय, बुद्धि, न्याय और अन्याय का परीक्षण कर रही थी।

आतंकवाद का जन्म :

(२५)- इसके अतिरिक्त दूसरी ओर अंग्रेजों से मोर्चा लेने के लिए राजनीति के क्षेत्र में, युवकों का एक दल और तैयार हुआ, जिसने आतंक का प्रतिरोध भी आतंक से ही करना उचित समझा। जो सशक्त क्रान्ति की परम्परा 'युगान्तर' और 'अनुशीलन' पार्टी के ज़माने से चली आ रही थी वह अब और भी अधिक विकसित और प्रौढ़ हो गई थी। १६२८ के 'काकोरी केस' के बाद चन्द्र शेखर आज़ाद के नेतृत्व में 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन आर्मी' का अखिल भारतीय संगठन हुआ बाद में इस दल ने अपना ध्येय समाजवाद स्वीकार कर लिया। अब इस पार्टी का नाम 'हिन्दुस्तान सोशालिस्ट-रिपब्लिक आर्मी' हो गया। इसी के नेतृत्व में सरदार भगतसिंह और उनके साथी बटुकेश्वर दत्त ने 'पब्लिक सेफ्टी ऐक्ट' का विरोध करने के लिए असेम्बली में बम फेंका और लाला लाजपतराय पर वार करने वाले सार्जेन्ट साडर्स की हत्या भी की गई। सारे देश में क्रान्तिकारियों का संगठन बन गया। लाहौर षडयंत्र केस इसी ज़माने में चला था। बंगाल में 'चटगांव-आरमरी रेड केस' इसी ज़माने में चला। ब्रिटिश सरकार ने इस क्रान्तिकारी आन्दोलन को दबा देने के लिए कोई भी कोशिश उठा न रक्खी। फांसियों, कालेपानी की सज़ाओं और कठोर कारावासों का तांता सा बंध गया।

इस प्रकार एक ओर जहां गांधी जी का अहिंसात्मक आन्दोलन चल रहा था वहीं दूसरी ओर क्रान्तिकारियों का सशस्त्र विद्रोह का आन्दोलन भी चल पड़ा ।

साम्यवादी पार्टी :

(२६)- भारत के अनेक राष्ट्रीय नेता, प्रसिद्ध योरपीय क्रान्तिकारी विचारक प्रिंस क्रोपाटकिन और बाकुनिन[१] आदि के आदर्शवादी समाजवाद और अराजकतावाद के सिद्धान्तों से वर्तमान शताब्दी के आरम्भ से ही प्रभावित होने लगे थे । रूस में निहिलिस्टों और बोलशेविकों के कार्यों से भी वे परिचित हो गए थे । राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ भारत में श्रमिकों का आन्दोलन भी धीरे-धीरे आरम्भ हो गया था । परन्तु उनकी सामूहिक शक्ति का परिचय उस समय मिला जब १६०७ में बाल गंगाधर तिलक की गिरफ्तारी के विरोध में उन्होंने प्रदर्शन किया । सन् १६१७ में रूस में समाजवादी क्रान्ति हुई । इस क्रान्ति का अभिनंदन और स्वागत भारतवर्ष में भी किया गया । इसी क्रान्ति के फलस्वरूप समाजवादी क्रान्ति के नारे हिन्दुस्तान के उद्योग-प्रधान नगरों में गूंजने लगे । धीरे-धीरे इसका विकास होने लगा और कुछ ही समय में सारे देश में इसकी शाखाएं फैल गईं । `कानपुर षडयंत्र केस` के बाद इसकी ख्याति बहुत अधिक बढ़ गई और मजदूरों के अखिल भारतीय संगठन पर भी इसका एकमात्र प्रभाव हो गया । जब इस आन्दोलन की जड़े मजबूत होने लगीं तो सरकार का ध्यान भी इसकी ओर आकृष्ट हुआ । सरकार कम्युनिस्टों को आतंकवादियों से भी अधिक खतरनाक समझती थी, क्योंकि कम्युनिस्ट पार्टी को श्रमिक वर्ग का संगठित बल प्राप्त था । सरकार ने

---

(१)

कम्युनिस्ट पार्टी और मजदूर-आन्दोलन को दबाने के लिए `पब्लिक सेफ्टी-ऐक्ट` बनाया। इसी के विरुद्ध तरुण क्रान्तिकारी सरदार भगतसिंह ने ऐसम्बली में बम फेंका था। सरकार ने क्रान्तिकारियों का दमन करने के लिए जहां एक ओर `लाहौर-षडयंत्र केस` चलाया, वहां दूसरी ओर कम्युनिस्टों को दबाने के लिए `मेरठ-षडयंत्र केस` चलाया। इन दो षडयंत्र केसों के अभियुक्तों ने अपने बचाव में जो वक्तव्य दिए वे ऐतिहासिक मूल्य रखते हैं। इन से यह स्पष्ट हो जाता है कि देश का जो राष्ट्रीय आन्दोलन था वह अब अपना स्वरूप बदल रहा था और अब इसमें सजग और सचेत किसान तथा मजदूर वर्ग भी सम्मिलित हो गया था। आतंकवादियों की विचार-धारा भी बदल रही थी। वे अब केवल आतंकवादी ढंग अपनाना छोड़ कर समाजवाद के सिद्धान्तों को स्वीकार करने लगे थे। कम्युनिस्ट पार्टी की भी जड़े मजबूत हो रही थीं और वह भी राष्ट्रीय आन्दोलन का अविभाज्य एवं अनिवार्य अंग बन चुकी थी। फल यह हुआ कि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन पर समाजवाद का रंग धीरे-धीरे चढ़ने लगा और किसान-मजदूर-राज्य का सपना धीरे-धीरे सत्य होता दिखने लगा। जो कांग्रेस पहले केवल स्वतन्त्रता की बात करती थी, वह अब मजदूर-किसान-आन्दोलन को अपने में समेटने और मजदूर-किसान आदि के विकास की बात करने लगीं।

(२७)- इस प्रकार भारतीय राष्ट्रीय रंगमंच पर समाजवादी विचार धारा के मानने वाले लोगों का प्रभाव बढ़ने लगा। प्रेमचन्द ने इस प्रक्रिया का उल्लेख यों किया है :"——अब एक नई सभ्यता का सूर्य सुदूर पश्चिम से उदय हो रहा है, जिसने इस नाटकीय महाजनवाद या पूंजीवाद की जड़ खोद कर फेंक दी है, जिसका मूल सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक व्यक्ति, जो अपने शरीर या दिमाग से मेहनत करके कुछ पैदा कर सकता है, राज्य और समाज का परम सम्मानित सदस्य हो सकता है, × × × × × निस्संदेह इस नई सभ्यता ने व्यक्ति-स्वातंत्र्य के पंजे, नाखून और दांत तोड़ दिए हैं। उसके राज्य में अब एक पूंजीपति लाखों मजदूरों का खून पीकर मोटा नहीं हो सकता × × × × ×

जहां धन की कमी-बेशी के आधार पर असमानता है, वहां ईर्ष्या, ज़ोर, जबर्दस्ती बेईमानी, झूठ, मिथ्या, अभियोग आरोप, वेश्यावृत्ति, व्यभिचार और सारी दुनिया की बुराइयां अनिवार्य रूप से मौजूद हैं।"[१]
आर्थिक समस्या का सीधा सम्बन्ध राष्ट्रीय पराधीनता से था। अत: देश को स्वाधीन करने का प्रश्न प्रमुख था इसीलिए प्रेमचन्द ने पूर्ण रूप से राष्ट्रीय-स्वाधीनता-आन्दोलन को प्राथमिकता दी थी। सामाजिक समस्याएं आर्थिक कारणों पर ही अवलम्बित रहती हैं। अनेक सामाजिक कुरीतियों को जन्म देनेवाली दूषित अर्थ-व्यवस्था ही होती है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में जहां कहीं भी सामाजिक-समस्याएं आई हैं उनका आधार `आर्थिक` है जिसका जन्म सामंतवादी-पूंजीवादी रूढ़ियों में हुआ था। वेश्या-वृत्ति, विधवा-विवाह, बालविवाह, अनमेल विवाह, छूआ-छूत, अशिक्षा, शिक्षा, ग्राम्य जीवन आदि-आदि सब के मूल में आर्थिक पहलू था। प्रेमचन्द ने इस आर्थिक-पहलू का कारण और हेतु खोज निकालने का प्रयत्न किया और सफलता भी पाई। इस प्रकार प्रेमचन्द ने अपने समय का प्रतिनिधित्व किया था।

(२८)- प्रेमचन्द के साहित्य में हम जिस राष्ट्रीय चेतना की अविच्छिन्न धारा को आदि से अन्त तक देखते हैं उसका आधार वह राष्ट्रीय आन्दोलन था, जिसने एक लेखक के ही रूप में नहीं एक साधारण नागरिक के रूप में प्रेमचन्द को प्रभावित किया था। `सोज़ेवतन` से लेकर `गोदान` तक प्रेमचन्द की सारी रचनाएं हमारे इस कथन की पुष्टि करती हैं।

---

(१) `प्रेमचन्द- `महाजनी सभ्यता,` हंस : प्रकाशन,
पृ०सं०- २६१, २६२,

(ख) धार्मिक और सामाजिक आन्दोलन :

(२६)- इस समस्त राजनीतिक जागरण की पृष्ठभूमि में सन् १८०० ई० के बाद से चलने वाले धार्मिक और सामाजिक आन्दोलन भी थे, जिन्होंने राजनैतिक-आन्दोलन को चारित्रिक-दृढ़ता तथा विश्वास की शक्ति प्रदान की। इन समस्त आन्दोलनों के मूल में, प्रेरणा समाज-सुधार और भारतीय-स्वाधीनता की थी। धीरे-धीरे अंग्रेजी शिक्षा के अध्ययन से भारतवासी आज़ादी, धर्म, राजनीति और सामाजिक रीति-रिवाजों के सहयोग से पाश्चात्य-विचार-धारा के सम्पर्क में आए। अंग्रेजों के सम्पर्क से उन्हें एक नए प्रकार के जीवन का आभास और अनुभव हुआ था। इन दिन-प्रतिदिन के अनुभवों का, जो पाश्चात्य-शिक्षा और संस्कृति के सम्पर्क से भारतवासियों में आ रहे थे, उनपर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि उन्हें हिन्दू समाज में अनेक बुराइयाँ तथा दोष नजर आए। पं० जवाहरलाल नेहरू ने धार्मिक और सामाजिक सुधारों के प्रारम्भिक-काल का उल्लेख इन शब्दों में किया है— "पश्चिम की असली टक्कर हिन्दुस्तान से १८ वीं० सदी में हुई। विचारों के मैदान में भी धक्का लगा और रद्दो-बदल हुई x x x x x x x पहली प्रतिक्रिया अल्प संख्यक अंग्रेजी पढ़े लिखे वर्ग तक ही सीमित थी x x x x राजा राम मोहन राय ने इस बात की कोशिश की कि हिन्दू धर्म को इस नए वातावरण के अनुरूप किया जाए। उन्होंने 'ब्रम्ह-समाज' की स्थापना जिसकी बुनियाद 'समाज-सुधार' पर थी।"(१) जैसा की नेहरू जी ने उल्लेख किया शिक्षित वर्ग अपने दोषों और बुराइयों से पूर्णतः परिचित हो रहा था, जो अंग्रेजों के सम्पर्क से भी आई थीं। अदम्य धार्मिक-उत्साह व लगन

---

(१) ले० पं० जवाहर लाल नेहरू 'हिन्दुस्तान की कहानी' अनु० रामचन्द्र टंडन, प्रथम संस्करण, प्रकाशक मार्तन्ड उपाध्याय, पृ० सं०- ४१४,

के साथ वे उन बुराइयों को दूर करने के लिए समाज-सुधार के काम में लग गए । धीरे-धीरे उनका धार्मिक-सुधार का कार्य विस्तृत होता गया और उन धार्मिक नेताओं ने, जिनका नाम और कार्य आगे उल्लेख लिए जाएंगे, अन्त में उस क्षेत्र में प्रवेश किया जिसको आगे के युगों में 'वैधानिक-राजनीति' कहा गया ।

(३०)- शताब्दियों के अन्याय, अत्याचार और अशिक्षा के कारण भारतीय-समाज में अनेकों बुराइयां घर कर गयीं थीं । प्रमुख रूप में समाज के दो अंग :(स्त्री और अछूत) सर्वाधिक रूप में इसके शिकार बने थे । युगों की पददलित नारी की स्थिति मानवीय भूमि पर न होकर उपभोग्य के रूप में थी । भारतीय नारी चारों ओर से उपेक्षित, तिरस्कृत और अभिशप्त जीवन व्यतीत करने पर विवश थी । बाल-विवाह, अनमेल-विवाह, बहु-विवाह, दहेज, पर्दा, सती,विधवा आदि समस्याओं और अभिशप्त दुराचारों ने उसके स्वच्छन्द-विकास को सभी मार्गों से अवरुद्ध कर दिया था । वह पुरुष की दासी थी । घर की चहारदिवारी में बन्द, उसके जीवन का केवल एक ही उद्देश्य था, पिता के घर से विवाह होने पर पति के घर जाना और उसकी दया और सहानुभूति पर जीना-और फिर मर जाना । नारी का अधिकार न पिता के घर था न पति के घर, वह केवल सहानुभूति पर जीवित थी । ऐसी सामाजिक-व्यवस्था में नारी समाज के लिए भी भार स्वरूप होती जाती थी ।

(३१)- हिन्दू जाति का दूसरा कलंक छूआछूत के विस्तार में था । जाति-पाँति का घातक विष राष्ट्र को सतत ह्रासोन्मुख बना रहा था । इसके साथ ही मूर्तिपूजा, बाहुदेववाद, पशुबलि, भूत-प्रेतादि की मान्यता तथा श्राद्ध आदि धार्मिक अंध-विश्वास, देश की प्रगति के रास्ते

में सबसे बड़े बाधक थे। यही नहीं दासता की लोह-शृंखलाओं ने मनुष्य की मनोवृत्तियों को इतना ध्वस्त कर दिया था कि वह सदैव अपनी भोग-लिप्सा में लिप्त रहता था और मादक पदार्थों का सेवन और अशिक्षा के कार्यों कीटाणु उसे पतन के गर्त की ओर खींच रहे थे। समाज में एक ओर घुंघरू की झन्कार थी, रागनियों की कोमल तानें थीं, दूसरी ओर करुण क्रन्दन था, चीत्कार थी, विलाप था, हाहाकार था और था भूखे तड़पते हृदयों की मूक-वेदना, जिसकी कोई सुनने वाला न था। इन विभिन्न प्रकार के सामाजिक अन्यायों और धार्मिक संकीर्णताओं से जर्जरित हिन्दू समाज एक लम्बे समय से समाजिक, धार्मिक सुधार की आवश्यकता अनुभव कर रहा था ऐसे समय में आधुनिक भारत में समाजिक जाग्रति के अग्रदूत और धार्मिक क्रान्ति के प्रथम नायक राजाराम मोहन राय (१७७४-१८३३) ने दकियानूसी हिन्दुत्व के विरुद्ध मार्ग ग्रहण किया ।(१८२८-१८३३) के बीच राजा राम मोहन राय के सुधार और सामाजिक कार्य पराकाष्ठा पर पहुंच गए थे। इसी काल में इंग्लैंड में भी सुधार-आन्दोलन चल रहा था। ब्रिटिश उपनिवेशों में गुलामी-प्रथा पर रोक, नई जनतांत्रिक पार्लियामेन्ट, भारत में धार्मिक और जातीय समानता का चार्टर जैसे सुधारों की योजना इसी काल में हुई। भारतीय चार्टर में कहा गया था कि—`धर्म, जन्मस्थान, जाति, रंगभेद आदि की वजह से किसी भी भारतीय को किसी भी सरकारी ओहदे या नौकरी के लिए अयोग्य न समझा जाएगा।`

(३२)- राजा राम मोहन राय `ब्रम्ह-समाज` के प्रवर्तक थे। उन्हें अंग्रेजों द्वारा स्थापित हिन्दू कालेज में पढ़ने का अवसर मिला था और ईसाई धर्म, योरपीय संस्कृति के सम्पर्क में भी वे आए थे। उन्होंने अपने समाज में अनेक कमियां देखीं और उन्हें दूर कर वे भारतीय धर्म में कुछ पाश्चात्य

विशेषताओं का समावेश करना चाहते थे; जिससे कि लोग अपनी कमी को दूर कर आगे--प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सकें। राजा राममोहन राय, इस कार्य को अधिक सफल बनाने के लिए अंग्रेजी में विज्ञान, दर्शन, साहित्य आदि की शिक्षा के पक्षपाती हुए। समाज की रूढ़ियों और संकीर्णताओं को वे समाप्त करना चाहते थे। परन्तु आगे चलकर केशवचन्द्र सेन के समय उस पर ईसाई प्रभाव अधिक आ गया था और देश-प्रेम की भावना को ठेस लगी। केशवचन्द्र सेन ने, सुधार-आन्दोलन में पुनः जागरण का प्रादुर्भाव किया।

(३३)- राजा राम मोहन राय के आन्दोलन के साथ ही साथ अन्य आन्दोलन भी समाज के सम्मुख आए। उनमें महाराष्ट्र-समाज, आर्य-समाज, थियोसोफ़ी आन्दोलन तथा स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, और श्री अरविन्द के वेदान्त-दर्शन तथा गांधी जी का अनासक्त कर्मयोग का सिद्धान्त था। महाराष्ट्र के सामाजिक सुधारों के कर्णधार महादेव गोविन्द रानडे थे। उनके समन्वयवादी व्यक्तित्व और दृष्टिकोण के कारण वहां पर अनेक सामाजिक संस्थाओं का जन्म हुआ, जिनके प्रयत्न से समाज में प्रचालित रूढ़ियों का विनाश, शिक्षा का प्रसार, ज्ञान का उदय और भारतीय संस्कृति के प्रति प्रेम-भाव का विकास हुआ।

(३४)- स्वामी दयानंद के द्वारा वास्तव में बड़ा ही ठोस कार्य राजनीति, समाज, धर्म तथा साहित्य और अपनी प्राचीन संस्कृति के क्षेत्र में हुआ। आगे चलकर कांग्रेस के लिए जो त्यागी और कर्मठ पुरुष मिल सके वे स्वामी जी और उनके आर्य-समाज के ही भेजे हुए कार्यकर्ता थे। स्वामी जी ने अन्ध-विश्वास को हटाकर बड़ा ही प्रबल एवं शक्ति-संपन्न धर्म का रूप प्रकट किया। इसमें किसी धर्म से घट कर समझने की बात तो दूर रही, स्वामी दयानंद जी ने 'वैदिक धर्म' को ही सर्वश्रेष्ठ कर दिया, दयानंद जी का व्यक्तित्व समाज-सुधार के क्षेत्रों में वैसा ही क्रान्तिकारी रहा जैसा कि राजनीतिक

क्षेत्र में भी लोकमान्य तिलक का रहा । स्वामी दयानंद ने अपने प्रचार एवं व्याख्यानों से समाज में उदात्त-भावना का विकास किया, त्याग और तपस्यामय जीवन की भूमि तैयार की । उनके दो कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं—प्रथम-राष्ट्रीय भावना का संचार और द्वितीय राष्ट्र-भाषा हिन्दी की स्थापना और घूम-घूम कर सारे देश में उसका प्रचार था । स्वामी की शिक्षा-दीक्षा संस्कृत में हुई थी । उन्होंने सबसे पहले वेदों का प्रचार संस्कृत से प्रारंभ किया, पर इसे सभी लोग समझ न पाते थे । एक बार वे कलकत्ते गए तो वहां पर केशवचन्द्र सेन और भूदेव मुखर्जी के सुझाव से उन्होंने हिन्दी में प्रचार करना प्रारम्भ किया, क्योंकि यही साधारण लोगों के लिए राष्ट्रभाषा या अन्तर-प्रान्तीय भाषा का काम कर रही थी । अंग्रेजी तो मध्यमवर्गीय शिक्षित समुदाय के विकास के बाद राजभाषा बनी थी, जिसको ब्रिटिश-सरकार ने अपनी सुविधा के लिए प्रयोग किया था, परन्तु उसके पहले भी सांस्कृतिक दृष्टि से राष्ट्रभाषा का कार्य हिन्दी ही करती थी । इतना ही नहीं, इसके भी प्रमाण मिलते हैं कि बंगालियों के सुझाव पर उत्तर प्रदेश में यह प्रस्ताव भी पास हुआ था कि उत्तरी-भारत में राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का ही प्रयोग किया जाए, क्योंकि यही एक उपयुक्त भाषा है । इस प्रकार आर्य-समाज के आन्दोलन ने उच्च शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना की जिसमें समस्त ज्ञान के साथ-साथ वैदिक-धर्म की भी शिक्षा दी जाती थी और इस प्रकार एक दल कर्मठ तथा त्यागी व्यक्तियों का उत्तरी-भारत में तैयार हो गया । भाषा और साहित्य के क्षेत्र में इस समाज का महत्वपूर्ण कार्य है । इसने समस्त वेदों का ज्ञान हिन्दी (राष्ट्रभाषा के माध्यम से सुलभ कर दिया ।

(३५)- स्वामी रामकृष्ण परमहंस और उनके शिष्य श्री विवेकानंद जी के कर्मेथ वेदान्तवाद और रहस्यवाद या अध्यात्मवाद का महत्वपूर्ण स्थान है । उपर्युक्त व्यावहारिक जीवन को प्रगतिशील बनाने वाले आन्दोलनों के अतिरिक्त, परमहंस और विवेकानंद जी के चलाये आन्दोलनों में गहरी चिन्तता एवं आध्यात्मिक साधना को जगाने वाले गुण थे । ये आन्दोलन अपने काल में अधिक सफल हुए और प्रगति पाई । इन धार्मिक-आन्दोलनों के द्वारा भारतीय चिन्तन-साधना एवं संस्कृति की गहराई, शाश्वतता एवं सार्वभौमता स्वत: सिद्ध हो गई और विवेकानंद के विदेश-भ्रमण के पश्चात् तो भारतीय-धर्म के प्रति उच्च धारणा की प्रतिष्ठा हुई । विवेकानंद की विचारधारा का प्रभाव राजनैतिक-आन्दोलन को ठोस भूमि देने में तो पड़ा ही, साथ ही साथ उस समय के साहित्य में, जो एक गहरी आध्यात्मिकता का हुआ, वह स्वामी जी की ही विचार एवं भाव-धारा के कारण था ।

(३६)- आर्य समाज, ब्रम्ह-समाज आदि के साथ `थियोसोफी-आन्दोलन` का भी महत्वपूर्ण स्थान, इस युग के नवीन जागरण में योग देने की दृष्टि से है । राष्ट्रीयता का विकास और भारतीय-आध्यात्मिकता का विकास एवं नवोत्थान इस `ब्रम्ह-विद्या-समाज` के द्वारा निश्चित रूप से हुआ । यद्यपि इस समाज का नाम और उत्पत्ति विदेशी है । इस आन्दोलन का उद्देश्य परोक्ष-नियमों का अनुसंधान करना था । वह विज्ञान की प्रगति के साथ ही साथ बढ़ने वाली अति भौमिकता पर रोक लगाता था । दूसरी ओर समाज-क्षेत्र में उच्च नैतिकता से पूर्ण पवित्र जीवन का प्रचार करता था । मद्रास में इस आन्दोलन का विशेष प्रभाव था, वहीं से यह प्रारंभ भी हुआ था । मद्रास में इस आन्दोलन ने अपने धर्म, आदर्श और संस्कृति से दूर ले जानी वाली पश्चिमी शिक्षा द्वारा उत्पन्न प्रभाव को

(३८)- उपर्युक्त धार्मिक-आन्दोलनों ने जो संस्कार तैयार किए, उन्हीं से ओत-प्रोत इस युग के सामाजिक और राजनैतिक नेता रहे। अन्त में इन नेताओं की राष्ट्रीय भावना का प्रभाव साहित्य पर पड़ा और ऊँचे साहित्य की सृष्टि हुई पं० जवाहर लाल नेहरू ने इस आन्दोलनों का उल्लेख किया है— "उन्नीसवीं सदी के पिछले आधे हिस्से में एक बहुत बड़ा सुधार-आन्दोलन शुरू किया गया। इसको शुरू करने वाले स्वामी दयानंद सरस्वती, गुजरात के रहने वाले थे। लेकिन इस आन्दोलन का सबसे ज्यादा असर पंजाब के हिन्दुओं पर पड़ा। इसकी पुकार थी—वेदों की ओर चलो" x x x x x दयानंद के ही ज़माने में, बंगाल में एक दूसरे ही ढंग की शख्सियत सामने आई, और उसकी जिन्दगी ने बहुत से नए अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों पर असर डाला। यह शख्सियत थी- श्री राम कृष्ण परमहंस की x x x x जिस तरह एक दूसरे स्तर पर गांधी जी ने हिन्दुस्तान की सेवा की है, उसी तरह टैगोर ने देश की इस रूप में बड़ी भारी सेवा की है कि उन्होंने जनता को कुछ हद तक उसके सोच-विचार के संकरे घेरे से धकेल कर बाहर निकाला, और उसके दृष्टिकोण को ज्यादा विस्तृत और व्यापक बनाया। x x x x रवीन्द्र नाथ हिन्दुस्तान के एक बहुत बड़े मानव-हितैषी थे।" आगे नेहरू जी टैगोर और गांधी जी का तुलनात्मक व्यक्तित्व उपस्थित करते हैं— "बीसवीं सदी के पहले आधे हिस्से में टैगोर और गांधी यकीनी तौर पर हिन्दुस्तान के दो ख़ास और मार्के के लोग रहे हैं।"[१] इन आन्दोलनों ने

---

(१) पंडित जवाहर लाल नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी
पृ० सं०- ४१४, ४१५ और ४२१,

देश में नवीन संस्कारों को जन्म दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय-संकीर्णता धीरे-धीरे टूटने लगी। भारतीय संस्कृति के गौरव की प्रतिष्ठा होने लगी और एक ऐसे चारित्रिक बल का विकास होने लगा जिसमें भारतीय जनता को जगाने की सामर्थ्य थी। विवेकानंद और गांधी के समन्वयमूलक-दृष्टिकोण ने भारतीय साहित्य को उदार एवं उच्च प्रेरणाओं से भर दिया, जिसमें पाश्चात्य चेतना का समावेश होने पर भी भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि और तत्व प्रचुरता के साथ मिले। रवीन्द्र नाथ की आस्तिकता और रहस्यवाद, की जड़ इसी नवीन चेतना में थी। इस दृष्टिकोण का तो समन्वय इन धार्मिक नेताओं ने स्वयं अपने सिद्धान्तों में कर ही लिया था। इन सभी विचार-धाराओं ने हिन्दी-साहित्य गद्य और पद्य—(विशेषत: छायावादी) हिन्दी काव्य को गहराई के साथ प्रभावित किया। स्वामी दयानंद और विवेकानंद आदि के प्रचार से वेदों, उपनिषदों और संस्कृत के दार्शनिक और भक्ति-साहित्य का अध्ययन नई चेतना के दृष्टिकोण से प्रारम्भ हो गया था। इस दिशा में साहित्यिक एवं शैलीगत नेतृत्व रवीन्द्र नाथ ठाकुर का था। परन्तु विचार एवं भाव-धाराओं के प्रेरक अनेक स्त्रोत थे।

(३६)- नव चेतना से युक्त आध्यात्मिक-साधना की अत्यन्त उच्च भूमि में जाने वाले तथा रहस्य-भावना को वैज्ञानिक रूप से स्पष्ट करनेवाले महायोगी परम चेतन अरविन्द घोष थे। ये पहले क्रान्तिकारी राजनीतिक कार्य-कर्त्ता थे। उसके बाद ये आध्यात्मिक साधना की ओर झुके और फिर तत्वद्रष्टा योगी के रूप में प्रकट हुए। श्री अरविन्द कवि भी थे और इनके महाकाव्य, गीतों और महाप्रबन्धों में उच्च आध्यात्मिक आनंद की अनुभूति प्रकट हुई है। श्री अरविन्द का अति-मानववाद पृथ्वी के स्वर्गीकरण का विश्वास लेकर चलता है। उनकी मुक्ति की साधना में समस्त समाज की मुक्ति मिली हुई थी। इसमें कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों का समन्वय था, जिसको

श्री अरविन्द ने योग कहा था । इस साधना के द्वारा उन्होंने व्यक्ति और समाज को अति मानवता के स्तर पर पहुंचाने का प्रयत्न किया, जिससे समाज के प्राणियों के दुख और विकार दूर हो सकें । यह श्री अरविन्द के सिद्धान्त का 'साधना-पक्ष' था । दूसरे पक्ष की विशेषता थी, जिसे भक्ति-साहित्य की शब्दावली में अनुग्रह या कृपा कहा जा सकता है । जीव जिस प्रकार ऊपर उठना चाहता है, उसी प्रकार परमात्मा या चित्त-शक्ति नीचे उतरना चाहती है । यह उसकी कृपा के रूप में समझा जा सकता है । इस प्रकार श्री अरविन्द ने भारतीय-दर्शन का समन्वय करके समस्त साधनाओं की वैज्ञानिक व्याख्या की । श्री अरविन्द ने ऐसे समय में जब कि हमारे भारतीय, पाश्चात्य-शिक्षा—संस्कृति को ही सब कुछ मान्यता देते थे और हिन्दू-धर्म को ढकोसला, रूढ़ि-वादिता, अन्ध-विश्वास की संज्ञा देते थे, चिन्तन, साधना और प्रयोग के आध्यात्मिक क्षेत्र में आधुनिक युग के अन्तर्गत सर्वोच्च बौद्धिक सिद्धान्त प्रस्तुत किया ।

(४०)- आधुनिक युग में आकर, महात्मा गांधी ने आस्तिकता और समन्वयवादी दृष्टिकोण को अपनाया उन्होंने परम चेतन शक्ति पर दृढ़ विश्वास रख कर विशाल भारतीय जन-समुदाय की सात्विक शक्तियों का संगठन किया । गांधी जी का आधार गीता का कर्म एवं अनासक्ति योग था । अहिंसा और सत्य को उन्होंने अपने कार्यक्रम का आधार बनाया । गांधी जी का जीवन-दर्शन और उनके कार्यों का प्रधान आधार देश की परम्परागत अहिंसात्मक भावना और गीता जैसा ग्रन्थ था । सत्य, अहिंसा अनासक्ति योग, सर्वोदय, आस्तिकता आदि के सहारे उन्होंने देश में नवीन चेतना उत्पन्न कर दी । गांधी जी के धर्म-प्रधान राजनीतिक, सामाजिक आन्दोलन ने भारतीय जनता के आत्मबल को जगा दिया था । गांधी जी ने समाज के कर्म-क्षेत्र में उतरने के लिए मनुष्य में नैतिकता, दृढ़ता, उदारता और उच्च चारित्रिक गुणों को प्रकटाया और इस प्रकार आध्यात्मिकता

और व्यावहारिक जीवन के बीच का भेद मिट गया । ऊँच-नीचका भेद भाव मिटा कर गांधी जी ने साम्य दृष्टि का प्रचार किया । उन्होंने बुद्धि, हृदय, कर्म तीनों का समन्वय किया ।

(४१)- इन धार्मिक एवं सामाजिक, सांस्कृतिक आन्दोलनों ने ही आधुनिक हिन्दी-साहित्य को नवीन चेतना, नवीन विचार और नवीन भाव प्रदान किए । हिन्दी-साहित्य के अन्तर्गत प्रथम चरण में राष्ट्रीय चेतना का भाव, काव्य के रूप में स्पष्ट होने लगा था । द्वितीय चरण में, गांधीवादी विचार-धारा का प्रभाव और तृतीय में आधुनिक नव-चेतना को अपना कर चलने वाले जीवन-दर्शनों का स्पष्ट प्रभाव दिखाई दिया ।

(४२)- इन धार्मिक-आन्दोलनों ने मनुष्य की सोयी आत्मा को जगाने का सफल प्रयास किया । मनुष्य के मन से हीन भाव को दूर करने का प्रयत्न किया और वर्षों की दासता से मुक्ति पाने के लिए जितनी भी बाधाएं थी उनको तोड़ने का; उन बाधाओं को, जिनको स्वार्थ-वश अपनी कपट लीला के लिए समाज के कुछ प्राणियों ने मान्यता प्रदान की थी । 'विद्रोहात्मक-क्रान्ति' के भाव से धार्मिक आन्दोलन हुए, साहित्य की रचना भी इसी योगदान की पूर्ण आहुति थी । प्रेमचन्द ने भी अपने युग की समस्याओं, अपूर्णताओं के कारण और हेतु को देखा, धार्मिक-आन्दोलनों के प्रभाव से भी वे अनभिज्ञ न थे, इसी कारण धर्म की ओट में होने वाली कपट लीलाओं और अत्याचारों का हृदय खोल कर चित्रण किया । प्रेमचन्द की सहानुभूति अछूत वर्ग, निम्नवर्ग और समाज द्वारा उपेक्षित नर-नारियों के साथ थी ।

(ग) आर्थिक

(४३)- प्रेमचन्द ने जीवन के अधिकांश पल किसानों के बीच में ही व्यतीत किए थे। उन दीन मनुष्यों के बीच में रहकर प्रेमचन्द ने पूर्णत: अनुभव कर लिया था कि भारत के विकास का मेरुदंड यहां का किसान है जो ९० गांवों में नारकीय जीवन व्यतीत कर रहा है। प्रेमचन्द ने इसी कारण सर्व प्रथम अपनी लेखनी का प्रयोग उर्दू में ग्रामों के वातावरण से और ग्रामीण नर-नारियों के सुख-दुख से आरम्भ किया। प्रेमचन्द का हृदय मूलत: किसानों को ही समपर्पित था। प्रेमचन्द ने अपने कथा-साहित्य में किसानों के जीवन से सम्बन्धित सुख-दुख, राग-द्वेष, कलह, पीड़ा के अनेक चित्र प्रस्तुत किए हैं। अन्त में `होरी` ने किसान समाज का प्रतिनिधित्व किया। प्रेमचन्द के ग्रामीण साहित्य अथवा किसान, ज़मींदार, साहूकार, की मनोवृत्तियों के ज्ञान के लिए उस युग के किसानों का इतिहास, जो ब्रिटिश-शासन की विनाशकारी भूमिका से आरम्भ होता है, प्रस्तुत है।

(४४)- सन् १८१३ में, भारत में ईस्ट इन्डिया कम्पनी के स्थापित होते ही, इंग्लैंड ने भारतवासियों के विरुद्ध विनाशकारी कदम उठाने शुरु कर दिये थे। एक ओर तो व्यापार, राज्य को सम्हाल कर भारत के जीवन पर सीधा प्रहार किया, दूसरी ओर सिंचाई और सार्वजनिक उपयोग के निर्माण कार्यों की ओर कभी भी ब्रिटिश सरकार ने विशेष ध्यान नहीं दिया। यदि कभी भारत के किसानों की सुविधा का प्रश्न सम्मुख आया भी तो केवल उतनी ही सुविधाये देने की चेष्टा की गई, जितनी कि ब्रिटिश सरकार के स्वयं अपने हित में उपयोगी थी। किसान स्वयं पैदा करके भी भूखा रहता था, इस बात की अंग्रेजों को चिन्ता न थी। इसका परिणाम यह हुआ कि नहरों, सड़कों तथा जनता की सुविधाओं आदि की हालत में गिरावट आना आरम्भ हो गया। इधर तो अंग्रेजी सरकार ने सार्वजनिक जनता

के सुख से आंखें मूंदली थीं, लेकिन अपनी मालगुजारी वसूली के लिए जमींदारी-प्रथा को जन्म देकर उसने भारत के किसान के आर्थिक जीवन को खोखला कर दिया था । अंग्रेजी-प्रथा के अनुसार, ज़मीन पर व्यक्तिगत अधिकार तथा ज़मीन को बेचने और खरीदने की रीति जारी कर दी और इंग्लैंड का पूरा फौजदारी कानून यहां पर लागू कर दिया था ।

(४५)- अंग्रेजों की स्वार्थ-सिद्धि का अन्त इतने से ही नहीं हुआ, उन्होंने भारत के घरेलू-उद्योग-धन्धों को भी आघात पहुंचाया । भारत में इतने राज्य स्थापित हुए और विलीन भी हो गए, पर ग्राम-व्यवस्था को किसी ने कभी भी कोई आघात अथवा कष्ट नहीं पहुंचाया था । ग्राम अपनी एक इकाई था जहां पर वह अपने इस्तेमाल और सुविधा के लिए सभी आवश्यक वस्तुओं की उत्पत्ति कर लेता था । ग्राम-वासियों का उत्पादन और वितरण अपने आस-पास के ग्रामों तक ही सीमित था, नगर के दूषित वातावरण का तो उसको आभास तक न होता था । राजा आपस में लड़ते झगड़ते थे । सल्तनतें बदलती थीं, पर इसका प्रभाव ग्राम-वासियों पर किसी प्रकार का कोई भी न पड़ता था । आक्रमण करते समय सिपाहियों को यह आज्ञा रहती थी कि खेती पर किसी प्रकार का प्रहार न हो और वह नष्ट-भ्रष्ट न की जाए । योद्धा युद्ध के मैदानों में लड़ते थे, लहलहाते खेतों से उनका कोई वैर न था । किन्तु इस नई पाश्चात्य सभ्यता ने सब मर्यादाओं को स्वार्थ की बेदी पर बलि चढ़ा दिया था । उनके मस्तिष्क सदैव अपने अहंकार से दूषित थे और अधिक मुनाफा कमाना उनकी स्वार्थ-सिद्धि का चरम लक्ष्य था । उन्होंने वही कार्य किए, जिनमें उन्होंने अपना हित समझा ।

(४६)- भारत के समृद्धिपूर्ण व्यापार को क्षति पहुंचाने के लिए, भारत के बने हुए मालों पर सीधे-सीधे प्रतिबन्ध लगाकर या उसके आयात पर अत्यधिक चुंगी लगा कर, इंगलैंड और, फिर योरप में भी उन सामानों के

प्रवेश पर रोक लगा दी गयी । भारत का आर्थिक ढांचा सन् १८१३ के बाद निर्णायक ढंग से तब टूटा, जब इंग्लैंड के कारखानों में बने हुए माल ने उस पर धावा बोल दिया । यही प्रथम कदम अथवा आर्थिक-संकट था जिसको सन् १८१३ में अंग्रेजों ने उपर्युक्त पृष्ठ-भूमियों में आरम्भ किया था । भारत में ग्राम-व्यवस्था की रचना खेती-बारी और उद्योग-धन्धों के घरेलू एके के आधार पर हुई थी । `कर्घा और चर्खा' पुराने भारतीय समाज के आर्थिक जीवन की धुरी थे; लेकिन जब अंग्रेजों के चरण भारत में पड़े तो उन्होंने गांवों में, घर-घर में इंग्लैंड की मिलों का कपड़ा पहुंचा कर भारत के कर्घे को तोड़ डाला और चर्खे को नष्ट कर दिया । इन ग्रामीण उद्योगों को नष्ट करने के साथ दूसरी ओर उन उद्योगों में लगे हुए एक बहुत बड़ी संख्या में मनुष्य के विनाशकी समस्या उत्पन्न कर दी, अन्त में जिसका भीषण परिणाम `आर्थिक जीवन का असन्तुलन' था । उद्योग में लगे नर-नारी खेती के लिए बुरी तरह छीना झपटी करने लगे, जिससे दुख, क्लेश, ईर्ष्या, क्रोध, मारकाट, आत्म हत्याएं आदि-आदि, मानव-जीवन के सभी दुर्गुणों का जन्म हुआ । प्रेमचन्द के युग में ये सभी दुर्गुण मौजूद थे । प्रेमचन्द ने अपने साहित्य का सृजन इन्हीं दीन भाइयों के बीच में बैठकर आरम्भ किया था, इसलिए यह कैसे सम्भव हो सकता था कि यह विषभरी वायु उनके हृदय और मन पर आघात न करती ? अंग्रेजी साम्राज्य की जघन्य लीला का अन्य वीभत्स रूप वह था, जब कि काश्तकारों से बड़ी बेरहमी के साथ अधिक से अधिक मालगुजारी वसूल की जाने लगी, लेकिन बदले में खेती और सिंचाई वगैरह की बढ़ती के लिए कुछ भी न किया गया । परिणाम यह हुआ कि खेती का विकास रुक गया और आर्थिक-संकट ने विभिन्न रूपों में अपने हाथ पैर फैलाने आरम्भ किए ।

(४७)- आर्थिक-संकट के दुष्परिणाम : इसी समय बैंक-पूंजी युग का श्रीगणेश हुआ । १६ वीं० सदी में भारत पर ब्रिटेन की औद्योगिक पूंजी का आधिपत्य हो गया था । इस पूंजी ने भारतीय दरिद्रता को इस गहराई तक

नीचे ढकेला कि २० वीं सदी में उसकी जगह भारत पर ब्रिटेन की बैंक पूंजी का आधिपत्य कायम हुआ । बैंक-पूंजी के महत्वपूर्ण आर्थिक और राजनीतिक परिणाम अन्त में भारत को भुगतने पड़े, जिसका इतिहास `राष्ट्रीय-चेतना` सम्बन्धी जन आन्दोलन की एक लम्बी कहानी है। २० वीं, सदी में बैंक-पूंजी द्वारा भारत का शोषण ही, इस देश की लूट का मुख्य रूप बन गया था । (१६१४-१८) की लड़ाई के समय और बाद के काल में भारतीय शोषण की क्रिया में बहुत तेज़ी आ गई थी । भारत के बाज़ार में ब्रिटेन के सीधे हिस्से की दर एक दम गिर गयी थी । लेकिन जहां एक ओर शोषण का पुराना आधार मिट रहा था वहां दूसरी ओर बैंक-पूंजी के शोषण से होने वाले मुनाफे का नया आधार बराबर तैयार होता जाता था और वह भारतीय पूंजीवाद के रूप में फैलता जा रहा था ।

(४८)- हमारे भारतीय पूंजीपति पाश्चात्य पूंजीवाद की हवा में पोषित हुए थे । उनके आचार-विचार मुनाफाखोरी, सूद-ब्याज, लूटखसोट, स्वार्थ-ये सब दुर्गुण उनके रक्त में वंशानुक्रम से बीज-रूप में पनप रहे थे जो रंग-रूप में भारतीय होने पर भी अपने दीन भाइयों को नहीं पहचानते थे । प्रेमचन्द ने धन अथवा पूंजी का गुण-गान इन शब्दों में किया है-- `धन-लोभ ने मानव-भावों को पूर्ण रूप से अपने अधीन कर लिया है । कुलीनता और शराफ़त, गुण और कमाल की कसौटी पैसा, और केवल पैसा हैं । जिसके पास पैसा है, वह देवता-स्वरूप है । उसका अन्त:करण कितना ही काला क्यों न हो । ×××××ईश्वर न करे कि आज किसी को किसी चीज़ में कमाल हासिल हो जाए, फिर उसमें मनुष्यता नाम को न रह जाएगा ।`[१] भारतीय पूंजीपतियों ने अपनी स्वार्थ-सिद्धि की प्राप्ति के लिए नये-नये साधनों और युक्तियों का प्रयोग किया ।

---

(१) प्रेमचन्द, `महाजनी सभ्यता`- हंस प्रकाशन, प्रथम संस्करण, स्मृति-अंक, पृष्ठ संख्या- २५७,

(४६)- "धर्म-कार्य" की ओट में पूंजीपति अपने गरीब वर्ग को, जिनको स्वयं उन्होंने ही गरीब बनाया था, चूस रहे थे। ये दरिद्र प्राणी जिनको पूंजीपतियों ने `मजदूर` की संज्ञा प्रदान की थी, वे ही मजदूर अब धर्म-भीरु हो गए थे। वे सदैव अपने को भाग्य के भरोसे ही जीवित रखते थे। पूंजीपतियों की स्वार्थ-नीति का तो बेचारों को ज्ञान तक न हो पाता था, वह मनुष्य-मनुष्य के बीच की इतनी गहरी खाई का कारण, अथवा विषमता को, ईश्वर और भाग्य के भरोसे पर ढो रहे थे। पूंजीपतियों के अन्याय को वे अपने पुराने जन्म के पाप और कर्म का फल समझ कर शान्ति और सन्तोष से चखते जाते थे और सर तक न उठाते थे। यद्यपि उनके जीवन के फल कड़वे और तीखे थे, पर इस वीभत्स एवं विनाशकारी भारतीय संकट का रूप धर्म-कार्य की आड़ में `बैंक-पूंजी` के रूप में लहरा रहा था। यह समाज के एक बहुत बड़े वर्ग का लज्जाजनक चित्र है, जिसको प्रेमचन्द ने उन्हीं मजदूरों के बीच में रहकर अनुभव किया था। उन्होंने बाद में इसे ही अपने साहित्यका प्रेरणा-स्त्रोत बनाया। उस काल की समाज--व्यवस्था, जो साम्राज्यवादी शासन के अन्तर्गत विकसित हुई थी, जनता के स्वभाविक जीवन के लिए, गला घोटनेवाली शिकंजा बन गई थी। इस व्यवस्था की नींव `सतमुखी`होकर चारों-ओर अपना जहर उगल रही थी। `बैंक-पूंजी` के पश्चात् आर्थिक-संकट का अन्य वीभत्सकारी चित्रण `खेती के संकट-रूप में` उपस्थित हुआ।

(५०)- पश्चिमी विजेताओं ने भारत की जड़ों तक पहुंचने के लिये जो सबसे अधिक विनाशकारी काम किया था, वह था अपनी ओर से जमींदारों का प्रभुत्व स्थापित करना, जिसको उन्होंने `जमींदारी प्रथा` के नाम से जन्म दिया था। १७६३ ई० में लार्ड कार्नवालिस ने बंगाल, बिहार, और उड़ीसा में जो इस्तमरारी-बन्दोबस्त किया था वह इसी ढंग का था। बाद में उत्तरी भारत तथा सभी प्रान्तो में मालगुजारी वसूल करने

के लिए ज़मींदारों को मध्यस्थ रखा गया । अन्त में यह भी तय हो गया कि एक निश्चित रकम सरकार को देनी पड़ेगी जो कभी घटे-बढ़ेगी नहीं । ज़मीन के मालिक ज़मींदार बना दिये गये । यह शर्त काश्तकारों के हित में दुखदायी होती गई । ज़मींदार मनमाना लगान वसूल करने लगे और साथ ही ज़मीन बेचने का, दूसरे काश्तकार को देने का सब एकाधिकार उनको प्राप्त हो गया । साम्राज्यवादी सरकार ने खेती में भी संकट पैदा कर दिए थे, उसने सामाजिक सम्बन्धों को भी हिला दिया था ।

(५१)- साम्राज्यवादी शोषण की परिस्थितियों में तरह-तरह के छोटे मुफ़्तखोरों की एक पूरी सेना तैयार हो गई थी जो पूरी ग्रामीण-व्यवस्था पर निर्भर रहती थी और उसका अभिन्न अंग बनी हुई थी । इसके परिणाम-स्वरूप न केवल किसानों पर लदा हुआ बोझा बढ़ता जाता था, बल्कि उससे भी अधिक भीषण परिणाम यह हुआ कि किसानों में वर्ग-भेद भी बराबर बढ़ते गए । इस प्रकार एक दुख से दूसरे दुखों की शाखाएं-उपशाखाएं फूटती चली जा रही थीं, जिन्होंने मिलकर विनाश के विशाल वृक्ष का रूप ले लिया था । जिन किसानों से ज़मीन छिन जाती थी, उनकी दशा `कुम्मी` या `अर्द्ध गुलाम` जैसी हो जाती थी । गुलामी अथवा दासता समाज का कितना बड़ा कलंक है । भूमि-विहीन सर्वहारा की सेना बढ़ती ही जाती थी । यही वह क्रिया थी जो आने वाले तूफान की सूचना दे रही थी । समाज की सीढ़ी पर और भी नीचे उतरने पर— `हम अर्द्ध-गुलामी` `हरी बेगार` और साहूकारों की दासता के स्तर पर पहुंच जाते हैं, जहां हमें ऐसे खेत-मजदूर मिलते हैं, जिन्हें मजदूरी भी नहीं मिलती । इस प्रकार के मज़दूरों का उल्लेख प्रेमचन्द ने इन शब्दों में किया है ।—"महन्त रामदास जब अपने इलाके की निगरानी करने निकलते तो उनका जुलूस राजसी ठाट-बाट के साथ चलता था । सब के आगे हाथी पर श्री बांकेबिहारी जी की सवारी ... उसके पीछे पालकी पर महन्त जी चलते थे । ..महन्त जी तर्थ यात्रा करने गए थे .. बड़ा यज्ञ किया । एक महीने तक हवन-कुंड

जलता रहा, महीनों तक कड़ाह न उतरे, पूरे दस हज़ार महात्माओं का निमन्त्रण था । इस यज्ञ के लिए प्रत्येक आसामी से हल पीछे पांच रुपया चन्दा उगाहा गया था; किसी ने खुशी से दिया; किसी ने उधार लेकर, जिसके पास न था उसे रुक्का लिखना पड़ा । `बांके बिहारी जी` की आज्ञा को कौन टाल सकता था ? x x x x एक बूढ़ा दरिद्र आदमी था, कई साल से फसल खराब हो रही थी । x x x उस पर इजाफा लगान की नालिश करके उसे ऋण के बोझ से और भी दबा दिया था ।
x x x x x चंदा देने से इन्कार करने पर ठाकुर द्वारे के सामने मार पड़ने लगी x x x x उसके प्राण हर लिए ।"[१] प्रेमचन्द ने १९१९ के काल में इस प्रकार की पशुवत लीलाओं को देखा था । उनके उपन्यास का यह यथार्थ अंग प्रतीत होता है । रजनी पाम दत्त ने आंकड़ों की एक लम्बी सूची के साथ भारत की गरीबी का रहस्य, खेती का संकट, अंग्रेजों की नीति एवं साम्राज्यवादी विनाश की भूमिका में भारत के संकटों का उल्लेख किया, है, जिसके अन्तर्गत "बैंक-पूंजी" और औद्योगीकरण आदि का विशद चित्रण उपस्थित है । वास्तव में इन आंकड़ों से इस बात पर पर्दा फ़ाश हो जाता है कि इस बीच शोषण के एक नए रूप ने जन्म ले लिया था । यह रूप स्वतन्त्र व्यापार पर आधारित उन्नीसवीं सदी के पूंजीवाद की परिस्थितियों में ही विकसित हुआ था । यह बीसवीं सदी की नयी मंजिल थी । १९ वीं० सदी के स्वतन्त्र व्यापार पर आधारित पूंजीवाद की कुछ ऐसी आवश्यकताएं थीं, जिनसे मजबूर हो कर अंग्रेजों को भारत में अपनी नीति में कुछ परिवर्तन करने पड़े । १८५७ के गदर के पश्चात् कम्पनी को समाप्त करके ब्रिटेन के पूरे पूंजीपति वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में ब्रिटिश सरकार का सीधा शासन स्थापित कर दिया गया । दूसरे, व्यापार के लिए भारत को एकदम एक सूत्र में बांधना आवश्यक था । उसके लिए देश में रेल की लाइनों का जाल सा बिछा दिया गया

---

(१) प्रेमचन्द, `सेवासदन`—हंस प्रकाशन,
पृष्ठ संख्या—९, १०,

और लड़कों का विकास हुआ । अपनी आवश्यकतानुसार साम्राज्यवादी सरकार ने सिंचाई, बिजली, डाक तथा साथ ही अंग्रेजी शिक्षा, जिसके द्वारा क्लर्को और मातहत एजेन्टों की भर्ती की जा सके, और योरपीय ढंग की बैंक-व्यवस्था जारी की । किन्तु पूंजीपतियों का 'आर्थिक-विकास' 'आर्थिक संकट ही बन कर भारत में फल-फूल रहा था' । एक पराधीन, औपनिवेशिक देश का आर्थिक विकास किस प्रकार उल्टे क्रम से होता है, इसका भारत एक अच्छा उदाहरण है । भारत में औद्योगीकरण अत्यन्त ही मन्द गति से बढ़ता रहा । इसका मुख्य कारण भी स्वयं साम्राज्यवादी-व्यवस्था में निहित था । यह व्यवस्था ऐसे विरोधों को जन्म देती थी जो भारतीय उद्योगों का विकास नहीं होने देते थे । यही रूप अन्त में साम्राज्यवादी-शोषण का अनिवार्य परिणाम था जो खेती पर अधिक बोझा बढ़ा रही थी । इस प्रकार भारत में उद्योग-धन्धों का सवाल, खेती के सवाल से अलग करके, हल नहीं किया जा सकता और खेती का सवाल साम्राज्यवादी शोषण के मूल आधार से सम्बन्धित है । भारत में साम्राज्यवादी नीति का सदा यही उद्देश्य रहा कि किसी तरह यहां अंग्रेजों के साम्राज्यवादी स्वार्थों का कायम रक्खा जाय, उनकी रक्षा की जाए और उनको मजबूत बनाया जाए । ऐसे 'खेत-मजदूर' भारत के सभी हिस्सों में पाए जाते थे । बहुत से इलाकों में अर्द्ध-गुलाम और साहूकार-दास आदिवासी जातियों के लोग हो गए थे । किसानों की तबाही का एक और सबूत 'छोटे-किसानों' की हालत थी । इनमें से अधिकतर के पास इतनी कम ज़मीन होती थी कि वे उस पर अपने गुजर के लायक भी नहीं पैदा कर पाते थे । वैसी ही हालत शिकमी काश्तकारों की और उन किसानों की थी जिनको किसी प्रकार के अधिकार प्राप्त नहीं थे । व्यवहार में, इन तमाम लोगों की हालत और खेत-मजदूरों की हालत में कोई विशेष अन्तर नहीं था । इन लोगों को एक दूसरे से अलग करनेवाली रेखा बहुत ही धुंधली पड़ गई थी ।

जैसे-जैसे किसान की कठिनाइयाँ बढ़ती जाती थीं, वैसे ही वैसे वह कर्ज के बोझ के नीचे अधिकाधिक दबता जाता था। इस दबाव में उसकी कठिनाइयाँ और अधिक गहरी होती गईं। इस प्रकार किसान को ऐसी दशा उत्पन्न हो जाती थी कि वह दरिद्रता के भंवर में ज्यों-ज्यों हाथ-पैर पटकता था और डूबता ही जाता था। अर्थात कर्ज में बेचारा किसान पैदा होता था, कर्ज ही में पोषित होता था और अन्त में भी कर्ज था। याने उसकी जमीन छिनती थी, घर कुड़की होता था, भाड़े-बर्तन मिट्टी के मोल वहीं के ग्रामीण हमजोली, मौखिक सहानुभूति से, जिनके हृदय स्वार्थ से भरे हुए थे, उठा ले जाते थे और अन्त में अपने ग्रामीण सम्बन्धियों से विदा की बेला आ जाती थी। यह थी दुख-भरी किसानों की कथा जिसको प्रेमचन्द ने साहित्यिक आंसुओं से सान्त्वना दी है। प्रेमचन्द का साहित्य किसानों का जीता-जागता, चलता-फिरता, किसान से मज़दूर बनता हुए दीन मानव का सजीव चित्र है। चित्र के अन्तर्गत दुख-विषाद की विभिन्न धाराएं, शाखाएं—उपशाखाएं फूट रही हैं। अपने काल के इसी युग-मन को प्रेमचन्द हलाहल के रूप में आत्मसात् कर चुके थे, जिसको बाद में अमृत की बूंदों के समान निकालते रहे।

(५२)- कर्ज की चक्की— कर्ज़ वह अनवरत चलनेवाली चक्की थी। जिसमें भारत का किसान पिसता रहता था। किसानों के कर्ज लेने का कारण आर्थिक होता था, वह अपने सुख और विलास के लिए कर्ज नहीं लेता था। किसान की इस आर्थिक विवशता से शोषण का गहरा सम्बन्ध है। `किसान कर्जा लेते हैं सो लगान देने के लिए, अपनी खेती में कोई ऐसा सुधार करने के लिए जिसमें पूंजी की आवश्यकता हो, पुराना कर्ज चुकाने के लिए या ऐसे ही अन्य किसी काम के लिए नहीं।' (१)

---

(१) रजनी पाम दत—भारत : वर्तमान और भावी, पृष्ठ संख्या—६३,

(५३)- साहूकार पूंजीवादी शोषण की पूरी व्यवस्था की धुरी बन गया था । ज़मींदार साहूकार की मदद से लगान वसूल करता था । इस प्रकार साहूकार किसानों-ज़मींदारों के बीच की जोंक था जो ज़मींदार के नाम पर किसानों पर जुल्म करता था, लगान वसूल करता था और किसानों से बेगार भी लेता था । साहूकार मालगुजारी जमा करने के साथ ही ग्रामीण किसानों को सूद पर कर्ज देता था । साहूकार के बहीखाते, रसीदें, सब दगा-फरेब से भरी होती थीं । तीन के १३ या इससे भी अधिक वसूल करना इसका धर्म बन गया था । ज़मींदार तो कभी ही कभी आफत ढाता था लेकिन ये साहूकार किसानों के जीवन की जूं था जो मृत्यु पर्यन्त भी पिता से उठ कर बालक पर चिपट जाता था और इसका पीछा मृत्यु की कालिमा भी नहीं धो पाती थी । सूद पर कर्ज देने के अलावा अनाज की खरीद और बिक्री भी करता था । जब फसल कटती तो किसानों की लगभग सारी उपज साहूकार खरीद लेता था । अक्सर वही फसल के शुरु में किसानों को बीज और हल बैल आदि भी देता था । इन सब का मसविदा भोले-भाले अपढ़ किसानों के लिए जादू का पिटारा था । साहूकार का उन पर कितना चाहिए था और वे उसमें कितना अदा कर चुके इसका हिसाब प्राय: किसानों को नहीं मालूम होता था । परिणाम यह होता था दिन ब दिन वे उसके गुलाम बनते जाते थे और साहूकार गांव का 'तानाशाह'। यह थी किसान और साहूकार के मध्य की क्रिया-प्रतिक्रिया जो प्रेमचन्द के सामने, उन्हीं के युग में सारे भारत में हो रही थी जिसको जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए प्रेमचन्द ने लेख लिखे, टिप्पणियां प्रस्तुत की जो हंस में १९३० से अंतिम काल तक निकलती रहीं और अपनी विभिन्न रचनाओं में उपन्यास और कहानी के माध्यम से परीक्षा-रूप में इन पर घृणात्मक प्रहार किए जिन्होंने मनुष्य होकर मनुष्य को कुचल रक्खा था ।

(५४)- भारतीय-कृषक-समाज कर्ज के बोझ से तो दबा ही था, वह अपने को सर्वथा विवश और पराधीन पाकर परमुखापेक्षी और भाग्य-वादी भी बन गया था। प्राकृत कारणों से तो वह भाग्यवादी बनने के लिए विवश था ही, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों ने भी उसे ईश्वरीय सहायता पर निर्भर रहने के लिए मजबूर कर दिया था। अत: उसका आत्मविश्वास खो गया था और वह मिथ्या-धारणाओं, अन्ध-विश्वासों, सामाजिक रूढ़ियों आदि का बन्दी बन गया था। वह सर्वथा निरीह और अकिंचन प्राणी की तरह दूसरों की दया और कृपा पर ही निर्भर रहने का अभ्यस्त हो गया था। युगों से चली आयी देवी-देवताओं, भूत-प्रेतों आदि की पूजा परम्परा के जाल में पूरी तरह जकड़ गया था।

(५५)-आर्थिक पराभव के कारण उसका वैयक्तिक और पारिवारिक-जीवन टूट सा गया था। रात-दिन अथक परिश्रम करने के बावजूद दोनों वक्त पेट भर भोजन पाना उसके लिए असम्भव था। फलत: वह गुलामों की तरह अपने श्रम को बेचने, यहां तक कि अमीरों के हाथ अपनी बेटी तक बेचने के लिए मजबूर था। आर्थिक-अभावों के कारण तन और मन दोनो स्वभावत: कमजोर हो गए थे। इसलिए तरह-तरह की बिमारियों, महामारियों का प्रकोप होता रहता था। जन्म लेते ही बच्चों की मृत्यु हो जाय, स्त्रियों और पुरुषों का बहुत बड़ी संख्या में अकाल ही कालकवलित हो जाना बिमारियों के फलस्वरूप गांव के गांव उजड़ जाना, अकाल का बार-बार आना—यह सब एक स्वभाविक प्रक्रिया बन गयी। ज़ाहिर है कि इन सब आपदाओं और विपत्तियों का तात्कालिक कारण ब्रिटिश शासन की निर्मम शोषक नीति ही थी। इस तथ्य का प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में थोड़ा बहुत ज्ञान भारतीय कृषक समाज को हो चला था और `मरता क्या-न करता` की नीति के अनुसार यदाकदा देश के विभिन्न अंचलों में असंगठित

किसान विद्रोह भी होते रहते थे । जिस समय कांग्रेस का जन्म हुआ किसानों में असन्तोष बढ़ता जा रहा था और ज़मींदारी प्रथा तथा इस्तमरारी बन्दोबस्त आदि के विरुद्ध लोगों की विद्रोही भावना प्रबल होती जा रही थी ।

किसान-आन्दोलन का आरम्भ :

(५६)- कांग्रेस ने सर्व प्रथम नहीं, तो भी, आरम्भ से ही समय समय पर किसानों की दीन-हीन दशा की ओर ध्यान दिया । इलाहाबाद में होने वाले १८८८ के कांग्रेस के चौथे अधिवेशन से ही यह कार्य शुरु हो गया था । २० वीं शताब्दी में गांधीजी के आगमन से किसानों में अधिकाधिक जागृति उत्पन्न हुई । वैसे किसान आन्दोलन की प्रगति के भाव परोक्ष-रूप में कभी भी विलीन न हुए थे । विद्रोह-रूप में चिनगारी उठती अवश्य थी किन्तु साम्राज्यवादी ताकतों के सम्मुख स्थाई रूप न पा रही थी ।भारत में खेती की अर्थ-व्यवस्था का पहले से ही दम निकला हुआ था । ऊपर से संसार-व्यापी 'अर्थ-संकट' ने तो उसकी कमर ही तोड़ डाली । उसके फलस्वरूप लगान बढ़ाने, कर्जदारों को गुलाम बनाने और किसानों की जमीन छीनने की जो क्रिया शुरु हुई उसका परिणाम भारत के सभी भूभागों में किसान-आन्दोलन के जन्म के रूप में प्रकट हुआ । किसान अपने आप गांव-कमेटियां बनाने लगे । उनके द्वारा वे बेदखलियों का विरोध करते थे । कुर्क-जमीनों के नीलामों का बहिष्कार करते थे और साहूकारों के खिलाफ अपनी एकता दृढ़ करते थे । ये किसानों की अपनी मुसीबतें और तकलीफें थीं जो उनको भारतीय—राष्ट्रीय कांग्रेस के राजनीतिक संघर्ष में खींच लाईं । इस प्रकार जब से भारत में अंग्रेजी राज्य कायम हुआ तभी से किसानों में बार-बार बेचैनी पैदा हुई और किसानों के विद्रोह हुए । तब से उनकी संख्या और

तेजी बराबर बढ़ती ही गई । राष्ट्रीय चेतना ने आन्दोलन में और अधिक प्राण फूंक दिए । शुरु-शुरु में किसानों का गुस्सा और बेचैनी अलग-अलग साहूकारों और जमींदारों से बदला लेने और हिंसा का प्रयोग करने की इक्की-दुक्की कार्रवाइयों का स्वयं स्फूर्त-रूप लेती थी । `प्रेमाश्रम` में मनोहर कहता है— `कारिन्दा कोई है, न जमींदार कोई हौआ । यहां कोई दबेल नहीं है । जब कौड़ी-कौड़ी लगान चुकाते हैं तो धौंस क्यों सहें?[१]

(५७)- प्रेमचन्द का स्वप्न अथवा आदर्श जिसकी कि अनुभूति उन्होने अपने युग में की थी तथा जिसकी आदर्शात्मक कल्पना अपने उपन्यास, कहानी का विषय बनाया था वह १९३६ में प्रथम अखिल भारतीय-किसान-संगठन के रूप में स्थापित हुआ । यह थी किसान-आन्दोलन की प्रगति की भूमिका जिसकी पृष्ठ-भूमि में प्रेमचन्द ने अपने किसान भाइयों के आन्दोलनों को प्राण दिए हैं । किसान-आन्दोलन की भांति मजदूर-आन्दोलन का श्री गणेश करीब ६०-७० साल पहले हुआ था । लेकिन एक संगठित आन्दोलन के रूप में उसका इतिहास-क्रम पहले महायुद्ध के बाद से आरम्भ हुआ । १९ वीं सदी के आठवें दशक तक देश में कल-कारखाने खड़े होगए `इतिहास में १८७७ की एक हड़ताल का एक उल्लेख है जो नागपुर की एम्प्रेस मिल में मजूरी की दर के सवाल पर हुई थी । १८८२ से लेकर १८९० तक के काल में बम्बई और मद्रास प्रान्त के २५ हड़तालों का उल्लेख मिलता है ।`[२] १९०५-१९०९ के राष्ट्रीय-आन्दोलन की लहर के उठने के साथ-साथ मजदूर-आन्दोलन और भी

---

(१) प्रेमचन्द `प्रेमाश्रम` प्रका० हंस इलाहाबाद पृ० सं० ८

(२) रजनी पाम दत्त, भारत-वर्तमान और भावी, अनु० ओम प्रकाश संगल, सं- प्रथम जून १९५६, प्रका० पी० पी० हाउस दिल्ली १, पृ० सं०-२०१

सशक्त हुआ । बम्बई की मिलों में काम के घंटे बढ़ाने के विरोध में हड़ताल हुई । धीरे-धीरे यह प्रत्येक मिल व शहर का साधारण विषय हो गया था । कभी किसी मांग को लेकर, कभी किसी बात पर दिन-प्रतिदिन आन्दोलन होते थे और अत्यन्त वीभत्सता के साथ पुलिस की सहायता से उन पर घोर-प्रहार किए जाते थे । किन्तु साम्राज्यवादी मार-काट तथा दमन-नीति ने आन्दोलनों को समाप्त करने के स्थान पर और उत्तेजना ही दी । प्रथम महायुद्ध समाप्त होने पर रूसी क्रान्ति तथा उसके बाद सारी दुनिया में उठने वाली क्रान्तिकारी लहर का जो प्रभाव पड़ा था उनके कारण भारत का मजदूर वर्ग मानो एक छलांग मारकर `कर्मभूमि` में उतर आया था । यहीं से भारत में आधुनिक ढंग के मजदूर-आन्दोलन का श्री गणेश हुआ । उस वक्त देश की आर्थिक हालत और राजनीतिक परिस्थिति दोनों ने ही मजदूरों में नई जागृति पैदा करने में मदद दी । लड़ाई के दिनों में चीजों के दाम दुगने हो गए थे लेकिन मजदूरों की मजदूरी में उस हिसाब से बढ़ती नहीं हुई थी । मिल-मालिक अन्धा-धुन्ध मुनाफा कमा रहे थे । किन्तु मगर मजदूरों को उनका समुचित भाग नहीं मिल रहा था । मजदूर पीड़ित थे । प्रेमचन्द ने अन्त में आकर यह दिखा दिया अब मजदूरों की आवाज बुलन्द है । इस-मज़दूर-आन्दोलन ने प्रेमचन्द के विचारों को प्रेरणा प्रदान की । साथ ही प्रेमचन्द ने इन्हीं `मजदूरों के संघर्ष से शक्ति ग्रहण कर अपना अपना दृष्टिकोण अपने साहित्य में व्यक्त किया ।

(५८)- ये तथा अन्य अनेक विभिन्न समस्याएं प्रेमचन्द के युग में १९०४ से १९३६ तक किस प्रकार समाज में विषाद-रेखा के रूप में फैली हुई थीं उनका यहां उल्लेख किया गया है । प्रेमचन्द ने इन समस्याओं को राष्ट्रीय-विकास में विकट संकट के रूप में देखा, समझा और बताया । ये जाति-पांति, धर्म-अधर्म, छूत अछूत, अशिक्षा आदि समस्याएं जो भारतीय

संस्कृति का अभिशाप है हमारी राष्ट्रीय-चेतना के लिए भी कम कष्टदायक नहीं । इन समस्याओं को प्रेमचन्द ने विभिन्न विचारों की पृष्ठ-भूमि में उठाया । प्रेमचन्द की सशक्त-वाणी का, जिसे विभिन्न साहित्यिक रूपों में उन्होंने अपने जीवन को अंतिम घड़ियों तक व्यक्त किया, यही इतिहास है । प्रेमचन्द को भारतीय समाज के प्रत्येक अंग-मजदूर, किसान, नगर-जीवन आदि की आर्थिक स्थिति का यथार्थ-ज्ञान था । आर्थिक-समस्या का सीधा सम्बन्ध राष्ट्रीय-पराधीनता से था । अत: प्रेमचन्द ने पूर्ण राष्ट्रीय स्वाधीनता को प्राथमिकता दी । इन दीन-हीन, अशिक्षित, अछूत भाइयों में इतनी हिम्मत न थी कि वे स्वयं अपनी आवाज बुलन्द तो क्या, खोल भी सकें । गांधी ने १६२१ में इसको राष्ट्रीय-चेतना की छत्र-छाया में विकसित किया । गांधी का विचार था—"भारत गरीब लोगों का देश है लेकिन वह गरीब नहीं है ।"

प्रेरणा - स्त्रोत

अध्याय—३

प्रेमचन्द के प्रेरणा-स्त्रोत

१- प्रेमचन्द ने अपने युग की सभी महान् कृतियों से प्रेरणा ग्रहण की । उन्होंने अपने उपन्यास और कहानी में पाश्चात्य लेखकों की प्रतिभा को स्वीकार किया और स्वीकार किया था उस युग के लम्बे इतिहास को जो 'औद्योगिक-क्रान्ति' के साथ १५ वीं० शताब्दी से आरम्भ होता है और प्रेमचन्द के काल तक आता है । प्रेमचन्द की प्रेरणा के क्रम-गत विकास को अच्छी तरह समझने के लिए उस युग के इतिहास की पृष्ठभूमि का अध्ययन एवं विश्लेषण अनिवार्य है । कलाकार प्रेमचन्द मध्यवर्गीय शिक्षित समुदाय के प्राणी थे, और अपने जीवन के प्रारम्भ काल से ही वे पूंजीवाद के विरुद्ध और साधारण जन-समुदाय के साथ रहे ।

२- प्रेमचन्द ने अपने युग के बाह्य जीवन की परिस्थितियों के साथ मनुष्य के आन्तरिक जीवन, उसके भाव जगत् का चित्रण सफलता के साथ किया, क्योंकि प्रेमचन्द जीवन-दर्शन से अधिक मनुष्यों के साथ मार्मिक सहानुभूति पर बल देते थे । प्रेमचन्द अपने किसी विशेष दृष्टिकोण को लेकर नहीं चले थे, उन्होंने जीवन के प्रत्येक पहलू को देखा, इसी कारण प्रेमचन्द को अपने युग के सामाजिक जीवन की पूरी जानकारी थी । कलाकार के लिए मूलवस्तु है संवेदना, सामाजिक जीवन से व्यापक परिचय, अपने पात्रों से उचित अनुपात में सहानुभूति या घृणा—ये सभी गुण प्रेमचन्द में मूल प्रेरणा-रूप में स्थित थे, जिसके प्रभाव से प्रेमचन्द अपना साहित्य रच रहे थे । प्रेमचन्द ने उपन्यास-साहित्य को भी प्रेरणा के रूप में ही ग्रहण किया था क्योंकि वह अच्छी तरह जानते थे कि उपन्यास केवल कथात्मक गद्य नहीं है वह मानव के जीवन का गद्य है जो सम्पूर्ण मानव को लेकर उसे अभिव्यक्ति प्रदान करने

की चेष्टा करता है । प्रेमचन्द का विचार था कि आज के युग में साहित्य का कार्य अपनी महान् परम्परा को पुनर्स्थापित करना और सत्य, ज्ञान, वास्तविकता द्वारा अपने को आत्मसात करना है । अपनी अन्तत: चेतना को जगाता है । प्रेमचन्द अपने युग की समाज-व्यवस्था से आरम्भ से अन्त तक असन्तुष्ट रहे । `कर्मभूमि` में एक स्थान पर लक्ष्य करते हैं— "एक आदमी दस रुपए में गुजर करता है, दूसरे को दस हजार क्यों चाहिए? यह धांधली उसी वक्त तक चलेगी, जब तक जनता की आंखें बन्द हैं ।"(१)

३- पूंजीवाद जिसका कि दो शताब्दियों का लम्बा इतिहास है, आरम्भ से ही अन्तर्विरोधों से पीड़ित था और १६ वीं० सदी से ही अंग्रेजी के महान लेखकों ने उसकी बराबर तीव्र आलोचना की थी । यह भी ध्यान देने की बात है कि अंग्रेजी पूंजीवाद ने कभी सामन्तवाद का सुसंगत विरोध नहीं किया । उसने किसानों को तबाह किया लेकिन सामन्तों से गठबन्धन किया । सांस्कृतिक-क्षेत्र में उसने राजनीतिक प्रतिनिधि `ड्यूक` और `लार्डस` को अपना आदर्श माना । अंग्रेजी पूंजीवाद की यही पूरी पूरी प्रतिच्छाया भारतीय पूंजीवाद पर भी बिलकुल इंगलैन्ड के समान ही पड़ी और भारतीय पूंजीवादी भी अपने ही भाइयों के हित में अभिशाप बनकर उत्पन्न हुए । किन्तु जैसा आरम्भ में कहा है कि पूंजीवाद अपने जन्म से ही अन्तर्विरोधों से तप्त था । वे अन्तर्विरोध थे पूंजीवाद के विरुद्ध विद्रोह की भावना जिस को जन्म देने वाला मध्य वर्गीय शिक्षित समुदाय था ।

---

(१) प्रेमचन्द `कर्मभूमि` प्रका० हंस इलाहाबाद, पृ० सं०- १२२,

४- इंगलैंड में औद्योगिक-क्रान्तिका आरम्भ १५ वीं० शताब्दी में हुआ था, उसका विशेष प्रभाव सर्व साधारण जनता पर पड़ा था। अत्यधिक उत्पादन के विकास से इंगलैंड तथा अन्य योरपीय मुल्कों के सम्मुख यह समस्या उत्पन्न हो गई थी कि अब इस नवीन उत्पादन प्रणाली से बने सामानों की खपत कहां हो ? आर्थिक उन्नति और मशीन के उत्पादन के क्षेत्र में १५ वीं० शताब्दी में इंगलैन्ड सम्पूर्ण संसार का नेतृत्व कर रहा था। इसी के परिणाम-स्वरूप नए नए स्थानों को खोज में विदेशों में अपने मालों की बिक्री बढ़ाना उसके लिये अनिवार्य हो गया था। औद्योगिक क्रान्ति के कारण अब यह सम्भव नहीं रहा कि कारीगर स्वतंत्र रूप से मालों का उत्पादन एवं निर्माण कर सकें। उत्पत्ति के लिए अब बड़ी पूंजी की आवश्यकता थी। इसी आवश्यकता के फलस्वरूप पूंजीपतियों का जन्म हुआ। जिन लोगों के पास रुपया था, वे स्वयं शिल्पी न थे, बल्कि अपने धन के बल पर मशीन खरीद कर कारखाना स्थापित करते थे, जहां पर एक लम्बी संख्या में मज़दूर वर्ग काम करता था। सैकड़ों हजारों मजदूरों को वेतन देकर वे मालों की उत्पत्ति का प्रबन्ध और संचालन करने लगे। इस कारण यह स्वभाविक था कि इन नए लोगों का प्रभाव आर्थिक क्षेत्र में बढ़ता जाए और धीरे-धीरे सब उत्पादन का माल स्वतन्त्र शिल्पियों के हाथ से निकलकर इन धनियों और पूंजीपतियों के हाथ में आ जाए। यह प्रक्रिया निरंतर ज़ोर पकड़ने लगी थी, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण और स्वरूप समाज और जनता में दिखाई देने लगा था।

५- पूंजीवाद आर्थिक प्रगति और विकास के साथ स्वयं विकसित हो रहा था, और बढ़ रहा था, इसी ने नए-नए आविष्कारों को भी जन्म दिया। ज्ञान और विज्ञान की उन्नति इसी विकास का फल है। नवीन मार्ग, मशीन, बिजली, रेल, आदि-आदि पूंजीवाद की ही और आवश्यकता की पूर्ति के लिये निर्मित हुये। पूंजीवाद चतुर्मुखी उन्नति कर

रहा था और उसकी शाखाएं प्रत्येक क्षेत्र में फैल रही थीं। इंगलैंड के व्यापारी भारत में भी अपने बने मालों के लिए बाजार ढूंढने आये थे। अपने बने हुए माल को घर-घर तक पहुंचाने के लिए उन्होंने नए नए रास्ते बनाये और सड़कें तैयार कीं। साथ ही व्यापार की प्रक्रिया को अधिक सुलभ करने के लिए उन्होंने अगणित उपयोगी साधनों का प्रबन्ध किया। पूंजीवाद के विकास के साथ-साथ उसके मातृ-देश की संस्कृति एवं सभ्यता के विकास का क्रम भी अनवरत रूप से चल रहा था। उनके व्यापारिक मालों के साथ ही उनकी भाषा, साहित्य, विज्ञान, संस्कृति, सभ्यता आचार-विचार आदि का भी निर्यात आरम्भ हुआ और जिन देशों के साथ अंग्रेजी पूंजीवाद एवं व्यापार का सम्बन्ध स्थापित हुआ, उनके साथ इंगलैंड की सभ्यता और संस्कृति का भी सम्पर्क अनिवार्य रूप से हुआ भारत में अंग्रेज व्यापारियों और उद्योगपतियों को सर्वाधिक अनुकूल क्षेत्र और वातावरण प्राप्त हुआ था। इसलिए इस युग में व्यापार के मालों के आवागमन के साथ ही साथ वहां के आचार-विचार, रीतिरिवाजों, कला साहित्य का भी आदान-प्रदान सहज और सुलभ होता गया। पूंजीवादी विकास-क्रम की यह पहली सीढ़ी थी, इसके बाद इंगलैंड के पूंजीपतियों ने भारतवर्ष में अपनी मिलें और फैक्ट्रियां स्थापित कीं, व्यापार के विस्तार के साथ ही अंग्रेजों ने राज्य का विस्तार भी प्रारम्भ किया जो १८५७ तक ईस्टइन्डिया कम्पनी के द्वारा अनवरत रूप में चलता रहा। इसके बाद महारानी विक्टोरिया ने सम्पूर्ण भारत को अपने साम्राज्य का अंग बना लिया। जो लोग डेढ़ सौ वर्ष पहले साधारण से व्यापारी बनकर भारतवर्ष में आए थे, वे अब पूर्ण रूप से साम्राज्यवादी हो गए थे और भारतवर्ष उनके साम्राज्य का एक अंग बन गया था। इस पूरे युग में भारत का शोषण अनेक रूपों में हुआ। फलत: यहां की उद्योग एवं कृषि व्यवस्था नष्ट हो गयी। ग्रामीण जीवन टूट कर बिखर गया। अविद्या,

अकाल, महामारी आदि का दौर शुरू हो गया। अंग्रेजी-साम्राज्यवाद का यही अभिशाप था, जिससे हमारा देश सन्तप्त था।

६- पूंजीवाद की प्रगाढ़ छाया निरंतर गति से भारत पर फैलती गयी और इसके फलस्वरूप भारत की जनता का शोषण भी बढ़ता गया। इस परिवर्तन का प्रभात भारतीय सामाजिक जीवन पर भी पड़ा और इस नयी प्रक्रिया के फलस्वरूप उसमें नयी प्रेरणा और शक्ति का संचार हुआ। भारत में पूंजीवादी तथा श्रमिक वर्ग के फलस्वरूप एक अन्य श्रेणी का विकास हुआ, इसे हम शिक्षित-मध्यम श्रेणी कह सकते हैं। कारखानों में यान्त्रिक-शक्ति और जटिल मशीनों का संचालन करने के लिए ऐसे शिक्षित शिल्पियों की आवश्यकता थी, जो अपने कार्य में पटु हों। नौकरशाही सरकार को एक बड़ी संख्या में बाबूवर्ग[१] की आवश्यकता थी, जो बड़े-बड़े अफसरों का मातहत होता था। लेकिन सरकारी-वर्ग का यह बाबू-वर्ग बहुत दीन, निरीह और हीन प्राणी था जो आर्थिक विषमता का शिकार हो चुका था। नए आर्थिक जीवन में यदि महत्व था तो व्यापारी, महाजन वकील आदि का शिक्षा और ज्ञान के प्रकाश के कारण इस श्रेणी के लोगों के लिए समाज और सरकार दोनों पर अपना प्रभाव बढ़ा सकना बहुत सुगम था। प्रेस, समाचार पत्र, पुस्तकों के प्रचार के कारण यह श्रेणी अपने विचारों का प्रसार भी सुगमता से कर सकता था।

७- पूंजीवाद के विकास, प्रगति और उन्नति के साथ ही साथ उसका प्रतिक्रियावादी रूप आरम्भ हुआ जो कि मजदूरों की दयनीय दशा के फलस्वरूप उपस्थित हुआ था। इस संघर्ष को विस्तार देने का श्रेय मध्य-वर्गीय शिक्षित समुदाय को ही था। सन् १७५०-१८५० तक एक शताब्दी के

---

(१) प्रेमचन्द की कहानी `बड़े बाबू` इसी ढंग की कहानी है। `बड़े बाबू` गुप्तधन, भाग-२, प्रका० हंस इलाहाबाद सं० प्रथम,१९६२ पृ०सं० ६७

काल में यूरोप में विज्ञान, शिल्प और व्यवसाय के क्षेत्र में जो भारी प्रगति हुई थी, उसका सबसे महत्वपूर्ण परिणाम यह था कि मध्यकाल के जागीदारों की अपेक्षा पूंजीपतियों का महत्व अधिक बढ़ गया था। इनके पास धन, वैभव और शक्ति सब कुछ थे। इनके अतिरिक्त डाक्टर, वकील, इन्जीनियर, व्यापारी, प्रोफेसर, सम्पादक, दूकानदार, आदि के रूप में जो एक शिक्षित मध्य-श्रेणी विकसित हुई थी, वह धन में पूंजी-पतियों की अपेक्षा हीन थी लेकिन बुद्धि और ज्ञान में उसकी अपेक्षा किसी प्रकार कम न थी। शिक्षा और ज्ञान के विस्तार के साथ इस श्रेणी ने यह विचार करना प्रारम्भ किया था कि क्या समाज में पूंजीपतियों का प्रभुत्व और मजदूरों की गरीबी व असहायावस्था उचित और न्यायपूर्ण है? साथ ही मजदूर-श्रेणी के लोग भी शहरों में निवास करने के कारण अब शिक्षा से सर्वथा वंचित नहीं रह गए थे। धीरे धीरे वे अपने अधिकारों व दुर्दशा का अनुभव करने लगे थे कि क्या वर्तमान समाज-संगठन न्याय और औचित्य पर स्थापित है? उन्नीसवीं सदी में ही पूंजीवाद के व्यापक परिणामों को भी जनता अनुभव करने लगी थी। समाज में वर्ग-संघर्ष, मजदूर-आन्दोलन प्राय: सामान्य रूप से आरम्भ हो गए थे। कुछ स्थानों में पूंजीवाद के विरुद्ध खुले तौर पर क्रान्तियां हुईं। इन सब संघर्षों का मुख्य कारण शिक्षा का प्रसार तथा अधिकारों को प्राप्त करने की चेतना और सजगता थी। साधारण जनता के लिए अब शिक्षा और साहित्य दोनों ही सुलभ थे। व्यावसायिक-क्रान्तियों ने साहित्य में चेतना और शक्ति उत्पन्न कर दी थी। साहित्य जनता में जागृति लाने का माध्यम बन गया था। उन्नीसवीं सदी के साहित्यकारों ने अपनी कृतियों के लिए प्रधानतया `गद्य` का उपयोग किया। `गद्य` में भी `उपन्यासों` का आश्रय लेकर उन्होंने अपने विचारों और कला की अभिव्यक्ति शुरू की। यही कारण है कि उन्नीसवीं सदी में उपन्यास साहित्य की बहुत उन्नति हुई। अपने सामाजिक और राजनीतिक विचारों को प्रकट करने के लिए भी इस युग के

लिए भी इस युग के लेखक उपन्यास को साधन रूप में प्रयुक्त करते थे। चार्ल्स डिकेन्स ने अपने उपन्यासों से इंगलिश जनता के पीड़ित लोगों के मार्मिक चित्र खींचे। न्यायलयों में न्याय प्राप्त करने में जनता को किस प्रकार देर लगती है, जेल में कैदियों को कैसे घोर कष्ठ उठाने पड़ते हैं, गरीबखानों में आश्रय-प्राप्त गरीबों के साथ कैसा दुर्व्यवहार होता है, इन सब बातों पर चार्ल्स डिकेन्स के बड़े सुन्दर रूप में प्रकाश डाला है। लोग चार्ल्स के उपन्यासों को उन्नीसवीं सदी के सुधारक और धर्म-ग्रन्थ के समान अनुशीलन करते थे। कार्लाइल ने अपनी कृतियों द्वारा जनता का ध्यान उन बुराइयों की तरफ आकृष्ट किया था जो व्यावसायिक-क्रान्तियों से इंगलैंड में उत्पन्न हो गई थीं। कार्लाइल अनुभव करता था कि व्यावसायिक-क्रान्ति के कारण जो भौतिक उन्नति योरप में हुई है वह जनता के अध्यात्म को पूर्णत: कुचल रही है। रस्किन नए युग के परिवर्तनों को चिन्ता की दृष्टि से देखता था और मनुष्यों का ध्यान पुराने युग के सरल व सुखमय-जीवन की ओर आकृष्ट करता था। मैकोले फ्रेंच राज्य क्रान्ति द्वारा उत्पन्न हुई प्रवृत्तियों का कट्टर विरोधी था। उसका मत था कि स्वतन्त्रता के साथ-साथ मनुष्य के लिए उपयोगिता और प्रगति की भी आवश्यकता है। मिसेज ब्राउनिंग ने अंग्रेजी जनता का ध्यान कारखानों में काम करने वाले बालकों की दुर्दशा की ओर आकृष्ट किया। इंगलैंड की फैक्टरियों में जो सुधार के नियम बने, ब्राउनिंग की कविताएं उनमें बहुत सहायक हुईं। थैकरे और जार्ज इलियट ने अपनी कृतियों में सम्पत्ति के परिग्रह की बुराइयों को प्रदर्शित किया। इंगलैंड के ये विविध साहित्य-सेवी अपनी रचनाओं द्वारा जनता में अपने विचारों का प्रसार करने में बहुत सफल हुए और इसमें सन्देह नहीं कि इनसे जनता को विविध सामाजिक व राजनीतिक समस्याओं पर निष्पक्ष रूप से विचार कर सकने का अवसर मिला। इंगलैंड के साथ ही फ्रेंच साहित्यिकों में बाल्जक,

विक्टर ह्युगो, मोपासा, एमिल ज़ोला आदि प्रसिद्ध हुए । बाल्जक ने बहुत से ऐसे उपन्यास लिखे, जिनमें कुलीन और उच्च श्रेणियों के विकृत जीवन, भोग-विलास और मूर्खता का बड़ा सजीव चित्रण किया गया है । बाल्जक साहित्य `यथार्थवाद` का बड़ा पक्षपाती था । उसके ग्रन्थों में कल्पना व भावुकता की अपेक्षा यथार्थता को अधिक महत्व दिया गया है । इसी युग में रूसी साहित्यकों में तुर्गनेव, गोगोल, टाल्सटाय, गोर्की, चेखव के नाम विश्वविदित हुए । गोगोल ने अपने ग्रन्थों में रूस की कुली श्रेणी और विशेषतया शासक-वर्ग के विकृत जीवन को चित्रित किया । साथ ही सर्व-साधारण रूसी जनता किस प्रकार अर्द्धदास का जीवन व्यतीत करती थी और इन अर्द्धदासों का जीवन कितना दयनीय था, इसका बड़ा मार्मिक विवरण गोगोल ने सफलता के साथ प्रस्तुत किया था । तुर्गनेव बहुत प्रसिद्ध क्रान्तिकारी लेखक हुआ । रूस में जार-शाही के विरुद्ध जो क्रान्तिकारी आन्दोलन चल रहे थे उनका तुर्गनेव ने बड़ा सजीव चित्रण किया । मनुष्य-मनुष्य के प्रति किस प्रकार का वीभत्स प्रहार करता है, युद्ध कितनी भयंकर चीज है, वह मनुष्य को किस प्रकार जंगली पशुओं की अपेक्षा भी नीचा बना देती है, इन बातों की ओर विचारशील जनता का ध्यान आकृष्ट करने के लिए टाल्सटाय ने बहुत सी महत्वपूर्ण रचनाएं रचीं । गोर्की स्वयं उग्र क्रान्तिकारी था । समाजवाद के प्रसार में उसकी रचनाओं का बड़ा हाथ था । चेखव के ग्रन्थों में रूस के बदलते हुए समाज का सुन्दरतम रूप था । विदेशों की विकासवादी साहित्यिक-सामग्री व्यवसाय के साथ भारत में भी आई और विज्ञान और धर्म का विकसित रूप भी प्रस्तुत हुआ । अब एक बड़ा भारी प्रश्न उपस्थित हो गया था कि पूंजीवाद ने मानव-विकास में जब इतनी अधिक प्रगति, उन्नति और विकास किया है तो क्यों समाज, साहित्य और जनता उसके प्रति विक्षुब्ध है तथा पूंजीवाद की जड़ें उखाड़ फेंक देना चाहती है? इस विषय को रैल्फ फाक्स ने इस प्रकार स्पष्ट कर दिया है— "पूंजीवाद अपने आप में इन परिस्थितियों का उपयोग नहीं

कर सकता, इस नयी कला को जन्म नहीं दे सकता । इसने इतिहास में पहली बार, विश्व-कला के लिए एक विश्व-साहित्य के लिए उपयुक्त परिस्थितियों का निर्माण भर किया है ।'(१)

८- योरपीय साहित्य की इस वस्तु-परक विचार-धारा का प्रभाव भारतीय साहित्य पर भी अनिवार्य रूप से पड़ा । प्रेमचन्द से पूर्व के साहित्यकारों ने राजनीतिक आजादी और स्वदेशी के प्रयोग पर बल देना आरम्भ कर दिया था । हिन्दी और उर्दू दोनों में उपन्यास-कला का जो विकास हुआ उसमें सामाजिक चेतना और राजनीतिक अधिकारों को प्राप्त करने का आग्रह हमें आरम्भ से ही मिलता है । ज्यों-ज्यों राष्ट्रीय-आन्दोलन विकसित होता गया त्यों-त्यों यह चेतना उपन्यास-साहित्य में अधिकाधिक, मात्रा में पुष्ट होती गयी । यही चेतना विरासत-रूप में प्रेमचन्द को मिली । राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने का जो आग्रह पहले हल्के ढंग से दिखायी देता था वह अब स्पष्ट और सशक्त होकर उपन्यासों और कहानियों में प्रकट होने लगा था । इसके लिए तत्कालीन राजनीतिक चेतना एवं प्रेरणा का आधार साहित्यकारों को मिल गया । क्योंकि प्रेरणा मानव-मन की ऐसी कृति है, जो मनुष्य के अन्तरमन को किसी न किसी रूप में सदैव प्रोत्साहित करती रहती है । अन्तरमन का यह प्रोत्साहन मनुष्य को ऊँचे-ऊँचे कार्य करने की प्रेरणा प्रदान करता है । भारतेन्दु-युग (राष्ट्रीय चेतना-का युग : १८५७-१००) २- द्विवेदी-युग, (आन्दोलन-युग : १९००-१९२०), ३- प्रेमचन्द-युग (विकास-युग- १९२०-३६) इन तीनों युगों का इतिहास आधुनिक युग के क्रमिक विकास की सीढ़ी है, जिसकी सहायता से लेखक के

---

(१) फ़ाक्स, उपन्यास और लोक जीवन—रैल्फ़, अनु० नरोत्तम नागर, सं० प्रथम, अक्तूबर- १९५७, प्रका० पी० पी० हाउस, दिल्ली, पृ० सं०- ३६,

प्रेरणास्त्रोत पूर्णतः स्पष्ट हो जाते हैं । आधुनिक युग की शृंखला के अन्तर्गत हमारा प्राचीन इतिहास आता है जो क्रमिक-रूप में इस प्रकार विकास-पथ पर अग्रसर होता गया था । प्राचीन इतिहास की अपने युग के अनुरूप कुछ मूलभुत विशेषताएं भी थीं, जिसने अपने युग के लेखकों को प्रेरणा प्रदान की थी और साथ ही आगे आने वाले लेखकों ने भी प्रेरणादायक प्राचीन संस्कृति का अनुसरण किया ।

६- यह सत्य है कि हमारे साहित्य का यह सौभाग्य रहा है कि उसने अपने प्राचीन-काल से साहित्य का एक महान् कोष पाया है और जिसकी निष्पत्ति प्रत्येक क्षेत्र में सदैव होती रही है । इसके साथ ही हमारे मनीषियों ने साहित्य की भाव-धारा के साथ रसों की व्याख्या तथा साहित्य का शास्त्रीय रूप भी सदैव उपस्थित किया । परिणाम-स्वरूप साहित्य के क्षेत्र में नवीन रचनाओं की सृष्टि के साथ ही उनमें निखार भी आता गया । हमारे प्राचीन-साहित्य की कुछ आन्तरिक विशेषताएं भी थीं जिन्होंने सदैव मानव और समाज के प्राणियों की मनोवृत्तियों और भावनाओं को सद्गुणों से प्रोत्साहित किया था । ये विशेषताएं थीं ज्ञान, सत्य, अहिंसा, प्रेम, दया, करुणा आदि-आदि की जो हिन्दी-साहित्य और भारतीय-संस्कृति की अभिव्यंजना का रूप होती थीं । इन्हीं सद्गुणों की अभिव्यंजना-शक्ति से मानव-जगत् में पवित्रता का प्रबल रूप उद्भासित होता गया था । मनुष्यों में सद्गुणों और सद्वृत्तियों के उदय होने से अथवा प्रकाशवान् होने से सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् भाव-साहित्य का आवश्यक अंग बन गया । इस प्रकार प्राचीन-कालका साहित्य समाज में हमेशा अपने आदर्शात्मक रूप में प्रकट होता था । यही वे मान्यताएं थीं जिन्होंने आगामी साहित्यकार का पथ-प्रदर्शन किया था । हमारे इन साहित्यकारों ने, साहित्य के चाहे किसी भी कोने को स्पर्श किया, किन्तु मानव-कल्याण, लोक-संग्रह और

आनंद की सिद्धि के लिये सदैव प्रयत्नशील रहे । यह अवश्य है कि कुछ काल के पश्चात् साहित्य के प्रेरणा-स्त्रोत में शिथिलता आ गई थी और वह श्रृंगारिक गलियों में विचरण करने लगा था, जिसका उद्देश्य केवल नायिकाओं का नख-शिख वर्णन रह गया था । किन्तु साहित्य ने अपनी प्रगति का पथ कभी छोड़ा नहीं था । यही कारण है कि उसने विभिन्न प्रलोभनों और भ्रमों से प्रभावित होने के पश्चात् भी आधुनिक-युग की सजग पृष्ठभूमि में प्रवेश किया । इसका आरम्भ भारतेन्दु-युग से होता है जो देश के लिए नवीन राष्ट्रीय चेतना का युग था । उस समय समाज की स्थिति में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आ गया था ।

१०- जैसा कि हम लोग जानते हैं, ब्रिटेन की औद्योगिक-क्रान्ति के कारण ब्रिटेन का भारत से व्यापारिक और राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित हुआ, इसके साथ ही पाश्चात्य विचारधाराओं और जीवन-दर्शन का प्रवेश भी भारत में हुआ । जो व्यापारी आरम्भ में केवल व्यापार-वाणिज्य के लिए इस देश में आए थे, वे यहां के शासन कार्य में भी रुचि लेने लगे और धीरे-धीरे अपनी राजनीतिक सत्ता को सुदृढ़ बनाने लगे । लार्ड क्लाइव मात्र एक सौदागर रूप में हिन्दुस्तान में आया था, शासक बन गया था । इन शासकों ने हमारे देश के शासकों के आपसी वैमनस्य, गृह-कलह आदि से तो लाभ उठाया ही, उनको हमारे सामाजिक जीवन की पराभव-मूलक स्थिति से भी बड़ी सहायता मिली । उन्होंने अपना स्वार्थ साधने के लिए देश के विघटन मूलक तत्वों को उभारा । गृह-कलह को उत्तेजित किया, सामाजिक और आर्थिक विघटन की प्रक्रिया को मजबूत किया और ऐसा हर एक कदम उठाया, जिससे राष्ट्र का मनोबल कमजोर हो और अधिकाधिक मात्रा में जनता परमुखापेक्षी बनती जाए । फलत: धीरे-धीरे भारतीय जनता विदेशी शासन के मोहपाश में मंत्र-मुग्ध होकर बंधती सी गई । वह विदेशी सभ्यता और संस्कृति को वरदान के रूप में

स्वीकार करने लगी । विदेशी सत्ता का विरोध करने के बजाय वह उससे आतंकित रहने लगी अथवा उसे वरदान के रूप में स्वीकार कर लिया । इसका कुपरिणाम तत्काल देखने को मिला । हमारे ग्राम-जीवन की प्राचीन व्यवस्था धीरे-धीरे नष्ट होने लगी, परिवार, कुटुम्ब और समाज-सम्बन्धी पुरानी नैतिक मान्यतायें बदलने लगीं और संयुक्त परिवार तथा संयुक्त-जिम्मेदारी की भावना कमजोर होने लगी । ग्राम-जीवन में घरेलू उद्योग-धन्धों के कारण जो सम्पन्नता रहती थी वह नष्ट होने लगी । विपन्नता का बोल बाला हो गया । ग्राम-जीवन की आत्मनिर्भरता और आत्मपूरकता समाप्त होने लगी और बरबस नगरों की ओर ग्रामीण समाज का ध्यान आकृष्ट होने लगा । इस सम्पूर्ण प्रक्रिया का अवश्यम्भावी प्रभाव भारतीय सामाजिक जीवन पर पड़ा और उसके फल भी स्पष्ट रूप में सामाजिक जीवन के प्रत्येक स्तर में दृष्टिगोचर होने लगे । हमारे रिश्ते जो भाई-भाई, माता-पुत्र पिता-पुत्र, पति-पत्नी के अटूट रूप में प्राचीन काल से बने चले आ रहे थे जिनको जोड़ने वाला पारस्परिक स्नेह, विश्वास, त्याग, सेवा, प्रेम और दया थी उन रिश्तों को आर्थिक-संकट का ऐसा विषाक्त कवच पहनाया कि वह सदा के लिए विशृंखलित हो गया और समाज की कोई भी प्रेरणा उस कड़ी को जोड़ने में सफल नहीं हो पाई । भारतीय संस्कृति के पाले पोसे भोले-भाले प्राणियों के हृदय पर विदेशी सत्ता का ऐसा विषैला प्रभाव पड़ा कि उनका हृदय दूषित मनोवेगों से भर गया । अब भारतीय परिवार का सदस्य अपने पारिवारिक सदस्यों से सहृदयपूर्ण व्यवहार न कर सकता था । सभ्य देशों के विस्तृत औद्योगीकरण ने छोटे कारीगरों का काम खत्म करके मजदूरों की बड़ी सेना को जन्म दे दिया था । मज़दूरों के जीवन में काम और सुख के व्यापारों में घोर अन्तर पड़ गया था । पुराना कारीगर काम करते हुए सन्तोष का अनुभव करता था । आज का मज़दूर वस्तुओं के उत्पादन का एक यांत्रिक उपक्रम बन गया था । उसे कभी कलात्मक निर्माण का सुख नहीं मिल पाता था ।

परिणाम यह होता था कि शीघ्र ही काम से थक कर उसको ताड़ीघर या सिनेमा की ओर दौड़ना पड़ता था। काम से ऊबा रहने के कारण मज़दूर यदि अपने परिवार के संग सहृदयपूर्ण व्यवहार नहीं कर सके तो आश्चर्य भी क्या ? सारे दिन की चकनाचूर कर देनेवाली मेहनत और थकन शरीर के साथ ही मन और हृदय तक को शिथिल कर देती थी। औद्योगिक-क्रान्ति के कारण समाज-व्यवस्था में असमानता प्रकट होने लगी थी और यह औद्योगिक-क्रान्ति की सब से बड़ी विशेषता थी कि मनुष्य-मनुष्य के बीच गहरी खाई अथवा असमानता स्थापित हो।

११- भारतीय समाज एक ओर छापेखाने के आविष्कार से साहित्य के अत्यधिक निकट आता जा रहा था और दूसरी दिशा में सामंतशाही का अन्त और पूंजीवादी-वर्ग का उदय हो रहा था। सामंतशाही युग में समाज के व्यक्तियों की स्थिति सेवक और उपासक की थी। जमींदार, राजे-महाराजे शोषक थे और किसान एवं साधारण जनता शोषित थी। ये दो वर्ग समानान्तर रेखाओं की भांति अलग-अलग रहते थे। दोनों की अभिरुचि, दोनों के स्वार्थ एवं कार्य भिन्न-भिन्न थे। उस काल के साहित्य का प्रयोजन भी केवल उच्च-वर्ग का मनोरंजन करना था। जन साधारण के जीवन का उस साहित्य में कोई स्थान न था। उस काल के साहित्य में जो आदर्श चरित्र महाकाव्यों के माध्यम से जनता के सामने रक्खे भी गए थे, वे सब राज्य-वर्ग के प्रतीक थे। किन्तु यह स्थिति भी स्थायी न रही और काल के परिवर्तनशील चक्र में नए युग का प्रादुर्भाव किया। उस नए युग के साथ नए वर्ग का भी आगमन हुआ। इस वर्ग को जन्म देने वाली विदेशी, पूंजीवादी, साम्राज्यवादी सत्ता थी, जिसका सूर्य पश्चिम से उदय हुआ था।

१२- मध्य वर्ग पाश्चात्य प्रभाव के फलस्वरूप जन्मा था । यह वर्ग पढ़े-लिखे लोगों का बना था । अंग्रेजी राज्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए विभिन्न कार्यालयों में पढ़े लिखे व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ी । परिणामत: शिक्षा के दिनों-दिन प्रसार से साहित्य का प्रयोजन और लक्ष्य दोनों में एक गुणात्मक परिवर्तन हुआ । सामाजिक जीवनको रूप और गति देने में ज्यों-ज्यों जन साधारण का योग बढ़ता गया, उसी प्रकार साहित्य में भी जन जीवन का चित्रण आवश्यक हो गया । उपन्यास और कहानी इस विकास की अभिव्यक्ति का नया माध्यम बन गये थे । महाकाव्यों की परम्परा के विपरीत उपन्यासों में मध्य-वर्ग के साधारण जनों का सजीव और यथार्थ चित्रण आरम्भ हुआ । आगे चलकर जनतंत्र के प्रभाव और विस्तार से चिर-उपेक्षित साधारण वर्ग का चित्रण ही उपन्यासों और कहानियों में स्थान पाने लगा । इस प्रकार अपने जन्मकाल में ही उपन्यास और कहानी ने सामाजिक जीवन और सांस्कृतिक परम्परा के बहुरंगी ताने-बाने को अपना विषय बनाया । उपन्यास और कहानी का सीधा सम्बन्ध जीवन के सुख-दुख एवं उनके जीवन में घटित वास्तविक घटनाओं से होने के कारण वह केवल कल्पनामूलक न रह कर स्वभावत: यथार्थ के निकट आ गया था । अत: उपन्यास और कहानी ● यथार्थ जीवन का घनिष्ट सम्बन्ध हो गया । प्रेमचन्द ने भी कहा है—"उपन्यासों का मसाला पुस्तकों से न लेकर जीवन से ही लेना चाहिए ।"(१) इसके अतिरिक्त जब मानव अपने समस्त परिवेश, मनोवैज्ञानिक दशाओं, परम्परा एवं परिस्थितियों की

---

(१) प््रेमचन्द : साहित्य के उद्देश्य;
पृ० सं०- ६४,

पृष्ठभूमि में चित्रित हुआ तो वातावरण ने पात्र में जीवन फूंक दिया। इस प्रकार उपन्यास और कहानी अपने समय के जीवित इतिहास बनने लगे। उनमें इतिहास की भांति क्रमबद्ध घटनाएं तो नहीं रहती थीं तथापि समाज में संघर्षरत मानव जीवन के क्रिया कलापों का पूरा विवरण रहने लगा। उपन्यास अथवा कहानी में लेखक समाज और व्यक्ति इन दोनों में से किसी एक को छोड़ कर नहीं चलता। चार्ल्स डिकेन्स, विक्टर ह्यूगो, एमिल ज़ोला, टाल्सटाय, गोर्की और प्रेमचन्द के कथा-साहित्य अपने युग का इतिहास हैं। इन सभी लेखकों के कथा-साहित्य में तत्कालीन जन-जीवन के सजीव चित्र आए हैं। यही सामाजिक-परिवेश था, जिससे प्रेरणा प्राप्त कर साहित्य का सृजन हो रहा था।

१३- प्रेमचन्द की प्रेरणा का सम्पूर्ण रूप मिल्टन के समान इन रूपों में है। मिल्टन कविता में तीन चीज़ों की मांग करते थे: "वह सीधी-सादी हो, संवेदनशील हो और गहरी चाह में पगी हो।" प्रेमचन्द मिल्टन के समान इन गुणों को अपने में जगा चुके थे, वे जानते थे कि संवेदनशीलता से विहीन कला-वह कला जिसका वस्तु जगत के बोध से, इन्द्रियगोचर वस्तुओं से, कोई लगाव नहीं होता- कोई कला नहीं है। "सृजनात्मक प्रक्रिया का तत्व—सृजनकर्त्ता और बाह्य यथार्थ के बीच संघर्ष में, इस यथार्थ को काबू करने तथा उसकी पुन: रचना करने की आवश्यकता में निहित है।" यही प्रेमचन्द की कला और प्रेरणा का स्वरूप था जिसको सदैव प्रेमचन्द उपन्यास और कहानी के माध्यम से प्रस्तुत करते रहे। प्रेमचन्द की प्रेरणा का अन्य रूप सत्य और वास्तविकता में था। उन्होंने अपने युग की वर्त्तमान स्थितियों का सत्यता के साथ निरूपण किया क्योंकि वे अच्छी तरह जानते थे कि लेखक का महान कर्तव्य अपने युग-मन को सत्यता के साथ देखना तथा परिचय प्राप्त करना है। रैल्फ फ़ाक्स ने इसका स्पष्टीकरण इन शब्दों में किया है— "आज साहित्य का क्रान्तिकारी कार्य यह है कि वह अपनी महान् परम्परा

को पुनर्स्थापित करे, मनोवाद और संकीर्ण विशेषज्ञता हासिल करने की प्रवृत्ति की बेड़ियों को तोड़ फेंके, रचनात्मक कलाकार को उसके एक-मात्र महत्वपूर्ण कार्य से-सत्य का, वास्तविकता का, ज्ञान अर्जित करने के कार्य से साक्षात्कार कराए।"(१)

१४- प्रेमचन्द ने अपनी कला का साधन उस प्रवृत्ति और प्रेरणा को माना जिसके द्वारा मानव वास्तविकता से जूझता है और उसे आत्म-सात् करता है। ऐसे मानव के लिए जीवन एक युद्ध-क्षेत्र के समान है, जहाँ पर सदा आत्मा के लिए संघर्ष चलता रहता है। साहित्य हमारे जीवन को स्वाभाविक और स्वाधीन बनाता है। सृजन की समूची प्रक्रिया, कलाकार की सम्पूर्ण वेदना, वास्तविकता के साथ इसी हिंस्त्र द्वन्द्व में और दुनिया के सच्चे चित्रों के गढ़ने के इस प्रयास में, निहित है। प्रेमचन्द ने अपने युग के प्रतिक्रियावादी आलोचकों की भी चिन्ता नहीं की, न वह चैन से बैठे। प्रेमचन्द ने सत्य और वास्तविकता की ओट में कभी भी घृणा का प्रचार करने का प्रयत्न नहीं किया। प्रेमचन्द का प्रत्येक उपन्यास सत्य और वास्तविकता का प्रमाण है, उन्होंने न तो आदर्श की अलौकिक कल्पना की है, न यथार्थ का घृणात्मक रूप ही दिखाया है। प्रेमचन्द तो स्वयं इस कथन के प्रणेता और उद्घोषक थे—"साहित्य कलाकार के आध्यात्मिक सामंजस्य का व्यक्त रूप है और सामंजस्य सौन्दर्य की सृष्टि करता है, नाश नहीं। वह हमें वफ़ादारी, सचाई, सहानुभूति, न्यायप्रियता और ममता के भावों को पुष्ट करता है।"(२) यही के गुण थे जिन्होंने प्रेमचन्द को कभी

---

(१) रैल्फ फाक्स, "उपन्यास और लोक जीवन" दिल्ली, पहला हिन्दी संस्करण, अक्तूबर १६५७, पृष्ठ संख्या—२१,

(२) प्रेमचन्द : साहित्य के उद्देश्य; हंस प्रकाशन जुलाई १६५४, पृष्ठ-संख्या०-८

झुकने नहीं दिया । उन्हीं गुणों ने उनके जीवन में दृढ़ता प्रदान की । प्रेमचन्द अपने जीवन में सदा कठिनाइयों, अपने व्यक्तिगत दु:खों, शरीर के कष्टों तथा एक लम्बी बीमारी के शिकार रहे, किन्तु उनके जीवन ने अभाव को स्वीकार नहीं किया । वह सत्यमेव जीवन का अर्थ जानते थे । उनका कहना था—"अगर हमारा अन्तर प्रेम की ज्योति से प्रकाशित हो और सेवा का आदर्श हमारे सामने हो, तो कोई ऐसी कठिनाई नहीं, जिस पर हम विजय न प्राप्त कर सकें ।"(१) प्रेमचन्द जानते थे कि साहित्य जीवन की सच्चाइयों का दर्पण है, अपने विचारों को जनता तक पहुंचाने का उसमें गुण है । उनका कहना था—"साहित्य-रचना के लिए आत्म-शुद्धि और तेज़ कलम ही काफी नहीं, यही विचार हमारी साहित्यिक अवनति का कारण है । हमें अपने साहित्य का मान दंड ऊँचा करना होगा । जिससे वह समाज की अधिक मूल्यवान् सेवा कर सके ।"(२)

१५- प्रेमचन्द साहित्य के द्वारा ऐसी समझ पैदा करना चाहते थे जो सभी रूपों और मतों को आत्मसात् कर सके । प्रेमचन्द ने साहित्यकार के लिए `मानसिक-व्यायाम` को आवश्यक गुण समझा था । प्रेमचन्द का विचार था "साहित्य-विध्वंस नहीं करता, निर्माण करता है । वह मानव-चरित्र की कालिमाएं नहीं दिखाता, उसकी उज्ज्वलताएं दिखाता है । x x x x बहुत आत्मसंयम की आवश्यकता है । x x x x उसके लिए केवल डिग्रियां और ऊँची शिक्षा काफी नहीं । चित्त की साधना, संयम, सौन्दर्य तत्व का ज्ञान, इसकी कहीं ज्यादा जरूरत है x x x x x अमर साहित्य के निर्माता विलासी प्रवृत्ति के मनुष्य नहीं थे । बाल्मीकि और व्यास दोनों तपस्वी थे । सूर और तुलसी भी विलासिता के उपासक नहीं थे । कबीर भी तपस्वी थे । x x x x साहित्य का उत्थान राष्ट्र का उत्थान है "(३) प्रेमचन्द ने आत्मसंयम, मानसिक-श्रम, सेवा, त्याग, प्रेम,

---

(१) प्रेमचन्द साहित्य के उद्देश्य—पृष्ठ संख्या- १७

(२) प्रेमचन्द साहित्य के उद्देश्य—पृष्ठ संख्या- १७

(३) `साहित्य का उद्देश्य`, पृ० सं०-२६,

प्रेमचन्द का विचार था कि सत्य तक केवल क्रियाशीलता द्वारा पहुंचा जा सकता है, कारण सत्य मानव की उस गहरी खोज बीन की अभिव्यक्ति है, जो कि वह किसी वस्तु के बारे में करता है । वास्तविकता को समझने के लिए, जानने के लिए, ज्ञान के एक ऐसे सिद्धान्त की आवश्यकता है जो सत्य के अनरुप हो । इस प्रकार प्रेमचन्द ने कर्म के साथ वास्तविकता तक पहुंचने के लिए सत्य के क्रियात्मक रूप पर जोर दिया था । प्रेमचन्द के ये उपर्युक्त विचार, जिनको उन्होंने `साहित्य का-आधार` मान कर बार-बार ज़ोरदार शब्दों में कहा था, प्रेमचन्द की प्रेरणा के फल थे । ये विचार कोई हवाई या ऐसी गतिहीन वस्तु नहीं थे, जिन्हें चिन्तन की मात्र तर्कसंगत वायवी प्रक्रिया द्वारा या अर्जित चेतना द्वारा प्राप्त किया जा सके । निश्चय ही कलाकार का वास्ता केवल सत्य से होना चाहिए । लेनिन ने लिखा था—"सत्य किसी वास्तविक घटना के सभी पहलुओं की समग्रता से तथा उनके (पारस्परिक) सम्बन्ध से बनता है ।"(१)

१६- प्रेमचन्द ने प्रेरणा के इन रूपों को ज्ञान के साथ अपनाया और उपन्यास-कहानी में जो १६ वीं० सदी में साहित्य का मुख्य विषय था—अपनी इस प्रेरणा को भर दिया । "उपन्यास का विषय है व्यक्ति । वह समाज के विरुद्ध, व्यक्ति के संघर्ष का महाकाव्य है ।(२)यह केवल उसी समाज में विकसित हो सकता है, जिसमें व्यक्ति और समाज के बीच सन्तुलन नष्ट हो चुका हो और जिसमें मानव का अपने सहजीवी साथियों अथवा प्रकृति से युद्ध ठना हो । पूंजीवादी समाज ऐसा ही समाज है, जिसका दो युगों का एक लम्बा इतिहास है । पूंजीवाद अपने विकास-क्रम में तो बहुत आगे बढ़ा लेकिन वह अपने आप में इन परिस्थितियों का उपयोग नहीं कर कर सकता था, जो इस नयी कला को जन्म दे सकती । पूंजीवाद ने केवल

---

(१) रैल्फ़ फ़ाक्स, उपन्यास और लोक-जीवन—पृ० सं०- २५,
(२) वही, पृ० सं- २८,

इतिहास में पहली बार, एक विश्वकला के लिए, एक विश्व-साहित्य के लिए, विकासवादी परिस्थितियों का निर्माण भर किया था। पूंजीवाद ने समूचे विश्व को अपने में ढाल लिया, टैकनीक और उत्पादन का इतना विकास किया कि 'पिछड़ी' और 'उन्नत' जातियों के भेद का कोई कारण नहीं रह गया।

१७- पूंजीवाद के विकास-क्रम का अनुशीलन कम्युनिस्ट मैनीफ़ेस्टो में इस प्रकार किया गया है : — "उत्पादन प्रणाली में निरंतर क्रान्तिकारी परिवर्तन, सामाजिक परिस्थितियों में अनवरत उथल-पुथल, स्थाई अनिश्चितता और हलचल—पूंजीवाद युग की यही वे विशिष्टताएं हैं, जो कि पहले के सभी युगों से उसे भिन्न बना देती हैं। प्राचीन तथा पूज्य कहलाने वाले अंधविश्वासों तथा मतों की श्रृंखला को लिए हुए तमाम स्थिर और जड़ सम्बन्ध खत्म कर दिए गए हैं। ^ ^ ^ ^ ^ मानव आखिरकार इस बात के लिए बाध्य हो गया है कि वह अपने जीवन की असली परिस्थितियों तथा दूसरों के साथ अपने सम्बन्धों पर गम्भीरता के साथ विचार करे।

१८- अपने माल के लिए निरंतर बढ़ते हुए बाजार की जरूरत के कारण पूंजीपति-वर्ग समूचे भूमंडल की धूल छानता है। वह हर जगह घुसने की, हर जगह पैर जमाने की और हर जगह सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश करता है। विश्व-मंडी के शोषण द्वारा पूंजीपति वर्ग ने उत्पादन और खपत को हर देश में एक सार्वभौम रूप दे दिया है। ^ ^ ^ ^ ^ तमाम पुराने स्थापित राष्ट्रीय उद्योग तबाह हो गए या आए दिन तबाह हो रहे हैं। उनकी जगह नए उद्योग ले रहे हैं, जिनकी स्थापना करना सभी सभ्य राष्ट्रों के लिए जीवन-मरण का सवाल बन गया है। ^ ^ ^ ^ ^ पुरानी आवश्यकताओं की जगह, जिन्हें स्वदेश की बनी हुई चीज़ों से ही पूरा किया जा सकता था, अब ऐसी नयी आवश्यकताओं ने ले ली है,

जिनको पूरा करने के लिए दूर-दूर के देशों और भूभागों से माल मंगाना पड़ता है । पुरानी स्थानीय तथा राष्ट्रीय पृथकता और आत्म-निर्भरता की जगह अब आदान-प्रदान के चौतरफा सम्बन्धों ने, राष्ट्रों के बीच सार्वभौमिक अन्तर-निर्भरता ने ले ली है और भौतिक-उत्पादन की तरह बौद्धिक उत्पादन में भी यही परिवर्तन हो गए हैं । राष्ट्रीय एकांगीपन तथा संकीर्ण दृष्टिकोण अब अधिकाधिक असम्भव होते जा रहे हैं और अनगिनत राष्ट्रीय तथा स्थानीय साहित्यों के बीच से एक विश्व-साहित्य का उदय हो रहा है ।`[१] इस मेनीफेस्टो ने पूंजीवाद के विकास का चरम लक्ष्य तो प्रस्तुत कर दिया, परन्तु पूंजीवाद अपने में अपूर्ण था, क्योंकि मानव के महत्व का कोई आधारभूत तत्व अथवा सार इसमें न था । पूंजीवाद प्रत्येक विषय को धन की तुला पर तौलता था । पूंजीवाद की इस अपूर्णता को बाद में प्रेमचन्द ने भी अनुभव किया और उसकी कटु आलोचना की—`धन-लोभ ने मानवीय भावों को पूर्ण रूप से अपने अधीन कर लिया है । कुलीनता और शराफत, गुण और कमाल की कसौटी पैसा—और केवल पैसा है ।`[२] अथवा, `विश्व-साहित्य`जिसका जन्मदाता पूंजीवाद था, `पंगु-शिशु`के रूप में आया था । पूंजीवादी उत्पादन की जिन परिस्थितियों ने इस साहित्य को जन्म दिया था, वे ही इसके सहज-विकास में बाधक सिद्ध हुईं । जातीय और राष्ट्रीय विद्वेष, वर्ग-शत्रुता, सबल राष्ट्रों द्वारा निर्बल राष्ट्रों के राष्ट्रीय विकास का बलपूर्वक रोका जाना, नगरों और देहातों के बीच विरोध आदि आदि, पूंजीवादी समाज के अन्तर्विरोधों से उत्पन्न ये सब चीज़ें विश्वसाहित्य के विकास को अवरुद्ध करती रहीं । प्रेमचन्द इन अन्तर्विरोधों की जड़ोंतक पहुंच चुके थे । उनका लेख जो उन्होंने `महाजनी सभ्यता`पर लिखा था । पूंजीवाद का नग्न चित्रण था, जिसके अन्दर से ही ठोस, वास्तविकता को दृष्टि में रख कर ऐसे साहित्य का सृजन करना था जो फिर से महाकाव्य का रूप ग्रहण कर सकें ।

---

(१) मार्क्स और एंगेल्स, कम्युनिस्ट घोषणापत्र १६४१, पृ०सं०-३६,

(२) प्रेमचन्द, महाजनी सभ्यता— ?

१९- इसका यह अर्थ नहीं कि प्रेमचन्द को केवल अपनी अर्जित प्रेरणाओं के आधार पर उपन्यास अथवा कहानी का ढांचा खड़ा करना पड़ा था । उनके पास संचित अनुभवों की एक पूंजी मौजूद थी, ऐसे अनुभवों की पूंजी जिससे हम आज भी लाभ उठा सकते हैं । यह पूंजी थी अपनी प्राचीन भारतीय संस्कृति का महान् कोष जिसका आरम्भ वेदों से माना जाता है, और जिससे समय-समय पर परिस्थितियों के अनुसार साहित्यकारों ने प्रेरणा ग्रहण की थी ।

२०- भारतीय संस्कृति तो प्रेमचन्द को विरासत के रूप में मिली ही थी, किन्तु उन्होंने पूंजीवाद की देन का भी पूरा लाभ उठाया और 'विश्व-साहित्य' के कोष से अनुभव प्राप्त किया । अठारहवीं शताब्दी उपन्यास का स्वर्ण-युग था । इस युग के उपन्यासों में जीवन के बारे में साहस के साथ उचित बात कही गयी थी । यही कारण था कि उस युग के लेखकों की रचनाओं में व्यंग्य, हास्य का पुट था । विश्व के महान उपन्यास 'डौन क्विगजौट', 'रौबिन्सन क्रूसो', 'युद्ध और शान्ति', 'दि वे आफ आल फ्लेश'[१] आदि-आदि इसीलिए महान हैं कि उनमें चिन्तन का यह गुण निहित है, कि वे जीवन की अत्यन्त भावपूर्ण या प्रेरणापूर्ण टीका हैं । इस युग के महान प्रतिभाशाली बालजाक ने सचेष्ट भाव से, अपने समाज का 'प्रकृत-इतिहास लिखने का बीड़ा उठाया । उसकी रचना 'कामेडी ह्यूमेन' मानव जीवन के अध्ययन का विश्व-कोष था । 'कामेडी ह्यूमेन' में हमें फ्रांसीसी समाज का एक अत्यन्त अद्भुत यथार्थवादी इतिहास, जिसमें सिलसिलेवार तरीके से १८१६ से १८४८ तक लगभग, उस समाज पर बुर्जुआ वर्ग के उत्तरोत्तर बढ़ते हुए दखल का वर्णन है, जिसने १८१५

---

(१) अंग्रेज लेखक (सेमुअल बटलर, १८३५-१९०२) कृत उपन्यास

के बाद अपने को पुनर्संगठित कर लिया था । बालज़ाक राजनीतिक दृष्टि से इस बुर्जुआ वर्ग के उत्तराधिकारी थे, क्योंकि उनके समय में ही कम्युनिस्ट मैनीफेस्टो १८४१ में आया । उनकी सहानुभूति उस वर्ग के साथ है जिसके भाग्य में विनाश के सिवा कुछ नहीं बदा है । इसी युग में पूँजीवाद का खोखलापन खुलने लगा था । पूँजीवाद स्वयं फुंगलों पर नाच रहा था । इसी कारण १८४८ के काल में अनेक भ्रमों का अन्त हो गया । उस कटु अनुभव के बाद भला कौन ऐसा था जो कि कभी यह विश्वास करता कि सुन्दर शब्दों से पेट भरा जा सकता है? १८६३ के जनतांत्रिक तथा जैकोबिन आदर्श उन्नीसवीं शताब्दी के उदारपंथियों के मुंह में असह्य और भयानक शब्दजाल बन कर रह जाते थे । रैल्फ़ फ़ाक्स ने लिखा है—"सबको एक ही तराज़ू से तौलने वाले पूँजीवाद का असली चरित्र, मानवीय मूल्यों से उसका इन्कार, आंकड़ों का उसका दर्शन—जो हर मानवीय तथा दैवी वस्तु का मूल्य रूपए पैसे में आंकता है—प्रकट होता जा रहा था ।"(१)

२१- विदेशी साहित्य परम्परा के साथ ही भारत में भी हिन्दी साहित्य परम्परा के साथ ही भारत में भी हिन्दी साहित्य पर राष्ट्रीय चेतना का विशेष प्रभाव पड़ा था । भारतेन्दु-युग, राष्ट्रीय जागरण और चेतना का युग था । देश के कोने-कोने से हिन्दी लेखक तैयार हो रहे थे, जो बराबर साहित्य—सेवा में सम्पूर्ण-रूप से संलग्न हो गए थे । बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र आदि उस युग के प्रगतिशील लेखक थे, जिनकी रचनाएं समाज और व्यक्ति दोनों को लेकर चली थीं । भारतेन्दु-युग के पश्चात् उनके युग के कार्यभार को आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सम्भाला, उनके परिश्रम का ही परिणाम था कि बाद में उन्हीं के नाम से

---

(१) रैल्फ फाक्स, उपन्यास और लोक जीवन- अनुवादक- नरोत्तम नागर, प्रथम संस्करण, १६५७ पी० पी० हाउस, दिल्ली, पृ० सं०- ७१,

युग का नामकरण हुआ । यह आन्दोलन का युग था, देश की राष्ट्रीय चेतना ने गर्म विचारों का मार्ग पकड़ लिया था, जो सन् १६००-१६०० तक आन्दोलनों की छाया में पोषित होता रहा । इस युग के लेखकों में पं० माधव प्रसाद मिश्र, बालमुकुंद गुप्त, बाबू श्याम सुन्दर दास, चंद्रधर शर्मा गुलेरी आदि सामयिक परिस्थितियों के अनुकूल साहित्य-सृजन कर रहे थे । तृतीय युग को हम विकास का युग कह सकते हैं । इस युग में प्रेमचन्द का क्रमिक विकास होकर अपने चरम उत्कर्ष पर पहुंचा । इस युग में (१६२०-३६) लेखकों और ग्रन्थकारों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ रही थी । इन बीस, इक्कीस वर्षों के बीच हिन्दी-साहित्य का मैदान काम करने वालों से पूरा-पूरा भर गया था, जिससे उसके कई अंगो की बहुत अच्छी पूर्ति हुई थी । पर साहित्य के नाम पर कई स्थानों में लेखकों ने अर्थ का अनर्थ भी कर दिया था और ऐसे लेखक योरप की सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक परिस्थितियों के अनुसार समय-समय पर उठे हुए नाना वादों और प्रवादों को लेकर विचित्र साहित्य की रचना करने लगे थे । इनके कारण हमारा सच्चा साहित्य रुका तो नहीं था, पर नीचे दर्जे के साहित्य की ओट में अवश्य आ गया था । ऐसे युग में ही प्रेमचन्द अपने युग से पूर्णत: प्रभावित हो कर साहित्य-सृजन के क्षेत्र में आए । जिस समय प्रेमचन्द ने लेखनी उठाई, प्रथम महायुद्ध के बादल मंडरा रहे थे और जब विधाता ने ३० जुलाई १६३६ में उनके हाथ से कलम छीन ली, उस समय दूसरे महायुद्ध के आगमन का आभास होने लगा था । इस क्रान्ति के युग में, प्रेमचन्द की रचनाएं भारतीय राष्ट्रीय चेतना से उद्भूत थीं और लेखक का प्रेरणा स्त्रोत भी उसके युग का मानव और उसकी विषम परिस्थिति का चित्रण-मात्र था ।

२२- जलियाँनवाला बाग और असहयोग आन्दोलन छिड़ने पर प्रेमचन्द ने २० साल की नौकरी छोड़ दी । इससे कुछ ही साल पहले हिन्दी के एक दूसरे महान लेखक बाल कृष्ण भट्ट ने कालेज की प्रोफेसरी से इस्तीफा दे दिया था । लोकमान्य तिलक के कारावास के विरोध में प्रयाग में सभा हुई थी । बालकृष्ण भट्ट उसके सभापति थे । शिक्षा-विभाग के डायरेक्टर ने उन्हें चेतावनी देने के लिए बुलाया । भट्ट जी ने नौकरी को इस्तीफा दे दिया । यह घटना १६०७ की है । प्रेमचन्द ने भी हिन्दी-लेखकों की इस स्वाधीनता-प्रेमी परम्परा का अनुसरण किया । प्रेमचन्द एक जागरूक कलाकार थे । वे कल्पना की अपेक्षा बाह्य-दृष्टि, मृत्यु की अपेक्षा जीवन, निराशा की अपेक्षा आशा तथा कुरूपता की अपेक्षा सौन्दर्य के सच्चे उपासक थे । प्रेमचन्द ने यथार्थ का आँचल कभी नहीं छोड़ा । यथार्थ के सुदृढ़ धरातल पर ही उन्होंने अपने आदर्श लोक का निर्माण किया था । जीवन में जो कुछ स्वस्थ, सुन्दर, सत्य एवं कल्याणकारी है वहीं उनको ग्राह्य था । अन्धकार को कभी भी प्रकाश पर छाने नहीं दिया । पशुता और दानवता के सामने मनुष्यता का सिर सदैव ऊँचा रक्खा । धन, अधिकार-मद, शोषण तथा प्रचलित धार्मिक अव्यवस्था के विरोध में प्रेमचन्द ने अपना जीवन-अर्पण कर दिया था । वे पीड़ित, पददलित व उपेक्षित जनता के लेखक थे । प्रेमचन्द अपनी अनुभूति के प्रताप से भारत की महान् संस्कृति और सांस्कृतिक-परम्परा के एक अंग बन गए थे । वह सदैव अन्याय पर न्याय की विजय चाहते थे और सत्य-अहिंसा-प्रेम से अनुप्राणित नर-नारियों की रचना करना चाहते थे । ऐसे प्राणी जिनके हृदय स्वार्थ से कलुषित न हों । इसी कारण प्रेमचन्द के प्रेरणा-स्त्रोत भी समाज के प्राणी थे, जिनका बहुत कुछ स्पस्टीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—
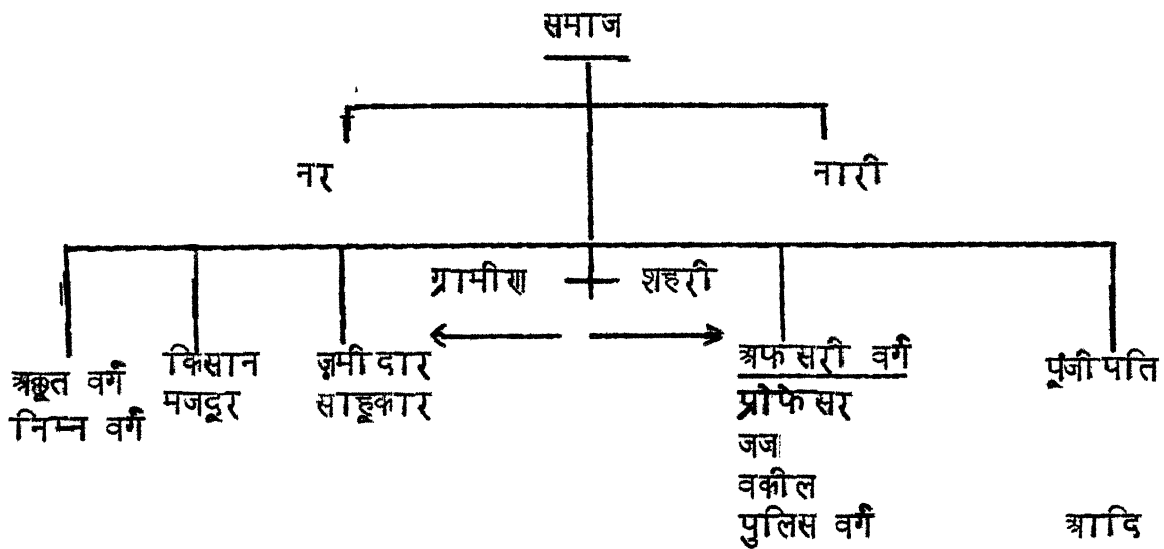
समाज के इन विभिन्न-वर्गों के प्राणियों का चित्रण प्रेमचन्द ने दो रूपों में किया था ।

१- शोषक
२- शोषित

प्रेमचन्द की सहानुभूति सदा अपने दीन, निम्न और गरीब भाइयों के साथ थी, उच्च वर्ग को तो देखते ही उनका नशा काफूर हो जाता था । उन्होंने अपने विचारों का संकेत भी इस प्रकार दिया है—"जिन्हें धन-वैभव प्यारा है, साहित्य-मन्दिर में उनके लिए स्थान नहीं है । यहां तो उन उपासकों की आवश्यकता है, जिन्होंने सेवा को ही अपने जीवन की सार्थकता मान ली हो । जिनके दिल में दर्द की तड़प और मुहोब्बत का जोश है, अगर हमारा अन्तर प्रेम की ज्योति से प्रकाशित हो और सेवा का आदर्श हमारे सामने हो तो ऐसी कोई कठिनाई नहीं जिस पर हम विजय प्राप्त न कर सकें ।"(१) प्रेमचन्द ने उन सभी मान्यताओं को चुनौती दे दी थी जो बेड़ी

---

(१) प्रेमचन्द साहित्य के उद्देश्य, पृ० सं०- १७

बन कर इन मूक पद-दलित, दीन-हीन नर नारियों को युगों से पशुवत् जीवन के लिए मजबूर किए हुए थीं।

२३- प्रेमचन्द ने मानवता के नाम पर जिस को भी विश्वास-घात करते पकड़ा अथवा पाया, चाहे वह धर्म हो अथवा परिस्थिति, सभी को फटकार बतायी। वह सदा आडम्बर और धार्मिक पाखंडों से दूर रहते थे। प्रेमचन्द ने धर्म और ईश्वर के नाम पर होने वाली कपट-लीलाओं का ऐसा प्रदर्शन किया कि हम देखते हैं कि जहां ऐसे प्रसंग आए हैं, ईश्वर के प्रति भक्ति बढ़ती नहीं, घटती प्रतीत होने लगती है। हृदय श्रद्धा से अवनत नहीं, बल्कि आखों में विद्रोहाग्नि चमकने लगती है। इसका कारण भी स्पष्ट है क्योंकि प्रेमचन्द अपने युग की विषम-परिस्थितियों से विचलित हो उठे थे। प्रेमचन्द ने अपनी विद्रोहाग्नि का संकेत 'मंगल सूत्र' में इस प्रकार किया है—"संसार की कुव्यवस्था क्यों है? कर्म और संस्कार लेकर वह कहीं न पहुंच पाते थे ‹ ‹ ‹ ‹ क्यों एक आदमी जिन्दगी भर बड़ी से बड़ी मेहनत करके भी भूखो मरता है और दूसरा आदमी हाथ पांव न हिलाने पर भी फूलों की सेज पर सोता है"[१] प्रेमचन्द समाज की इस कुव्यवस्था का हल बुद्धि और शंका समाधान से न खोज सके। लेकिन प्रेमचन्द की अनुभूति बिना खोज के शान्त न हो सकी, उनके अनुभवों को अन्याय की ठोकर लगी, फिर उन्हीं के शब्दों में सुनिए—"कहां है न्याय? कहां? एक गरीब आदमी किसी खेत से बालें नोंच कर खा लेता है, कानून उसे सजा देता है। दूसरा अमीर आदमी दिन दहाड़े दूसरों को लूटता है और उसे पदवी मिलती है, सम्मान मिलता है। कुछ आदमी तरह-तरह के अधियार बांध कर आते हैं और निरीह, दुर्बल मजदूरों पर आतंक जमाकर अपना गुलाम बना लेते हैं।

---

(१) प्रेमचन्द : मंगलसूत्र, पृ० सं०- २६२, (प्रेमचन्द स्मृति अंक, - हंस प्रकाशन)

लगान और टैक्स और महसूल और कितने ही नामों से लूटना शुरु करते हैं, और आप लम्बा-लम्बा वेतन उड़ाते हैं, शिकार खेलते हैं, नाचते हैं, रंगरेलियां मनाते हैं। यही है ईश्वर का रचा हुआ संसार ? यही न्याय है ?"[१] प्रेमचन्द अपने रोषपूर्ण शब्दों से इस वर्तमान कुव्यवस्था को जो अन्याय की भीति पर आधारित है, न्याय के धन से टुकड़े-टुकड़े कर देना चाहते थे। प्रेमचन्द अपने जीवन के अंतिम क्षणों में क्षुब्ध, विदीर्ण, विखंडित और विद्रोही हो गए थे। न्याय और अन्याय के विचार उनको सदा विक्षुब्ध करते रहते थे। अन्त में उनकी विलक्षण बुद्धि ने अनुभव कर लिया था कि समाज में `देवी` `देवता` बन कर जीवन की सार्थकता नहीं। यहां पर रह कर अन्याय से लड़ना होगा, नयी व्यवस्था को जन्म देने के लिए प्राणों को भी न्यौछावर करना पड़ेगा, तभी युगों की गुलामी से, जो पूंजीवाद ने अपने शिकंजे से कस रक्खी है, पीछा छूटेगा। प्रेमचन्द ने इसका संकेत भी `मंगलसूत्र` में इस प्रकार दिया है—"देवता वह है जो न्याय की रक्षा को और उसके लिए प्राण दे दे। अगर वह जान कर अनजान बनता है तो धर्म से गिरता है और अगर उसकी आंखों में यह कुव्यवस्था खटकती ही नहीं तो वह अंधा भी है और मूर्ख भी, देवता किसी तरह भी नहीं"[२] यह संसार अच्छे-बुरे सभी प्रकार के प्राणियों से बसा हुआ है। यदि बुरा आदमी किसी प्रकार का अपने आचरण से समाज के अन्य जीवों पर कुप्रभाव दिखा कर प्रहार करता है अथवा विषाद की रेखाएं फैलाता है तो उसके विरुद्ध प्रतिशोध की आवश्यकता है, देवता बनने की जरूरत नहीं—`देवताओं ने ही, भाग्य और ईश्वर और भक्ति की मिथ्याएं फैलाकर इस अनीति को अमर बनाया है। मनुष्य ने इसका अंत, कर दिया होता जो इस दिशा में जिन्दा रहने से कहीं अच्छा होता।"[३] "नहीं,

---

(१) `मंगल-सूत्र` पृष्ठ-संख्या-२६३, (प्रेमचन्द स्मृति अंक-चयन अमृत राय)

(२) `मंगल-सूत्र`—पृष्ठ-संख्या—२६३, २६३, (प्रेमचंद स्मृति अंक)

(३) `मंगल-सूत्र, पृ० सं०- २६३,

मनुष्यों में मनुष्य बनना पड़ेगा । दरिद्रों के बीच में उनसे लड़ने के लिए हथियार बांधना पड़ेगा । उनके पंजो का शिकार बनना देवतापन नहीं, जड़ता है ।" एक प्रकार से प्रेमचन्द के जीवन की जय-घोष रेखा, इसी को सफल बनाने में उनका सतत परिश्रमी जीवन लग्न के साथ लगा रहा और प्रेरणा-प्रदान करता रहा । प्रेमचन्द अपने यशोगान के भूखे नहीं थे । उनको समाज के सम्मुख तमाशा बनने से नफरत थी । सभा-सोसायटियों से सदैव अपने को दूर रखते थे । आत्म सम्मान ही उनकी एक ऐसी निधि थी जिसको अपने साहित्यिक जीवन के चालीस वर्षों से संयत् और संभाले रक्खा था । प्रेमचन्द को प्रेरणा का प्रकाश देने वाली ज्योति थी सेवा, सन्तोष, शान्ति और पवित्र, निश्चल प्रेम जिसको उन्होंने कभी मंद नहीं होने दिया था । उनकी सदा यह टेक रही —"सेवा स्वयं अपना-पुरस्कार है"।

२४- प्रेमचन्द ने पूंजीपति वर्ग की लूट-खसोट समाप्त करने के विषय में श्रीमती शिवरानी देवी जी के सम्मुख वार्तालाप के मध्यस्थ अपने विचार स्पष्ट किए हैं—"क्या रूस में लेखक नहीं ? वहां के लेखकों की हालत यहां के लेखकों की हालत से कई गुना अच्छी है । मैं तो उस दिन के लिए मरता हूं कि वे दिन जल्दी आए ।"(१)

२५- प्रेमचन्द अपने युग में यह भी अनुभव कर चुके थे कि पाश्चात्य वातावरण में पोषित अधिकारी-वर्ग, जो जनता की सेवा के लिए नियुक्त किए गया है और लम्बी लम्बी वेतन की रकम उड़ाता है--उसके जनता से कोई भी, किसी की हमदर्दी नहीं थी । जज, वकील, प्रोफ़ेसर, पुलिस विभाग जो शान्ति स्थापित करने के लिए बना था, किसी को भी जनता के प्रति सहानुभूति न थी । वह भावना के पीछे अपने स्वार्थ को नहीं भूल सकता या यों समझिए भावना को स्वार्थ-बुद्धि पर कभी

---

(१) श्रीमती शिवरानी देवी, `प्रेमचन्द घर में—पृ०सं०-१११,

अधिकार जमाने ही नहीं दिया । अधिकारी वर्ग के लिए भावना की दलील एक लचर विचार मात्र था, जिसका समाज की कठोर यथार्थ-भूमि पर कोई अस्तित्व न था । जिसकी शिक्षा जितनी ऊंची थी, उसका स्वार्थ उतना ही बढ़ा हुआ । घूस-खोरी, बेईमानी और शोषण बढ़ता ही जाता था । इस सामाजिक व्यवस्था में देश का नैतिक स्तर इस हद तक गिर गया था कि अदालतें और स्कूल-कालेज भी जनता को ठगने की दुकानें बनी हुई थीं । इसलिए मनुष्य को मनुष्य बनाने के लिए सिर्फ उपदेश या थोड़ा बहुत सुधार ही काफी नहीं था । एक नई राजनैतिक और सामाजिक-व्यवस्था की आवश्यकता थी और यह व्यवस्था आजादी प्राप्त होने पर ही सम्भव हो सकती थी । प्रेमचन्द इस प्रकार के विचारों की अनुभूति सन् १६३२ में कर चुके थे, जब कि उनका स्वप्न सन् १६४७ में पूरा हुआ । १५ वर्ष पूर्व ही प्रेमचन्द अपने अभीष्ट की प्राप्ति चाहते थे, यही प्रेमचन्द की प्रेरणा का साकार रूप था ।

२६- प्रेमचन्द हर तरह की शारीरिक और मानसिक गुलामी, मिथ्या धारणाओं और रूढ़िगत मान्यताओं के बन्धनों से घृणा करते थे और इनसे उत्पन्न हुए दुखों, कष्टों और शोषण से जन साधारण की मुक्ति चाहते थे । आरम्भ से अन्त तक यही उनके साहित्य की मुख्य ध्वनि रही । लेकिन मुक्ति प्राप्त करने के साधन क्या हैं? इस बारे में वे आरम्भ में तो आदर्श को लेकर चले थे लेकिन जैसे जैसे उनका सामाजिक और राजनीतिक ज्ञान बढ़ता रहा, उनके विचारों में प्रौढ़ता आती गई वे आदर्शवादी से यथार्थवादी बनते गए । वे सुधार के स्थान पर संघर्ष और

क्रान्ति को सारे रोग का निदान समझने लगे।[(१)] 'कर्मभूमि' में प्रेमचन्द के विचारों की झलक मिलती है। जीवन के अंतिम पर्व में 'अपूर्ण मंगल-सूत्र' और 'कफन' में संघर्ष और क्रान्ति का रूप झलक उठा है। किन्तु प्रेमचन्द के विचारों की एक प्रमुख विशेषता थी कि वे साहित्यिक-मान्यताओं से भी पराभूत थे। प्रेमचन्द सामाजिक-वातावरण अथवा परिवेश में रह कर भी अपने अन्तर में साहित्य के प्रयोजन को नहीं भूले थे। प्रेमचन्द ने अपने विचारों को प्रचार का आवरण नहीं दिया था, वे अनुभूति में विश्वास रखते थे। साहित्य का प्रयोजन आपके व्यक्तित्व में जुड़ा हुआ था जिसकी अनुभूति भाषा की अभिव्यक्ति थी। प्रकृति और समाज के यथार्थ के अतिरिक्त एक अन्य वस्तु भी है जो उन दोनों का कार्य होते हुए भी, उनसे मुक्त स्वतन्त्र रूप से साहित्यकार प्रेमचन्द के जीवन को प्रभावित करती रही। वह थी प्रेमचन्द की नैसर्गिक प्रतिभा, जो जगाई जा सकती है, लेकिन समाज के प्रभाव से उत्पन्न नहीं की जा सकती। प्रेमचन्द जन्म से कथाकार थे, कथा का बीज उनमें प्रारम्भ से ही पोषित हो रहा था और उसका विकास प्रेमचन्द की कल्पना-शक्ति से हुआ। प्रेमचन्द कल्पना शील प्राणी थे, इसी कारण कल्पना, जो मनुष्य आपसी तथा अपने वास्तविकता के

---

(१) 'वह अब क्रान्ति ही में देश का उद्धार समझता था- ऐसी क्रान्ति में, जो सर्वव्यापक हो, जीवन के मिथ्या आदर्शों का, झूठे सिद्धान्तों का, परिपाटियों का अन्त कर दे; जो एक नए युग की प्रवर्तक हो, एक नयी सृष्टि खड़ी कर दे, जो मिट्टी के असंख्य देवताओं को तोड़ फोड़ कर चकनाचूर कर दे। जो मनुष्य को धन और धर्म के आधार पर टिकनेवाले राज्य के पंजे से मुक्त कर दे। उसके एक एक अणु से 'क्रान्ति' 'क्रान्ति'। की सदा निकलती रहती थी'—कर्मभूमि, पृ० सं०- ६२ और ६३,

के सम्बन्धों को लेकर बनाता है, प्रेमचन्द में सजग रूप में थे । बहुत कुछ 'कल्पना' की परिभाषा को हम एक साहित्यकार के मन का सिद्धान्त, विश्वास, आदर्श, परम्परा आदि आदि नामकरण कर सकते हैं । जीवन और जगत को केवल इस दृष्टि से देखना कि वह कहाँ और कैसे हमारे सुख-दुख, हर्ष और शोक, आह्लाद और उद्वेग का कारण बना साहित्य के ही बोधात्मक ज्ञान के अन्तर्गत आता है । प्रकृति के रूपों में, प्रणय के पात्र में, शिशु में तथा मनुष्यों के पारस्परिक व्यवहार आदि में इन हेतुओं का प्रत्यक्षीकरण ही साहित्य का विषय है, जिसका सरलीकरण प्रेमचन्द ने अपने साहित्य के माध्यम से किया । साहित्य के अन्तर्गत सुख-दुख, हर्ष और उद्वेग के सरल और सहज हेतु प्राय: हमारी जीव प्रवृत्ति और निकट-वर्तिनी मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति से सम्बन्ध रखते हैं । इस कारण साहित्य में उनका महत्वपूर्ण स्थान है, साथ ही मनुष्य क्योंकि सामाजिक-जीव है अत: वह साहित्य में जटिल सामाजिक यथार्थ को भी स्थान देता है । इस प्रकार साहित्य में बुराई-भलाई, शुभ—अशुभ आदि-आदि के विश्लेषण उपस्थित करता है । सुख-दु:ख, सन्तोष-असन्तोष की मार्मिक एवं व्यापक परिस्थितियों के निर्देश और विश्लेषण से साहित्य में तीव्रता और गहराई आती है । साहित्य की दृष्टि से उच्च-कोटि का व्याख्या-सूत्र वह है जो अकस्मात जीवन की किसी व्यापक विशेषता या परिस्थिति का संक्षेप में प्रकाशन कर दे । साहित्य द्वारा सांकेतिक सिद्धान्त का साधारणीकरण अर्थात रागात्मक ग्रहण प्रेमचन्द द्वारा सुगमता से सम्भव हो सका था । क्योंकि खूब ही मंजी भाषा का प्रयोग प्रेमचन्द करते थे । ऐसा प्रतीत होता था मानो उनकी भाव और भाषा का एकीकरण हो चुका हो । भाषा में वही शब्द आते थे, जो उनकी बुद्धि, विचार और अनुभूति कहलाना चाहती थी,

मानो भाषा पर प्रेमचन्द का सर्वाधिकार सुरक्षित है, चाहे कृतियों पर न हो। प्रेमचन्द में साहित्य के चिरंतन एवं महत्वपूर्ण विषय पर्याप्त मात्रा में जग उठे थे। प्रेमचन्द अच्छी तरह जानते थे कि साहित्य को केवल इन्द्रिय ग्राह्य, रूप रंग और ध्वनियाँ ही नहीं प्रदान करनी बल्कि मनुष्यों के पारस्परिक राग, द्वेष, प्रेम, व्यंग और संघर्ष को जीवन की संभावनाओं के आधार पर कल्पित आदर्श एवं जीवन के अनुचिंतन से उत्पन्न आशा-निराशा, हर्ष-विषाद के रूप भी प्रस्तुत करने हैं। साहित्य में हम भीतर की किसी चीज़ को व्यक्त करते हैं क्योंकि यथार्थ जगत से थक कर कल्पना लोक में ही सुख मिलता है चाहे वह सत्य भी न हो। साहित्य की इन सभी मान्यताओं को प्रेमचन्द स्वीकार कर चुके थे। प्रेमचन्द जानते थे कि विपुल एवं दृढ़ जीवन के लिए विवेक चाहिए और यह विवेक भी वैराग्य का नहीं यथार्थ के निकट परिचय का द्योतक हो। प्रेमचन्द अपने विचार की दृढ़ता इन शब्दों में प्रकट करते हैं—"जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सृजन की आत्मा हो जो हमें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करें, सुलाए नहीं। क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है"[(१)] प्रेमचन्द के विचारों की यही साहित्यिक कसौटी थी और प्रेरणा का रूप, जिसे स्वयं प्रेमचन्द स्वीकार कर चुके थे। इस स्वीकृति के आगे प्रेरणा का और क्या प्रमाण हो सकता है?

---

(१) "साहित्य के उद्देश्य—ले० प्रेमचन्द, हंस प्रकाशन,
पृष्ठ-संख्या- १६,

२७- प्रेमचन्द के कथा-साहित्य का प्रेरणा-स्त्रोत सामाजिक-परिवेश तो था ही जिसकी प्रगाढ़ छाया में बैठ कर जन-जीवन सम्बन्धित साहित्य की रचना प्रेमचन्द ने की थी, लेकिन इसके अतिरिक्त प्रेमचन्द का कलाकार हृदय भी था जो अपनी अनुभूति को अपने में न रख सका और कथा के माध्यम से समाज के सम्मुख उपस्थित हुआ। मनुष्य की विभिन्न मौलिक प्रवृत्तियों में, एक मूल प्रवृत्ति यह भी होती है कि वह अपने आपको ही अभिव्यक्त करके सन्तुष्ट नहीं हो पाता, अन्य सामाजिक प्राणियों के जीवन की अन्तर और बाह्य स्थितियों का ज्ञान प्राप्त करना चाहता है और उसकी अभिव्यक्ति साहित्य में देखना चाहता है। यह अनुरक्ति जो दूसरों के सम्बन्ध में कुछ जानने, पहचानने, सुनने-सुनाने, समझने समझाने के लिए उत्सुक बनाए रखती है, उसी की प्रेरणा का परिणाम `कथा-साहित्य` का सृजन-प्राण है। इसी उद्भूत प्रेरणा को ग्रहण कर प्रेमचन्द अपने युग के महान कथाकार बने थे। बाद में जिनको `सम्राट` की विभूति प्राप्त हुई। प्रेमचन्द ने अपने युग का प्रतिनिधित्व किया था, क्योंकि कथा साहित्य का बीज उनके मन और हृदय में पोषित हो रहा था।

२८- कथा साहित्य के प्रति मानव जाति का पुराना प्रेम है। जीवन स्वयं एक कहानी है। इसी कारण जीवन के घटना-चक्र में नैसर्गिक-अभिरुचि रखने वाली मानव जाति आदि-काल से ही कथा-साहित्य को प्रेमपूर्वक अपनाती चली आ रही है और आगे भविष्य में भी अपनाती रहेगी। विश्व की समस्त प्राचीन भाषाओं में कथा के प्रारंभिक-रूप का अस्तित्व-बोध-कराने वाली सभी बातें विद्यमान थीं। ऐसा प्रतीत होता है मानो भाषा की उपलब्धि के साथ ही मनुष्य में कथा-प्रेम अथवा अभिरुचि का भी प्रादुर्भाव हो गया था। इसी का फल था कि प्रेमचन्द से पूर्व ही कथा-साहित्य अपनी परिपाटियों की रेखा के अन्तर्गत पोषित हो रहा था।

यद्यपि विचार-धारा, कला-कौशल, शैली, कथानक आदि का रूप भिन्न था, फिर भी कथा का शरीर पुराना था । इस कारण यह सत्य से परे नहीं कि प्रेमचन्द ने अपनी कथा-अभिरुचि की प्रेरणा । अपने पूर्वज कथा-साहित्यकारों से भी ग्रहण की थी । साहित्य के सभी प्रयोगों और प्रयासों के पश्चात् प्रेमचन्द का अंतिम निर्णय और अंतिम सफलता `उपन्यास` और `कहानी` की रचनाओं में ही फली-फूली और विकसित हुई । प्रेमचन्द के उद्देश्य और लक्ष्य दोनों ने एक समान दृष्टिकोण को स्थिर किया था, वह था समाज का वातावरण, जिसको प्रेमचन्द ने अपने चारों ओर से बटोरा था । प्रेमचन्द को एक विशेष वर्ग के उपेक्षित जीवन ने प्रभावित किया था । उन्होंने देखा कि गरीबों का चारों ओर से शोषण हो रहा है, उनका हृदय इस शोषण को स्वीकार न कर सका, उन्होंने कथा के आश्रय से इन शोषित पात्रों को प्रस्तुत किया । प्रेमचन्द का दृष्टिकोण सदैव एक विशेष-दिशा की ओर उन्मुख रहा । परिणामत: रचनाएं भी विभिन्न उद्देश्यों और लक्ष्यों से पूर्ण हुई । `सेवा सदन`में नारी को लेकर तथा उसकी स्थिति को स्पष्ट किया है तो `प्रतिज्ञा` में विधवा विवाह की समस्या से उद्भूत है । `प्रेमाश्रम` में किसान आन्दोलन चहुमुखी रूप लिए आया तो `निर्मला` अनमेल विवाह की दुखद कथा को लेकर चली । इस प्रकार प्रत्येक उपन्यास अथवा कहानी अपने विभिन्न उद्देश्यों, लक्ष्यों, समस्याओं, साथ ही दृष्टिकोण को अपने में समेटे रहने के कारण ही प्रत्येक रचना अपने मूल रूप में सन्देश और उपदेशवाहक के रूप में प्रतिष्ठित हुई । प्रेमचन्द के दृष्टिकोण का ही यह परिणाम था कि रचना में किसी प्रकार की शिथिलता, उदासीनता सम्भव न होसकी । प्रेमचन्द `गोदान` लिखते समय यदि सोचते किसानों की ही दशा दयनीय नहीं, हिन्दुस्तान तो शोषितों से भरा पड़ा है, यहां वेश्याएं हैं, भिखमंगे हैं, मजदूर हैं, स्त्रियां, क्लर्क आदि आदि सभी हैं तो किसानों का जो करुण

चित्रण उन्होंने `गोदान` में खींचा है अथवा इसी प्रकार अन्य उपन्यासों में किया, कदापि सम्भव न हो पाता । लेकिन इसके अर्थ यह नहीं प्रेमचन्द संकुचित विचार-धारा के जीव थे अथवा एक वर्ग या पक्ष के हिमायती । ऐसी कोई बात नहीं थी, उन्होंने मत की पुष्टि के लिए अलग-अलग पूर्ण-रूप का आदर्श चुना था । एक ही उपन्यास में कई आवाज़े एक साथ क्षीण पड़ सकती थीं, पर अलग-अलग उन समस्याओं का अपना प्रभाव-शाली रूप बन गया । दृष्टिकोण के अंतर्गत कोई किसी प्रकार की लेखक की व्यक्तिगत, चरित्र-गत अथवा समाजगत समस्या नहीं आती बल्कि लेखक का मन था जो किसी विशेष-पक्ष की ओर इतना अधिक प्रभावित हुआ । लेखक अपने दृष्टिकोण के कारण ही अपने हृदय की सारी सहानुभूति, सारी सम्वेदना उसी विशेष रचना में अर्पित कर देता है ।

२६- प्रेमचन्द की प्रेरणा और दृष्टि को साकार रूप देने का श्रेय उनकी अपनी शैली-गत विशेषता थी । प्रेमचन्द ने सदैव सीधे-साधे ढंग से बोल-चाल की भाषा में अपनी रचनाएं प्रस्तुत की थीं । यही कारण है कि प्रेमचन्द की प्रेरणा का पूरा-पूरा अनुभव उनके साहित्य में अभिव्यक्त विचारों से प्राप्त हो जाता है । शैली सामान्यत: भाव और भाषा को समुचित समन्वय प्रदान करती है और प्रभावोत्पादक बनाती है । यदि अनुभूति में गाम्भीर्य है और भाषा में नहीं तो अपेक्षित प्रभाव उत्पन्न नहीं हो सकता इसी कारण शायद यह कहा गया है कि शैली के अन्तर्गत लेखक का व्यक्तित्व छिपा रहता है । इसी व्यक्तित्व का मूल रूप प्रेरणा है जो सामान्यत: दो रूपों में लेखक के हृदय और बुद्धि को प्रदीप्त करता रहा है । प्रथम का सम्बन्ध तो साहित्य के इतिहास से है जो

विभिन्न सामाजिक परिवेशों में गतिमान होता रहा था । दूसरा लेखक के व्यक्तित्व का गुणात्मक रूप था इन्हीं सीमाओं में प्रेमचन्द की प्रेरणा फली-फूली और विकास पथ को ग्रहण किया । प्रेमचन्द की प्रेरणा की यही पृष्ठभूमि है जो सामाजिक-वातावरण, साहित्यिक मान्यताओं और मर्यादाओं में विकास पाई थी ।

‡‡‡‡‡‡

प्रेमचन्द के उपन्यास

अध्याय—४

प्रेमचन्द से पूर्व हिन्दी और उर्दू उपन्यास

उपन्यास—व्युत्पत्ति :

१- `उपन्यास` शब्द उप= समीप तथा न्यास= थाती के योग से बना है। इसका अर्थ है (मनुष्य के) निकट रक्खी हुई वस्तु; अर्थात् वह वस्तु या कृति जिसको पढ़ कर ऐसा लगे कि वह हमारी ही है, इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिम्ब है, इसमें हमारी ही कथा, हमारी ही भाषा में कही गयी है। `उपन्यास शब्द अत्यन्त प्राचीन है। प्राचीन संस्कृत-साहित्य में `उपन्यास` शब्द का प्रयोग हुआ है। भरत ने `नाट्य-शास्त्र` में इसका उल्लेख प्रतिमुख-सन्धि के एक उपभेद के रूप में करते हुए `उपपत्ति कृतोह्यर्थ:` तथा `प्रसादनम्` कहा है; अर्थात् किसी अर्थ को युक्तिपूर्ण ढंग से उपस्थित करने वाला तथा प्रसन्नता प्रदान करने वाला।

२- सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य दृश्य एवं श्रव्य काव्य में विभक्त है। दृश्य-काव्य के अन्तर्गत वह साहित्य आता है जिसे नाटक के नाम से अभिहित किया जाता है। श्रव्य-काव्य में नाटक के अतिरिक्त अन्य साहित्य आता है। इस श्रव्य-साहित्य के दो रूप हैं, `गद्य` और `पद्य`। कथा-साहित्य का विकास मूलत: गद्य-शैली में हुआ। आख्यान, आख्यायिका उपाख्यान, गाथा, कथा आदि गद्य अथवा पद्य में लिखे गए। ये सब कथा-साहित्य के ही अंग हैं। संस्कृत में कथा-साहित्य के दो रूप हैं—नीति-कथा एवं रंजन कथा। नीति-कथा के अन्तर्गत पंचतन्त्र और हितोपदेश की नीति-कथाएं थीं। इन कथाओं में मानव-गुणों और मानव-व्यवहार की कल्पना कर मानव को उसके माध्यम से उपदेश दिया गया है। लोक-रंजन-कथाओं में `वृहत्कथा-मंजरी`

`कथा-सरित-सागर` `शुक-सप्तति` `बैताल पंचविंशति` और `सिंहासन-द्वात्रिंशिका` आदि हैं। इनकी मूल-प्रेरणा गुणाढ्य की `वृहत्कथा` है। संस्कृत-कथा-साहित्य, तत्पश्चात् पालि, प्राकृत, अपभ्रंश-साहित्य में विकसित हुआ। जातक-कथाएं पालि-साहित्य की उपलब्धि हैं। इसी प्रकार अन्य प्राचीन भाषाओं में भी कथा-साहित्य की विपुल सामिग्री है। हमारे देश के लौकिक जीवन में इन कथाओं का प्रवेश ही नहीं, सम्यक् प्रभाव भी है। हमारे प्राचीन मनीषियों ने कथा-साहित्य के द्वारा नीति के उपदेश दिए थे, इन उपदेशों में जीवन को स्वस्थ, सुन्दर और आदर्शमय बनाने के मार्ग बताए गए थे। इन उपदेशों में हमारा प्राचीन ज्ञान संचित है। इसके अतिरिक्त `वृहत्कथा` `पंचतन्त्र` आदि के रूप में ऐसी कथाओं की रचना हुई जो हमारे जीवन के विभिन्न पक्षों को प्रकाशित कर सकती थीं। अक्सर पशुओं और पक्षियों के माध्यम से, उन्हें पात्र बनाकर ज्ञान और उपदेश की यह बातें कथा-शैली में कही गयीं हैं। `शुकसप्तति` (किस्सा-तोता मैना) इसी प्रकार का कथा-साहित्य है। कथा की यह परम्परा हमारे देश की अत्यन्त प्राचीन और मूल्यवान् थाती है। इन कथाओं की तीन विशेषताएं थीं—

१- लोक-ग्राह्यता
२- औचित्य- (विषय-वस्तु और वर्णन-शैली दोनों-
-दृष्टियों से)
३- परिणाम- (आवश्यक रूप से सुखान्त और मंगलमय हो)

३- हमारी कथा-परम्परा अथवा उपन्यास-परम्परा इन्हीं मूल-आधारों पर विकसित होती चली आई थी। आरम्भ में उपन्यासों में `उपपत्तिकृतत्व` और `प्रसादनत्व`— इन दोनों मौलिक गुणों की रक्षा होती थी। भारतीय साहित्यिक परम्परा में कथा-साहित्य का भी

विशेष महत्व है। प्राचीन कथा-साहित्य ने उन प्रवृत्तियों का रक्षण और पोषण किया जो उन्नीसवीं सदी में भारत के उपन्यास-लेखकों को सुलभ हो सकीं। मनुष्य का विकास उसकी सामाजिकता में निहित है। इसलिए वह स्वभाव से ही दूसरे की सुनने और अपनी सुनाने को प्रस्तुत रहता है। 'बृहत्कथा-मंजरी' अथवा 'कथा सरित् सागर' की मूल प्रेरणा यही मौखिक-परम्परा थी जो बाद में लिपिबद्ध हुई। भारत में लोक-कथाएं जब विद्वानों और साहित्य-स्रष्टाओं के हाथों में पड़ कर परिमार्जित हुईं तो उन्हें साहित्य में स्थान मिला। धार्मिक और लौकिक दोनों प्रकार के साहित्यों में इन कथाओं का प्रवेश हुआ और आख्यानों, उपाख्यानों, पुराणों तथा नाटकों आदि में इनका आधार लिया गया। सहस्त्राब्दियों तक यह कथा-परम्परा अक्षुण्ण रूप से चलती रही। भारत वर्ष के साहित्यकारों को सम्पूर्ण परम्परा उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त थी और वे इसके धनी थे। जब योरप से उपन्यास-कला भारत में आयी तो सर्वथा नवीन विधा थी, परन्तु विषय-वस्तु की दृष्टि से उसमें कोई नवीनता नहीं थी। अब आधुनिक उपन्यास ने अपना क्षेत्र अत्यन्त व्यापक कर लिया है। उपन्यास की परिभाषा में, उसके आकार-प्रकार, रूप-रंग, अन्तर-बाह्य विषय-वस्तु में, समय के साथ गुणात्मक अन्तर आ गया है। उपन्यास में मानव-जीवन के सभी पक्षों पर प्रकाश डालने और उसे उधार कर सामने रखने का प्रयत्न किया जाता है। उस अनेक घटनाएं और अनेक पात्र होते हैं। कथानक के ताने-बाने में घटनाओं और पात्रों को यथास्थान स्थापित किया जाता है और उन्हें विकसित किया जाता है। इस प्रकार सारे तत्वों में तारतम्य और सामंजस्य स्थापित हो जाता है। उपन्यासों में भावाभिव्यक्ति, चरित्रांकन अथवा वर्णन के लिए गद्य-शैली का प्रयोग किया जाता है और इस प्रकार कथा कहने की एक विशिष्ट शैली अथवा विधा का प्रादुर्भाव होता है। इसी विधा को आधुनिक शब्दावली में 'उपन्यास' कहा जा सकता है।

४- उपन्यास आधुनिक समाज का महाकाव्य है । वह अपने जन्म से ही सर्वतोमुखी प्रवृत्तियों के साथ विकसित हुआ । इसीलिए हिन्दी-उपन्यास को भारतीय कथा-परम्परा का विकास मात्र स्वीकार करना भ्रान्त धारणा है । आधुनिक उपन्यास-कला पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति की महान् देन है; जिसका उद्भव और विकास पूँजीवाद-युग में हुआ । पूँजीवाद की अन्य प्रवृत्तियों के साथ उपन्यास भी योरप से भारत में आया । सबसे पहले इसका विकास बंगाली में हुआ और वहीं से हिन्दी-क्षेत्र में आया । आधुनिक और प्राचीन कथा-साहित्य का सीधा सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सकता । `उपन्यास` आधुनिक युग की अपनी विशेषता है । डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार "यह धारणा गलत है कि उपन्यास और कहानियां संस्कृत की कथा और आख्यायिका की सीधी सन्तान हैं।"

हिन्दी में उपन्यास-साहित्य का जन्म और विकास :

५- हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के उदय से हिन्दी-गद्य ने एक निश्चित मार्ग और स्तर ग्रहण किया था । उनकी विशेष छाप खड़ी-बोली गद्य पर है । गद्य के भिन्न-भिन्न अंगों—नाटक, निबन्ध, लेख, आलोचना आदि-आदि पर उनका प्रयास स्तुत्य है । भारतेन्दु,ने बंगला और मराठी उपन्यासों के अनुवाद कराए । संस्कृत से `कादम्बरी`, बंगला से `दुर्गेशनन्दिनी` और मराठी से `चन्द्र-प्रभा—पूर्ण प्रकाश` हिन्दी में उपन्यास के प्रथम अनुवाद हैं । `चन्द्र-प्रभा-पूर्ण-प्रकाश` का अनुवाद श्रीमती मल्लिका देवी ने `हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका` में किया था । भारतेन्दु ने सामाजिक और साहित्यिक उपन्यासों को हिन्दी में लाने का सफल प्रयास किया । `राजसिंह` `स्वर्णलता`, `कपाल-कुंडला`, `राधारानी`, `माधवी लता` आदि-आदि हिन्दी में अनूदित होकर बड़े लोकप्रिय हो गए थे । भारतेन्दु-युग

में उपन्यास-क्षेत्र में अनुवाद और मौलिक रचनाओं का जो सूत्र-पात हुआ था, वह उत्तरोत्तर विकसित होता रहा । फलस्वरूप हिन्दी में अच्छे-अच्छे उपन्यासों की रचना आरम्भ हुई ।[१]

६- पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी का परिचय देते हुए पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि "भाग्यवती" नाम का एक सामाजिक उपन्यास भी संवत् १६३४ में उन्होंने लिखा, जिसकी बड़ी प्रशंसा हुई"[२] पंडित श्रद्धाराम भारतेन्दु-युग के प्रसिद्ध व्यक्ति थे । वे श्रेष्ठ व्याख्यानदाता और प्रतिष्ठित समाज-सुधारक थे, पंजाब में हिन्दी भाषा के प्रति की गयीं उनकी सेवाएं स्मरणीय हैं । परन्तु अब तक उनका उपन्यास प्राप्त नहीं था ।[३] अत: शुक्ल जी ने आगे चलकर यह स्वीकार किया है कि, "अंग्रेजी ढंग का मौलिक उपन्यास पहले-पहल हिन्दी में लाला श्रीनिवासदास का `परीक्षा` (१८८४) ही निकला था ।"[४] `अपनी भाषा में यह नयी चाल की पुस्तक होगी` लिखकर लेखक ने स्वयं भी `परीक्षागुरु` की प्रथमता और मौलिकता का दावा किया है ।" उसके पीछे बा० राधाकृष्ण दास ने `नि:सहाय हिन्दू` (१८६०) और पं० बालकृष्ण भट्ट ने `नूतन ब्रम्हचारी`(१८८६) तथा `सौ अजान-और एक सुजान` (१८६२) नामक छोटे-छोटे उपन्यास लिखे"[५] गद्य-साहित्य के

---

(१) डा० कैलाश प्रकाश; प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास, पृ०सं०- ५६,

(२) हिन्दी साहित्य का इतिहास—सातवां संस्करण, संवत् २००८,

(३) यह उपन्यास अबसभा द्वारा प्रकाशित हो गया है ।

(४) वही, पृष्ठ संख्या ४५५,

(५) वही, पृष्ठ संख्या ४५५,

द्वितीय उत्थान में पहले मौलिक उपन्यास-लेखक जिनके उपन्यासों की सर्व-साधारण में धूम मच गयी, काशी के बाबू देवकीनंदन खत्री थे। ये वास्तव में घटना-प्रधान कथनाक या किस्से हैं, जिनमें जीवन के विविध पक्षों के चित्रण का कोई प्रयत्न नहीं। `उपन्यासों का ढेर लगा देने वाले दूसरे मौलिक उपन्यासकार पंडित किशोरी लाल गोस्वामी हैं, जिनकी रचनाएं साहित्य की कोटि में आती हैं। और लोगों ने भी मौलिक उपन्यास लिखे पर वे वास्तव में उपन्यासकार न थे। और चीजें लिखते-लिखते वे उपन्यास की ओर जा पड़ते थे। पर गोस्वामी जी वहीं घर करके बैठ गए। एक क्षेत्र उन्होंने अपने लिए चुना और उसी में रम गए`(१) शुक्ल जी के इन कथनों को आगे के विद्वानों ने यत्किंचित हेर-फेर के साथ स्वीकार कर लिया। डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय भारतेन्दु को प्रथम उपन्यासकार मानते हैं। उनका उपन्यास पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा सर्व प्रथम सामाजिक उपन्यास है। `पूर्णप्रकाश और चन्द्रप्रभा` नामक सामाजिक उपन्यास के बाद देवकीनंदन खत्री (१८६३ ई०) ने हिन्दी में उपन्यासों की नई परम्परा चलायी। वे प्रेमचन्द-पूर्व-युग के लोकप्रिय उपन्यासकार थे। उनकी रचनाओं ने हिन्दी का बड़ा प्रचार किया। देवकीनंदन खत्री का ऐतिहासिक महत्व है, क्योंकि वह उपन्यास-साहित्य के क्रमिक-विकास के प्रणेता थे। (१८६३) गोपाल राम गहमरी भी देवकीनंदन के समकालीन थे और उन्होंने उन्हीं के समान रचनाएं प्रस्तुत कीं। उसी काल में किशोरी लाल गोस्वामी ने अपने मौलिक उपन्यासों की नींव डाली। जहां तक संख्या और परिणाम का सम्बन्ध है, गोस्वामी की रचनाएं परिणाम में बहुत हैं, पर जो रोचकता और साहित्यिक गम्भीरता आनी चाहिए थी, वह उनकी रचनाओं में नहीं आ सकी है। गोस्वामी जी कट्टर हिन्दू पंथी थे और धर्म-रक्षा के लिए साहित्य को साधन मानते थे। हिन्दू-धर्म और हिन्दू-संस्कृति की रक्षा का ध्यान उन्हें अपनी

---

(१) पंडित रामचन्द्र शुक्ल `हिन्दी साहित्य का इतिहास-` पृष्ठ संख्या- ४६८-५००,

रचनाओं के लिखते समय सर्वदा रहता था । वह अपने ग्रन्थों में अपने पाठकों को ईसाई और मुसलमान धर्मों से सतर्क रहने का उपदेश करते चलते थे । उनके उपन्यासों में उपदेशात्मक प्रवृत्ति अपने पूर्ण विस्तार के साथ मिलती है । साथ ही अपने समाज की न्यूनताओं तथा बुराइयों से भी वे पूर्ण-रूप से भिज्ञ थे । गोस्वामी जी की रचनाएं : 'त्रिवेणी', (१८९०), 'कुसुम कुमारी', (१९०१), 'आदर्श रमणी', 'आदर्श बाला', 'सुख-शर्वरी', 'चपला',(१९०३-४ भाग- १,२,३ और ४), 'लखनऊ की-कब्र', (१९०६-७) शाही महल भाग- १,२, और ३), 'तारा','रज़िया बेगम,' 'मल्लिका देवी', (१९०५), 'आदर्श सती', 'तरुण तपस्विनी',(१९०६), 'तिलस्मी शीशमहल', 'मस्तानी', 'सौतिया डाह', (१९०७), आदि-आदि हैं । इस प्रकार सामाजिक, ऐतिहासिक, तिलिस्म तथा ऐयारी, सभी प्रकार के उपन्यास उन्होंने लिखे ।

७- प्रेमचन्द से पूर्व हिन्दी उपन्यास का यह प्रथम-प्रभात था जो विकास की ओर उत्तरोत्तर बढ़ रहा था । प्रेमचन्द के युग तक पहुंचते-पहुंचते उपन्यास साहित्य का तिलिस्म तथा ऐयारी का क्षेत्र छूट गया और अब उसका मानवीयकरण होने लगा । अब मानव-जीवन के विभिन्न पहलुओं और स्तरों, विभिन्न अंगों और अंशों का अध्ययन-विश्लेषण करने की परम्परा आरम्भ हुई और मनुष्य के निजी तथा सामाजिक अभ्युत्थान तथा उत्कर्ष को ध्यान में रख कर घटना-विधान, संयोजन तथा चरित्र-चित्रण की ओर ध्यान दिया जाने लगा । उपन्यास-कला मात्र मनोरंजन अथवा चमत्कार उत्पन्न करने का माध्यम अथवा साधन नहीं रह गया । वास्तविकता, यथार्थ और प्रयोजन तथा चरित्र-चित्रण की ओर ध्यान दिया जाने लगा । प्रेमचन्द का युग वास्तव में सभी प्रकार से राष्ट्रीय-जागृति का काल है, जिसमें सामाजिक कुरीतियों के निराकरण का प्रयत्न किया गया । उसमें पतन और पराजय के स्थान पर आदर्शों की स्थापना है । साथ ही उत्पीड़ित शोषित, दुःखी मानवता के लिए हार्दिक संवेदना है । कथा में भी इतिवृत्तात्मकता का प्रयत्न है और निश्चित घटना, कार्य-व्यापारों का

आधिक्य, रचना-शैली की सरलता और सोद्देश्यता है ।

उर्दू में उपन्यास-परम्परा और प्रेमचन्द :

८- प्रेमचन्द-साहित्य के विद्यार्थियों को यह तो ज्ञात ही है कि प्रेमचन्द के साहित्यिक जीवन का सूत्रपात उर्दू से हुआ । उनका कथा-साहित्य का प्रारंभिक अध्ययन उर्दू के माध्यम द्वारा हुआ और उनका लेखन-कार्य भी उर्दू से ही आरम्भ हुआ । अत: उनके साहित्यिक-जीवन के आरम्भिक काल में उर्दू-उपन्यास साहित्य की क्या स्थिति थी, उस पर भी संक्षेप में विचार कर लेना समीचीन होगा । उर्दू में गद्य का विकास आधुनिक-युग में हुआ । डाक्टर जान गिलक्राइस्ट की प्रेरणा से उर्दू के गद्य-साहित्य को विशेष प्रोत्साहन मिला । उन्होंने सन् १७८७ से उर्दू के बारे में लिखना आरम्भ किया था ।[१] कलकत्ते (संवत् १८६०) में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना से देशी-भाषा की गद्य-पुस्तकें तैयार की गयीं और डाक्टर गिलक्राइस्ट के सहयोग से उर्दू-साहित्य के साहित्यकार एकत्र हुए । इन साहित्यकारों ने अपना कर्त्तव्य बड़ी सुरीति से पूरा किया । कालेज की स्थापना से गद्य के क्षेत्र में एक निश्चित और व्यवस्थित-परम्परा स्थिर हो गयी थी, क्योंकि अनूदित रचनाओं का प्रभाव विभिन्न भाषा के साहित्यकारों पर पड़ा था और उनकी मौलिक रचनाएं विकसित हुईं थीं । उर्दू का उपन्यास साहित्य इसी गद्य-साहित्य का विकसित रूप है, जो दो रूपों में प्राप्त है—१.अनूदित और २.मौलिक । प्रारंभिक धार्मिक रचनाओं के अनुवादों के अतिरिक्त १७७५ ई० के लगभग एक फारसी कथा-ग्रन्थ का अनुवाद मीरअता हुसैन `तहसीन` ने किया । यह उस युग की महान् रचनाओं में थी । ग्रन्थ का नाम "नौ तर्ज़ मुरस्सा" है और फारसी के `क़िस्सए चार दर्वेश` से उर्दू में परिवर्द्धित किया गया है । उर्दू का यह प्रथम मान्य अनूदित `कथा-ग्रन्थ` है, जिसको उर्दू के इतिहास-लेखकों ने भी

स्वीकार किया है । कलकत्ते में फ़ोर्ट विलियम कालेज की स्थापना से और डाक्टर जान गिलक्राइस्ट के प्रोत्साहन से उर्दू में अनुवाद का कार्य तेज़ी से बढ़ा । अन्य अनेक अनुवादों (जिनका उल्लेख करने की यहां कोई आवश्यकता-नहीं है) के अतिरिक्त उर्दू में हिन्दी की कुछ लोक-प्रचलित कथाओं के भी अनुवाद फोर्ट विलियम कालेज में हुए । उदाहरणार्थ—`माधवानल-कामकन्दला` `सिंहासन बत्तीसी` `हितोपदेश` और `पंचतन्त्र की कहानियां हैं । मिर्ज़ा काज़िम अली `जवां` भी फोर्ट विलियम कालेज में नौकर थे और उन्होंने सन् १८०१ में गिलक्राइस्ट के अनुरोध से `शकुन्तला- नाटक` को उर्दू-रूप दिया । सैय्यद एहतिशाम हुसैन का कहना है—"नाटक नाटक के रूप में नहीं बल्कि कथा के रूप में लिखा गया है ।"(१) निहालचंद लाहौरी ने सन् १८०३ में `गुलबकावली` की प्रसिद्ध कहानी का फारसी से उर्दू में अनुवाद किया । यह कहानी भारत-वर्ष की लोक-कथाओं में से थी । इन लेखकों के अतिरिक्त अमान तुल्लाह `शैदा` हफ़ीजुद्दीन, इकराम अली, `अश्क`, `तपिश`, आदि हैं जिन्होंने अनुवाद कार्य किया ।

उर्दू उपन्यास-उपक्रम : मौलिक रचनाएं

९- १८५७ ई० के स्वतन्त्रता-संग्राम ने भारत के सामाजिक ढांचे को नया रूप दिया । अंग्रेजी शासन और अंग्रेजी शिक्षा हर तरफ फैलने लगी और पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव बढ़ने लगा । इस काल में सर सैयद अहमद खां (१८१८-१८९८ ई०) प्रमुख हैं, जिन्होंने सरल उर्दू के साथ साथ बौद्धिकता का भी प्रचार किया, और `अलीगढ़ साइंटिफिक सोसायटी`

---

(१) सैय्यद एहतिशाम हुसैन, उर्दू साहित्य का इतिहास, सं०प्रथम प्रका० अलीगढ़, सन् १९५४, पृ० सं- १९९,

स्थापित कर उर्दू में गम्भीर साहित्य उत्पन्न किया । उनके प्रभाव से पाश्चात्य विचार लोगों में फैले । उर्दू-गद्य के अन्य प्रयोगों के साथ उर्दू `उपन्यास` ने भी अपना स्थान बना लिया । पश्चिम से सम्पर्क होने के फलस्वरूप उपन्यास के रूप में एक नवीन साहित्यिक विधा हाथ लग गई थी । आरम्भ से ही इस विधा का प्रयोग सामाजिक चेतना को जगाने के लिए किया जाने लगा । यह तो नहीं कहा जा सकता कि इन उपन्यासों में शुद्ध राजनीतिक प्रश्नों और समस्याओं को चित्रित किया गया था और उनका हल ढूंढने का प्रयत्न किया गया था । परन्तु सामाजिक जीवन और उसके विभिन्न अंगों का चित्रण जिस प्रकार किया गया उससे यह पता चल जाता है कि ये उपन्यासकार समाज में मौजूद नाना प्रकार की बुराइयों को दूर करना चाहते थे, जो सांस्कृतिक राजनैतिक और आर्थिक दृष्टियों से अधिक जागरूक, सचेष्ट एवं सम्पन्न हो । हिन्दी और उर्दू दोनों में ही इस प्रकार के उपन्यासों की रचना हुई । `

`बागो बहार`- प्रथम उपन्यास

१०- उर्दू का प्रथम उपन्यास `बागो बहार` माना जाता है, जिसकी रचना १८०२ ई० के आसपास अनुमान की जा सकती है । `बागो-बहार` की रचना मीर अम्मन ने कलकत्ते में की थी । उर्दू की दूसरी महत्वपूर्ण गद्य-रचना `फ़िसानए अजायब` है, जिसका समय सन् (१८२४ ई०) बताया जाता है । मिर्ज़ा रजब अली बेग `सुरूर` इसके लेखक थे । उर्दू का उपन्यास `मिरातुल-उरूस`(१८६६ ई०) के लेखक डा० नज़ीर अहमद थे । उर्दू-साहित्य के कुछ इतिहास-लेखक डा० नजीर अहमद को प्रथम उपन्यासकार मानते हैं ? लेकिन अतिरिक्त उनका यह भी विचार है— `पर वास्तव में पंडित रतननाथ

`सरशार` (१८४६-१६०२), और मौलाना अब्दुल हलीम `शरर` (१८६०-१६२६), ने उर्दू उपन्यास को अंग्रेजी उपन्यास कला की दृष्टि से लिया। ×××××ऐसे उपन्यास जो मानव जीवन का यथार्थ चित्रण करें, इस नए युग में ही लिखे जा सकते थे। नजीर अहमद के उपन्यास त्रुटियों के होते हुए भी उस कला की बहुत सी विशेषताएं रखते हैं क्योंकि उनमें प्रथम बार असम्भव और अप्राकृतिक घटनाओं से बचने की चेष्टा की गई है। इस प्रकार आधुनिक दृष्ठि से लिखे गए उर्दू उपन्यास की नींव, १८६७ ई० के लगभग पड़ गई थी, इसके पश्चात् सरशार, शरर, सज्जाद हुसैन, मिर्जा रुस्वा इत्यादि ने इस नींव पर विशाल भवन खड़ा कर दिया"(१) उर्दू के उपन्यास-लेखकों की कथावस्तु पर मूलत: दो प्रकार का प्रभाव दिखायी देता है—

१. समसामायिक राष्ट्रीय-चेतना का,

२. फारसी-भाषा की साहित्यिक-निधि का, जो उन लेखकों को उत्तराधिकार के रूप में मिली थी। उन रचनाओं में, कुछ का अनुवाद-भी हुआ था। इन उपन्यासों में स्त्री-शिक्षा, मध्यवर्गीय मुसलमानों की विपदाओं, लड़कियों का वैवाहिक जीवन, ऐतिहासिक आदर्श, समाज का कलंक और मलिन जीवन आदि के चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। ये साहित्यकार केवल पुस्तकों के माध्यम से ही अपना मन्तव्य प्रकट करके चुप नहीं हो जाते थे, बल्कि वे अपने विचार प्रकट करने के लिए पत्र-पत्रिकाओं का भी सहारा लेते थे। ये लेखक जनसमुदाय के निकट पहुंचने

---

(१) सैय्यद एहतिशाम हुसेन, "उर्दू साहित्य का इतिहास" संस्करण-प्रथम, प्रका० अलीगढ़, १६५४, पृ० सं० २७०-२७१,

का पूरा प्रयत्न कर रहे थे। सन् १८७७ में उर्दू का सुप्रसिद्ध हास्य-साप्ताहिक पत्र `अवध-पंच` निकला जिसके प्रथम सम्पादक सज्जाद हुसैन थे। थोड़े ही समय में पत्रिका के माध्यम से, चारों ओर बड़े अच्छे-अच्छे लेखकों का एक ऐसा समूह एकत्र हो गया जिसने अंग्रेजी राज्य के दमन, आर्थिक लूट-मार पर कड़ी कड़ी चोटें की। `अवध-पंच` प्रगतिशील पत्रिका थी और बाद में इसने कांग्रेस के जन्म से, कांग्रेस के आदर्शों को अपनाया और राष्ट्रीय-आन्दोलन के साथ अपना लेखन-कार्य प्रस्तुत किया। `अवध-पंच` मिर्जा मच्छू बेग `सितम ज़रीफ`, नव्वाब सैय्यद मुहम्मद `आज़ाद`, मुंशी ज्वाला प्रसाद `बर्क़`, मुंशी अहमद अली, `अकबर` इलाहाबादी, पंडित रतननाथ `सरशार`, पंडित बृज नारायण चकबस्त आदि हैं।

११- प्रेमचन्द ने अपने जीवन के उदय (सन् १६००) के समय उर्दू के इस साहित्य का अध्ययन किया था। प्रेमचन्द ने कलाकार का हृदय पाया था और कलाकार होने के साथ साथ उनमें जागरुकता थी और उन्होंने विवेक से अपनी प्रतिभा को सदैव जगाए रखने का पूरा प्रयत्न किया। प्रेमचन्द ने स्वयं स्वीकार भी किया है—"उस वक्त मेरी उम्र कोई १३ साल की रही होगी। हिन्दी बिलकुल न जानता था। उर्दू के उपन्यास पढ़ने का उन्माद था। मौलाना शरर, पं० रतननाथ सरशार, मिर्ज़ा रुस्वा, मौलवी मुहम्मद अली हरदोई निवासी, उस वक्त के सर्व प्रिय उपन्यासकार थे। ^ ^ ^ ^ उस जमाने में रेनाल्ड के उपन्यासों की

सज्जाद हुसेन- तरहदार लौंडी, (भूमिका, मित्र : प्रकाशन, प्राईवेट लिमिटेड, इलाहाबाद,

धूम थी । उर्दू में अनुवाद धड़ाधड़ निकल रहे थे । x x x x मैं भी उनका आशिक था । स्वर्गीय हज़रत रियाज़ ने, जो उर्दू के प्रसिद्ध कवि हैं x x x x रेनाल्ड की एक रचना का अनुवाद `हरमसरा` के नाम से किया था ।"[१] इसके अतिरिक्त `अवध-पंच` के सम्पादक मुंशी सज्जाद हुसेन, पुराणों के अनुवाद, `तिलस्मी होशरुबा` आदि आदि के ऋण को भी स्वयं प्रेमचन्द ने स्वीकार किया है । लेकिन यह भी मानना पड़ेगा, प्रेमचन्द जब उर्दू से हिन्दी में आए उस युग में भी उनका अध्ययन और मनन एकांगी नहीं हुआ था । प्रेमचन्द ने जीवन-पर्यन्त उर्दू-हिन्दी-अंग्रेजी और पाश्चात्य देशों के ऊंचे साहित्य को अपने जीवन और अध्ययन का विषय बनाया । हिन्दी में पदार्पण करने पर भी उर्दू के साहित्य से उनका सम्पर्क लगातार बना रहा और वह लगातार उससे प्रेरणा और शक्ति प्राप्त करते रहे । साथ ही वह हिन्दी तथा अन्य साहित्यों का भी अनुशीलन करते रहे । प्रेमचन्द पर `सरशार` `शरर` `रुस्वा` आदि उर्दू कथाकारों का प्रभाव तो प्रारंभिक-अवस्था में पड़ा ही था, लेकिन बाद के कथा-साहित्य का भी, प्रेमचन्द पर प्रभाव स्पष्ट रूप से था । प्रेमचन्द को जो भी रुचिकर लगा, चाहे वह किसी भी साहित्य का हो, उनका प्रिय-विषय बन गया । इस प्रकार प्रेमचन्द ने उत्तराधिकार में मिले हिन्दी और उर्दू साहित्य से पूरा लाभ समान रूप से उठाया और उनके साहित्य में यह प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखायी देता है ।

---

(१) प्रेमचन्द, क० कफन- संस्करण—प्रथम, सन् १९३६,
प्रका—सरस्वती, पृ० सं०- ७०-७१,

प्रेमचन्द से पूर्व उपन्यासों की सामान्य प्रवृत्ति :

१२- भारतीय जनता की कथा-प्रिय मनोवृत्ति में प्राचीन कथा-साहित्य और समसामयिक कथा-साहित्य एक श्रृंखला के रूप में संबद्ध हैं। यद्यपि अब कथा-साहित्य की परम्परागत रूप-रेखा बदल गई है, किन्तु कथा-साहित्य का धनी भारत अपने प्राचीन आदर्शों और उद्देश्यों को भूला नहीं है। आधुनिक कथाकार ने साहित्य की इन प्राचीन आदर्शों की परम्परा को एक सीमा तक विश्वास, सिद्धान्त और मर्यादा के रूप में अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया। प्राचीन आदर्शों के मूलभूत सिद्धान्त थे कि— १. मन और हृदय की उच्चता हो। २. नैतिक गुणों से मनुष्य का निर्माण हो। इन्हीं आदर्शों के अनुरूप कथाकार चाहता था कि उसकी रचनाओं के प्रभाव से मनुष्य नैतिक उच्चता के शिखर पर पहुंचता ही जाए। आधुनिक कथा लेखकों ने प्राचीन आदर्श की इस उच्च परम्परा को अपने में जगाया और लेखकों का सदैव यह प्रयत्न रहा कि मानव का कल्याण हो। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कथाकार ने शिक्षा अथवा उपदेश देने का सफल प्रयत्न भी किया और यथास्थान सूक्ति-रूप में अपनी बात कही। हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास `परीक्षागुरु` का नामकरण इस बात का प्रमाण प्रतीत होता है कि लेखक अपने पाठक को परीक्षा के माध्यम से सच्चे-गुरु की पहचान कराना चाहता है। `नूतन-ब्रम्हचारी` के लेखक भट्ट जी के सम्मुख उदीयमान किशोरों की उन्नति का सब से बड़ा प्रश्न था। इसीलिए उन्होंने ऐसा उपन्यास लिखा जो छात्र-छात्राओं को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करे। `नूतन-ब्रम्हचारी` में कोमलता, उपदेश, सरलता एवं सुग्राह्यता का सर्वत: ध्यान रखा गया है। लेखक मानो अपने शिष्यों के समक्ष उनके हितार्थ एक शिक्षाप्रद कल्पित

कथा सुना रहा है । पंडित बालकृष्ण भट्ट एक आदर्श ब्राम्हण थे—जन्म से भी और कर्म से भी । उनके जीवन में स्वाभिमान, निर्भीकता, नि:स्वार्थ सेवा, छात्र-हित और सामान्य कल्याण के साथ साथ सन्तोष, धैर्य एवं कर्तव्यनिष्ठा थी और ये सभी गुण जो अपने प्राचीनतम-आदर्शों की महान् थाती थे, निराकार रूपमें भट्ट जी की रचनाओं में पाए जाते हैं । कथाकार किशोरी लाल गोस्वामी की रचनाओं में भी `सनातन-धर्म` पर अटूट विश्वास और श्रद्धा का भाव फलकता है । गोस्वामी जी की धर्म पर पूर्ण आस्था थी जो अखंड विश्वास के साथ उनकी रचनाओं में प्रतिलक्षित हुई । किशोरी लाल के अधिकतर उपन्यास धर्म-प्रेरणा से अनुप्राणित हैं । इसके अतिरिक्त अन्य उपन्यास लेखकों ने कम-अधिक विश्वास के साथ `आदर्श` को अपने-अपने उपन्यासों में एक मात्रा तक संजोया था ।

१३- प्रेमचन्द से पूर्व उपन्यास-परम्परा अपनी प्रयोगावस्था में थी । श्रद्धाराम फुल्लोरी की प्रथम रचना—`भाग्यवती` (संवत् १९३४), आधुनिक उपन्यास-साहित्य का प्रथम प्रयास था । भारतेन्दु ने उपन्यास-रचना का केवल `बीज-वपन` किया था, जिसको श्री निवासदास के `परीक्षा गुरु` (१८८२), ने `अंकुरित` किया और फिर देवकी नंदन खत्री के प्रयत्न से`पल्लवित` तथा किशोरी लाल गोस्वामी की प्रतिभा से `पुष्पित` हुआ । आचार्य नंद दुलारे बाजपेयी के अनुसार `सन् १८८२ से लेकर सन् १९१५ तक हिन्दी उपन्यास का आरंभिक और संक्रान्ति-काल रहा है ।`इस आरंभिक-युग को पार करते ही हम हिन्दी उपन्यासों के उस नए युग में प्रवेश करते हैं जिसका शिलान्यास प्रेमचन्द ने किया ।`[(१)] यह तो

---

(१) `कलम का सिपाही`, प्रेमचन्द,
लेखक— अमृतराय, पृष्ठ-संख्या०- ६५४,

सर्व विदित है कि आरम्भ में हिन्दी-उपन्यासों का सूत्र-पात समाज की आलोचना के रूप में हुआ था, परन्तु उपन्यास की लोकप्रियता के साथ, उपन्यास की कला, मनोरंजन, नीति, आदर्श का समावेश होता गया। प्रारंभिक युग की उपन्यास-रचना यद्यपि 'प्रयोगावस्था' में थी, फिर भी अनेक साहित्यिक एवं लोक-प्रिय उपन्यास लिखे गए। उनकी मुख्य विशेषता थी, पाठक की कुतूहल-वृत्ति को परितृप्त करते हुए उसका मनोरंजन करना। इसलिए आधुनिक शब्दावली में वे उपन्यास घटना प्रधान थे। चरित्र-प्रधान उपन्यास अभी तक नाम मात्र को ही लिखे जाते थे। यद्यपि कुछ लेखकों ने प्रयास भी किया तो भी उपन्यास के बीच-बीच लेखक बोलने लग जाता था और चरित्र गौण और कथाकार प्रमुख हो जाता था। कथा-प्रधान उपन्यासों में—तिलस्मी, जासूसी, पौराणिक, ऐतिहासिक आदि उपन्यास आते हैं।

१४- पाश्चात्य जीवन और साहित्य के सम्पर्क से समाज में जो अनेक क्रिया-प्रतिक्रियाएं हुई थीं, उनसे एक नव-युग का सूत्र-पात हुआ। नव-युग के आरम्भ में जातीय जीवन को उठाने में राजाराममोहन राय (सन् १७७४-१८३३), और स्वामी दयानंद (सन् १८२४-१८८३), का विशेष रूप से महत्वपूर्ण योगदान था। राजाराम मोहन राय के व्यक्तित्व में दार्शनिक, सुधारक एवं राजनीतिज्ञ, तीनों का सुन्दर समन्वय था। उपनिषदों का चिन्तन करते हुए वे जीवन की भव्यता से उत्फुल्ल हो उठे, परन्तु समाज की दुर्दशा ने उनके मन को खिन्न कर दिया। तब उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि 'सांस्कृतिक-अतिवाद'(१) एवं सामाजिक जाति-भेद,

---

(१) 'इंगलिश वर्क्स आफ राम मोहन राय, दि ब्रम्हनिकल मेगज़ीन, पृष्ठ-संख्या- १४६, ६३०,

भारतीय जीवन के अभिशाप रहे हैं। इसलिए कम से कम राजनीतिक लाभ एवं सामाजिक-सुख के लिए तो विद्यमान धर्म-रीति में कुछ परिवर्तन अवश्य हीं होने चाहिए। उन्होंने उठते हुए शिक्षित मध्यवर्ग को देखा और समझा था। ईसाई-धर्म की ओर हिन्दुओं के आकर्षण का सही कारण वह समझ गये थे। अत: आधुनिक-सामाजिक-विचारों को प्रतिष्ठित करने के लिए उन्होंने `ब्रम्ह-समाज` की स्थापना की। सर्वप्रथम सती-प्रथा, `नारी-सम्पति`, `नारी-बहुविवाह` आदि के सुधार की पूर्णरूप से चेष्टा की और उन्हें सफलता भी मिली। हिन्दी क्षेत्र में इस पुनरुत्थानवादी आन्दोलन का श्रेय महर्षि दयानंद द्वारा प्रतिष्ठित आर्य-समाज को है। इसकी कतिपय स्वकीय विशेषताएं थीं। प्रथम तो इसकी प्रेरणा विदेशी न होकर आत्मविश्लेषण की थी। इसलिए यह अंग्रेजी भाषा-संस्कृति को अनावश्यक ही नहीं, वरन् घातक भी समझता था और वेदादि प्राचीनतम आर्य धर्म-ग्रन्थों को आदर्श, अनुकरणीय एवं प्रमाण-रूप में स्वीकार करता था। दूसरे, समाज की राजनीतिक-आर्थिक दुर्व्यवस्था से सुपरिचित होते हुए भी इसका मूल-मंत्र आत्म-गौरव द्वारा राष्ट्र का अभ्युत्थान था। तीसरे, माध्यम संस्कृत एवं हिन्दी होने के कारण इसका प्रभाव कतिपय गिने चुने लोगों पर न होकर सामान्य-जनता अथवा अधिक जन-समुदाय पर था। सन् १८७५ में `आर्य-समाज` की स्थापना हुई। साथ ही प्रचार-कार्य भी शुरु हो गया था। दयानंद जी घूम-घूम कर अपने उपदेशों द्वारा जनता में जागृति लाने का पूरा-पूरा प्रयत्न कर रहे थे। `आर्य-समाज` के सामान्यत: दो पक्ष थे— १. वैदिक विचार-धारा में अटूट विश्वास, २. समाज में विद्यमान कुरीतियों का वैदिक आलोक में निराकरण।

१५- उस समय विचारों की दृष्टि से उपन्यासों के अन्तर्गत सामान्यतः तीन मूलभूत प्रवृत्तियों का समावेश हो गया था । १.आर्य-समाजी, २. सनातनी, ३.सामान्य सुधारवादी, ये तीनों प्रवृत्तियाँ 'सामाजिक-उपन्यास'[१] में प्राप्त थीं । आर्य-समाज से सम्बन्धित रचनाएँ मूलतः इन

---

[१]उपन्यास साहित्य

१.आर्य समाजी, उदाहरणार्थ

लेखक:- श्याम किशोर वर्मा- रचना : काशी यात्रा (१६१६)
कृष्ण लाल वर्मा- रचना : चम्पा (?) (१६१६)
रुद्रदत्त वर्मा- रचना : स्वर्ग में महा सभा (अज्ञात है)

२.सनातनी, उदाहरणार्थ

लेखक:- किशोरी लाल गोस्वामी- रचना- : त्रिवेणी (१८८८ ई०)
,, ,, : लीलावती (१६०१ ई०)
,, ,, : राजकुमारी (१६०२ ई०)
,, ,, : चपला (१६०३ ई०)
,, पुनर्जन्म या सौतिया डाह (१६०७ ई०)
,, माधवी माधव या मदन मोहनी (१६१६ ई०)
,, अंगूठी का नगीना (१६१८ ई०)
,, गंगा प्रसाद उपाध्याय- ,, : लक्ष्मी देवी (१६२२ ई०)
,, लज्जाराम मेहता-(१६०७ ई०),, : बिगड़े का सुधार या सती-सुख देवी
आदर्श हिन्दू (१६१४ ई०)

सुधारवादी, उदाहरणार्थ,

३. लेखक :- लालजी दास वैश्य- रचना : धोखे की टट्टी (१६०७)
अयोध्या सिंह उपाध्याय- ,, : अधखिला फूल (१६०७)
बृजनंदन सहाय- ,, : राधाकान्त (१६१२)
मन्न द्विवेदी- ,, : रामलाल (१६१७

नियमों से अभिहित थीं—"जगत में ईश्वर की भक्ति बढ़े और मनुष्यों की श्रद्धा सत्य-धर्म में बढ़े।" इस उद्देश्य को `स्वर्ग में महासभा', में प्रकट किया गया है। `काशी-यात्रा' पूर्णत: धार्मिक उपन्यास है और ब्राह्मणत्व' के पतन को स्पष्ट किया है। जब वर्ण या जाति कर्म के स्थान पर जन्म से निर्धारित किए जाने लगे तभी से समाज का पतन हुआ है। इस पतन में ब्राह्मणों का विशेष स्थान है। इसी प्रकार `चम्पा' उपन्यास में `वृद्ध-विवाह' और `अशिक्षा' के अतिरिक्त अन्य पारिवारिक कुरीतियों को लेखक ने प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया। आर्य समाज से प्रभावित औपन्यासिक रचनाओं को छोड़ कर सनातन-धर्म से मर्यादित रचनाएं अधिकतर किशोरी लाल गोस्वामी ने लिखी थी। अपनी रचनाओं के आधार पर गोस्वामी जी का यह प्रयत्न था कि धर्म में आस्था, खंडन का विरोध और सुधारों की स्वीकृति हो। धर्म में आस्था के लिए लेखक ने प्राचीन साहित्य की शिक्षा और विदेशी साहित्य के त्याग पर जोर दिया है।

१६- इन उपर्युक्त वर्गों के सुधारवादी लेखकों ने समाज की कुरीतियों को अपना मुख्य विषय बनाया और लड़कों के बिगड़ने के कारण, बाल-विधवा-विवाह, तथा अन्य सामाजिक समस्याओं को लेकर रचनाएं कीं। अयोध्या सिंह उपाध्याय की `अधखिला फूल' (सन् १६०७) मौलिक रचना है, जो सोद्देश्य है और सामाजिक तत्वों से ओत प्रोत है। लेखक ने नारी के मानवी-रूप का विश्लेषण किया है। इसीलिए उसमें दुर्बलताओं का होना स्वाभाविक है। दुर्बलता पर विजय केवल पतिव्रत की ढाल से ही सम्भव है। विजयिनी बन कर नारी देवी बन जाती है। ऐसी देवी देश और समाज का भूरि-भूरि कल्याण कर सकती है—राष्ट्र को ऐसी देवियों की आवश्यकता है। इसी प्रकार, उदाहरणार्थ, बृजनंदन सहाय ने `राधाकांत'

उपन्यास में तत्कालीन हिन्दी उपन्यास की गतिविधि पर अच्छा प्रकाश डाला है । क्योंकि उस युग में उपन्यास अपने स्तर से गिरने लगा था । घटना, अश्लीलता और चरित्र-हीनता की रसीली कहानियों से ही उपन्यास तैयार किया जाता था । लेखकों में गंभीरता का अभाव, अंग्रेजी उपन्यासों का अनुकरण तथा पात्रों की अवहेलना करके घटना पर ही दृष्टि रखना साधारण विषय हो गया था । बृजनंदन सहाय ने उपन्यास की कथा-वस्तु में भी हिन्दी के तत्कालीन उपन्यास-साहित्य तथा आलोचना-प्रणाली पर प्रकाश डाला है । श्री मन्नन द्विवेदी के भी मौलिक उपन्यास `रामलाल` और `कल्याणी` थे जिनमें सर्वप्रथम ग्रामीण-जीवन का चित्र खींचा गया था । इस प्रकार उपन्यासों में ग्रामीण समाज की ओर सुधारवादी दृष्टिकोण से लेखकों का ध्यान आकर्षित हुआ । अस्तु, प्रेमचन्द के साहित्यिक जीवन के सूत्रपात के समय हिन्दी उपन्यास साहित्य विषय की दृष्टि से समाजसुधारवादी विषयों पर आधारित था । इन प्रारंभिक उपन्यासों की कथावस्तु जीवन का परिष्कार करने की दृष्टि से चुनी जाती थी । विचारों की दृष्टि से उनमें व्यवहार नीति, सात्विक प्रेम, बनावटी जीवन आदि के चित्र हैं । उनमें `नव्य-समाज` और `सनातन-समाज` का तुलनात्मक चित्रण प्रारम्भ हुआ है । अपवाद के रूप में मन्नन द्विवेदी युग-परिवर्तन के प्रकाश स्तम्भ के सामने हमारे सामने आते हैं । उनकी रचना `रामलाल` में प्रथम बार सामयिक परिस्थितियों के अन्तराल में ग्रामीण जीवन की दृष्टि से ये समाज सुधार-वादी उपन्यास `व्यास-शैली` में लिखे गए मिलते हैं । उनमें उपदेश देने की प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं । लेखक कथा कहता चला जाता है । बीच-बीच में पाठकों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए `पाठक वृन्द` `वाचक वृन्द` आदि शब्दों का प्रयोग करता है । कथोपकथन और कथोपकथन द्वारा चरित्र-चित्रण चरित्र की विकृति द्वारा कथानक के प्रसार का प्रयास उनमें

उपन्यासों में उल्लिखित काशी के स्थान
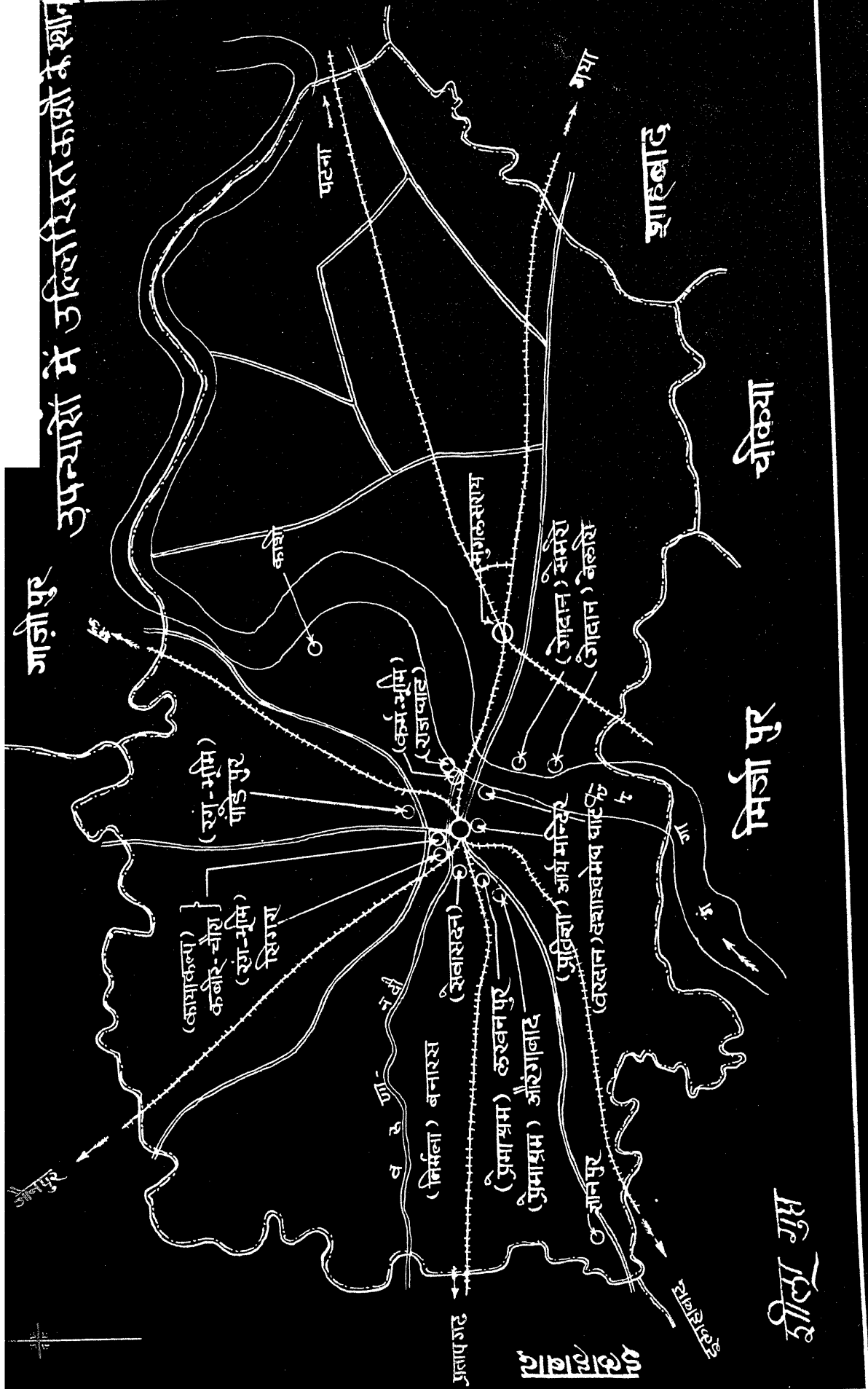
प्रेमचन्द की रचनाएं :

उपन्यास—

१- पीछे इस बात का संकेत किया जा चुका है कि प्रेमचन्द का साहित्यिक-जीवन सन् १६०० से प्रारम्भ होकर सन् १६३६ में अस्त हुआ । इस बीच में हिन्दी और उर्दू की औपन्यासिक परंपराओं का उन पर क्या प्रभाव पड़ा, इस पर भी विचार किया जा चुका है । अपने छत्तीस-वर्षों के साहित्यिक-जीवन में उन्होंने `असरारे मआविद` (सन् १६०५), (उर्दू), `हम खुर्मा व हम सवाब` (सन् १६०६), (उर्दू), इसका हिन्दी रूपान्तर `प्रेमा` (सन् १६०७), नाम से छापा, और कई वर्षों बाद १६२७ ई० में कुछ परिवर्तन और परिवर्द्धन के साथ `प्रतिज्ञा` नाम से निकला । रूठीरानी, (सन् १६०७), जलवए ईसार, (१६०२सन्), (जो नौ वर्षों बाद `वरदान` (सन्-१६२१), नाम से अनुवाद किया) `सेवासदन` (सन् १६१८), `प्रेमाश्रम` (१६२१), `कर्मभूमि` (सन् १६३२), `गोदान` (सन् १६३६), और अपूर्ण `मंगल-सूत्र` (सन् १६४८), की रचना की । प्रेमचन्द की इन रचनाओं को दो कालों में विभाजित किया जा सकता है :—

१. प्रयोग काल (सन् १६००-१६१६ तक)
२. विकास काल (सन् १६१६-१६२६ तक)

प्रेमचन्द की प्रारंभिक रचनाएं `प्रयोगकाल` के अन्तर्गत आती हैं— १. असरारे मआविद (सन् १६०५), २. हम खुर्मा व हम सवाब (सन् १६०६) इसी का अनुवाद `प्रेमा` (सन् १६०७) है । ३. रूठी रानी (सन् १६०७) ४. कृष्णा या कृष्णा किशना (अप्राप्य है) (सन् १६०७), जलवए ईसार (सन् १६१२) ।

२- उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक जीवन जागरण की अवस्था में था, जैसा पहले कहा जा चुका है । इस

इस जागरण के मुख्य सृष्टा राजाराम मोहन राय और महर्षि स्वामी दयानंद थे । इस दृष्टि से यह युग सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि आधुनिक-भारत का जन्म इसी जागरण-काल के गर्भ से हुआ । लेकिन इस युग का हिन्दी-उपन्यास-साहित्य प्रारंभिक अवस्था में था और हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास `परीक्षा गुरु` (सन् १८८२) केवल नए युग का संकेत मात्र है । क्योंकि उपन्यासकार का दृष्टिकोण मुख्यत: धार्मिक है । यही कारण है कि उन्होंने सामाजिक समस्याओं को भी धार्मिक दृष्टि से देखा ।

३- यह युग वैचारिक एवं सांस्कृतिक धरातल पर पाश्चात्य एवं भारतीय संस्कृति का संघर्ष काल था । समाज-सुधारक नवीन परिस्थितियों एवं आधुनिक विचारों के अनुसार समाज का नव संस्कार करना चाहते थे । यों भी ईसाई मिशनरियों तथा पाश्चात्य संस्कृति के अंधभक्त भारतीय-हिन्दू समाज पर आक्रमण कर ही रहे थे । ऐसी स्थिति में रुढ़िवादी दल ने प्रतिरक्षात्मक नीति अपनाई और सनातन-धर्म को दुहाई देते हुए धार्मिक कथावस्तु, वातावरण और उद्देश्य को लेकर उपन्यासों की रचना की किशोरी-लाल गोस्वामी, अयोध्या सिंह उपाध्याय और लज्जाराम शर्मा, की रचनाओं में अधिकतर सामाजिक विषयों को लेकर धर्म की जय और पाप की पराजय दिखाने के प्रयत्न किए गए । प्रेमचन्द ने इसी पृष्ठभूमि में `असरारे मआविद` की रचना की, जो उर्दू में लिखा गया था । लेकिन इस उपन्यास से प्रेमचन्द की दृष्टि, उनके विचार और उद्देश्य की झलक मिलती है । `असरारे मआविद` की कथा-वस्तु धार्मिक-वातावरण से ली गयी है ।

कथा-वस्तु—

४- `श्री महादेव लिंगेश्वर नाथ का सुन्दर मन्दिर सरजू[1] नदी के किनारे पर है । मन्दिर बहुमूल्य हीरे जवाहरातों से सजा है और महन्त धनी

---

१. सरजू नदी अयोध्यापुरी की पवित्र नदी है । अयोध्या फैज़ाबाद के निकट स्थित है ।

मानी रूप सज्जा में एक मसनद के साथ शोभायमान है और उनका चेला त्रिलोकी गुरु सेवा में सलग्न है । एक छोकरी अपने हाव-भाव, नृत्य, गायन आदि से महन्त का मनोविनोद करती है और महन्त सुरापान में मस्त हैं । स्त्रियाँ जल चढ़ाने के लिए मन्दिर में आती हैं और उन्हीं में एक युवती रामदुलारी किसी प्रकार महन्त के ऊपरी ठाठ-बाट से प्रभावित होकर उनके चुंगलों में फँस जाती है । अन्त में अपने विवाहित पति `लल्लू`[१] को निराश कर अपनी मूल्यवान जीवन निधि को सदा के लिए नष्ट-भ्रष्ट कर देती है । माता-पिता अपनी दुलारी बिटिया रामकली के इस अनाचार से अन्त समय तक अनभिज्ञ रहते हैं ।` यद्यपि कथावस्तु धार्मिक वातावरण से ली गयी है, लेकिन कथा की मुख्य प्रेरणा सामाजिक है । प्रेमचन्द का यह सामाजिक उपन्यास है । वह अपने पात्रों का चित्रण `सामाजिक-सत्ता` को मान कर करते हैं । एक ओर वह हाड़-मांस का, सुख-दुख से पराभूत `मनुष्य` है, जिसका जीवन परिवार के साथ जुड़ा है । परिवार में माता-पिता, पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री, तथा जितने भी परिवार के सम्बन्धी हैं, मनुष्य का जीवन इन्हीं सम्बन्धियों के मध्यस्थ परिचालित होता है और दूसरी ओर `समाज` में भी पात्र प्रतिनिधि-व्यक्तित्व लेकर चलता है, क्योंकि मनुष्य सामाजिक-प्राणी है । इस कारण प्रत्येक पात्र, वह नायक हो अथवा नायिका, सहायक पात्र हो अथवा मुख्य प्रधान—दोहरे व्यक्तित्व से युक्त रहता है ।

---

१. `असरारे-मआविद` का पात्र, पृ० सं- ५६,
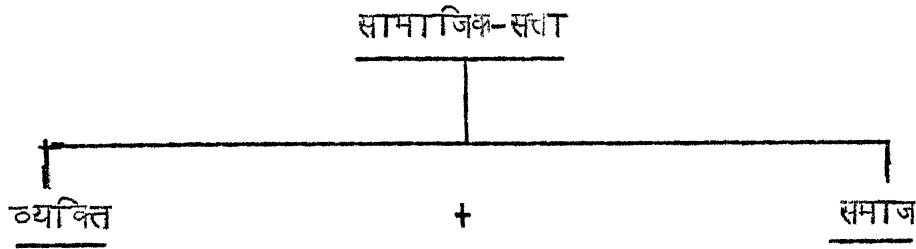
एक ओर वह व्यक्ति रहता है, घर के सुख-दुख से पराभूत, समाज का प्राणी है क्योंकि उसका अस्तित्व समाज में ही है ।

प्रेमचन्द की रचना का आधार यही `सामाजिक-सत्ता` थी, और आरम्भ से ही उन्होंने व्यष्टि और समष्टि की समस्याओं को इसी आधार-शिला पर देखा, उसको परखा, समझा और चित्रित किया । यही कारण है कभी प्रेमचन्द का साहित्य मूलत: समस्यामूलक प्रतीत होता है तो कभी गांधीवाद से परिचालित । लेकिन ऐसा कोई आधार नहीं, जिससे प्रेमचन्द की विचार-धारा स्थिर हो । प्रेमचन्द ने `व्यक्ति के विकास` को अपना लक्ष्य बनाया है जिसमें समाज और व्यक्ति की समस्याओं का व्यापक चित्रण किया गया है ।

५- प्रेमचन्द ने देखा कि देवालय और मन्दिर जो धार्मिक स्थान हैं, जहां पवित्रता का वास था, मनुष्य अपने यथार्थ जीवन से थक कर शान्ति और विश्राम हेतु आता था और ज्ञान और उपदेश सुनाता था, वही अब भ्रष्टाचार के अड्डे बने हुए हैं । मध्ययुग में सीधी-सादी जनता जो विदेशी आक्रमणों और राजनीतिक संघर्षों के बीच पूर्णत: निराश्रित, निराधार हो गयी थी, इन्हीं आलयों में देवताओं की सगुण उपासना करती थी और अपने देवताओं को सौन्दर्य और कला का आदर्श बनाने के

प्रयत्न में साज-सज्जा से सुशोभित करती थी । इस प्रकार मूढ़ जनता का आकर्षण मन्दिरों में बढ़ता ही गया और साथ ही विदेशियों से अपनी निधि को सुरक्षित रखने के लिए, इन्हीं मन्दिरों को अपनी बहुमूल्य वस्तुएं सौंप दी थीं । इस प्रकार एक ओर जनता दरिद्र थी, तन ढकने को वस्त्र न था; दूसरी ओर देवता बहुमूल्य वस्त्रों से सुशोभित थे और उन्हीं देवताओं के साथ महन्त जी जनता और ईश्वर के पथ-प्रदर्शक बने हुए ठाठ से भोग-विलास में लिप्त थे । प्रेमचन्द एक महन्त बाबा का हास्य जनक चित्र खींचते हैं— "त्रिलोकीनाथ माथे पर लाल चन्दन का टीका लगाए, पीले रेशम की भड़कीली मिर्जई डाटे बैठे हैं । गले में अनमोल मोतियों की एक मोहन माला पड़ी हुई है । सिर पर एक जड़ाऊ टोपा अजीब शान से रक्खा हुआ है ।"[1] प्रेमचन्द ने समाज के यथार्थ चित्र खींचे हैं, उनमें अतिरंजना का लेशमात्र भी नहीं है । आगे वे महन्त के कारनामों का उल्लेख करते हैं—"यह जो आप महन्त जी के माथे पर लाल निशान देख रहे हैं, यह चन्दन के निशान नहीं, बल्कि इस बात को सिद्ध कर रहे हैं कि हजरत ने 'न्याय' और 'धर्म' का खून कर डाला है । आप इनके गले में जो मोहन माला देख रहे हैं, यह असल में लोभ का फन्दा है ।"[2]

६- यह स्वयं-सिद्ध है कि प्रेमचन्द आरम्भ से ही मनुष्य की रक्षा 'न्याय' और 'धर्म' अर्थात् 'मनुष्य का कर्त्तव्य' सिखा कर करना चाहते थे । वे मनुष्य को मनुष्य बनाना चाहते थे । समाज के जितने भी 'वर्ग-भेद' उच्च, मध्य और निम्न श्रेणी में बन गए हैं उनको तोड़ कर वे

---

१. प्रेमचन्द, 'असरारे मआविद' प्रस्तुतकर्ता-अमृतराय, संस्करण-प्रथम प्रकाशन- हंस इलाहाबाद १९६२, पृ० सं०- ५,

२. 'असरारे मआविद' पृष्ठ-संख्या- ५,

अपने पात्रों को सत्य, अहिंसा, कर्तव्य का पाठ पढ़ाकर सद्वृत्तियों को जगाना चाहते थे । उनकी रचना का यही चरम उद्देश्य और लक्ष्य था । समाज की जितनी भी दुर्बलताएं है, चाहे वह किसी भी क्षेत्र की हों, प्रेमचन्द एक-एक को उठाते गए हैं और अपने परामर्श कभी पात्रों के माध्यम से, कभी चरित्र-चित्रण के स्पष्टीकरण में उपस्थित करते गए । `असरारे-मआबिद` में धर्म के दूषित वातावरण का खाका खींचा है और नारी के दयनीय मानसिक अभिशाप को बताया है । विमूढ़ `रामकली` अपने यौवनमद में सुचारु-मार्ग न पाकर, और देवालय में अपने रूप का सम्मान देखकर फूली नहीं समाती । परन्तु वह इन राक्षसी **पिशाचों** की लीलाओं को नहीं पहचान सकी और अन्त में अपने मूल्यवान गहनों को भी इन्हीं पापियों को सौंप दिया और फिर भी अपने सुखमय जीवन की मृगतृष्णा में मगन है । यह घटना एक युवती अथवा नव-बाला की नहीं है, प्रेमचन्द ने सैकड़ों नारियों के इस `अभिशाप` को समझा और `उपन्यास` में अपनी दृष्टि को `कथावस्तु` का रूप देकर `पात्रों` का `चरित्र-चित्रण` किया । प्रेमचन्द का **उद्देश्य** `साहित्य` के माध्यम से सच्चाई प्रकट करना था । उनका कहना था— "जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जागे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हममें शक्ति और गति न पैदा हो, हमारा सौन्दर्य-प्रेम न जागृत हो—जो हममें सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करे, वह आज हमारे लिए बेकार है, वह साहित्य कहाने का अधिकारी नहीं"[१]

७- प्रेमचन्द ने `असरारे-मआबिद` में धार्मिक आडम्बरों और ढोंगी, दम्भी, ब्राह्मण महन्तों और उनके चेले चपाटों की क्रूर लीलाओं को तो बताया ही, साथ ही उन्होंने औरतों की स्वतन्त्रता और

---

१. प्रेमचन्द : `साहित्य के उद्देश्य` सं० प्रथम, प्रका० हंस इलाहाबाद १९५६, पृ० सं०- २६,

परतन्त्रता की समस्या को भी रखता है । उनका एक पात्र कहता है—"हम लोगों की यह मंशा नहीं है कि औरतें घर में बंद की जाएं । मगर हम लोग इस बात को हरगिज मुनासिब नहीं समझेंगे कि सांसारिक कर्त्तव्यों को पूरा करने में उनको पूरी आजादी दे दी जाए या बिलकुल निरंकुश कर दिया जाए"[१] प्रेमचन्द के `उपन्यास`का अभी उदय ही था, इस कारण वे निश्चित मार्ग-प्रदर्शक `नारी` के न बन सके और इतना ही कह कर चुप हो गए—"मेरे कहने का यह मतलब है कि औरतें बाहर निकलें जरूर, मगर मजबूरी दर्जे पर । सैर सपाटे के लिए हरगिज़ नहीं ।"[२]आगे वे और स्पष्ट करते हैं—"इसकी क्या ऐसी सख्त जरूरत है कि औरतें भोर में नित्य कर्म से निवृत्त होकर मन्दिरों में पूजा के लिए आएं? पूजा के लिए नियम की सच्चाई और ध्यान की एकाग्रता शर्त है । × × × मैं तो समझता हूं कि उनकी नैतिक दशा रोज़ ब रोज़ सुधरेगी और अच्छे नतीजे पैदा होंगे"[३] ।

८- आरम्भ से ही प्रेमचन्द ने `पात्र` के माध्यम से अपने विचार और सुझाव कहलाए, बस समझने वाले की योग्यता है, जो इनको पकड़ सके । प्रेमचन्द का यह प्रयत्न शुरू से रहा कि पात्र; पुरुष हो अथवा स्त्री—उसमें परिस्थितियों को देखकर `समझ` उत्पन्न हो क्योंकि वे जानते थे कि `परिस्थितियों` को बदलना आसान नहीं । अपनी इस विवशता को भी वे पहचानते थे, और उसका उल्लेख एक `पात्र`

---

१. असरारे मआविद, पृ० सं०-
२. ,, ,, पृ० सं०-
३. प्रेमचन्द `असरारे मआविद` संस्करण प्रथम, प्रका० हंस इलाहाबाद, पृ० सं०- ४४

इन शब्दों में करता है—"मन्दिरों की हालत इस ज़माने में ऐसी है कि कुछ न कहना ही बेहतर है। महन्तों के हथकन्डों की चर्चा अगर मैं थोड़े में ही कहूं तो पोथे का पोथा हो जाए और यह कुछ महन्तों की ही बात नहीं है। जो लोग मुफ्त की चखौतियां करेंगे, दूसरे के सिर पर फुलौड़ियां खाएंगे, वे आखिरकार ऐशपसन्द और आरामतलब हो जाएंगे" x x x x x ज़माने भर के मुफ्तखोर, जाहिल ऐशपसन्द लोग इसी ज़रिए से अपनी जीविका प्राप्त करते हैं और भोले भाले सीधे सादे लोगों को अपनी दगाबाज़ियों का शिकार बनाते हैं। उनकी नैतिक दशा इतनी बिगड़ी हुई है कि तोबा ही भली"[१]

६- प्रेमचन्द प्रगतिशील व्यक्ति थे। उन्होंने संघर्षों से जूझना सीखा था; शान्त बैठ कर विलाप करना नहीं। वे यद्यपि अपनी सामाजिक-परिस्थितियों से विवश थे, और वह अच्छी तरह जानते थे कि मन्दिरों और उनके पंडा-पुजारियों पर किसी प्रकार सुझाव देना अग्नि में घृत उंडेलना है, लेकिन चुप न रह सके—"इस हालत में हमको वह रवैया अख्तियार करना चाहिए जो मौजूदा तहज़ीब और तरक्की की शान के काबिल है x x x x अगर इन्साफ की नज़रों से देखिए तो यह बुरी रस्म खुद अपनी ही नजरों में बुरी मालुम होती है। कैसी शर्म की बात है कि ऊंचे-ऊंचे घराने की औरतें सबेरे तड़के गंगा स्नान को जाएं, तीर्थ यात्रा के लिए भी कमर बांधें, ठाकुर द्वारों में मटरगश्ती करें। x x x x x ज़माने की लालचें x x x x औरतों की स्वभाविक हया-शर्म पर कैसा बुरा असर डालती हैं।"[२]

---

१. प्रेमचन्द 'असरारे मआविद' संस्करण प्रथम, प्रका० हंस इलाहाबाद, पृष्ठ-संख्या- ४४,

२. वही,

१०- समाज का नग्न चित्र उपस्थित करके प्रेमचन्द `नारी-जाति` को उठाने की चेष्ठा करते हैं । उपन्यास `असरारे मआबिद` प्रेमचन्द का प्रारम्भिक प्रयासों में था । लेकिन उन्होंने अपने विचार और दृष्टिकोण की सूचना हमको दे दी है । नारी के पतन का सब से बड़ा शत्रु `धर्म` की आड़ में पल रहा है, इसलिए `नारी जाति` को उससे सुरक्षित रखने का प्रयत्न करना है । प्रेमचन्द ने अपने उद्देश्यों को अपने `पात्रों` के माध्यम से सीधे शब्दों से व्यक्त किया, जिसमें खंडन-मंडन और जाति का कलंक समझ कर `खुद अपनी ही नजरों में बुरी मालुम होती है`[१] समझने का प्रयत्न करते हैं । यही प्रेमचन्द की सफलता थी कि उन्होंने अपने उद्देश्य को अपने `पात्र` के मुख से कहलवा लिया ।

भारतीय नारी :

११- नारी केवल रूढ़िवादी पक्ष में, सनातन धर्म, रीति रिवाज तथा परंपरागत भारतीय संस्कृति के प्रतीक रूप में ही चित्रित नहीं की गयी वरन् वह और उसकी समस्याएं समाज-सुधारकों के विषय का भी केन्द्र रहीं । प्रेमचन्द शिक्षित एवं चेतना सम्पन्न थे, अतः वाह्य एवं पारिवारिक जीवन में अशिक्षित, संकीर्ण रूढ़िवादी नारी के कारण गतिरोध की स्थिति स्वयं अपने जीवन में अनुभव करके, उन्होंने उसके उद्धार करने का बीड़ा उठाया, जिससे व्यवहारिक और पारिवारिक जीवन सुखद बन सके । यों भी सम्पूर्ण रूढ़िवादी मान्यताओं का

---

१. प्रेमचन्द `असरारे मआबिद` प्रथम-संस्करण, प्रकाशक- हंस इलाहाबाद, १९६२, पृ० सं० ४७,

ढांचा नारी पर ही खड़ा था, अतः वही युगों से अत्यधिक पीड़ित रही, जिसकी चरम सीमा सती प्रथा के रूप में अमानुषिक हत्या के आयोजन में दिखाई पड़ती है। अतः स्वाभाविक था कि सब से अधिक आकर्षक विषय नारी-जीवन के विविध प्रश्नों पर लिख कर, उसमें सुधार और शिक्षा का महत्व स्पष्ट किया जाए।

दाम्पत्य जीवन : पति पत्नी :

१२- जन्म-जन्मान्तरों के इस विवाह बन्धन में बंध जाने पर नारी और पुरुष पति और पत्नी के रूप में अपना पारिवारिक दाम्पत्य-जीवन प्रारम्भ करते हैं। पति को परमेश्वर और नारी को दासी मानने वाली स्थितियां भी सामने आती रही हैं। हम देखते हैं कि पति और पत्नी के सम्बन्ध को रूढ़िवादी ढंग से चित्रित करके प्राचीन आदर्श की दुहाई पूर्व उपन्यास लेखकों ने दी है। इन उपन्यासकारों की नायिकाएं ऐसी ही नारियां हैं जो आदर्श हिन्दू नारी को प्रतीक के रूप में उन सनातन आदर्शों का पालन करती हैं। नारी अथवा पत्नी को पुरुष अथवा पति की चिरंतन दासी तथा चिरंतन सेविका के रूप में स्वीकार किया गया है। प्रेमचन्द के समय में भी कुछ उपन्यास लेखकों— किशोरी लाल गोस्वामी, लज्जाराम मेहता और अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने पाश्चात्य संस्कृति से रक्षा करने के लिए प्रतिरक्षात्मक नीति अपनाई और इस परम्परागत नारी-आदर्श की विस्तार से चर्चा और दृढ़ता से उसका समर्थन किया है। नारी प्रत्येक स्थिति में अनुरुक्ति, सारी समग्रता पति पर ही केन्द्रित रखे, चाहे पति कैसा भी क्यों न हो। लेकिन प्रतिरक्षात्मक नीति अपनाने के कारण विचारों में और भी संकोच आया तथा भारतीय संस्कृति के भले बुरे सभी तत्वों की रक्षा करने का

प्रबल आग्रह भी बढ़ा । अत: रूढ़िवादी घेरे के बाहर उनके चिन्तन का विकास हो ही नहीं सका । इस प्रतिरक्षात्मक नीति का अन्तत: परिणाम यह हुआ कि इस युग के उपन्यास-साहित्य में न तो नारी का ही विषद चित्रण हुआ और न उसकी सामाजिक समस्याओं का ही विशद विवेचन ।

नारी और पुरुष की समानता का प्रश्न :

१३- व्यापक समाज के बीच नारी की स्थिति पर विचार करते समय जो पहला प्रश्न सर्वाधिक प्रमुख बन कर सामने आता है, वह नारी और पुरुष की समानता का प्रश्न है । पुरुष-जाति द्वारा नारी-जीवन पर आरोहित अनुचित बन्धनों से नारी की स्वतन्त्रता—उसकी मुक्ति का प्रश्न समाज के जागरूक सुधारकों द्वारा उठाया गया था । उन्होंने इस बात के लिए प्रयत्न किए थे कि नारी यदि पुरुष के साथ एकदम समान स्तर पर नहीं तो कम से कम इस स्तर पर अवश्य पहुंच सके कि वह उसकी सहगामिनी बन कर व्यापक सामाजिक जीवन में अपना विशिष्ट योग दे सके । एक घुटते हुए वातावरण से ऊपर जाकर अपनी क्षमताओं का उचित प्रकाशन करने के योग्य बन सके । प्राचीनता-वादियों की ओर से उग्र विरोध भी हुआ, पर विरोधों के बावजूद उन सुधारकों के प्रयत्नों की गति मन्द भले ही हो गयी हो, किन्तु कुंठित नहीं हो सकी । प्रेमचन्द जागरूक कलाकार थे, अपने युग के सामाजिक जीवन को निकटतम रूप से देख रहे थे और समाज में नारी की स्थिति को समझने लगे थे । अपने युग की सुधारवादी प्रवृत्तियों का प्रेमचन्द पर पूरा प्रभाव था और इसी से प्रभावित हो कर उन्होंने `हमखुर्मा व हम सवाब` की रचना की जो हिन्दी में `प्रेमा` नाम से अनुवाद हुआ ।

<u>कथा वस्तु</u> —

१४- `प्रेमा` मध्यवर्गीय परिवार की कहानी है । महाशय अमृत राय वकील हैं पर वकालत से अधिक सुधार कार्य में रुचि रखते हैं । बद्रीप्रसाद रूढ़िवादी विचार के सामाजिक प्राणी हैं, जो अपनी पुत्री प्रेमा का विवाह अमृत राय के शील-स्वभाव से मुग्ध होकर, उनसे करना चाहते हैं । लेकिन अमृत राय की सुधार भावना से कुंठित होकर प्रेमा का विवाह अन्य योग्य और सम्पन्न वर ढूंढ कर दाननाथ से कर देते हैं । प्रेमा की सहेली पूर्णा अपने पति की शोक-पूर्ण मृत्यु से शोकातुर होकर वैधव्य-जीवन को संयम और व्रत से निभाने का प्रयत्न करती है । लेकिन अमृत राय सुधार भावना से प्रेरित होकर पूर्णा से विवाह करते हैं और उसको वैधव्य की कठोरता तथा उसके अभिशापों से मुक्त कर देते हैं । इसके लिए अमृतराय को समाज के पुरातन पंथियों के उपद्रव सहने पड़ते हैं और अन्त में पूर्णा की मृत्यु अपने पति अमृत राय की रक्षा करने में हो जाती है ।

१५- प्रेमचन्द ने समाज के अभिशापों में सर्वप्रथम धर्म के आडम्बरों को उपन्यास की कथा-सामग्री बनाया और उनको समाज के घातक विष के रूप में प्रस्तुत किया । समाज-विकास में दूसरी बाधा नारी-जीवन की कठोर और दयनीय कहानी है जिसको उन्होंने अपने प्रस्तुत उपन्यास में उठाया । `प्रेमा` में प्रेमचन्द का पात्र कहता है— "सज्जनो हमारी इस दुर्दशा का कारण हमारी लापरवाही है । हमारी दशा उस रोगी की सी हो रही है जो औषध को हाथ में लेकर देखता है पर मुंह तक नहीं ले जाता । < < < हम आंखें रखते हैं, मगर अंधे हैं, हम कान रखते हैं मगर बहरे हैं, हम जबान रखते हैं मगर गूंगे हैं । परन्तु अब वह दिन नहीं रहे कि हमको अपनी जाति

की बुराइयाँ न दिखायी देती हों । हम उनको देखते भी हैं और मन में उनसे घृणा भी करते हैं ।"[१]

१६- प्रेमचन्द का सामाजिक ध्येय नितान्त स्पष्ट है । जिस समय `प्रेमा` लिखा गया था, उस समय हिन्दू समाज में सुधारवादी आन्दोलन की धूम थी । इन आन्दोलनों ने सर्वाधिक मध्यवर्ग को प्रभावित किया था । मध्यवर्ग के कुछ व्यक्ति इनके पक्ष में थे और कुछ विपक्ष में । प्रेमचन्द ने `प्रेमा` में इसी ऐतिहासिक तथ्य का चित्रण करते हुए रूढ़िवादी और नवीन सुधारवादी सामाजिक शक्तियों का संघर्ष दिखाया है । सुधार-वादियों का नेतृत्व अमृतराय करता है और रूढ़िवादियों का नेतृत्व लाला बद्री प्रसाद, और दाननाथ करते हैं ।

१७- प्रेमचन्द की प्रेरणा-दृष्टि के अनरूप `प्रेमा` का कथानक और चरित्रों का चित्रण अधिक सफल नहीं हो सका है । उन्होंने समाज में विधवाओं की दयनीय दशा देखी थी । इस समस्या का समाधान उन्होंने विधवा-विवाह के रूप में अनुभव किया । विधवाओं के पुनर्विवाह द्वारा उनकी दुरावस्था का सुधार सम्भव था । लेकिन कथा दूसरे ही प्रवाह में उन्मुख होती नजर आती है । प्रेमा हृदय से अमृतराय को अपना पति चुन चुकी है और इसका अनुभव समाज के अन्य प्राणी करते हैं । प्रेमा की आलोचना होती है । अन्त में दाननाद के साथ निर्दयता से बाँध देने पर भी वह अपने हृदय को दाननाथ से अछूता रखती है । दाननाद अमृतराय के जीवन घातक बन कर उसकी मृत्यु करना चाहते हैं लेकिन पूर्णा को इसकी सूचना मिल जाती है और वह अपने पति की रक्षा में अपने जीवन की आहुति दे देती है । इस प्रकार विधवा पूर्णा का दुखमय अन्त होता है । दूसरे अमृतराय का पुनर्विवाह

---

१. प्रेमचन्द- `प्रेमा`- प्रथम : संस्करण, प्रका० हंस, इलाहाबाद १९६२, पृष्ठ-संख्या- २२३,

विधवा प्रेमा से हो जाता है । ऐसा लगता है अनिवार्यत: दाननाथ की मृत्यु पूर्णा से करायी गयी है और प्रेमा को विधवा कराके अमृतराय से व्याहा गया है । इस भांति यह प्रेमा के जीवन की कहानी बन गई है । लेकिन अपने मुख्य पात्र अमृतराय के माध्यम से प्रेमचन्द अपने लक्ष्य और उद्देश्य को स्पष्ट करते चलते हैं— `आत्म स्वार्थ कहता था कि इस सुन्दरी को अवश्य व्याहो और जीवन का सुख उठाओ । देश भक्ति कहती थी जो इरादा किया है उस पर अड़े रहो । अपना स्वार्थ तो सभी चाहते हैं, तुम दूसरों का स्वार्थ करो । इस अनित्य जीवन को व्यतीत करने का इससे अच्छा कोई ढंग नहीं है ।`[१] इसके उपरान्त उन्होंने देहातों में जा जाकर सरल-सरल भाषा में व्याख्यान देना शुरु किया और समाचार पत्रों में सामाजिक सुधार पर अच्छे अच्छे लेख भी लिखे `प्रेमा के पश्चात् अन्य उपन्यास `रूठीरानी` लिखा ।

१८- `रूठीरानी` एक छोटा सा ऐतिहासिक उपन्यास है । इस उपन्यास की कथा-सामग्री उस जीवन-काल से ली गयी है, जब पठानों और मुगलों में राजसत्ता के लिए होड़ चल रही थी और राजपूत आपसी फूट और ईर्ष्या के कारण अतुल वीरता के बावजूद परास्त हो रहे थे । उपन्यास की नायिका जैसलमेर के रावल लोनकिरण की बेटी उमादे है । रावल सन् १५८६ में गद्दी पर बैठा । मारवाड़ के राजा मालदेव से उसकी पुरानी शत्रुता थी लेकिन उमादे की रूप-प्रशंसा सुन कर अन्य राजपूत राजाओं की तरह मारवाड़ के राजा मालदेव ने भी उमादे से विवाह का सन्देश उसके पिता रावल के पास भेजा । रावल यह सन्देह पाकर जलभुन गया और इस कारण सन्देश स्वीकार किया कि षड्यंत्र से मालदेव की हत्या कर दी जाए राजा मालदेव सुरा के मद में अपनी जीवन-रक्षिका दासी भरेली पर रीझ गया । उमादे को यह बात बुरी लगी और वह राजा से रूठ गयी ।

---

१. प्रेमचन्द, `हम खुर्मा व हम सवाब` संस्करण-प्रथम,
प्रका०- हंस, इलाहाबा, पृष्ठ-संख्या- १२७,

१६- मालदेव के और भी रानियां थीं और वे उमादे से सौतिया डाह रखती थीं । लेकिन राजा के बूढ़े और पुराने समझदार नौकर ईश्वरदास ने राजा और रानी में मेल कराने का प्रयत्न किया । सौतों के षडयंत्र, राजा की उच्छृंखलता और उमादे के स्वाभिमान के कारण यह मेल स्थायी न रह सका । वह ऐसी रूठी की उम्र भर रूठी ही रही । जिस समय पराक्रमी सम्राट अकबर कूटनीति और शक्ति से राजपूत राजाओं को अपने वश में कर रहा था, उस समय लम्बी आयु भोगकर राजामालदेव का देहान्त हो गया और उमादे समय की रीति के अनुसार पति के साथ सती हो गयी ।`

२०- प्रेमचन्द का यह प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है । कथा और पात्रों की दृष्टि से अधिक सफल नहीं, लेकिन उन्होंने राजपूतों की देशभक्ति और वीरता को आदर्श रूप में प्रस्तुत करके यह दिखाया है कि आपसी फूट और ईर्ष्या के कारण वे देश को गुलामी और विनाश से नहीं बचा सके । देश को स्वतंत्र करने के लिए देशभक्ति और वीरता के साथ एकता और संगठन भी जरूरी है ।

२१- बहु-विवाह की खराबियों, राजभवन और दरबार के षड्यन्त्रों और उनसे होने वाले शक्तिह्रास को भी भली भाँति चित्रित गया है । प्रेमचन्द इतिहास के बारे में एक स्वस्थ और प्रगतिशील दृष्टिकोण रखते हैं । उनका उद्देश्य था कि पाठक इतिहास की अच्छी बातों को ग्रहण करें और बुरी बातों को छोड़ देने की प्रेरणा भी लें ।

२२- `जल्वए ईसार` उपन्यास सन् १९१२ में लिखा गया था और बहुत समय बाद इसका अनुवाद `वरदान` नाम से हुआ । प्रेमचन्द अपने युग की समाज चेतना और राष्ट्रीय जागरण से पूर्णत: प्रभावित थे । लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के नेतृत्व में राजनीति का एक उग्रदल सामने आ रहा

था । प्रेमचन्द के इस उपन्यास का मुख्य विषय भी देश-भक्ति है । पहले ही परिच्छेद में हमें भारत की कुलीना नारी सुवामा के दर्शन होते हैं जो देवी की उपासना करती है और उससे यह वरदान मांगती है कि देवी उसे एक ऐसा पुत्र-प्रदान करें जो देश-सेवा में अपना जीवन अर्पण कर दे । देवी के वरदान से सुवामा के एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम प्रताप रक्खा गया । जो बाद में `बालाजी` के नाम से सच्चा देश-सेवक बना ।

२३- इस समय प्रेमचन्द डिप्टी इन्स्पेक्टर के पद पर नियुक्त थे, और महोबा ज़िले का दौरा करते थे, इन्हीं दौरों के सिलसिले में उनको गांवों के जीवन का भी अनुभव हुआ । प्रेमचन्द ने देखा कि हमारी अधिकतर जनता गांवों में बसती है जो मूलत: अशिक्षित और मूर्ख है । बिना उसके उद्धार से हमारा राजनैतिक जागरण सम्भव नहीं । उस समय हमारे गांवों में भूख, दरिद्रता, अशिक्षा और अन्धविश्वास का पूरा राज्य था । कथाकार प्रेमचन्द की दृष्टि ने इसको समझ लिया था और उनकी कथा की नायिका विरजन उनके इस उद्देश्य को व्यक्त करती है ।

२४- प्रेमचन्द अपने लक्ष्यों की पूर्ति बृजरानी[१] के माध्यम से कराते हैं । विरजन मझगवां से (जो हमीरपुर का ही एक कस्बा है) अपने पति को चिट्ठी लिखती है— `क्या सुनती थी और क्या देखती हूं । टूटे फूटे फूस के झोपड़े, मिट्टी की दीवारें, घरों के सामने कूड़े करकट के बड़े-बड़े ढेर, कीचड़ में लिपटी हुई भैंसे, दुर्बल गायें, x x x x x मनुष्यों को देखो तो उनकी शोचनीय दशा है । हड्डियां निकली हुई हैं । वे विपत्ति

---

१. `वरदान` की पात्री, (अपने पति को पत्र लिखती है)
पृष्ठ-संख्या- ८६-१०५,

की मूर्तियां और दरिद्रता के जीवित चित्र हैं। किसी के शरीर पर एक बेफटा वस्त्र नहीं है और वैसे भाग्यहीन कि रात दिन पसीना बहाने पर भी कभी भरपेट रोटियां नहीं मिलती ××××× दरिद्रता के साथ ही मूर्खता और मिथ्या भक्ति का भी राज है। ये भावनाएं इन मूर्ख ग्रामीणों पर बद्धलीक हो गयी हैं "बालक बीमार हुआ कि भूत की पूजा होने लगी। खेत खलिहान में भूत का भाग, ब्याह आदि में भूत का भाग, जहां देखिए भूत ही भूत दीखते है। यहां न देवी है और न देवता। भूतों का ही साम्राज्य है। यमराज यहां चरण नहीं रखते, भूत ही जीव-हरण करते हैं। इन भावों का किस प्रकार सुधार हो---"[1]
प्रेमचन्द ग्रामीणों की जहालत का एक और चित्र खींचते हैं—"कल यहां देवी-पूजा थी, हल, चक्की, पुर, चूल्हे सब बन्द थे। ×××× साल भर में यही एक दिन है, जिसे गांववाले भी छुट्टी का समझते हैं। अन्यथा होली, दिवाली भी प्रतिदिन के आवश्यक कामों को नहीं रोक सकती। बकरा चढ़ा। हवन हुआ। सत्तू खिलाया गया। अब गांव के बच्चे-बच्चे को पूर्ण विश्वास है कि प्लेग का आगमन यहां न हो सकेगा"। (यही नहीं-प्रेमचन्द गांवों के रस्मरिवाज, दुख-सुख, आमोद-प्रमोद, बीमारी, पीड़ा, विश्वास सब का वास्तविक अनुभव अपनी नायिका विरजन से करा देते हैं।)
"परसों सायंकाल ही से गांव में चहल-पहल मचने लगी। नवयुवकों का एक दल हाथ में डफ लिए, अश्लील शब्द बकते द्वार-द्वार फेरी लगाने लगा ×××× गालियां खाओ और हंसो"[2]

---

१. प्रेमचन्द 'वरदान' संस्करण- पांचवा, प्रका० हंस, इलाहाबाद
पृष्ठ-संख्या- ८६,६०,

२. प्रेमचन्द 'वरदान'- पृष्ठ-संख्या- ६५-१०२,

२५- यह हैं ग्रामीणों के असभ्य रस्म-रिवाज, जिनका वास्तविक अनुभव प्रेमचन्द को हो गया था । वह चाहते थे कि गाँव के प्रत्येक पर्व से हमारा परिचय हो, हम अपने दीन-हीन भाइयों की अवस्था में रुचि लें और उनके जीवन में मधुरता लाने का प्रयत्न करें । ग्रामीणों का जीवन दैविक आपत्तियों से घिरा हुआ है ।वह केवल भाग्यवादिता पर जीते हैं । उनका जन्म-मरण यंत्रवत् है—"स्त्रियाँ खेत काटने जाती हैं ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ सब के हाथों में हँसियाँ, कन्धों पर गठियाँ बाँधने की रस्सी और सिर पर भुने हुए मटर की छबड़ी ‹ ‹ ‹ ‹ आपस में गाती, चुहलें करती चली जाती थीं । दोपहर तक बड़ी कुशलता रही । अचानक आकाश मेघाच्छन्न हो गया । आँधी आ गयी और ओले गिरने लगे । ‹ ‹ ‹ ‹ चारों तरफ से कृषक भागने लगे । गायें, बकरियाँ, भेड़ें सब चिल्लाती हुई पेड़ों की छाया ढूँढती फिरती थीं ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ अनर्थकारी दुर्दैव ने सारा खेल बिगाड़ दिया । प्रातःकाल स्त्रियाँ गाती जा रही थीं संध्या को धर-धर शोक छाया था"।[१] (अब अन्य चित्र-धोबियों के आमोद-प्रमोद का है) "सायंकाल यहाँ एक बड़ा चित्ताकर्षक प्रहसन देखने में आया । यह धोबियों का नाच था । पन्द्रह बीस मनुष्यों का एक समुदाय था । उसमें एक नवयुवक श्वेत पेशवाज पहिने कमर में असंख्य घंटियाँ बाँधे, पाँव में घुंघरू पहने, सिर पर लाल टोपी रक्खे नाच रहा था । ‹ ‹ ‹ ‹"[२]

२६- ये अर्द्ध नग्न, भूखे, निरीह, भाग्यवादी प्राणी केवल जीवन को बोझ ही समझ कर नहीं ढोते, ईश्वर का इनके साथ पूरा पूरा अन्याय है । ये अपने जीवन की कठोरता को भूलने के लिए आमोद-प्रमोद भी करते हैं यद्यपि जीवन रोग और पीड़ा से भरा हुआ है । "यहाँ पर एक

---

१. प्रेमचन्द, `वरदान` संस्करण- पाँचवा, प्रका०- हंस, इलाहाबाद, मार्च १९५६, पृष्ठ-संख्या- १०२,

२. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृष्ठ-संख्या- १०३,

दिहलूराय वैद्य हैं, कोई पचास वर्ष की आयु होगी । नंगे पांव, सिर पर एक पगड़ी बांधे, कन्धे पर अंगोछा रक्खे, हाथ में मोटा सा सोटा लिए द्वार पर आ कर बैठ गए .... इस मंडल में आठ दस कोस तक लोग उन पर विश्वास करते हैं । न वे हकीम को जानें, न डाक्टर को । उनके हकीम डाक्टर जो कुछ हैं, वे दिहलूराय हैं । सन्देशा सुनते ही आकर द्वार पर बैठ गए । डाक्टरों की भांति नहीं, प्रथम सवारी मांगेंगे- वह भी तेज जिसमें उनका समय नष्ट न हो । आपके घर आकर ऐसे बैठे रहेंगे, मानो गूंगे का गुड़ खा गए हैं । रोगी को देखने जायेंगे तो इस प्रकार भागेंगे, मानों कमरे की वायु में विष भरा हुआ है । रोग-परिचय और औषध का उपचार केवल दो मिनट में समाप्त । दिहलूराय डाक्टर नहीं है—पर जितने मनुष्यों को उनसे लाभ पहुंचता है, उनकी संख्या का अनुमान करना कठिन है । वह सहानुभूति की मूर्ति हैं । उन्हें देखते ही रोगी का आधा रोग दूर हो जाता है । उनकी औषधियां ऐसी सुगम और साधारण होती हैं कि बिना पैसा-कौड़ी मनो बटोर लाए ।"[१]

२७- प्रेमचन्द से पूर्व प्रयत्न रूप में मन्नन द्विवेदी ने प्रथम बार सामयिक परिस्थितियों के अन्तराल में ग्रामीण जीवन पर उदार एवं सहृदयता-पूर्ण दृष्टिपात किया था । दूसरे मन्नन द्विवेदी ने भी प्रेमचन्द से पूर्व पूर्वी-उत्तर प्रदेश के ग्रामों से प्रेरणा एवं सामग्री ली थी । इसमें भाषा-वैविध्य को तो अधिक महत्त्व नहीं दिया गया, परन्तु `पुलिस और अदालत,` `पटवारी और पोस्टमैन,` `भगत और साहूकारों` का व्यंग्यपूर्ण चित्र मन्नन द्विवेदी की लेखनी से खरा उतरा है । मन्न द्विवेदी की रचना में राष्ट्रीयता का पुट आ गया है और ग्रामीण दुर्दशा का भी अनुभव है लेकिन उनकी रचना में देशभक्ति के साथ-साथ राज्य-भक्ति का भी निनाद है एवं ग्रामीण दुर्दशा का हल खोजते-खोजते द्विवेदी जी `उधार-धर्म` के दोषों पर जा पहुंचते हैं । प्रेमचन्द इन सब विचारों से पराभूत, ग्रामीण समाज की यथार्थता में रुचि

---

१. `वरदान,` पृष्ठ-संख्या— १०४,

रखनेवाले व्यक्ति थे। उन्होंने तथाकथित धर्म का खोखलापन, ग्रामीणों की अदूरदर्शिता, अन्धविश्वास, जहालत आदि-आदि का मूल कारण आर्थिक—राजनैतिक दुर्व्यवस्था को ही ठहराया और सर्व-प्रथम ग्रामीण जीवन के निकटतम पहुँचने का प्रयत्न किया। `वरदान' प्रारंभिक कृतियों में से है और साथ ही उर्दू से अनुवाद। अतः उसकी शैली में वह प्रवाह नहीं है जो प्रेमचन्द की भाषा का अपना गुण है। `वरदान` में अपने विचारों को प्रकट करने का मोह स्थान—स्थान पर मिलता है। वे लिखते हैं : — "उस वक्ता के अंतिम शब्द (ये) थे— "यदि आप दृढ़ता से काम करते जाएंगे, तो अवश्य एक दिन आपको अभीष्ट सिद्धि का स्वर्ण-स्तम्भ दिखायी देगा। परन्तु धैर्य को कभी हाथ से न जाने देना। दृढ़ता में बड़ी प्रबल शक्ति है। दृढ़ता पुरुष के सब गुणों का राजा है। दृढ़ता वीरता का प्रधान अंग है। इसे कदापि हाथ से न जाने देना। तुम्हारी परीक्षाएं होंगी। ऐसी दशा में दृढ़ता के अतिरिक्त कोई विश्वास-पात्र पथ-प्रदर्शक नहीं मिलेगा। दृढ़ता यदि सफल न भी हो सके, तो संसार में अपना नाम छोड़ जाती है।"[१]

२८- यही नहीं, अपने विचारों के प्रकटीकरण के साथ ही प्रेमचन्द ने अपने पात्रों को भी प्रेरक-शक्ति के रूप में चित्रित किया। विरजन के पत्र विशेष उद्देश्य से उपन्यास में रक्खे गए हैं। इनमें गाँव की दशा का वर्णन विस्तार से दिया गया है। `वरदान` प्रेमचन्द के विचारों के स्पष्टीकरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण कृति है। लेकिन `उपन्यास-कला` की शिथिलता स्थान-स्थान पर मिलती है। `वरदान` जिसका मूलरूप `जलवए ईसार` है, काल विभाजन की दृष्टि से प्रयोग काल के अन्तर्गत आता है। इसके पश्चात् की कृतियाँ जो प्रेमचन्द ने लिखी, हिन्दी-साहित्य में उन कृतियों का विशेष

---

१. `वरदान`- पृष्ठ-संख्या- १६०,

प्रेमचन्द की कहानियाँ

अध्याय—५

कहानी का उद्भव और विकास :

१- कहानी के जन्म की कथा संभवत: उतनी ही पुरानी है जितनी स्वयं मानव-जाति की । मनुष्य के जन्म के साथ-साथ कहानी का भी जन्म हुआ । नानी-दादी की कहानियां हमारे जीवन की अविभाज्य अंग हैं । शौर्य और प्रेम की कहानियां भी उसी समय से कही जाने वाली होंगी जब से मनुष्य की शिराओं में रक्त-संचार होना प्रारंभ हुआ होगा । इसके प्रमाण मानव-जाति के प्राचीनतम साहित्य, वेद, में मिलते हैं । वेद की ऋचाओं के कवि मानव-हृदय के पारखी और सच्ची अनुभूतियों की अभिव्यंजना में प्रवीण थे । स्वयं वेद में ही नहीं, सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में कथा-कहानियों का आश्रय ग्रहण किया गया है । पौराणिक और महाकाव्य कालों तथा जातक कथाओं में भी यही स्थित है । भारतवर्ष में कथा-कहानियों की लोकप्रियता के और भी प्रमाण बृहत्कथा तथा पंचतंत्र की कहानियों में उपलब्ध होते हैं । इन कथा-कहानियों द्वारा मानव और मानवेतर जगत् में ही सम्बन्ध स्थापित नहीं किए गए, वरन् मनुष्य के मार्ग-प्रदर्शन और जीवन को सुखी बनाने के लिए अनेक शिक्षाप्रद बातें कही गई हैं । भारतीय और इस्लामी संस्कृतियों के फलस्वरूप अन्य अनेक नवीन कथा-कहानियों का भी प्रचार हुआ । कहने का तात्पर्य यह है कि अन्य देशों की भांति भारत वर्ष में विभिन्न उद्देश्यों से प्रेरित होकर कही गई कहानियों का सदैव प्रचार रहा है । हिन्दी में आज जिस साहित्य-विधा को `कहानी` नाम की संज्ञा प्रदान की जाती है वह रूपगत और विषयगत दोना ही दृष्टिकोणों से पश्चिम की ही देन है और इसका सम्बन्ध हिन्दी के गद्य के

विकास के साथ है । अपनी विशेष प्रकृति——यथार्थ जीवन से सम्बन्ध और परम्परानुगत जीवन-क्रम के प्रति शिक्षित मध्य-वर्ग का विद्रोह और सुधार——के फलस्वरूप उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध में उपन्यास साहित्य का सर्जन तो हो सका था, किन्तु उस समय कहानी के साहित्यिक रूप का आविर्भाव न हो सका । यह कार्य द्विवेदी युग में सन् १६०० के बाद सम्पन्न हुआ ।

हिन्दी में कहानी-साहित्य :

२- हिन्दी गद्य का आरम्भ अंग्रेजों के भारत में आने के पश्चात् शुरू हुआ । ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी कहानियों का आरम्भ उर्दू तथा बंगला कहानियों की अपेक्षा कुछ बाद में हुआ । आधुनिक काल में हिन्दी कहानी के आरम्भ और विकास का पूर्ण श्रेय `द्विवेदी-युग`को है । कहानियों का प्रारम्भ (१६००) में `सरस्वती` मासिक पत्रिका से हुआ । प्रारम्भ में अंग्रेजी और संस्कृत कथाओं के रूपान्तर प्रकाशित हुए । धीरे-धीरे सामान्य जीवन की साधारण घटनाओं के आधार पर कहानियों की सृष्टि हुई उस समय कहानियों में दैवी घटनाओं और संयोग को प्रमुख स्थान दिया गया । प्रेमचन्द ने अपनी लेखनी की उद्भावना के साथ ही साथ कहानी-क्षेत्र में विभिन्न प्रयोग उपस्थित किए । उन्होंने यथार्थ-घटनाओं के स्वाभाविक विकास और सामाजिक यथार्थ पर ज़ोर दिया । प्रेमचन्द के आगमन से कहानी-कला विकास पद पर अग्रसर हुई फिर उस समय के अन्य तरुण कहानी लेखकों ने भी कहानी के क्षेत्र में नवीन पथ का अनुकरण किया । इसलिए प्रेमचन्द के समय में ही कहानी में विशेषताएं उत्पन्न हुईं । कहानी के प्रकारों में विविधता आई । उनके लिए वर्णात्मक,

आत्मचरित, पत्र, डायरी आदि विभिन्न शैलियां अपनाई गईं ।

३- कहानियों के अध्ययन की सुविधा के लिए विभिन्न आलोचकों ने कहानियों को कालों में विभाजित करके उपस्थित किया है । लेकिन प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में सम्पूर्ण कहानी-साहित्य को दो खंडों में विभाजित कर प्रस्तुत किया जा रहा है :—

१. प्रारंभिक कहानियां
२. उत्कर्ष कालीन कहानियां और उसमें प्रेमचन्द का स्थान ।

प्रारंभिक कहानियों में इन्शाअल्ला खां की `रानी केतकी की कहानी` या `उदयमान चरित` (सन् १८०७) लल्लुलाल रचित `सिंहासन बत्तीसी` (स० १८०१ `बैताल पच्चीसी` `माधवानल कामकुन्दला` `शकुन्तला` `प्रेमसागर` (१८०३-१८०६) सदल मिश्र के `नासिकेतोपाख्यान` (स० १८०३) जटमल की `गोरा बादल की कथा` राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द का `राजा भोज का सपना` (स० १८५६) `या वीरसिंह का वृतान्त` आदि मौलिक और अनुवादित कथाएं मिलती हैं । कहानी के इस प्रारंभिक-काल में कहानियां प्राय: दो स्रोतों से सम्बन्धित थीं । लोक-प्रचलित मौखिक कथाएं या संस्कृत-कथाएं, दूसरी उर्दू या फ़ारसी की कहानियां । आधुनिक कहानी पर पाश्चात्य संस्कृति तथा उसके भौतिक दृष्टिकोण के प्रसार, राष्ट्रीय जागरण, सांस्कृतिक-आन्दोलन व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की वृद्धि, गद्य के प्रचार, मुद्रण की सुविधाओं और पत्र-पत्रिकाओं का विशेष रूप से क्रान्तिकारी प्रभाव रहा है ।

४- सन् १६०० के पूर्व एक प्रकार से हिन्दी में कोई साहित्यिक कहानी नहीं लिखी गयी । `रानी केतकी की कहानी` (सन् १८०७) में साहित्यिकता नहीं है । इंशाअल्ला खां अरबी-फ़ारसी के विद्वान थे । उनके संस्कारों में अरबी-फ़ारसी मसनवियों और दास्तानों का प्रभाव

विशेष रूप में था । फलतः उन्होंने अरबी-फारसी शैलियों को मिला कर `रानी केतकी की कहानी` लिखी है । विशेषकर कथा की दिशा में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतेन्दु जी के आगमन से विशेष विकास और प्रसार मिला । सन् १८५८ में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने `एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न` नामक कहानी लिखी । भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने साहित्य के भिन्न-भिन्न अंगों का निरूपण तथा विकास करने में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया उन्होंने प्राचीन तथा नवीन दोनों प्रकार का साहित्य उपस्थित किया और शैली विषयक नवीन रूप देकर उसे विकासोन्मुख किया । भारतेन्दु-युग में पत्र-पत्रिकाओं[१] के माध्यम से भी हिन्दी-कहानी को प्राणशक्ति प्राप्त हुई ।

५- सन् १९०० में प्रयाग से मासिक पत्रिका `सरस्वती` के प्रकाशन के साथ हिन्दी कहानी को निश्चित मार्ग और साहित्यिक रूप और शैली मिली । `सरस्वती` के प्रथम वर्ष में किशोरी लाल गोस्वामी की एक मौलिक कहानी `इन्दुमती`[२] प्रकाशित हुई । सन् १९०२ में मिर्जापुर के मास्टर भगवानदास की `मास्टर चुड़ैल`[३] सन् १९०३ में रामचन्द्र शुक्ल की `ग्यारहा वर्ष का समय`[४] तथा गिरजादत्त बाजपेयी की `पंडित और पंडिताइन`[५] नामक कहानियां प्रकाशित हुईं । सन् १९०३ में मिर्जापुर

१.कवि वचन सुधा (सन् १८६७), हरिश्चन्द्र मैगजीन (सन् १८७३), हरिश्चन्द्र चन्द्रिका (सन् १८७४), हिन्दी प्रदीप (सन् १८७७), ब्राह्मण (सन् १८८०), सार सुधा निधि (सन् १८७९), क्षत्रिय पत्रिका- (सन् १८८०), भारत मित्र (सन् १८७७),

२. ले० किशोरी लाल गोस्वामी : `इन्दुमती``सरस्वती` जनवरी,सन् १९०८, भाग :१, सं- १- पृ०सं- १७८,

३. ले० भगवानदास `मास्टर चुड़ैल` `सरस्वती`सन्-१९०२, (सितम्बर) भाग-३, संख्या-९, पृ०सं० २०७

४. ले० रामचन्द्र शुक्ल `ग्यारह वर्ष का समय` `सरस्वती- भाग ४, सं०-९, सन् १९०३, पृ०सं०- ३०८,

५. ले० गिरजा दत्त बाजपेयी `पंडित और पंडिताइन``सरस्वती` सन् १९०३, भाग-४, संख्या १२, पृ०सं०- ४१९,

निवासिनी `बंग-महिला` की `दुलाई वाली`[1] सन् १६०७ में वृन्दावन लाल वर्मा की `राखी बन्द भाई`[2] तथा मैथिलीशरण गुप्त की `नकली-किला`[3] शीर्षक कहानी भी सरस्वती में प्रकाशित हुई । इसके पश्चात् धीरे-धीरे नए लेखकों द्वारा मौलिक कहानियां लिखी जाने लगीं । परन्तु सन् १६१३ को पूर्व तक `सरस्वती`[4] `सुदर्शन`[5] में जितनी भी कहानियां प्रकाशित हुई उनमें बंगला या अंग्रेजी से अनूदित कहानियों की संख्या ही अधिक थी । बंगला से अनूदित कहानी लिखने वालों में गिरजा कुमार घोष (उपनाम पार्वतीनन्दन) मिर्जापुर निवासी पूर्ण चन्द्र की धर्म पत्नी श्रीमती `बंग महिला` और श्री प्रेमनाथ भट्टाचार्य ने स्तुत्य कार्य किए । उन्होंने बंगला भाषा से अनेक सुन्दर कहानियों का हिन्दी रूपान्तर कर हिन्दी भाषियों की प्रशंसनीय सेवा की । विषय, शैली तथा रूप की दृष्टि से भी उस समय तक विभिन्न भाषाओं के अनुवादकों ने भिन्न-भिन्न दिशाओं में प्रयत्न प्रस्तुत किए । इन अनुदित कहानियों के द्वारा हिन्दी की मौलिक कहानियां भी अपने स्वरूप, विकास, शैली, विषय में एकरूपता ले आयीं और पात्रों में भी चारित्रिक विशेषताओं को स्थान मिलने लगा । इन कहानियों में उपदेश, शिक्षा, धार्मिकता के स्थान पर मनोरंजन भी लाने का प्रयत्न किया गया ।

---

१. ले० बंग महिला `दुलाई वाली` `सरस्वती` सन् १६०७ भाग-८, संख्या ५, पृ० सं०— ?

२. ले० वृन्दावन लाल वर्मा `राखी बन्द भाई` सरस्वती सन् १६०६, भाग १०, संख्या ६, पृ०सं०- ?

३. ले० मैथिली शरण गुप्त `नकली किला` `सरस्वती` सितम्बर सन् १६०६, पृ०सं- ?

४. सम्पा०- बाबू श्याम सुन्दर दास `सरस्वती` जनवरी १६०० प्रका० प्रयाग, संस्करण—प्रथम,

५. सम्पा०- माधव प्रसाद मिश्र, सन् १६००, प्रका० ?

६- सन् १६०६ में जयशंकर प्रसाद की प्रेरणा से `इन्दु`[१] मासिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ । सन् १६११ में जयशंकर प्रसाद की प्रथम कहानी `ग्राम``इन्दु` में प्रकाशित हुई । तदुपरान्त उनकी अन्य मौलिक कहानियां `बिसाती` `आंधी` `प्रतिध्वनि` `स्वर्ग के खंडहर` `आकाश दीप` `ममता` `गुंडा` `सालवती`आदि अनेक प्रभावशाली कहानियां निकलीं । जयशंकर प्रसाद की भांति हिन्दी-कहानी कला के आविर्भाव में प्रेमचन्द का योगदान भी महत्वपूर्ण था । प्रेमचन्द के प्रादुर्भाव से हिन्दी कहानी को भरपूर विकास मिला और अन्य नवोदित लेखकों की साधना भी फलीभूत हुई । जयशंकर प्रसाद और प्रेमचन्द हिन्दी कहानी के विकास में दो प्रहरियों के समान शोभायमान हैं । इन दो महान् कथा-शिल्पियों से दो पृथक् संस्थानों के निर्माण हुए, जिनके अन्तर्गत अनेकानेक कहानी-लेखकों ने अपनी बहुमूल्य कला-कृतियां दीं । `इन्दु` पत्रिका में ही हिन्दी के अन्य उत्कृष्ट लेखकों की कृतियां प्रथम बार प्रकाश में आयीं । हास्यरस की कहानी लिखने में सिद्धहस्त जी० पी० श्रीवास्तव की प्रथम कहानी `पिकनिक` सन् १६११ में `इन्दु` में छपी । सन् १६१२ में श्री विश्वम्भरनाथ जिज्जा ने `परदेशी` नामक सुन्दर कहानी लिखी । सन् १६१३ में राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह ने अत्यन्त भावुकतापूर्ण तथा मंजी हुई कहानी `कानों में कंगना` लिखी । सन् १६१३ में विश्वम्भर नाथ शर्मा `कौशिक` की प्रथम रचना `रक्षा-बन्धन` `सरस्वती` में प्रकाशित हुई । उनकी `विधवा` `ताई` `कर्त्तव्य-बल` `इक्केवाला` `विद्रोही` आदि कहानियों में हम सम्पूर्ण मध्यवर्ग का सामाजिक-जीवन पाते हैं । उन्होंने साधारण जीवन की घटना-प्रधान कहानियों की रचना की जिनमें गृहस्थी के भीतर के सजीव चित्रों के साथ-साथ उस समय की सामाजिक कुरीतियों, पर्दा, बाल-विवाह,

---

१. सम्पा०- अम्बिका प्रसाद गुप्त- `इन्दु` प्रका०- काशी,
प्रथम : संस्करण १६०६,

आदि सभी समस्याओं की तीव्र आलोचना अपने ढंग से उभर कर सामने आईं । सन् १६१४ में ज्वाला दत्त शर्मा की कहानियां और सन् १६१५ में प्रथम बार पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की अमर कहानी `उसने कहा था` सरस्वती में प्रकाशित हुईं । यह समूचे हिन्दी कथा-साहित्य की एक अद्वितीय और बेजोड़ रचना है । कथोपकथन का ऐसा सुन्दर यथार्थवादी-चित्रण और कहीं नहीं मिलता । इसमें चरित्र-चित्रण, कथा-प्रवाह, रोचकता आदि कथा साहित्य के सभी गुण विद्यमान हैं । उसी वर्ष चतुरसेन शास्त्री ने कहानी जगत में प्रवेश किया । उनकी प्रथम कहानी `गृह लक्ष्मी` है । इसके बाद श्री चंडी प्रसाद `हृदयेश` तथा अन्य अनेक कहानीकार कथा-साहित्य के क्षेत्र में आए । सन् १६२० में सुदर्शन ने उर्दू से हिन्दी में लिखना आरम्भ किया । इसके पश्चात् `उग्र` तथा भगवती प्रसाद बाजपेयी आदि कई लेखकों की रचनाएं सम्मुख आयीं ।

प्रेमचन्द —

७- हिन्दी के कहानी-साहित्य में प्रेमचन्द मूर्द्धन्य लेखकों में माने जाते हैं । `प्रसाद` के अतिरिक्त प्रेमचन्द का हिन्दी कहानियों के विकास में विशेष योग-दान है । उनकी कहानियों का आधार मनुष्य के जीवन के मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित हैं । उन्होंने जीवन की यथार्थ समस्याओं को, जो मानव-जीवन को खोखला कर रहीं हैं, उन्हें अपनी कहानी का विषय बनाया । प्रेमचन्द का कथन है : "वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है ।"[१] इस प्रकार प्रेमचन्द की कहानी के दो सुदृढ़ आधार हुए— १- मनोवैज्ञानिक-सत्य, २- यथार्थ जीवन की समस्याएं, इन दोनों आधारों को लेकर जो कहानी

---

१. साहित्य के उद्देश्य-पृ०सं०- ४१,

चलती है, वह सत्य से अधिक निकट, रोचक, मनोरंजक और शिक्षाप्रद होती है। लेकिन कहानी को जीवन का यथार्थ चित्र समझना भी भूल होगी। यथार्थ जीवन का चित्र तो मनुष्य स्वयं हो सकता है; मगर कहानी के पात्रों के सुख-दु:ख से हम जितना प्रभावित होते हैं, उतना यथार्थ जीवन से नहीं होते—जब तक वह निजत्व की परिधि में न आ जाए। पद्धति की दृष्टि से प्रेमचन्द की सम्पूर्ण कहानियों को हम दो विभागों में विभाजित कर सकते हैं— १- घटना-प्रधान,-जिसमें आश्चर्यजनक घटनाओं की श्रृंखला हो। २- चरित्र-प्रधान,- जिसमें किसी आदर्श पात्र का चरित्र-चित्रण किया गया हो। प्रेमचन्द ने चरित्र-प्रधान कहानी का पद ऊंचा माना है।

प्रेमचन्द के कहानी संग्रह :

८- १९१५ ई० के बाद प्रेमचन्द जब पूर्णत: हिन्दी में लिखने लगे तब प्राय: ऐसा भी हुआ कि हिन्दी में कहानियां लिखते चले गए जो विभिन्न पत्रिकाओं में भेजी गईं। बाद में उनको `संग्रहों` का रूप दिया गया। प्रेमचन्द के जीवन काल में उनकी कहानियों के २३ हिन्दी-संग्रह प्रकाशित हो चुके थे। प्राय: एक ही कहानी विभिन्न संग्रहों में भी सम्मिलित है।

१.	सप्त-सरोज	१९१७
२.	नव-निधि	१९१८
३.	प्रेम-पूर्णिमा	१९१८
४.	प्रेम-पच्चीसी	१९२३
५.	प्रेम-प्रसून	१९२४
६.	प्रेम-प्रतिमा	१९२६

७.	प्रेम-द्वादशी	१६२६
८.	अग्नि समाधि	१६२६
९.	प्रेम-तीर्थ	१६२६
१०.	प्रेम-चतुर्थी	१६२६
११.	पांच-फूल	१६२६
१२.	समर-यात्रा	१६३०
१३.	सप्त-सुमन	१६३०
१४.	प्रेम पंचमी	१६३०
१५.	प्रेम प्रतिज्ञा	१६२६
१६.	प्रेरणा	१६३२
१७.	प्रेम-प्रमोद	१६२६
१८.	नव जीवन	१६३५
१९.	पंच-प्रसून	१६३४
२०.	प्रेम-सरोवर)	
२१.	प्रेम-कुंज)[१]	
२२.	प्रेम-गंगा)	
२३.	प्रेम-लोक[२]	

जिनमें अन्तिम ४ संग्रहों का केवल उल्लेख मिलता है। तीन संग्रहों का उल्लेख और तिति डा० माता प्रसाद गुप्त ने दी है। किन्तु संग्रह नहीं प्राप्त हो सके। प्रेमचन्द के जीवन-काल में कुछ संग्रहों का प्रकाशन हुआ। उनकी मृत्यु के बाद फिर ये संग्रह नहीं प्रकाशित हुए। प्रेमचन्द ने अधिक से अधिक कहानियों को संग्रह करके अपने जीवन-काल में ही मान-सरोवर[३]

---

१. डा० राजेश्वर गुरु, प्रेमचन्द : एक अध्ययन- पृ०सं०- २७६, (परिशिष्ट १)

२. डा० रामरतन भटनागर,-'कलाकार प्रेमचन्द'- पृ०सं०- १६५,

३. मानसरोवर के दो भाग प्रेमचन्द के जीवन काल में ही निकल चुके थे।

के रूप में प्रकाशित करना आरम्भ कर दिया था । `मान सरोवर`[१] आठ भागों में है । २०३ कहानियों को इन आठ खंडों में सम्मिलित किया गया है ।

६- केवल उर्दू पत्रिकाओं में प्रकाशित जिनकी चालीस, कहानियों की गणना अमृतराय ने की है वह इस प्रकार हैं :—

१-	विक्रमादित्य का तेगा,	पत्रिका : ज़माना,		जनवरी १९११
२-	आखरी मंज़िल,	,,	,,	,,सित०१९११
३-	आल्हा,	,,	,,	जनवरी १९१२
४-	नसीहतों का दफ्तर,	,,	,,	मई,जून- १९१२
५-	राजहट,	,,	,,	सितम्बर १९१२
६-	त्रिया-चरित्र,	,,	,,	जनवरी-१९१३
७-	मिलाप,	,,	,,	
८-	मनावन,	प्रेमपच्चीसी		जून- १९१३
९-	अन्धेर,	,,	: ज़माना	जुलाई- १९१३
१०-	सिर्फ एक आवाज़,		,, अमस्त	सितम्बर१९१३
११-	नेकी,	उर्दू प्रेम पच्चीसी		
१२-	बांका जमींदार,	ज़माना		अक्तूबर १९१३
१३-	अनाथ लड़की,	,,		जून- १९१४
१४-	कर्मों का फल,	उर्दू प्रेमपच्चीसी		
१५-	अमृत,	,,		
१६-	अपनी करनी,	ज़माना		सितम्बर,अक्तूबर-१९१४

---

१. मूल-कहानी `विषम समस्या` दो भागों में (भाग-४) (भाग-८) विभिन्न शीर्षकों से (विषम समस्या भाग-४) (समस्या भाग-८) में सम्मिलित की गई है किन्तु पात्र, कथानक, सब एक ही हैं । इस प्रकार मानसरोवर की कहानियों की कुल संख्या २०२ है ।

१७- ग़ैरत की कटार,	ज़माना	:	जुलाई- १६१५
१८- घमंड का पुतला,	,,	:	अगस्त- १६१६
१६- विजय,	,,	:	अप्रैल- १६१८
२०- वफा का खंजर,	,,	:	नवम्बर- १६१८
२१- मुबारक बीमारी,	प्रेम बत्तीसी		
२२- वासना की कड़ियां,	,,		
२३- इज्जत का ख़ून,	प्रेम पच्चीसी		
२४- होली की छुट्टी,	जादे राह		
२५- नादान दोस्त,	ख़ाके परवाना		
२६- प्रतिशोध,	प्रेम चालीसी		
२७- देवी,	,,		
२८- ख़ुदी,	ख़ाके परवाना		
२६- बड़े बाबू	,,		
३०- राष्ट्र का सेवक,	प्रेम चालीसी		
३१- आख़री तोहफा,	आख़री तोहफा		
३२- कातिल,	,,		
३३- बोहनी,	प्रेमचालीसी		
३४- बन्द दरवाजा,	,,		
३५- त्रिशूल,	,,		
३६- स्वांग,	वरदात		
३७- तांगे वाले की बड़,	ज़माना		सितम्बर-१६२६
३८- शादी की वजह,	,,		मार्च-१६२७
३६- क्रिकेट मैच,	,,		जुलाई -१६३७

४०- कोई दुख न हो तो बकरी खरीद लो,- वरदात

निम्नांकित कुछ कहानियां ऐसी हैं, जिनका केवल उल्लेख मिलता है, मगर इन शीर्षकों से ये कहानियां प्राप्त नहीं हैं।

१- दहेज़) १) (१)
२- संकट)
३- मरहम
४- सौतेली मां[२]
५- गमी[३]

---

(१) १. डा० राम रतन भटनागर- कलाकार प्रेमचन्द, पृ०सं०- १६५,

२. ले० हंसराज रहबर,- प्रेमचन्द जीवन और कृतित्व, पृ० सं०- ७,६

३. डा० बरसाने लाल,- हिन्दी साहित्य में हास्य रस, चतुर्वेदी, प्रकाशन : हिन्दी साहित्य संसार दिल्ली, (शोध : प्रबन्ध) पृ० सं० १६८,

११- प्रेमचन्द के मन पर परिवार और समाज समस्या के रूप में आया । आर्थिक विवशता उनके निम्न, मध्यवर्गीय परिवार के साथ और स्वयं प्रेमचन्द के जीवन काल तक चलती रही । सामाजिक वातावरण एवं उस काल की राष्ट्रीय विवशता ने उनके जीवन के साथ अग्नि में ईंधन का काम किया । जीवन के इतने बड़े आघात को लेखक प्रेमचन्द ने दर्द बनकर ही न बुझने दिया, बल्कि दर्द का समाधान अपनी विभिन्न कहानियों के आंचल में ढूंढ निकाला । उनकी कहानियां सजीव होती गईं । उनकी कहानियों के पात्र कठपुतली न रह कर हाड़-मांस के चलते फिरते मानव नज़र आने लगे । उनका सुख-दुख पाठकों का सुख-दुख होगया । एक क्षण के लिए प्रेमचन्द की कहानी पाठक-मन पर अधिकार स्थापित कर उसको भी हंसाने-रुलाने लगी । प्रेमचन्द की कहानियों का विकास तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है :—
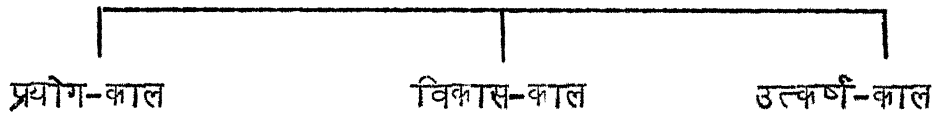
कहानियों की निश्चित संख्या :

१२- वर्गीकरण करने से पूर्व प्रथम प्रयत्न यह रहा कि प्रेमचन्द की कहानियों की संख्या निश्चित हो । अभी तक साहित्य के विषय में शोक का विषय है कि आलोचक साहित्यकार की सामग्री को तो हट कर आलोचना करते हैं किन्तु साहित्य-सामग्री के सम्बन्ध में भ्रान्ति ही है । स्मृति के आधार पर अथवा मान-सरोवर के आठ भागों की केवल आलोचना करते हैं ।

भ्रान्ति का कारण :

१३-कहानीकार प्रेमचन्द की अवतारणा मूलत: हिन्दी में न होकर उर्दू से हिन्दी में आई । प्रेमचन्द ने उर्दू में १६०७ ई० में कहानी लेखक का कार्य आरम्भ कर दिया था किन्तु हिन्दी में उनकी कहानी (सौत)[१] मानी जाती है । भ्रान्ति का मुख्य कारण प्रेमचन्द का हिन्दी-उर्दू दोनों ही भाषाओं में लिखना था । कुछ कहानियां हिन्दी के मूल रूप में रह गईं । उर्दू में अनुवादित न हो सकीं । कुछ कहानियां केवल उर्दू में रह गईं । हिन्दी में अभी तक नहीं आ सकी । आरम्भिक रचनाएं जो कि (ज़माना) पत्रिका में निकलती थीं उर्दू की ही पत्रिकाओं में छिपी रहीं हिन्दी में उनका अनुवाद नहीं हो सका । कुछ आलोचकों ने तो प्रेमचन्द की मूल कहानियों के साथ प्रेमचन्द द्वारा टॉल्सटॉय की अनुवादित कहानियों को भी मूल कहानियों से मिला दिया है । जिन कहानियों का वर्गीकरण करके समालोचना उपस्थित की गयी है, वे इस प्रकार हैं :—

मानसरोवर की कहानियां-	२०२
कफ़न-	१४
केवल पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियां-	१२
`प्रेम चतुर्थी` की कहानी	१
(अन्य कहानियां मानसरोवर में हैं ।)	
	योग—२२६

---

१. सरस्वती,- सन् १६१५

दो सौ उन्तीस कहानियों का वर्गीकरण :

१- सामाजिक-	११६
२- पारिवारिक-	१६
३- मनोवैज्ञानिक-	१८
४- राजनैतिक-	२२
५- ऐतिहासिक-	१६
६- ग्रामीण-	३५
७- प्रहसन-	१)
८- व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित-	२)
	२२६

प्रारम्भ की ४४ कहानियां जो उर्दू पत्रिकाओं से प्राप्त हुई है, उनका वर्गीकरण भी इस प्रकार है (ये कहानियां प्रेमचन्द के किसी संग्रह में नहीं हैं।)

सामाजिक-	३३
ऐतिहासिक-	८
राजनीतिक-	३

४४ + २२६ = २७३ कुल

कहानियां, जिनका वर्गीकरण किया गया है। प्रेमचन्द ने एक ही नाम से दो दो निम्नांकित कहानियां भी लिखी हैं। जैसे - `मंत्र`, `लांछन`, `परीक्षा`, `शान्ति`, `सती`, `धिक्कार`, `सौत`, `देवी`, ये कहानियां उपर्युक्त कुल संख्या में सम्मिलित हैं।

पत्रिका :	कहानी :	तिथि:	
१- विशाल भारत,	कवच,	जुलाई, दिसम्बर	१६२६
२- माधुरी,	सैलानी बन्दर,	फरवरी-	१६२४
३- माधुरी,	मन्दिर-मस्जिद,	मार्च-	१६२५
४- माधुरी,	पर्वत-यात्रा,	अप्रैल-	१६२६
५- सरस्वती,	पुत्र-प्रेम,	जून-	१६२०
६- सरस्वती,	प्रेम-सूत्र,	जनवरी-	१६२६
७- माधुरी,	पैपु जी,	अक्तूबर-	१६३५
८- विशाल-भारत,	(सौत)-२	दिसम्बर-	१६३१
६- चांद,	देवी,	अप्रैल-	१६३४
१०- सरस्वती,	नव-नीति-निर्वाह,	मार्च-	१६२४
११- चंदन,	दूसरी शादी,	सितम्बर-	१६३१
१२- माधुरी,	मोटे राम जी शास्त्री,	जनवरी-	१६२८

वर्गीकरणानुसार प्रथम प्रेमचन्द की सामाजिक-कहानियां आती हैं।

सामाजिक कहानियां : (संख्या- १४६)

१४- सामाजिक कहानियों का आधार समाज है। समाज का निर्माण व्यक्तियों से होता है। व्यक्ति के अभाव में समाज की कल्पना असम्भव है। समाज में रहने वाले विभिन्न व्यक्तियों के व्यवहार और आदान-प्रदान की चरम अभिव्यक्ति ही समाज है। समाज के अन्तर्गत व्यक्ति का व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक जीवन होता है। इन तीनों का समन्वय और सामंजस्यपूर्ण रूप ही समाज का वास्तविक स्वरूप है। सामाजिक कहानियों में इन्हीं में से किसी रूप का चित्रण

रहता है, किन्तु उसका स्वरूप ऐसा होता है कि वह सामाजिक प्रतीक हो। समाज के किसी अंग अथवा स्थिति, परिवार या व्यक्ति का उल्लेख सामाजिक कहानियों में होता है। ऐसी कहानियों का वातावरण, परिस्थितियाँ, पात्र सभी समाज के अन्तराल से कहानी गढ़ने में प्रवृत होते हैं। प्रेमचन्द की सामाजिक-कहानियाँ जनता के जीवन की कहानियाँ हैं। वह जनता के लिए ही लिखी गयी हैं और जनता ही उसके परखने का पूर्ण अधिकार रखती है। प्रेमचन्द लिखते हैं : "आख्यायिका साधारण जनता के लिए लिखी जाती है, जिनके पास न धन है, न समय।"[1]

१५- प्रेमचन्द ने अपनी सभी कहानियों को सबसे अधिक जीवनव्यापी, जनव्यापी और देशव्यापी बनाया है। आरम्भ में अवश्य प्रेमचन्द को सामाजिक-कहानियाँ 'चरित्र' की अपेक्षा 'आचरण' को अपना विषय बनाती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि पात्रों के चरित्रों का परिचय इतना अधिक नहीं मिलता, जितना कि विशेष अवसर और परिस्थितियों में उनका आधार क्या होगा, यही हम पाते हैं। आचार के द्वारा कहानी के सूत्र खुलते-मिलते चलते हैं और घटनाएं आचारों के स्तम्भों का सहारा लेती हुई, कथानक को पूर्णता प्रदान करती हैं। 'बड़े घर की बेटी' 'पंच परमेश्वर' 'परीक्षा' 'उपदेश' 'नमक का दरोगा' 'सज्जनता का दंड' 'सौत' आदि कृत्यों की रूपरेखा के अतिरिक्त अस्थूल भाव को अधिक स्पर्श नहीं करतीं। प्रेमचन्द की आरंभिक कहानियों में जमीदार, किसान, देहाती, व्यापारी, इन्जीनियर, ठेकेदार, वकील, मौलवी, नमक के दरोगा, जमादार, अदालत के कर्मचारी, डिप्टी मैजिस्ट्रेट, देशसेवी, वकील के मोहर्रिर, कारिन्दा, पुलिस के

---

१. प्रेमचन्द,- कहानी-कला,- सं०- प्रथम
जुलाई, १९५४, पृ० सं०- ३८,

दारोगा, चौकीदार आदि पात्र वर्णन का विषय बने हैं। पर सभी पतनोन्मुख, अनैतिक, जर्जर। `कर्तव्य` से `धन` सब को प्यारा है। सभी उसके लिए उन्मत्त, सब कुछ करने के लिए व्यग्र प्रतीत होते हैं। यह धन भी वे उचित साधनों से नहीं सहज अनुचित साधनों से प्राप्त करना चाहते हैं। इसके लिए बड़े बड़े तर्क भी उपस्थित करते हैं। "------------------- नेक नीयती से तो काम नहीं चलता, यह दुनिया तो छल-कपट की है। ,,,,,नेक और पाक रहना जरुर अच्छी चीज है, मगर ऐसी नेकी ही से क्या, जो दूसरों की जान ले ले।"[१] "----------- चालीस हजार नहीं, चालीस लाख पर भी असम्भव है-----------(लेकिन रिश्वत न लेने पर भी) मुंशी जी को न्याय भी अपनी ओर से कुछ खिंचा हुआ, दीख पड़ता था। वह न्याय का दरबार था, परन्तु उसके कर्मचारियों पर पक्षपात का नशा छाया हुआ था।"[२] इस प्रकार प्रेमचन्द ने अपनी आरंभिक कहानियों में समाज की विभिन्न प्रकार की कपट-लीलाओं का चित्र उपस्थित किया है, लेकिन अंत `आदर्शात्मक` ही था। आरंभिक-कहानियों में प्रेमचन्द ने यह भाव प्रकट किया है कि सामाजिक-परम्पराएं सद्मानव को कष्ट देती हैं और स्वयं उसके पराजित भाव, उसके मन में विष घोल देते हैं और उसके जीवन को नष्ट कर देते हैं। लेकिन कष्टों से प्रताड़ित जीव भी, उन कष्टों को सहता है और ईश्वर-विश्वास के सहारे अपनी नाव पार लगाना चाहता है। मनुष्य की आध्यात्मिक विजय यही है कि वह महान् अदृष्ट विरोधी शक्तियों से अन्त तक लड़ता रहे और उसकी हार अवश्यम्भावी होने पर भी हम उसकी आत्मा की महानता के कायल हो जाएं।

---

१. क०- `सज्जनता का दंड` मान० भाग-८, पृ०सं०- २६६,

२. प्रेमचन्द-कहानी `नमक का दरोगा` मान० भाग-८, पृ० सं०-२७६,

१६- प्रेमचन्द मनुष्य को धीरे-धीरे संघर्षों के बीच में से होकर ऊँचे आध्यात्मिक स्तर पर उठा देना चाहते थे। प्रेमचन्द भारतीय संस्कृति से अच्छी तरह परिचित थे। वे जानते थे, हमारी संस्कृति का हृदय कहां है, और उससे जो जीवन धाराएं निकलती हैं, वे किस ओर बहती हैं। भारतीय-संस्कृति में एक विशेषता यह है कि उसने शरीर से अधिक बल आत्मा पर दिया, है,उसका आधार आध्यात्मिक है, बौद्धिक नहीं। प्रेमचन्द इस बात को जानते थे। इसी कारण उनकी कहानियों में सांस्कृतिक सन्देश है, जो उनकी रचना पर भारतीयता की छाप लगा देता है। प्रेमचन्द की एक कहानी है "घमंड का पुतला" इस कहानी में प्रेमचन्द ने अपने आध्यात्मिक आदर्श का सुन्दर उदाहरण उपस्थित किया है— "कुंवर सज्जन सिंह खानदानी रईस थे। उनको वंश-परम्परा यहां-वहां टूटती हुई अन्त में किसी महात्मा ऋषि से जाकर मिल जाती थी। उन्हें तपस्या और भक्ति और योग का कोई दावा न था, लेकिन इसका गर्व उन्हें अवश्य था कि वे एक ऋषि की सन्तान हैं। x x x x x x बेशक वह आदमी है, जो हुकूमत और अख्तियार के तूफान में, जड़ से उखड़ जाए पर झुकेगा नहीं x x x x x (अन्त में प्रेमचन्द उज्जवल आदर्श उपस्थित-करते हैं) मेरे दोस्त, मैं आज तक तुम्हारी आत्मा के बड़प्पन से बिलकुल बेखबर था। आज तुमने मेरे हृदय पर उसको अंकित कर दिया कि वैभव और प्रताप, कमाल और शोहरत यह सब घटियां चीज़ें हैं, भौतिक चीज़ें हैं। वासनाओं में लिपटे हुए लोग इस योग्य नहीं कि हम उनके सामने भक्ति से सिर झुकाएं, वैराग्य और परमात्मा से दिल लगाना ही महान् गुण हैं जिनकी ड्योढ़ी पर बड़े-बड़े वैभवशाली और प्रतापी लोगों के सिर भी झुक जाते हैं। यह वह ताकत है, जो वैभव और प्रताप को, घमंड की शराब के मतवालों को और जड़ाऊ मुकुट को अपने पैरों पर गिरा सकती है। ऐ तपस्या के एकान्त में बैठने वाली आत्माओं! तुम धन्य हो कि घमंड के

पुतले भी तुम्हारे पैरों की धूल को माथे पर चढ़ाते हैं।-------गर्व में भी आत्मिकता को पाया जा सकता है[1]।"

१७- प्रेमचन्द अच्छी तरह जानते थे कि पश्चिम ने जहां हमारे सामने ज्ञान-विज्ञान के अनेक मार्ग रक्खे, वहां उसने हमारी 'आत्मा' का रस चूस लिया है। हम धीरे-धीरे अपने आदर्श से हट गए हैं। इस समय हम संक्रान्तिकाल में हैं। यदि इस युग में हम अपने प्राचीन महत् आदर्शों को अपनी आंख की ओट कर देंगे और पश्चिम के दिखाए हुए मार्ग पर अन्धे की तरह आगे बढ़ते चले जाएंगे तो हमारा भविष्य निश्चय ही काला है। प्रेमचन्द ने इस सत्य को हमारे सम्मुख रक्खा है और हमें चेतावनी दी है। प्रेमचन्द ने भौतिकता को स्वीकार करते हुए आध्यात्मिकता से हाथ नहीं धो लिया, वरन् इन दोनों सीमाओं के बीच का मार्ग निकालने की चेष्टा की। प्रेमचन्द की 'एक्ट्रेस' 'दो सखियां' 'दो बहनें' 'वेश्या' मि० पद्मा' आदि कहानियां इनका सुन्दर उदाहरण हैं। 'वेश्या' और 'एक्ट्रेस' कहानी में प्रेमचन्द ने इस भाव को दर्शाया है कि जिनको समाज केवल रंगी गुड़ियां समझता है। उनके भी हृदय होता है और उनकी आत्मा भी पवित्रता और विश्वास से कितनी उठी रहती है। अपने जीवन को वह एक आघात से उत्सर्ग भी कर सकती हैं। वह केवल कुलटाएं ही नहीं आत्म-उत्सर्ग की देवी भी हैं, उनमें केवल विश्वास जगाने की प्रेरणा चाहिए।

१८- प्रेमचन्द को समाज की अजीर्णता और दूषिता सदैव अखरती थी, वह हमेशा स्वस्थ समाज की कल्पना करते थे, जहां विषमता का स्थान कम से कम हो। प्रेमचन्द ने समाज की अजीर्णता

---

१. प्रेमचन्द— क० 'घमंड का पुतला', गुप्त धन, भाग- १
प्रका० हंस इलाहाबाद १९६२, पृ० सं० २०६,

का कारण क्या है ? इसके संकेत विभिन्न कहानियों के माध्यम से बड़े ही कलात्मक ढंग से दिए हैं । प्रेमचन्द समाज के दोषों का कारण `धन` के वितरण की असमानता को मानते थे । `महाजनी सभ्यता` का लेख प्रेमचन्द के विचारों का आग्रह है । `समस्याओं` के रूप में प्रेमचन्द ने जन-साधारण की व्यापक हीनताओं से पाठक का तादात्म्य कराने की पूरी चेष्टा की है । प्रेमचन्द पाठकों के हृदय में उन गुणों का आग्रह और आदर उत्पन्न कर देना चाहते थे जिससे जन-साधारण से पाठक की सहानुभूति हो और वह कर्तव्य पालन करे । यही प्रेमचन्द की सामाजिक कहानियों की मुख्य विशेषता है । प्रेमचन्द की सामाजिक कहानियां ब्रिटिश सत्ता के काल और राष्ट्रीय जाग्रति के मध्य की हैं, जिन में विशृंखलित, जर्जरित समाज कराह रहा है, जिसमें न्याय चाहने वाले का उपहास है । धार्मिकता मनुष्य का पिछड़ापन है और `शिक्षा` दिन दहाड़े लूटने का साधन ।

१६- सामाजिक कहानियों के अन्तर्गत प्रेमचन्द ने कुछ कहानियां ऐसी लिखी हैं जो `जड़वाद अथवा आत्मवाद` के प्रकटीकरण का रूप प्रतीत होती हैं । प्रेमचन्द का विचार था—`विद्वानों की दुनिया में आजकल आस्तिक और नास्तिक का पुराना झगड़ा फिर उठ खड़ा हुआ है । यह झगड़ा कभी शान्त होने वाला तो है नहीं, हां, उसके रूप बदलते रहते हैं । x x x x x x x x हमारे जैसे साधारण कोटि के मनुष्यों के लिए तो ईश्वर का अस्तित्व कभी विवाद का विषय हो ही नहीं सकता---- विवाद का विषय केवल यह है कि वह दुनियावी मामलों में कुछ दिलचस्पी लेता है या नहीं-----------
-------(अन्त में प्रेमचन्द स्पष्ट कर देते हैं कि ईश्वर का कोई प्रयोजन-नहीं)-------------मनुष्य की भलाई और बुराई की परख उसकी

सामाजिक या असामाजिक कृतियों में हैं। जिस काम से मनुष्य-समाज को क्षति पहुंचे, वही पाप है, जिससे उसका उपकार होता है, वही पुण्य है।"[१] प्रेमचन्द की 'मूठ' 'प्रारब्ध' 'पूर्व संस्कार' 'गुप्त धन' 'बलिदान' 'ज्वालामुखी' 'नागपूजा' 'मन्त्र' आदि कहानियां सनातन विश्वास की अपूर्व झांकियां उपस्थित करती हैं। आस्तिकता की व्याप्त भावना से लिखी गयी कहानियां : "ईश्वरीय न्याय। 'गरीब की हाय' 'आत्माराम' 'दुर्गा का-मन्दिर' आदि आचरण के पथ से आगे बढ़ कर आचरण की प्रेरणाओं से सत्य को प्रकाश में लाने में तत्पर हो गयी हैं।

२०- सामाजिक कहानियों के अन्तर्गत कुछ कहानियां ऐसी हैं जो पाश्चात्य सभ्यता के प्रबल विरोध में लिखी गयी हैं। 'शान्ति' नामक कहानी इसका प्रबल प्रमाण है। कहानी का पात्र पाश्चात्य-सभ्यता की व्यंजना करता है— "मैं जिस स्वच्छ लहराते हुए निर्मल जल की ओर दौड़ा जा रहा था, वह मरुभूमि है। मैं इस प्रकार के जीवन के बाहरी रूप पर लट्टू हो रहा था, परन्तु अब मुझे उसकी आन्तरिक अवस्थाओं का बोध हो रहा है। x x x x x यहां न तो हृदय को शान्ति है, न आत्मिक आनन्द। यह एक उन्मत्त, अशान्तिमय, स्वार्थपूर्ण, विलासयुक्त जीवन है। यहां न नीति है; न धर्म; न सहानुभूति, न सहृदयता; x x x x x (मां) उनकी वह ममतापूर्ण दृष्टि, वह स्नेहपूर्ण शुश्रूषा मेरे लिए सौ औषधियों का काम करेंगी। उनके मुख पर वह ज्योति प्रकाशमान होगी, जिसके लिए मेरे नेत्र तरस रहे हैं। उनके हृदय में स्नेह है, विश्वास है। उनकी गोद में आत्मा को शान्ति मिलेगी।---------मैं अब समझ गया कि उसी सादे पवित्र

---

१. प्रेमचन्द : जड़वाद और आत्मवाद-साहित्य के उद्देश्य, पृ० सं०- ८३,

जीवन में वास्तविक सुख है । x x x x x (पत्नी के प्रति) मैं फिर तुम्हें वही पहले की सी सलज्ज, नीचा सिर करके चलने वाली, पूजा करने वाली, रामायण पढ़ने वाली, घर का काम-काज करने वाली, चरखा कातने वाली, ईश्वर से डरने वाली पति-श्रद्धा से परिपूर्ण स्त्री देखना चाहता हूँ ।"[१]

२१- प्रेमचन्द का प्राय: अपनी सभ्यता की ही ओर लौटने का पुन: आग्रह रहा । वे नारी को सेवा और त्याग की साकार प्रतिमा समझते थे । उश्रृंखलता नारी जीवन का अभिशाप समझते थे । जो नारी को पतन की ओर ले जाने वाला है । इसके अतिरिक्त समाज-विधान के विभिन्न अवांछनीय रूपों का स्पष्टीकरण प्रेमचन्द ने किया है । 'नैराश्य-लीला' में विधवा-विवाह का, 'नरक का मार्ग' में नारी के अनमेल विवाह का, 'ग्रहदाह' में विमाता का, 'बूढ़ीकाकी' में अपाहिज वृद्धा का, 'विस्मृति' में प्रेम और कुल प्रतिष्ठा का, 'ब्रह्म का-स्वांग' में जाति भेद और वर्णभेद का, 'शंखनाद' में सम्मिलित-कुटुम्ब का, 'खून-सफेद' में बिरादरी की मर्मज्ञता का और छूत-अछूत का, 'जीवन के-शाप' में धन की असमानता का, 'क्रिकेट मैच' में जीवन का लक्ष्य क्या हो ? आदि आदि मार्मिक स्थलों का पता चलता है, जो समाज को और पीड़ित कर रहे हैं ।

पारिवारिक-कहानियाँ— १६

२२- पारिवारिक कहानियाँ मूलरूप में कौटुम्बिक जीवन की विषाद रेखाएं बन कर आयी हैं । 'बेटों वाली विधवा' 'स्वामिनी' 'अलग्योझा' 'घरजमाई' 'झांकी', 'ज्योति', 'धिक्कार', 'कायर' 'शिकार' आदि आदि में घर के कलहपूर्ण वातावरण का चित्रण है,जिसके

---

१. प्रेमचन्द : 'शान्ति' मान० भाग- ७
पृ० सं०- ६२,

कारण घर में अन्धेरा छा जाता है, और गृहस्थी जंजाल मालूम होने लगती है । साधारणत: गृह-कलहों को अनुभव से सभी जानते हैं, लेकिन प्रेमचन्द ने इसे लिखकर कटु यथार्थ का सही-सही निरुपण किया है । प्रेमचन्द ने पारिवारिक-कहानियों का चित्रण अधिकतर इस कारण से किया है कि लोगों का ध्यान इन छोटी-छोटी जीवन घटनाओं की ओर खिंचे और वे उनकी कटुता मिटाने का प्रयत्न करें । प्रेमचन्द ने जीवन की यथार्थता को आदर्श की स्थापना से सम्भव करके दिखाया है । प्रेमचन्द मानव आत्मा के प्रतिभा सम्पन्न शिल्पी थे, इसीलिए वह मानव-कल्याण के लिए असम्भव आदर्श को भी सम्भव कर सकने में समर्थ थे । सम्भवत: प्रेमचन्द का विश्वास था कि मनुष्य के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है । यदि मनुष्य पाप के अतल में जा सकता है तो वह आकाश-गंगा में भी नहा सकता है । प्रेमचन्द की प्रत्येक पारि-वारिक-कहानी की यह स्पष्ट व्यंजना थी——भारतीय गृह का पहला नियम `विवाह` है, गृह का संचालन प्रकाश से उज्जवल रहे, वह जीवन का भार बन कर उदास मलिनता से निस्तेज न बने । इसके लिए सेवा और समर्पण, विश्वास और निष्ठा से स्वाभाविक आकर्षण की आवश्यकता है । इन्हीं गुणों के सहारे उत्पन्न प्रेम, कौटुम्बिक प्रेम है, इसके उत्पन्न हो जाने पर घर का संचालन ठीक हो उठता है, इसके न होने से ही दुर्घटनाएं घटती हैं । घर के कलह का यही मुख्य कारण है । घर के लिए `प्रेम` तो आवश्यक है, `प्रेम की पिपासा` नहीं । इस प्रेम के साथ पारस्परिक विश्वास होना चाहिए, अन्यथा गृह का विधान शिथिल हो जाएगा और भयंकर दुर्घटनाएं हो कर रहेंगी । `घर` की कहानी दुखद न हो, इसके लिए आत्म-त्याग, सेवा, विश्वास, पारस्परिक प्रेम, सहृदयता तथा आत्मीयता की आवश्यकता है । प्रेमचन्द ने अपनी पारिवारिक-कहानियों में इस प्रकार के समाधान प्रस्तुत किए हैं ।

मनोवैज्ञानिक-कहानी : १८

२३- प्रेमचन्द ने मानव-प्रकृति का गहरा अध्ययन किया था। इसे दूसरे शब्दों में हम `मनोविज्ञान` कह सकते हैं। यही `मनोविज्ञान` प्रेमचन्द की कहानियों का प्राण और आत्मा है। मनुष्य एक ही तरह की घटना से किस प्रकार प्रभावित होता है? सुख-दुख, हर्ष-शोक, ईर्ष्या-द्वेष, प्रेम-घृणा आदि प्राकृतिक मनोभावों को मनुष्य अपने क्रिया-कलाप में किस प्रकार प्रकट करता है? यह सब बातें मनोविज्ञान से सम्बन्ध रखती हैं। राम प्रकाश दीक्षित के शब्दों में—"समाज में व्यक्ति और समाज को लेकर, व्यक्ति और परिवार को लेकर, व्यक्ति और व्यक्ति को लेकर अनेक मुखी द्वन्द्व चलते रहते हैं। इसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव व्यक्ति की चेतना पर पड़ता है और अनेक रूपों में प्रतिफलित होता है। इनको लेकर मानव मन में अनेक प्रकार के ऊहापोह, तर्क-वितर्क चलते हैं। इन्हीं के चित्रण के लिए कहानी लेखक को मनोविज्ञान का सहारा लेना पड़ता है। मनोविज्ञान ही व्यक्ति के मन में घुसकर उसके रहस्यों का उद्घाटन करता है।"[१]

२४- प्रेमचन्द ने मनोवैज्ञानिक कहानियों में व्यक्ति के मन अथवा उसकी किसी मन:स्थिति या चित्तवृत्ति का चित्रण किया है। डॉ० देवराज उपाध्याय ने तो प्रेमचन्द की कुल कहानियों को मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि के अन्तर्गत उपस्थित किया है। आपका विचार है कि आरंभिक कहानियां अवश्य घटनाबाहुल्य हैं, लेकिन ज्यों-ज्यों प्रेमचन्द की कला में प्रौढ़ता आती गयी मनोविज्ञान का रंग गहरा होता गया, और व्यंजना स्पष्ट होती गयी। डा० देवराज उपाध्याय ने प्रेमचन्द की `मनोवृत्ति`[२] कहानी को एक सच्ची मनोवैज्ञानिक कहानी मानी है। परन्तु मेरा आशय

---

१. राम प्रसाद दीक्षित : "हिन्दी कहानी (स्वरूप, विकास और-प्रतिनिधि कहानीकार) पृ०सं०- ६६,

२. "मनोवृत्ति आधुनिक अमेरिकन तथा अंग्रेजी मनोवैज्ञानिक कहानियों से टक्कर लेने वाली है।" आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान

`मनोवैज्ञानिक-कहानियों` से उन कहानियों का संकेत मात्र है जो हृदय-परिवर्त्तन और मन:स्थिति परिवर्त्तन में विशेष सहयोग और सफलता प्रदान करती हैं। प्रस्तुत प्रबन्ध में सैद्धान्तिक मनोविज्ञान की रूपरेखा प्रस्तुत न कर शोध-प्रबन्ध का आग्रह उस मन:स्थिति के परिवर्त्तन से है जो उपयुक्त अथवा अनुकूल दिशा पाकर पल्लवित होता है और प्रतिकूल दिशा में विध्वंस की ओर बढ़ जाता है। `नैउर` `बालक` `प्रेरणा` `आधार` `अभिलाषा` आदि आदि----कहानियों में इसी ढंग का मनोविज्ञान है। `आधार` नामक कहानी में `अनूपा के हृदय और मन की व्यंजना अत्यधिक सजीव है। प्रेमचन्द ने पूर्ण सतर्कता के साथ और स्वाभाविक ढंग से बालिका की चित्तवृत्ति को इस भांति स्पष्ट किया है ; "अनूपा को किसी आधार की जरुरत थी। वह आधार मिल गया। सेवा मनुष्य की स्वभाविक वृत्ति है। सेवा ही उसके जीवन का आधार है।------ जिस हृदय में सेवा का स्रोत बह रहा है--स्वाधीन सेवा का-उसमें वासनाओं के लिए कहां स्थान ? वासना का वार निर्मम, आशाहीन आधारहीन, प्राणियों पर होता है।"[१]

२५- प्रेमचन्द ने इस कहानियों में मानसिक प्रेरणा और बल को, जीवन की सद्वृत्तियों के आधार पर स्पष्ट किया है। पात्रों के ये चित्रण पूर्णत: मानवीय ढंग से किए गए हैं।प्रेमचन्द अपने जीवन के अंतिम काल की कहानियों में यह बराबर अनुभव कर रहे थे कि कहानियों की प्रेरणा उन्हें मनोविज्ञान के क्षेत्र की ओर प्रेरित कर रही है। उन्होंने स्वयं अपनी कुछ कहानियों को मनोवैज्ञानिक-कहानी माना है। प्रेमचन्द लिखते हैं :--"मेरी `सुजान`भगत, `मुक्ति-मार्ग`, `पंच परमेश्वर`, `शतरंज के खिलाड़ी` और `महातीर्थ` नामक सभी कहानियों में एक न एक

---

१. मान सरोवर,- भाग- ४, हंस प्रकाशन,

मनोवैज्ञानिक रहस्य को खोलने की चेष्टा की गयी है।"[१] डॉ० देवराज के शब्दों में, "इससे स्पष्ट है कि प्रेमचन्द कहानियों के लिए मनोवैज्ञानिकता के महत्व को अच्छी तरह अनुभव कर रहे थे पर मनोवैज्ञानिक प्राण-प्रतिष्ठा कहानियों में किस तरह और क्यों कर हो सकती है, इस बात का यथार्थ ज्ञान उन्हें नहीं था। आज का आलोचक आज की प्रौढ़ मनोवैज्ञानिकता के आलोक में 'पंचपरमेश्वर', 'सुजान-भगत', 'मुक्ति-मार्ग', जैसी कहानियों को यदि वह मनोवैज्ञानिक कहानियों की श्रेणी में रखेगा तो उसे अपने माप-दंड को थोड़ा शिथिल करना पड़ेगा।"[२]

२६- प्रेमचन्द का उद्देश्य आदर्श, सेवानिष्ठ, प्रेमयुक्त पात्रों को चित्रित करने का था, जिनसे पाठक कुछ सीख सके। मनोविज्ञान तो केवल साधन मात्र था, पात्रों में सजीवता और प्राण-प्रतिष्ठा लाने का, जिससे कि पात्र निर्जीव न प्रतीत हों। प्रेमचन्द इसमें पूर्ण सफल हुए हैं। मानव-मनोजगत के आन्तरिक भावों को, उनमें हृदय-स्फुरण, प्राणों के स्पन्दन का आभास मिलता है। लेकिन उनमें आदर्शों और जीवन के मूल्यों के प्रति विशेष आग्रह होने के कारण व्यक्ति का वह रूप जिसमें उसकी वैयक्तिक अनुभूतियों की ही प्रधानता रहती है, जिसमें उसकी आत्मनिष्ठा और अधिक परिस्फुटित रहती है, उसके साथ उचित न्याय नहीं हो सका है।

---

१. 'साहित्य के उद्देश्य'- पृ० सं०- ५१,

२. 'आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान' डा० देवराज उपाध्याय, पृ० सं०—१६२,

२७- प्रेमचन्द ने साहित्य में सामाजिक व्यक्ति—समाज तथा राजनीति के रंगमंच पर अभिनय करने वाला और बादमें-परिस्थितियों की छाप ग्रहण करने वाले व्यक्ति का ही चित्रण प्रस्तुत किया है। यद्यपि प्रेमचन्द पात्रों के स्वाभाविक विकास की अनिवार्यता को अनुभव कर रहे थे, उनकी प्रतिभा और सहजानुभूति साहित्यिक कला की प्रगतिशीलता को भी समझती थी।

ऐतिहासिक-कहानियां : १६

२८- भारतीय-संस्कृति के आदर्श को प्रस्तुत करने हेतु प्रेमचन्द ने ऐतिहासिक कहानियों की योजना की। ऐतिहासिक कहानियों के द्वारा प्रेमचन्द इतिहास की अच्छी बातें ग्रहण करने और त्रुटियों और बुराइयों को छोड़ देने की प्रेरणा प्रदान करते हैं। इस प्रकार ऐतिहासिक कहानियां सांस्कृतिक-शिक्षा का सफल कार्य करती हैं। प्रेमचन्द की प्रस्तुत कहानियां राजपूतों, मराठों, ठाकुरों की कहानियां हैं जो बात पर जान दे देते थे, देश-प्रेम जिनका ईश्वर संग था, जो शरणागत की रक्षा के लिए सदा तत्पर रहते थे, फिर चाहे वह उनका शत्रु ही क्यों न हो। प्रेमचन्द की `रानी-सारंधा` `मर्यादा की बेदी` `राजा-हरदौल` `राज्य भक्त``सती` आदि कहानी आदर्शात्मक कहानी हैं, अपने इतिहास के वे उज्जवल पृष्ठ हैं, जिसमें वीरों की स्त्रियां बलिदान की मूर्तियां हुआ करती थीं। अपने सतीत्व की रक्षा के लिए वे जलती आग में कूद पड़ती थीं। रण से भागे हुए पति के लिए उनके द्वार बन्द थे। `सती`[१] कहानी में इसका उदाहरण प्रस्तुत है। `राजा हरदौल`

---

१. "अग्नि-शिखा चिन्ता के मुख तक पहुंच गयी। अग्नि में कमल खिल गया। चिन्ता स्पष्ट स्वर में बोली—खूब पहचानती हूं। तुम मेरे रत्नसिंह नहीं। मेरा रत्न सिंह सच्चा शूर था। वह आत्म-रक्षा के लिए, इस तुच्छ देह को बचाने के लिए अपने क्षात्रिय धर्म का परित्याग न कर सकता था--------वह वीर राजपूत था, रण क्षेत्र से भागनेवाला कायर नहीं।" (मान० भाग५—पृ० सं०-८०,)

कहानी में देह के ऊपर आत्मा, तलवार के ऊपर प्रेम, असत्य के ऊपर सत्य, और पाप के ऊपर पुण्य की महत्ता को स्थापित करने का प्रयत्न प्रेमचन्द ने किया है । प्रेमचन्द का ध्येय भारतीय संस्कृति के उज्ज्वलतम चरित्रों के आलोक से साधारण जन मानव को उठाना था । प्रेमचन्द की ये कहानियां प्रारंभिक कहानियां हैं, जब कि वह अपने लिए एक मार्ग-दृष्टि स्थिर कर रहे थे और वास्तविकता की घोर यथार्थता का प्रेमचन्द को अभी अनुभव न था । प्रेमचन्द की ये ऐतिहासिक कहानियां यद्यपि `कल्पना` के रंग से अधिक मढ़ी हैं, ऐतिहासिक परिणामों से दूर हैं, लेकिन हमारी संस्कृति के ये स्थायी स्तम्भ हैं ।

२६- प्रेमचन्द की अनुभवशील बुद्धि केवल प्राचीन राग अलापने में ही व्यस्त न रही, उन्होंने बहुत ही जल्दी यह भी अनुभव किया कि हम पतन के गर्त में विलीन होते जा रहे हैं । प्रेमचन्द ने उत्तर मुगल-काल और पूर्व अंग्रेज-काल पर भी कहानियां लिखीं— `शतरंज के खिलाड़ी` ऊंचे दर्जे के विलासमय जीवन का मार्मिक चित्र है । ह्रासोन्मुख सामंतीय वातावरण कहानी के आरंभ से ही मूर्त्त हो उठा है । यह वर्णन लखनऊ के समाज का ही नहीं, वरन् समस्त देश के अध:पतन का लेखा-जोखा है । बड़े-छोटे, अमीर-ग़रीब, कवि-कारीगर, अधिकारी, शासक और जनता सभी का एक सा हाल था, यहां तक कि समाज के ठेकेदार फकीर और सन्यासी तक इस पतन के गर्त में गिर रहे थे । लखनऊ का स्थानीय रंग देकर इस अध:पतन वर्णन को और भी गहरा किया गया है । विलास, दुराचार, पतन के पंक में लिप्त तत्कालीन युग का समाज इस कहानी में पूर्णत: उभर आया है । उस समय भारतीयों का सामाजिक राजनीतिक, नैतिक दृष्टि से जो घोर अध:पतन हो रहा था, उसका उद्घाटन अपनी समग्रता में कहानी में वातावरण-सृष्टि द्वारा हुआ है । उदाहरण : "वाजिद अली का समय था । लखनऊ विलासता के रंग में डूबा हुआ था ।

छोटे-बड़े अमीर-गरीब सभी विलासता में डूबे हुए थे। कोई नृत्य और गान की मजलिस सजाता, तो कोई अफीम की पिनक ही के मजे लेता था। जीवन के प्रत्येक विभाग में आमोद-प्रमोद का प्राधान्य था। शासन विभाग में, साहित्य क्षेत्र में, सामाजिक व्यवस्था में, कला-कौशल में, उद्योग-धन्धों में, आहार-व्यवहार में सर्वत्र विलासता का मद छाया हुआ था---- बटेर लड़ रहे हैं। तीतरों की लड़ाई के लिए पाली बदी जा रही है।----- राजा से रंक तक इसी धुन में मस्त थे।"[1] इस प्रकार प्रेमचन्द ने तत्कालीन समाज के चारित्रिक पतन पर तीखा व्यंग किया है। `परीक्षा` कहानी में भारत के सतीत्व की ललनाओं के अध:पतन की पराकाष्ठा उभर आयी है। नादिरशाह के ये कठोर शब्द सच्चाई की तीव्रता से चमक उठे हैं--"------ तुम्हारी निसबत मेरा जो गुमान था, वह हर्फ-ब-हर्फ सच निकला। जब किसी कौम की औरतों में गैरत नहीं रहती, तो वह कौम मुर्दा हो जाती है।"[2]

३०- प्रेमचन्द सोद्देश्यवादी थे। बिना उद्देश्य के लेखन कार्य को वे व्यर्थ मानते थे। अतएव उनकी प्रत्येक कहानी किसी न किसी रूप में कुछ अर्थ रखती है। नारी के स्वाभिमान को प्रेमचन्द ने बड़े ही मुखर रूप में दिखाया है। `परीक्षा` कहानी में प्रेमचन्द का उद्देश्य व्यंजित ही नहीं हुआ है, स्पष्ट दीख पड़ता है। कहानी के निष्कर्ष रूप में प्रेमचन्द ने यही प्रभाव डालने की चेष्टा की है कि अनेक प्रकार के भोग-विलास एवं व्यसनों में लिप्त हो जाने पर मनुष्य की ही नहीं नारी जाति जो

---

१. प्रेमचन्द : `शतरंज के खिलाड़ी` मान० भाग- ३
पृ० सं०- २६६,.

२. प्रेमचन्द `परीक्षा` मान० भाग- ३ पृ० सं०- १०६

उच्च से उच्च स्थान ग्रहण कर चुकी है, उसके जीवन की भी सजगता समाप्त हो जाती है। विचारशीलता के अभाव में उसका पतन हो जाता है । यहाँ तक कि फिर वह उचित--अनुचित का विवेक तक नहीं कर पाती । इसी विवेकहीनता के कारण नादिरशाही हुक्म सुनते ही "आभूषणों से जगमगाती, अपने मुख की कांति से बेले और गुलाब की कलियों को लजाती, सुगन्ध की लपटें उड़ाती, छमछम करते हुए दीवाने खास में आकर नादिरशाह के दरबार में खड़ी हो गयीं"-----------------एक महिला भी न थी, जिसकी निगाह कटार या तलवार की तरफ गयी हो । यद्यपि इनमें कितनी ही बेगमों की नसों में राजपूतनियों का रक्त प्रवाहित हो रहा था; पर इन्द्रियलिप्सा ने 'जुहार' की पुरानी आग ठंडी कर दी थी । सुख-भोग की लालसा आत्मसम्मान का सर्वनाश कर देती है।-------- एक भी ऐसे पक्के इरादे की स्त्री न थी, जो ईश्वर पर अथवा अपनी टेक पर, इस आज्ञा का उल्लंघन करने का साहस कर सके।"[1]

३१- प्रेमचन्द की ऐतिहासिक कहानियों का यह द्वितीय रुप है जिसमें वह आदर्शात्मकता से हटकर अपने देश और राजनीति की मानसिक और आध्यात्मिक दुर्बलताओं पर अत्यन्त लज्जित तथा शर्मिन्दा हैं, प्रेमचन्द ने अपने देश के सांस्कृतिक पतन पर शोक ही प्रकट नहीं किया बल्कि एक हितैषी की भांति हमों जागृति लाने का सफल प्रयास भी किया है।

३२- प्रेमचन्द की तृतीय प्रकार की ऐतिहासिक कहानियां वे हैं, जिनमें उन्होंने मुसलमानों के इतिहास से हमें परिचित कराया है और 'सत्य' को सच्चे अर्थों में स्पष्ट किया है। 'धिक्कार' 'बज्रपात' 'न्याय' 'दिल-की रानी' 'जिहाद' 'फातिहा' 'क्षमा' आदि कहानियां १२ वीं १३ वीं शती की ईरान, यूनान, टर्की, मिस्र, स्पेन आदि देशों से सम्बन्धित

---

१. प्रेमचन्द : 'परीक्षा' मान०-भाग०३ सं- , १९५६, प्रका० हंस, पृ० सं०- १०६,

कहानियाँ है । मुसलमानों का राज्य एशिया, अफ्रीका, योरप के कुछ भागों में फैला हुआ था, किन्तु धर्म की संकीर्णता ने धीरे-धीरे उन्हें स्थान-स्थान पर पराजित किया, उसी से सम्बन्धित रोचक घटनाएँ हैं । धर्म, रसूल, सभी सहृदयता का पाठ पढ़ाते हैं, क्रूर यातनाओं के पोषक नहीं हैं । इसी सद्भावना को प्रेमचन्द ने घटनाओं के आधार पर कहानी में पिरोया है । प्रेमचन्द ने प्रत्येक ऐतिहासिक कहानी किसी न किसी प्रेरणा अथवा अनुभव के आधार पर लिखी है । ऐसी कहानियों में उन्होंने अपनी कल्पना से नाटकीय रंग भरने की कोशिश की है । प्रेमचन्द लिखते हैं—" मैं घटनामात्र को वर्णन करने के लिए कहानियाँ नहीं लिखता । मैं उसमें किसी दार्शनिक और भावनात्मक सत्य को प्रकट करना चाहता हूँ ।--------------------कई बार इतिहास के अध्ययन से भी प्लाट मिल जाते हैं । लेकिन कोई घटना कहानी नहीं होती, जब तक कि वह किसी मनोवैज्ञानिक सत्य को व्यक्त न करे ।"[1]

राजनैतिक-कहानियाँ : २२.

३३- प्रेमचन्द सामयिक, सामाजिक आन्दोलनों और राजनीतिक गतिविधियों के बाहर अपनी कहानियों में बहुत कम गए हैं । उनका समस्त क्षेत्र बीस-पचीस वर्षों की भारतीय जीवन प्रगति में केन्द्रित है । उनकी कल्पना सामयिकता की परिधि से ऊपर उठने में अक्षम थी, प्रेमचन्द ने सदैव सामान्य परिस्थितियों के भीतर, सामान्य चरित्रों की अवतारणा की है ।

---

१. `प्रेमचन्द मैं कहानी कैसे लिखता हूँ ।` "नैरंग ख्याल" सम्पादक : (उर्दू लाहौर को उत्तर) अनुवादक : हंसराज रहबर `प्रेमचन्द जीवन-और कृतित्व` पृ० सं०- १६३,

३४- प्रेमचन्द ने अपने सामयिक अनुभव के आधार पर राजनीतिक गतिविधि और राजनीतिक-वातावरण में, मूल रूप में, कुछ राजनीतिक कहानियाँ लिखी हैं। कहानी के पात्र राजनीतिक से प्रभावित हैं और राजनीति के रंगमंच पर अभिनय करते हुए प्रतीत होते हैं। इन पात्रों की मन:स्थिति समाज और साधारण जीवन में न रह कर, एक ही प्रवाह में उमड़ रही है। वह प्रवाह है राजनीति का। राजनीति ही उनके लिए धर्म, समाज और जीवन है। इन कहानियों में घटनाएं, स्थितियाँ तथा चरित्र हैं, किन्तु वे राजनीतिक वातावरण की सृष्टि के लिए और अंतत: राजनीतिक प्रभाव की सिद्ध के लिए ही हैं। `शराब की दुकान` `जुलूस` `मैकू` `समर यात्रा` `सुहाग की साड़ी` `पत्नी से पति` `जेल` `सत्याग्रह` `कुत्सा` `कैदी` `माँ` `तावान` आदि कहानियों में राजनीतिक वातावरण से सम्बन्धित कथानक उभर कर आये हैं। भारत में जिन विविध आन्दोलनों ने राजनीति के क्षेत्र में हलचल मचा रक्खी थी वे आन्दोलन प्रेमचन्द की कहानियों में व्यक्तिगत-जीवन से सम्बद्ध होकर आए हैं। व्यक्ति की कहानी में आन्दोलनों का जो स्थान बना है, उसी का दिग्दर्शन प्रेमचन्द ने कराया है। इनमें कांग्रेस द्वारा संचालित आन्दोलनों, आदर्शों और सिद्धान्तों की प्रधानता है। इन आन्दोलनों का विभिन्न परिवारों पर जो कुछ भी प्रभाव पड़ा उसी के दृश्य प्रेमचन्द ने उपस्थित किए हैं। `अनुभव`[१] कहानी में ऐसे परिवार का एक दृश्य है, जहाँ पर पुरुष के पकड़े जाने पर स्त्री निराश्रित रह जाती है। भय के कारण उसके नातेदार तक सहारा देने को

---

१. मानसरोवर भाग- १, पृ० सं०- २७१,

तैयार नहीं होते । पुरुष के पकड़े जाने का कारण भी विशेषता लिए हुए है—"अपराध केवल इतना था, कि तीन दिन पहले जेठ की तपती दोपहरी में उन्होंने राष्ट्र के कई सेवकों का शर्बत-पान से सत्कार किया था।"

३५- ऐसी कहानियों से, जो राजनैतिक वातावरण में तथा राजनैतिक उद्देश्य से लिखी गयी हैं, उस युग के राष्ट्रीय आन्दोलनों की यथार्थता का अनुभव होता है और उन आन्दोलनों की प्रगति उत्तरोत्तर विकास और उनके स्तर का ज्ञान होता है। घर और बाहर, स्वराज्य का आन्दोलन एक विशेष प्रकार के व्यक्ति के लिए ही है, जिसे उस आन्दोलन में बाहर के मित्रों और शत्रुओं से ही नहीं, घर में भी लड़ना पड़ता है। पिकेटिंग के भी दृश्य हैं, जिनमें सौदागरों के साथ सहानुभूति दिखाते हुए भी राष्ट्रीय आवश्यकता को प्रधानता दी गयी है।[1] शराब[2] और कपड़ों की पिकेटिंग के भी दृश्य है। कपड़े की पिकेटिंग के साथ प्रेमचन्द ने रोमांस का पुट भी दे दिया है। पति महोदय पत्नी के लिए विदेशी कपड़े की साड़ी ख़रीदते हैं, पिकेटिंग हो रही है, उनमें उनकी स्त्री भी है। लज्जित होकर पति महाशय भी आन्दोलन में क्रियात्मक भाग लेने को सन्नद्ध हो जाते हैं।[3] ऐसे ही एक युवक को देशव्रत के लिए दीक्षित देख कर एक युवती दूसरे विलासी युवक को त्यागकर उससे प्रेम करने लगती है, और उसी मार्ग की पथिक बन जाती है।[4] प्रेमचन्द ने

---

१. तावान, मान०- भाग- १, पृ० सं०- ३००,
२. शराब की दुकान, मान०- भाग- ७, पृ० सं० ३०,
३. होली का उपहार, कफ़न, पृ० सं०- १६६,
४. आहुति, कफ़न, पृ० सं०- १४८,

राजनीतिक कार्यकर्ताओं की अन्तरंग दुर्बलताओं को भी बड़े कौशल से प्रकट कर दिया है।[१]

३६- सन् १६२१ के असहयोग आन्दोलन के पश्चात् के वातावरण को प्रेमचन्द ने अपनी राजनैतिक कहानियों में सजीव कर दिया है। अधिकतर कहानियां १६३०-३१,३२ आदि काल की लिखी हुई हैं। उनमें उस युग की राजनीतिक का सच्चे अर्थों में दिग्दर्शन होता है। यही प्रेमचन्द की कहानियों की सफलता है।

ग्रामीण कहानियां : ३५.

३७- प्रेमचन्द की ग्रामीण कहानियां हिन्दी साहित्य की मौलिक देन हैं। प्रेमचन्द से पूर्व ग्रामीण जीवन पर गद्य-साहित्य में किसी प्रकार का कोई कार्य नहीं हुआ था। लोक गीत और लोक-साहित्य की परम्परा भी मौखिक थी। गांव का जीवन भी कहानी का विषय हो सकता है यह कदाचित् किसी लेखक ने नहीं सोचा था। प्रेमचन्द ने सर्वप्रथम अपनी लेखनी से ग्रामीण जीवन, आचार-विचार, रीति-व्यवहार, राग, शोक, क्लेष, मोह आदि सभी वृत्तियों का अध्ययन किया और बताया भारत की आत्मा गांवों में बसती है। भारत का सच्चा प्रतिनिधि उसका किसान है, और वह गांव में बसता है।

३८- प्रेमचन्द की ग्रामीण कहानियां कथा और विषय दोनों दृष्टि से आर्थिक और सामाजिक-व्यवस्था का संकेत करती हैं। ग्रामीण किसान की मौलिक और आध्यात्मिक कठिनाइयां क्या हैं——जमींदार महाजन, पुलिस और पटवारी इन सब के बीच में वह किस तरह पिस

---

१. कुत्सा, मान० भाग-२, पृ० सं०- १४४,

जाता है-इसी का उल्लेख प्रेमचंद ने किया है । यद्यपि अब समय के साथ उस युग की वे विषम-समस्याएं लुप्त हो गयी हैं, परन्तु ग्रामीण किसान की आत्मा का परिचय अब भी हमको प्रेमचन्द की कहानियों के सहारे ही मिलता । प्रेमचन्द की ग्रामीण-कथा वह मार्ग-दर्शिका है जिसके सहारे हम गांवों की आत्मा की पुकार सुन सकते हैं ।

३६- पराधीन भारत की सामाजिक पराकाष्ठाएं ग्रामीण निरीह समूह को क्या कष्ट देती हैं और स्वयं उसके पराजित भाव किस प्रकार उसके मन में विष घोल देते हैं और उसके जीवन को नष्ट कर देते हैं, वह उन कष्टों को सहता है और ईश्वर-विश्वास के सहारे अपनी नाव पार लगाना चाहता है, किस प्रकार अन्त में, जैसे सारी प्रकृति उसके विरुद्ध खड़ी हो जाती है । अनावृष्टि है, बाढ़ है, औला-पाला है, फिर पशु हैं जो आँखें दबते ही पकी खड़ी खेती चर जाते हैं और अन्त में वह परस्पर के ईर्ष्या और द्वेष से, बाधाओं से लड़ता है और एक दिन अन्त में हार कर अपना ईश्वर-विश्वास भी खो देता है । प्रेमचन्द ने इन सभी परिस्थितियों में किसान का चित्रण किया है । लेकिन इन संघर्षों के मध्य भी मनुष्य हार नहीं मानता वह अदृष्ट विरोधी शक्तियों से अन्त तक लड़ता रहता है और हार अवश्यम्भावी होने पर भी हम उसकी महानता के सम्मुख झुक जाते हैं । यही भारत की आत्मा की विजय है अथवा ऊँचे आदर्शात्मक आध्यात्मिक सन्तोष का दिव्य आलोक जिसमें भारत बसता है । प्रेमचन्द ने अपने आदर्शात्मक दृष्टिकोण से आदर्श गांव के नव निर्माण की चेष्टा की है । प्रेमचन्द ने ग्रामीण कहानियों में केवल किसी वर्ग विशेष के संकीर्ण दायरे को ही अपनी कहानियों का विषय नहीं माना । वह निम्न से निम्न वर्ग के पात्रों को भी अपनी कथा में लाए हैं ।

४०- प्रेमचन्द की ग्रामीण अथवा घरेलू कहानी के मूल में मानव-जीवन और मानव-प्रकृति के ऐसे तथ्य हैं, जो स्थानों तथा सब वर्गों के मनुष्य के लिए एक होते हैं।[१] `दो भाई` `घासवाली`[२] `दूध का दाम` `सुजान भगत` `अग्नि समाधि` आदि में विश्वव्यापी मनोवैज्ञानिक तथ्यों को स्थापित किया गया है। प्रेमचन्द की कहानियों में देहात और घर वीथिका मात्र हैं। उनको देहात और घर तक सीमित समझना भूल है। प्रेमचन्द की इन कहानियों के पीछे विराट मानवीयता और विश्वव्यापकता छिपी है। "वैर का अन्त वैरी के जीवन के साथ हो जाता है" मुलिया के ये शब्द : "बड़े बड़े घरों का हाल जानती हूं। मुझे किसी बड़े घर का नाम बता दो जिसमें कोई साईस, कोई कोचवान, कोई कहार, कोई पराडा, कोई महाराज न घुसा बैठा हो, यह सब बड़े घरों की लीला है। और वह औरतें जो कुछ करती हैं, ठीक करती हैं। इनके घरवाले भी तो चमारिनों और कहारिनों पर जान देते फिरते हैं।--------जवानी जोश है, बल है, दया है, साहस है, आत्म-विश्वास है गौरव है और सब कुछ जो जीवन को पवित्र, उज्ज्वल और पूर्ण बना देता है।-------जवानी का नशा घमंड है, निर्दयता है, स्वार्थ है, शेखी है, विषय-वासना है, कटुता है और वह सब कुछ जो जीवन को पशुता, विकार और पतन की ओर ले जाता है।"[३] यह सार गर्भित वाणी मुलिया की ही नहीं जो भारत भूमि में उत्पन्न हुई है।

---

१. "दोनों भाई जब लड़के थे, तब एक को रोता देख, दूसरा भी रोने लगता था, तब वह नादान, बे समझ और भोले थे। आज एक को रोते हुए देख दूसरा हंसता और तालियां बजाता है। अब वे समझदार और बुद्धिमान हो गए थे।" (मान० भाग-७) पृ०सं०- २१६,

२. वैर का अन्त, मान० भाग०-७, पृ० सं०- २१६,

३. घासवाली, मान० भाग-१, पृ०सं०- ३१३,

यह एक विश्व सन्देह है, एक मानव वर्ग के लिए, जब तक पैशाचिक कृत्य समाप्त न होंगे, मुलिया ऐसे पात्रों की सृष्टि भी आवश्यक और अनिवार्य है। इस प्रकार विभिन्न कहानियों में नाना उदाहरण सर्वव्याप्त हैं। प्रेमचन्द ने 'टॉल्सटोय की कहानियों का अनुवाद करके अपने साहित्य की व्यापकता को और भी स्पष्ट कर दिया है। टॉल्सटोय की कहानियां ग्राम जीवन की कहानियां है। प्रेमचन्द टाल्सटोय की कहानियों से बहुत प्रभावित थे। प्रेमचन्द का गांवों के प्रति मोह था। इसी कारण गांवों की कठिनाइयों के चित्रण के साथ ही उस जीवन के आकर्षण को भी अपनी कहानियों में स्थान देते हैं। अपने विशेष मनोभाव के कारण गांव उनके लिए सरल जीवन और सुन्दरता के प्रतीक हो गए। प्रेमचन्द ने ग्रामीण जीवन को ही आधार मानकर, उसी वातावरण में अपने इस मनोभाव को प्रकट किया है—इस -----------'प्रेम के शब्द में कितना जादू है? मुंह से निकलते ही जैसे सुगन्ध फैल गयी, जिसने सुना उसका हृदय खिल उठा। जहां भय था, वहां विश्वास चमक उठा। जहां कटुता थी, वहां अपनापा छलक पड़ा। चारों ओर चेतनता दौड़ गयी। कहीं आलस्य नहीं, कहीं खिन्नता नहीं, मोहन का हृदय आज प्रेम से भरा हुआ है। उसमें सुगन्ध का वर्णन हो रहा है।'[१]

४१- प्रेमचन्द की ग्रामीण कहानियां ग्रामीण वातावरण से तो पूर्णतः प्रभावित हैं ही इसके साथ ही ग्रामीण-परिवारों की विभिन्न समस्याओं पर भी प्रकाश डालती हैं। 'अग्नि-समाधि' में स्वामिनी पद

---

१. 'ज्योति' मान०- भाग- १, पृ० सं०- ३१४,

के लिए पत्नी सिलिया विद्रोह कर उठती है । वह इतनी समझदार नहीं कि अपने ही सामने आई सपत्नी को गृहलक्ष्मी का सम्मान दे सके, अथवा समान होने पर अपने और पति के मध्य नयी पत्नी का हस्तक्षेप उसे असह है । किन्तु घर की स्वामिनी एक ही हो सकती है । यही समाज की समझ का अभिषाप है, जो दैनिक जीवन में परिवारों में जहर उगला करता है । `अग्नि समाधि`[1] निराश पत्नी की चिता है जो कर्तव्य भावना तथा अधिकार दोनों से ही च्युत कर दी गयी है यह पीड़ा पत्नी के लिए असह हो जाती है ।`[2]

४२- प्रेमचन्द के युग में अछूतों के साथ अन्याय भी एक साधारण बात थी । छूत-अछूत के ढकोसलों में निम्न वर्ग की निरीह जनता कुलीन वर्ग के अत्याचारों से पिसी जा रही थी । बहुत बड़ी संख्या में समाज के लोगों ने अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए निम्न वर्ग तैयार कर लिया था । ये निरीह प्राणी लौकिक सुख-विलास से दूर, ऊँचे लोगों की क्रूर क्रीड़ाओं के शिकार थे । ऊँचे कहलाने वाले लोगों ने अपनी स्वार्थसिद्धि के कारण उन्नति के सभी मार्ग और द्वार बन्द कर रक्खे थे । `मंदिर` `ठाकुर का-कुआ` `खून सफेद` आदि में हृदय विदारक चित्र हैं । घर का बालक, प्राणी मृत्यु-शैय्या पर है लेकिन स्त्री अपने पति के लिए, माता अपने बच्चे के लिए मन्दिर में प्रार्थना भी नहीं कर सकती, प्रेमचन्द समाज-पेटी लेखक थे, इस कारण उनका हृदय यह मानव जाति के साथ, मानव जातिका आघात सहन न कर सका ।

---

१. `अग्नि समाधि`, मान०- भाग० ५, पृ० सं०- १७७,

२. `रुक्मनी को अब शायद चोट ही न लगी थी ... सिर के बाल खोले ... इन्हीं मंत्रों (गालियों) का पाठ कर रही थी । उसके स्वर में अब क्रोध न था, केवल एक उन्मादमय प्रवाह था` मान०- भाग- ५, पृ०सं०- १७४,

४३- प्रेमचन्द ने तत्कालीन समाज में उच्च कहे जानेवाले लोगों के साथ किसी प्रकार की दया नहीं की । उन्होंने पंडितों की जी खोल कर खिल्ली उड़ाई है तथा उपहास और व्यंग से पंडितों का चरित्र खोल कर रख दिया है । निमंत्रण[1] कहानी में दो पंडितों के व्यंग्यात्मक चित्र है । प्रेमचन्द का विचार था मानव संस्कृति के विकास में यह बाधक-वर्ग ऐसा तैयार हो गया है कि जो कर्महीन, धर्महीन, मानवहीन, नीच, कुटिल होने पर भी जनता पर शासन करता है और विभिन्न धार्मिक और लोक-परलोक की चर्चाओं से दोमुहे सांप के समान उच्च और निम्न वर्ग, दोनो को चूसता है । वह अमीरों का सेवक और गरीबों का शुभ चिन्तक बन कर जोंक के समान समाज के प्राणियों को रक्तहीन करता जाता है । `सद्गति`[2] में बेचारे `दुखी` का अन्त देखिए—"दुखी की लाश को गीदड़ और गिद्ध, कुत्ते और कौए नोच रहे थे । यही जीवन-पर्यन्त की भक्ति, सेवा और निष्ठा का पुरस्कार था ।"[3]

४४- प्रेमचन्द ने अधिक कहानियां नागरिक-समाज पर ही लिखी हैं । प्रेमचन्द आरम्भ से ही जन-जाग्रति का सन्देश लेकर हिन्दी साहित्य की सेवा करना चाहते थे । इसी कारण ग्रामीण-समाज की समस्यायें सीमित थीं, उनका जीवन विषम था क्योंकि ऊंचे समाज की स्वार्थसिद्धि ने उन ग्रामीण प्राणियों को इसी योग्य बना रक्खा था । प्रेमचन्द ने समाज के इन संकेतों को पहचान लिया था । इस कारण उन्होंने ग्रामीण और नागरिक जीवन को समान रुप में लेकर चित्रित किया ।

१.मान० भाग-५, पृ० सं०- १०,
२.मान० भाग-४, पृ० सं०- २४,
३.मान० भाग- ४, पृ० सं०- २६,

४५- प्रेमचन्द समुदाय पर नहीं व्यक्ति-विशेष पर विश्वास करते थे। इसी कारण प्रेमचन्द की आचरण की कहानियाँ प्रेरक बुद्धि की कहानियाँ बन गयीं हैं। कहानी का कथानक, रूप-विन्यास, भाषा, शैली, सभी पात्रों के विचारों के परिचायक, तथा पात्रों के आचरण से सम्बन्ध रखते हैं तथा कलात्मक विजय का जय-घोष करना चाहते हैं। यही प्रेमचन्द की सम्पूर्ण कहानियों की सफलता है।

४६- नयी चेतना, जागृति और प्रकाश के युग में प्रेमचन्द अन्य नवीन लेखकों के साथ अपनी प्रथम हिन्दी कहानी `सौत`[१] और इसके पश्चात् अवतीर्ण ही प्रमुख कहानी `पंचपरमेश्वर`,[२] के साथ साहित्य जगत में आए। इसके पूर्व वे उर्दू में ख्याति पा चुके थे।[३] प्रेमचन्द ने कहानी को नया मोड़ दिया। मानव-जीवन की सबल तथा निर्बल भावनाओं का संघर्ष हमें उनकी रचनाओं में मिलता है। प्रेमचन्द की रचनाओं से उनके युग के नए लेखक बहुत प्रभावित हुए। सामाजिक चेतना के प्रति नई दृष्टि और शोषण के प्रति विद्रोह की भावना को लाने में वे सफल रहे। प्रेमचन्द की कहानियों में हम घटनाओं का स्वभाविक-विकास, सामाजिक जीवन की सच्चाइयों की अभिव्यक्ति और सुन्दर चरित्रों का चित्रण पाते हैं। भारतीय लोक-कथा की परम्परा, मानवीयगुणों की सराहना, सत्य की विजय तथा अत्याचारी के आगे सिर न झुका कर विद्रोह करना, इन सब का प्रेमचन्द ने कुशलतापूर्वक निर्वाह किया। जीवन के प्रत्येक स्तर तथा व्यक्ति के भिन्न भिन्न स्वभावों का सम्पूर्ण आलेखन उनकी रचनाओं में मिलता है। उनका विशाल हृदय अनुभूतियों और संवेदना की सूक्ष्मता को

---

१. सरस्वती, दिसम्बर १९१५,

२. सरस्वती, जून १९१६,

३. `मैंने पहले पहल १९०७ में गल्पें लिखनी शुरू की ... मेरी पहली कहानी का नाम था `संसार का सबसे अनमोल रत्न` वह १९०७ में `ज़माना` में छपी। `कफन, प्रका० सरस्वती, १९३७, संस्करण प्रथम, पृ०सं०-९२,

आसानी से अपना लेता था । यही कारण है कि उनका ध्यान सबसे पहले किसान, मजदूर, तथा अन्य साधारण लोगों पर गया और उन्होंने उनके शोषण के प्रति अपना स्वर उठाया । प्रेमचन्द की रचनाओं में हमें भारतीय-जीवन के सभी अंगों तथा समाज के सभी वर्गों का चित्रण मिलता है । प्रेमचन्द के आगमन से कहानी जगत में बड़े वेग से नवयुग का आगमन हुआ और उनसे प्रभावित होकर अन्य लेखक अवतीर्ण हुए प्रेमचन्द ने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की है । उनकी रचनाओं के विभिन्न भाषाओं में अनुवाद हो चुके हैं, और हो रहे हैं । प्रेमचन्द की रचनाएं अपने काल में ही नहीं, आज भी अपने महानतम गुणों के कारण नए लेखकों को दिशा दिखाती हैं । प्रेमचन्द की कहानियों में नारी का त्याग, सेवा, आत्म विश्वास आज भी गौरव की वस्तु है । प्रेमचन्द की कहानियों में भारतीय-आत्मा के दर्शन होते हैं जो सदा से गौरव की वस्तु रहा है । प्रेमचन्द ने सर्व प्रथम समाज के रूढ़ि-ग्रस्त रीतिरिवाजों जाति, धर्म और परम्पराओं को अपनी कला का विषय बनाया । हमारी मानवता, हमारी संस्कृति, आदर्श सभी इन रूढ़ियों से ग्रस्त थे । आर्थिक दासता, नारी की शोचनीय अवस्था आदि सभी इसके दुष्परिणाम थे । प्रेमचन्द ने हमारे सामने जीवन का एक स्वस्थ दृष्टिकोण उपस्थित किया । प्रेमचन्द ने उस व्यावहारिक-आदर्श की, जो वास्तविक जीवन में सम्भव है, पूर्ण प्रतिष्ठा की है ।प्रेमचन्द की कहानियों में समाज की विभिन्न समस्याओं और स्थितियों के प्रति सर्वत्र सुधार का आग्रह है । कहीं कहीं सुधार और परिवर्तन के आग्रह से उन्होंने जीवन की करुणा को बहुत सफलता से जाग्रत किया है । समाज की दो प्रमुख इकाइयों में—घर और संस्था में—उन्होंने क्रमशः संयुक्त परिवार समस्या, भारतीय समाज पर

पाश्चात्य प्रभाव, शिक्षा, धर्म आदि को लिया है ।

४७- व्यक्तिगत भाव धरातल पर प्रेमचन्द ने व्यक्ति के चरित्र को लिया है, उसके सत्-असत् तथा नैतिकता-अनैतिकता का अध्ययन पूर्ण सफलता से किया है । व्यक्ति के अन्य पहलू में `प्रेम` को विस्तृत रूप दिया है । बालक, युवा, वृद्ध, नारी सब को प्रेम की भूख होती है । इसकी अपूर्णता में मानव विकास कुंठित हो जाता है, और विभिन्न मानसिक-ग्रन्थियों से अवरुद्ध हो उठता है । प्रेमचन्द ने सफलता से प्रेम भाव को अपनी कहानी-कला में विकसित किया है । "प्रेम शब्द में कितना जादू है ? मुंह से निकलते ही जैसे सुगन्ध फैल गया । जिसने सुना उसका हृदय खिल उठा । जहां भय था, वहां विश्वास चमक उठा । जहां कटुता थी, वहां अपनापा झलक पड़ा । चारों ओर चेतना दौड़ गई । कहीं आलस्य नहीं, कहीं खिन्नता नहीं । मोहन का हृदय आज प्रेम से भरा हुआ है । उसमें सुगन्ध का वर्षण हो रहा है ।"[१] प्रेमचन्द का प्रेम शीरीं-फ़रहाद या लैला-मजनू वाला प्रेम नहीं, प्रेम में ईश्वर की अपार शक्ति के दर्शन किए हैं । प्रेमचन्द लिखते हैं "विचार-वानों ने प्रेम को ही जीवन की और संसार की सबसे बड़ी विभूति मानी है । व्यवहार में न सही आदर्श में प्रेम ही हमारे जीवन का सत्य है ।"[२] प्रेमचन्द ने प्रेम-भाव को सर्वत्र स्वस्थ दृष्टिकोण से लिया है, उसमें कहीं भी वासना की दुर्गन्ध नहीं आती । प्रेमचन्द के लिए प्रेम चरित्र-निर्माण का मापदंड है । उसकी चरम परिणति विवाह में है ।

---

१. प्रेमचन्द `कहानी ज्योति`, मान० भाग-१ प्रका० हंस इलाहाबाद, पृ० सं०- १८८,

२. कहानी `बासी भात में खुदा का साझा`, मान० भाग-२, पृ० सं०- १६६,

४८- प्रेमचन्द अपने काल की राष्ट्रीय भाव धारा से भी पूर्णत: प्रभावित थे । इसलिए अछूतोद्धार, दलित निर्धन देहाती-वर्ग के साथ अपार समवेदना, सुधार तथा राष्ट्रीय भावना का जागरण प्रेमचन्द की कहानी-कला में विकसित हुआ है । ऐतिहासिक धरातल से लिखी हुई कहानियों के भावपक्ष में आदर्शवाद और प्राचीन मर्यादा की प्रतिष्ठा इनकी कला की मूल प्रवृत्ति है । समग्र रूप में प्रेमचन्द ने अपनी समस्त कहानियों के वस्तु-विन्यास में जन-जीवन का सुख दान, मानव-कल्याण और विश्व-शान्ति को प्रस्फुटित करने का सफल प्रयास किया है ।

<u>प्रेमचन्द कहानियां और विचार</u>

४६- प्रेमचन्द की कहानियों की विवेचना करने से पूर्व इतना जानना आवश्यक है कि उनकी कहानियों का आधार क्या था ? वे किस प्रयोजन हेतु लिखी गयी थीं? और उनके माध्यम से मानव-जीवन की अभिव्यक्ति किस प्रकार प्रस्तुत की गई थी ? प्रेमचन्द का विचार था कि जीवन में अनेक कटुताएं हैं, जिनसे हम वास्तविक जीवन में घृणा करते हैं । और साहित्य में जीवन का ऐसा पक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए जो अपनी अच्छाई के कारण आकर्षक और अनुकरणीय हो । प्रेमचन्द ने एक स्थान पर लिखा है :— `मनुष्य ने जगत में जो कुछ सत्य और सुन्दर पाया है और पा रहा है उसी को साहित्य कहते हैं और कहानी भी साहित्य का एक भाग है ।`[१] लेकिन प्रेमचन्द ने जीवन और साहित्य को जीवन का दर्पण नहीं मानते, जिसमें मात्र प्रतिबिम्ब रहता है अपितु उसे `दीपक` मानते हैं जो मार्ग-दर्शन कराता है । स्पष्ट है उनका झुकाव `आदर्शवाद` की ओर है जो जीवन की सत् और अनुकरणीय झांकी प्रस्तुत करता है ।

---

१. प्रेमचन्द, `कहानी कला` (साहित्य के उद्देश्य), संस्करण-प्रथम, १६५४ जुलाई, पृ० सं० ४०,

५०- प्रेमचन्द का विचार था कि संसार की प्रत्येक वस्तु का कुछ न कुछ प्रयोजन है। कहानी भी उसका अपवाद नहीं है। अत्यन्त गम्भीर, चिंतित और व्यस्त रहते हुए भी मनुष्य अपना मनोरंजन चाहता है और यह मनोरंजन उसे कहानी से मिलता है। लेकिन कहानी भी युग के अनुकूल बदलने के लिए विवश है। आज मनुष्य ऐसी सामग्री चाहता है, जो उसे अपने में भुलाकर चिंताओं से थोड़ी देर के लिए मुक्त करदे, उसे संघर्ष में डटे रहने की प्रेरणा दे या कुछ ऐसी मधुरता दे जिससे जीवन की कटुताएं कुछ कम हो जाएं। तत्वहीन कहानी से चाहे मनोरंजन भले ही हो जाए, मानसिक तृप्ति नहीं होती। यह सच है कि हम कहानियों से उपदेश नहीं, चाहते, लेकिन विचारों को उत्तेजित करने के लिए, मन के सुन्दर भावों को जाग्रत करने के लिए, कुछ न कुछ अवश्य चाहते हैं। वही कहानी सफल होती है, जिसमें मनोरंजन और मानसिक तृप्ति में से, एक अवश्य उपलब्ध हो।

मानव—स्वभाव :

५१- मानव-स्वभाव के सम्बन्ध में प्रेमचन्द का विचार था कि वह मिश्रित है। उसके दो पक्ष हैं। एक तो दुर्बल और दूसरा सबल। दुर्बल पक्ष मानव मात्र की अकल्याणकारी, लोभी, स्वार्थी और संकुचित प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करता है। यह पक्ष स्थायी नहीं होता। इसके विपरीत दूसरा पक्ष मानव-स्वभाव की `शिवम्` या कल्याणकारी वृत्तियों का प्रतिनिधित्व करता है। यहां मनुष्य लोभ, स्वार्थ तथा संकुचित वृत्तियों के सीमित क्षेत्रों से ऊपर उठकर लोक-कल्याण के चिन्तन-स्थल तक पहुंच जाता है। मनुष्य के इसी पक्ष को प्रेमचन्द ने अपनी चिन्तन-धारा का आधार माना है। इसी आधार पर प्रेमचन्द ने `साहित्य` के माध्यम से, मनुष्य के सर्वोत्तम विकास की प्रेरणा कहानियों द्वारा प्रस्तुत की है।

प्रेमचन्द के शब्दों में :—"मनुष्य स्वभाव देव तुल्य है। जमाने के छल प्रपंच और परिस्थितियों के वशीभूत होकर वह अपना देवत्व खो बैठता है। 'साहित्य' इसी देवत्व को अपने स्थान पर प्रतिष्ठित करने की चेष्टा करता है-उपदेशों से नहीं, भावों को स्पन्दित करके, मन के कोमल तारों पर चोट लगाकर, प्रकृति से सामंजस्य उत्पन्न करके।"[१]

५२- मनुष्य का स्वभाव दो प्रकार का जीवन व्यतीत करता है। पहला जीवन तो सांसारिक होता है, जो शरीर से सम्बन्ध रखता है। दूसरा जीवन आध्यात्मिक होता है जिसका सम्बन्ध आत्मा से होता है। दोनों प्रकार के जीवन एक दूसरे से सम्बन्धित हैं और दोनों का हित बिना एक दूसरे की सहायता के नहीं हो सकता। इसलिए सांसारिक आवश्यकताओं को न्यूनतम करके आत्मा की तुष्टि के लिए मनुष्य को आध्यात्मिकता की दिशा में अग्रसर होना चाहिए। प्रेमचन्द का विचार था : —"जहाँ मनुष्य अपने मौलिक, यथार्थ अकृत्रिम रूप में है, वहीं आनन्द है। × × × × × साहित्य मनुष्य की सृष्टि करता है, इसलिए सुबोध है, सुगम है और मर्यादाओं से परिमित है। × × × × × साहित्य का आनन्द सांसारिक आनन्द से ऊँचा है, इससे पवित्र है, उसका आधार सुन्दर और सत्य है। वास्तव में सच्चा आनन्द सुन्दर और सत्य से मिलता है। उसी आध्यात्मिक आनन्द को दर्शाना, वही आनन्द में ग्लानि छिपी रहती है। उससे अरुचि भी हो सकती है, पश्चाताप भी हो सकता है; पर सुन्दर से जो आनन्द प्राप्त होता है, वह अखंड है, अमर है।"[२]

---

१. प्रेमचन्द- 'साहित्य के उद्देश्य', पृ० सं०- २६,

२. साहित्य के उद्देश्य पृ०सं०- २०,२१,

५३- जीवन क्या है? प्रेमचन्द लिखते हैं : "जीवन केवल जीना, खाना, सोना और मर जाना नहीं है । यह तो पशुओं का जीवन है । ... ... हममें कुछ मनोवृत्तियाँ होती हैं । ... ... जिन प्रवृत्तियों में प्रकृति के साथ हमारा सामंजस्य बढ़ता है, वे वांछनीय होती हैं, जिनसे सामंजस्य में बाधा उत्पन्न होती है, वे दूषित हैं । अहंकार, क्रोध, या द्वेष हमारे मन की बाधक प्रवृत्तियाँ हैं । यदि हम इनको बेरोक-टोक चलने दें तो निस्सन्देह वह हमें नाश और पतन की ओर ले जाएंगी ... ... इसलिए हमें उन पर संयम् रखना पड़ता है ... हम उन पर जितना कठोर संयम् रख सकते हैं—उतना ही मंगलमय हमारा जीवन हो जाता है ।"[१] इसी मंगलमय जीवन की कल्पना प्रेमचन्द ने अपनी समस्त कहानियों में की है । प्रेमचन्द आदर्शवादी लेखक थे । उन्होंने अपनी कहानियों में एक प्रकार से आदर्शवाद और यथार्थ का सुन्दर गठ-बंधन किया है और इन दो विषम दृष्टिकोणों में सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा की है । प्रेमचन्द ने जीवन की अनेक समस्याओं पर प्रकाश डाला है, और समाज, राष्ट्र और व्यक्ति के अनेक अंगों का स्पर्श किया है ।

---

१. साहित्य के उद्देश्य, पृ० सं०- २२,

शिल्प - विधान

अध्याय- ६

उपन्यास--रचना

रचना-विधान :

१- जिस प्रकार वास्तुशिल्पी को भवन-निर्माण से पूर्व अपने मस्तिष्क में पूरे भवन की योजना बनानी पड़ती है, उसी प्रकार कथा-शिल्पी को भी अपनी रचना से पूर्व अपने मस्तिष्क में अपनी सम्पूर्ण कथा की योजना स्थिर करनी पड़ती है। सृष्टि की रचना करने वाले की भाँति लेखक अपनी रचना में सर्वत्र विद्यमान रहता है। रचना-विधान के अन्तर्गत रचना के विभिन्न रूपों की संयोजना होती है। कथा-योजना से तात्पर्य है कथा का घटना-क्रम, कथा-संगठन, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, वातावरण अथवा देशकाल, भाषा-शैली, उद्देश्य आदि।

२- रचना-विधान लेखक की व्यक्तिगत-रचना-योजना का प्रतिफलन है, जिस पर उसके जीवन, अनुभव, विचार, चिन्तन और दर्शन का पूरा-पूरा प्रभाव रहता है। प्रेमचन्द ने कहा है। "अपने मार्ग अपने अध्ययन, अपने फिलोसफी के बिना कोई सच्चा कलाकार नहीं हो सकता। अपनी आँखों से जीवन देखो अपने अनुभव से उसे जाचों। जैसा पाओ, वैसा लिखो"[१] प्रेमचन्द का यही अनुभव और उनका तपस्वी जीवन उनके रचना-विधान की प्रमुख विशेषता है। जिस प्रकार उनका जीवन सहज, सरल और समतल था, उसी प्रकार उनकी रचना-शैली भी गंगा की पवित्र-धारा के समान शान्त, सहज, उज्ज्वल और पवित्र है, उसमें किसी तरह की अस्वाभाविकता अलंकृति, आडम्बर, चमत्कार, प्रदर्शन, अथवा कृत्रिमता नहीं है। जो कुछ है सरल है, स्वाभाविक है, प्रकृत है, अनुभूत है।

---

१. प्रेमचन्द-स्मृति, प्रका० हंस,
पृ० सं० ६५

६- प्रेमचन्द की कथा-वस्तु का आधार हमारा पारिवारिक, सामाजिक और राजनैतिक जीवन है। इसके साथ ही प्रेमचन्द के जीवन-अनुभव उनकी कथा-सामग्री के साथ जुड़े हुए हैं। प्रेमचन्द का प्रत्येक उपन्यास उनकी प्रेरणा अथवा अनुभव पर आधारित है। केवल कौतूहल-वृत्ति को शान्त करने के लिए अथवा चमत्कारिक प्रदर्शन के लिए प्रेमचन्द ने उपन्यास नहीं लिखे। प्रेमचन्द लिखते हैं—"मेरे किस्से प्राय: किसी न किसी प्रेरणा अथवा अनुभव पर हैं। x x x x x घटना मात्र को वर्णन करने के लिए मैं कहानी नहीं लिखता। मैं उसमें किसी दार्शनिक और भावात्मक सत्य को प्रकट करना चाहता हूँ। जब तक ऐसा आधार नहीं मिलता, मेरी कलम ही नहीं उठती" इस प्रकार स्वयं प्रेमचन्द के शब्दों में उनके उपन्यासों की कथावस्तु प्रेरणा और अनुभव पर आधारित होती है। समाज और राजनीति की हलचलों में लिखे गए उपन्यास उस युग का प्रतिनिधित्व करते हैं। कथा-वस्तु में समाज, पात्र, स्थान सभी यथार्थ लगते हैं। यद्यपि प्रेमचन्द ने कल्पना के आधार पर कथा-सामग्री का संचय किया है। लेकिन कथा-वस्तु की योजना में प्रेमचन्द का दर्शन, सम्पूर्ण व्यवहारिक ज्ञान, सत्य अथवा सभी मानवीय गुण अभिव्यक्त हो गए हैं। प्रेमचन्द की कथा का आधार अत्यन्त पुष्ट है, इसी कारण इस आधार पर खड़ा किया हुआ भवन भी दृढ़ होता गया है। प्रेमचन्द की कथा-वस्तु में शिथिलता नहीं आने पायी है। प्रेमचन्द की वर्णन-शक्ति उनके कलात्मक संयम् को पार कर जाती है। वह सब कुछ स्वयं कहने की प्रकृति को रोक नहीं पाते और इस प्रकार की अपूर्णता उनके प्रत्येक उपन्यास में मिलेगी। 'कर्मभूमि' जो कि बहुत बाद का उपन्यास है, उसमें जब अमरकान्त महन्त जी से मिलने जाता है

---

१. प्रेमचन्द :"मैं कहानी कैसे लिखता हूँ"—अनु० हंसराज रहबर 'प्रेमचन्द : जीवन और कृतित्व" प्रका० दिल्ली, पृ० सं० १६३,

तो उसका बहुत ही विस्तृत वर्णन प्रेमचन्द अपने शब्दों में कहते चले जाते हैं ।[१] इसी प्रकार `कर्मभूमि` में मुन्नी की कथा को विस्तार के साथ कहा गया है।[२] उपन्यास का कथानक सामान्यत: दो भागों में विभक्त रहता है । आधिकारिक और प्रासंगिक । जो कथा आदि से अन्त तक चलती है, वह उपन्यास के मेरुदंड का कार्य करती है । प्रेमचन्द के उपन्यासों की अधिकारिक कथा अविच्छिन्न रूप से चली है, लेकिन `प्रेमाश्रम` `रंगभूमि` `कायाकल्प` `कर्मभूमि` और `गोदान` में यह विकट समस्या उत्पन्न हो जाती है कि किस कथा को अधिकारिक कहें और किसे प्रासंगिक । इन उपन्यासों में नगर और गांव की कहानी समानान्तर रूप से चली है ।

७- प्रेमचन्द ने अधिकारिक, समानाधिकारी तथा प्रासंगिक कथाओं को एक साथ उपन्यास में स्थान देने पर भी सावधानी से काम लिया है । कथा की गति में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं हुई है । उपन्यास की गतिशीलता आदि से अन्त तक व्याप्त है । विभिन्न परिवारों की कहानी समाज के विस्तृत कैनपेस पर खींची गयी है ।

८- प्रेमचन्द कथा का प्रारम्भ परिचयात्मक ढंग से करते हैं । आरम्भ में ही पात्रों के मनोभावों से घटना-स्थल का ज्ञान होने लगता है । पात्रों के मनोभाव प्रकट होते ही छोटी-छोटी घटनाओं के मध्य कथानक पुष्ट और विकसित होता जाता है और अन्त में भी उस कथानक का अन्त पात्रों के मनोभावों के साथ होता है । प्रेमचन्द ने स्वयं ही कहा है । "मैं जब तक कोई कहानी आदि से अन्त तक अपने जेहन में न जमा लूं, लिखने नहीं बैठता"[३] (यही बात ठीक इसी प्रकार-

---

१. प्रेमचन्द : "कर्मभूमि", पृ० सं० ३०१, ३०२, ३०३, ३०४,
२. प्रेमचन्द : "कर्मभूमि` पृ० सं० १८० -१८६
३. प्रेमचन्द : "मैं कहानी कैसे लिखता हूँ" अनु० हंसराज रहबर, `प्रेमचन्द : जीवन- और कृतित्व` पृ० सं० १६३,

उनके उपन्यासों में भी है)" 'सेवासदन' में दरोगा कृष्णचन्द अपनी भलाइयों पर पछताते हैं । इसके साथ उनकी पत्नी गंगाजली, पुत्री सुमन, शान्ता सभी का परिचय मिलता है । प्रारम्भ में ही पति की चरित्रगत विशेषता से कथा-वस्तु का आभास हो जाता है । "दरोगा कृष्णचन्द रसिक उदार और बड़े सज्जन मनुष्य थे । मातहतों के साथ भाई चारे का सा व्यवहार करते थे ; किन्तु मातहतों की दृष्टि में उनके इस व्यवहार का कुछ मूल्य न था x x x x उनके अफसर भी प्राय: प्रसन्न न रहते थे x x x x लेकिन इतने निर्लोभ होने पर भी किफायत न थी" प्रथम परिचय में दरोगा कृष्णचन्द की सम्पूर्ण मनोवृत्ति का अनुभव हो जाता है और इसी से कथा का प्रवाह भी स्पष्ट हो जाता है । 'निर्मला' में प्रारम्भ में ही निर्मला अपने विवाह को सुन कर अनिष्ट की कल्पना करती है । "इसी सूचना ने अज्ञान बालिका को मुंह ढाप कर एक कोने में बिठा रक्खा है । उसके हृदय में विचित्र शंका समा गयी है, रोम रोम में भय का संचार हो गया है"[१] इसी प्रकार निर्मला की छोटी बहन जो अभी बिलकुल ही दस वर्षीय अबोध बालिका है, वह भी यह जान कर दुखी है : "माता जी और पिता जी क्यों बहिन को घर से निकालने को इतने उत्सुक हो रहे हैं । x x x x क्या इसी तरह एक दिन मुझे भी ये लोग निकाल देंगे ? x x x x x इसी लिए वह भी भयभीत है ।"[२] दोनो बहनों के मन की शंकाएं, चिन्ताएं, भीरु कल्पनाएं आगे की विषाद-रेखाओं की सूचना देती है । सम्पूर्ण कथावस्तु इन्हीं विषाद रेखाओं में उतरती चढ़ती आगे बढ़ती है । 'गोदान' में प्रारम्भ में ही धनिया कहती है "दूध घी अंजन लगाने को नहीं मिलता"[३] होरी के मन में भी गऊ की लालसा जो चिरकाल से संचित चली आती थी सजग हो जाती है । उसके जीवन का सब से बड़ा स्वप्न, सब से बड़ी साध थी । पति-पत्नी के इन्हीं मनोभावों से कथा-वस्तु का स्वरूप क्या होगा, पूर्व परिचित हो जाता है ।

---

१. निर्मला पृ०सं० ४

२. वही

३. गोदान, पृ० सं० ६,

६- प्रेमचन्द के कथानकों का यह गुण है कि कभी कभी कथा-विकास से पूर्व, कथा का परिचय मिल जाता है। कथा की धारा अपने सहज स्वभाव से प्रवाहित होती है। कथा-वस्तु में किसी प्रकार की रहस्यात्मकता नहीं होती। कथानक पूर्णत: स्वाभाविक होता है। उसका विकास मोड़, चरमोत्कर्ष सभी क्रमिक ढंग से होता है। कौतुहल अथवा चमत्कार को प्रेमचन्द विशेष स्थान नहीं देते। `कायाकल्प` ही एक ऐसा उपन्यास है जिसमें प्रेमचन्द की अद्भुत कल्पनाएं सब से अधिक प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हुई हैं। यद्यपि सामाजिक कथा भी चमत्कारिक-कथा के साथ जुड़ी है। प्रेमचन्द के कथानकों की यही प्रमुख विशेषता है कि कथा-वस्तु में घटनाओं के साथ-साथ प्रेमचन्द के जीवन के संचित अनुभव जुड़े हैं। कथा-विकास की गति को तीव्र करने के लिए प्रेमचन्द पहले से ही घटनाओं की भूमि तैयार रखते हैं। उपन्यास के पात्र कथा आगे बढ़ने से पहले ही अपनी वार्तालाप में अमंगल सूचक सूचनाएं, चिन्ताएं प्रकट कर देते हैं। गोदान में धनिया होरी के गिरते स्वास्थ्य को देख कर कहती है: "तुम्हारी दशा देख देख कर तो और भी सूखी जाती हूं कि भगवान यह बुढ़ापा कैसे कटेगा? किसके द्वार भीख मागेंगे?"[१] ऐसा प्रतीत होता है, कथा-वस्तु पाठकों के मनोनुकूल ही आगे बढ़ रही है। एक एक समस्या की व्यंजना पाठक के हृदय में होती है। कथा का मूलाधार परिस्थिति है जो कथावस्तु को एक दिशा में मोड़ देती है। `सेवासदन`[२] में सुमन की दुर्बल प्रकृति, कष्ट न सह सकने का स्वभाव और उसके ढुलमुल सिद्धान्तों को देखने से यह अनुभव होता है, सुमन की प्रकृति उसको संकट में डालेगी। `गबन`[३] में रमानाथ की डींगे पत्नी के प्रति उसका प्रेमाधिक्य, ऋण लेने की वृत्ति, आय से अधिक खर्च, मित्र मंडली में अपनी झूठी शान जमाए रखने की प्रवृत्ति आदि को देख कर ऐसा लगने लगता है अब

---

१. गोदान, पृ० सं० ६

२. सेवासदन, पृ० सं०६

३. गबन, पृ० सं० १८

इस व्यक्ति पर कुछ न कुछ विपत्ति अवश्य आएगी । होता भी वही है वह सरकारी रुपया गबन करके भागता है । रमानाथ का भावी जीवन संकट में हो जाता है । प्रेमचन्द पात्रों के अतिरिक्त स्वयं भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से भावी घटनाओं की सूचना दे देते हैं ।

१०- कथानक को रोचक एवं स्वाभाविक बनाने के लिए कथा में घात-प्रतिघात की आवश्यकता होती है । इससे कथा में गति आती है, रोचकता बढ़ती है कुछ कौतूहल जागता है और चरित्रों पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है । `प्रेमाश्रम`[१] में जिस समय गायत्री मूर्छित होकर कमरे में गिर पड़ती है, और ज्ञानशंकर उसे उठाता है उसी समय ज्ञानशंकर की पत्नी उन्हें उस अवस्था में देख कर अन्यथा समझ बैठती है । इस प्रकार घात-प्रतिघातों से पात्रों के मन:स्थिति बदलती चलती है ।

११- प्रेमचन्द के उपन्यासों में स्वाभाविकता, सम्पन्नता, सहजता गुण तो अपनी पूर्णता में विद्यमान है लेकिन `जिज्ञासा` का भी अपना एक महत्व होता है । वह प्रेमचन्द पाठकों में नहीं जगा सके । सब कुछ स्वयं कहने की प्रवृत्ति ने उन्हें यह अवकाश नहीं दिया कि पाठकों की जिज्ञासा का भी ध्यान रख सकें । प्रेमचन्द के सम्मुख तो लक्ष्य और उनके जीवन की प्रेरणा उनको उपन्यास लिखने को प्रोत्साहित कर रही थी । वह कब कलात्मक गुणों में उलझते । जो उपन्यास पाठक के हृदय में यह जिज्ञासा आरम्भ में ही उत्पन्न कर देता है, वह एक सफल रचना समझी जाती है । जिज्ञासा का मूलत: आधार घटना-वैचित्र्य ही है । घटना कल्पना की उड़ान के साथ आगे बढ़ती जाती है ।

---

१. प्रेमाश्रम, पृ० सं—३४७,

१२- कथानक के लिए संघर्ष भी आवश्यक है, जब तक कथा में संघर्ष नहीं, पात्रों के चरित्रों का पूर्ण रूप भी स्पष्ट नहीं होता। संघर्ष ही पात्रों की दृढ़ता, उनका साहस परिस्थितियों से जूझने की शक्ति, सब को स्पष्ट कर देता है। प्रेमचन्द ने संघर्ष की महत्वा को अच्छी तरह समझा था। प्रेमचन्द ने प्रत्येक पात्र के जीवन की वास्तविक कठिनाइयों का चित्र उपस्थित करने के लिए पात्रों के जीवन संघर्षों को अपने सभी उपन्यासों में व्यक्त किया है।

१३- प्रेमचन्द का प्रत्येक उपन्यास उनकी प्रेरणा का फलस्वरूप है। प्रेमचन्द ने अपने कथा-साहित्य में वही चित्र हमारे सम्मुख उपस्थित किए हैं जो ये बतलाते हैं कि दरिद्रता के कारण हमारी आत्माएं मर गयी हैं और हमारे जीवन निर्जीव हो गए हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों के चित्र परम दुर्दशाग्रस्त मानवता के दयनीय चिन्ह हैं, उन लाखों करोड़ो मनुष्यों के जिनसे हमारी भूमि भरी हुई है। प्रेमचन्द ने इन विषयों को अत्यन्त प्रशस्त शैली में व्यक्त किया है।

१४- प्रेमचन्द की वर्णन-शैली में किसी प्रकार का घुमाव-फिराव, उतार-चढ़ाव अथवा चमत्कारिक ढंग नहीं अपनाया गया। घटनाएं स्वयं अपना स्थान स्थिर करती चलती है। उनको ऊपर से थोपा नहीं जाता। प्रेमचन्द का कथा-सौष्ठव अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ उपन्यास में शोभायमान रहता है।

१५- प्रेमचन्द को मानव-जाति में पूर्ण आस्था थी। मानव जाति के प्रति असम्भावना की भावना उनके मन में थी ही नहीं, इसीलिए उनके उपन्यासों के वर्ण्य-विषय अधिकांशत: सामाजिक होने पर भी घृणा का उद्घोष नहीं करते। कथानकों में मानव के सामाजिक-जीवन के सफल चित्रण हैं। उपन्यासों के कथानक व्यक्ति के ही दुख का निदान समाज की विभिन्न परिस्थितियों के चित्रण द्वारा ढूंढने का प्रयास करते हैं।

१६- प्रेमचन्द के उपन्यासों की कथा-योजना में, पात्रों के चयन में, भाषा-भिव्यक्ति में सर्वत्र एक प्रकार की सरलता है जो उनके जीवन, उनके स्वभाव और मानसिक प्रक्रिया को व्यक्त करती है। प्रेमचन्द के जीवन की उच्चता, महानता और सहजता उनकी वर्णन-शैली में प्रयुक्त हुई है। उनके उपन्यासों में अत्यधिक कथा-योजना होने पर भी एक अन्विति सर्वत्र व्याप्त रहती है। `प्रेमाश्रम` में बहुमुखी कथा योजना है। किसानों और जमींदारों के संघर्ष का प्रतिपादन करने वाली मुख्य-कथा, इसी के अन्तर्गत ज्ञानशंकर और गायत्री का प्रेम-प्रसंग, रायबहादुर कमलानंद का आख्यान, प्रेमशंकर के दोनो पुत्रों की कथा, अन्य छोटी छोटी प्रासंगिक कथाएं लेकिन सब सूत्रों का एकत्र समावेश है। ये सभी कथाएं मिल कर एक समष्टि की प्रतीति कराती है। `रंगभूमि`में सूरदास अन्धे भिखारी की कथा, उसके साथ विनय-सोफिया की कथा, कुंवर भरत सिंह के परिवार की कथा, इन्दु और कुंवर महेन्द्र सिंह की कथा और ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित भैरो, कुत्राम, बजरंगी, की कथाएं। `कर्मभूमि` में कथा के दो भाग हैं। एक भाग नागरिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाला, दूसरा ग्रामीण जीवन से। `गोदान`तो प्रेमचन्द की कथा-प्रणाली का व्यापक दिग्दर्शन ही है। किन्तु सभी कथा-योजना में एक अन्विति व्याप्त है।

१७- प्रेमचन्द अपनी दुहरी, तीहरी कथा-योजना से प्रत्येक जगह सफल ही रहे हों ऐसी बात नहीं, जब कथा में शिथिलता व्याप्त होने लगी है तो प्रेमचन्द ने अनेक पात्रों की मृत्यु कराके अपने कथा-संगठन को स्थिर किया है। `निर्मला`[१] में अकारण अनेक पात्रों की मृत्यु प्रेमचन्द के हाथों हुई हैं। एक छोटे

---

१. `उदयभानु की मृत्यु x x x मुंशी तोताराम के पुत्र मंसाराम की मृत्यु x x x x सुधा के बालक की मृत्यु, ( यह तो कथानक में असंगति ही प्रस्तुत करती है जिसकी की कोई आवश्यकता नहीं) x x सुधा के पति डाक्टर की मृत्यु xx x x x जिर्मला की मृत्यु`
— `निर्मला`, पृ० सं०- १६, ११६, १५०, २०८,२१३,

से उपन्यास में पांच-पांच मौतों को दिखा कर प्रेमचन्द ने कथा-विकास की सहजता का मार्ग छोड़ कर अनावश्यक घटनामूलक अतिरंजना से काम लिया है। लेकिन अभ्यास से प्रेमचन्द ने उपन्यासों के कला-सिद्धान्त में भी सदैव सुधार लाने का प्रयत्न किया। क्योंकि सन् ३५ की बात है, प्रेमचन्द ने अपने पुत्र अमृतराय को लिखा था "x x x x x इतनी मौतें न हों तो अच्छा है, क्योंकि ऐसी कहानियां कमज़ोर मानी जाती हैं, जिनमें ज्यादा मौतें हों"[1] करुण-रस की स्त्रोतस्विनी बहाने के उद्देश्य से, कभी-कभी हृदय-विदारक चित्र भी आवश्यक हो जाते हैं। मृत्यु से अधिक करुण तो कोई चीज़ होती नहीं। करुण-रस का पूर्ण परिपाक 'मृत्यु' के आधार पर ही होता है। किन्तु 'निर्मला' में, 'प्रतिज्ञा'[2] में पूर्णा के पति बसन्तकुमार की मृत्यु कथानक में दोष उत्पन्न करती हैं और कला की दृष्टि से यह अनुचित है। प्रेमचन्द की उपन्यास-कला कभी-कभी लक्ष्य की प्राप्ति में अपना सौन्दर्य खो बैठती है। यह सच है प्रेमचन्द ने अपने लक्ष्य की पूर्ति में कथावस्तु और पात्रों दोनो को अपनी मुट्ठी में रक्खा है। सूत्रधार की भांति उचित-अनुचित परिस्थितियों का ध्यान रखकर, प्रेमचन्द ने उनको विचरने की स्वतन्त्रता प्रदान की है।

१८- प्रेमचन्द की उपन्यास-कला पर विचार करते हुए, यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न होता है कि कहां तक प्रेमचन्द के विचार, उनका मानसिक-गठन, उनका लक्ष्य अथवा उपदेश का कथा-सौष्ठव पर प्रभाव पढ़ता है? क्योंकि प्रेमचन्द की यह धारणा थी कि साहित्य का नीति से घनिष्ट सम्बन्ध है। वह लिखते हैं: "नीतिशास्त्र और साहित्यशास्त्र का लक्ष्य एक ही है। केवल उपदेश की विधि में अन्तर है। नीतिशास्त्र तर्कों और उपदेशों के द्वारा बुद्धि और मन पर प्रभाव डालने का यत्न करता है। साहित्य ने अपने लिए मानसिक अवस्थाओं और भावों का क्षेत्र चुन लिया है।"[3] प्रेमचन्द इस

---

१. प्रेमचन्द-स्मृति, प्रका० ई०स० पृ० सं० २५३,

२. प्रतिज्ञा, पृ०सं० २०

३.

बात के प्रबल समर्थक हैं कि नीति-शिक्षा के उद्देश्य कथा के माध्यम से इस रूप में सम्पन्न किए जाए कि कला का सौन्दर्य अविच्छिन्न बना रहे। नीति-संकेत कथा-तन्तुओं में स्वतः फलकता रहें। `साहित्य`और `नीति` का समन्वय किस कौशल से किया जाए यह दूसरा प्रश्न है ? प्रेमचन्द के प्रारंभिक उपन्यासों में नीति और उपदेश स्वतन्त्र फलकते प्रतीत होते हैं। प्रेमचन्द में यह परिपक्वता `रंगभूमि` से विकसित होती है। `प्रतिज्ञा` में `वनिता भवन` `सेवासदन` में `सेवासदन` `प्रेमाश्रम` में प्रेमशंकर का `प्रेमाश्रम` प्रेमचन्द की ध्येयोन्मुखता के स्पष्ट उदाहरण हैं। `रंगभूमि` में रंगभूमि के विस्तृत मैदान में सभी अपनी लीलाएं दिखाते हैं। `कर्मभूमि` कर्म का क्षेत्र है, जहां जीने का उद्देश्य कर्म में है। प्रेमचन्द की रचना-शैली में अब तीव्रता आ गयी थी। प्रेमचन्द की रचना-शैली विद्युत्गति से बढ़ रही थी। उन्हें हृदय-परिवर्तन की नीति, अहिंसा, उपदेश प्रेमचन्द की नीति अलग ध्वनित नहीं होती, वह कथा के माध्यम से इस रूप में सम्पन्न हुई है कि कला-सौन्दर्य अविच्छिन्न रहा है। `गोदान में नीति का परिपाक अणु-अणु में व्याप्त है।

उपन्यास :

१६- `उपन्यास` लेखक के सामाजिक कर्तव्य का महानतम् रूप है। `उपन्यास` की सृष्टि और पूर्णता में लेखक के एक-एक शब्द का अनुदान रहता है। इसलिए `उपन्यास` के विश्लेषणात्मक अध्ययन में कथावस्तु, चरित्र, कथोपकथन, वातावरण, शैली, उद्देश्य को एक दूसरे से अलग करके स्थूल रूप में देखना पड़ता है। यद्यपि ये सब उपन्यास के उपक्रम मात्र है, और एक के बिना दूसरे का कोई महत्व नहीं है। प्रेमचन्द लिखते हैं : "उपन्यास-रचना को सरल-साहित्य कहा जाता है, इसलिए कि उससे पाठकों का मनोरंजन होता है। पर उपन्यासकार को उपन्यास लिखने में उतना ही दिमाग लगाना पड़ता है, जितना किसी दार्शनिक को दर्शन-शास्त्र का ग्रन्थ लिखने में।"[१]

---

१. प्रेमचन्द `उपन्यास रचना` विविध प्रसंग, भाग-३, प्रका० हंस इलाहाबाद, सं० प्रथम १९६२, पृ० सं० १.

२०- उपन्यास का क्षेत्र उतना ही विस्तृत है जितना जीवन। जीवन की विशालता के साथ, उपन्यास भी विस्तृत होता जाता है। प्रेमचन्द उपन्यास की रचना में अवलोकन, अनुभव, स्वाध्याय, अन्तर्दृष्टि, जिज्ञासा, विचार-आकलन को मुख्य साधन मानते थे।[१] वस्तुत: उपन्यास में जो कुछ है वह जीवन नहीं, बल्कि जीवन का अनुभव है। हमारे लिए जीवन का उतना ही अर्थ रहता है, जितना कि हम अपनी चेतना द्वारा अनुभूत करते हैं। यही अनुभव उपन्यास का विषय है। अनुभव के लिए स्वाध्याय से लेखक को बड़ी मदद मिलती है। स्वाध्याय मनुष्य को सम्पूर्ण बना देता है। प्रेमचन्द लिखते हैं : "स्वाध्याय का उद्देश्य यह न होना चाहिए कि किसी कुशल लेखक के भाव और विचार उड़ाए जाएं, बल्कि अपने भावों और विचारों की अन्य लेखकों से तुलना की जाए और उससे अच्छी रचना करने के लिए अपने को प्रोत्साहित किया जाए।"[२]

२१- कथानक का शाब्दिक अर्थ तो है 'वह जो कहा जाए' परन्तु वह सभी कुछ, जो कहा जाए कथा नहीं। कथा का विशिष्ट अर्थ है, किसी ऐसी कथित घटना का कहना या वर्णन करना जिसका निश्चित परिणाम हो। श्री रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' के अनुसार : "एक या एक से अधिक पात्रों के अनुभवों तथा घटनाओं का क्रमिक अनुबन्धन ही कथानक है।"[३] प्रेमचन्द लिखते हैं : "प्लाट (कथानक) उन घटनाओं को कहते हैं जो उपन्यास के चरित्रों पर घटित हों। लेकिन केवल घटनाओं का वर्णन करने ही से कहानी में मनोरंजकता के गुण नहीं पैदा हो सकता। उन घटनाओं को कल्पना द्वारा ऐसा सजीव बनाना चाहिए कि उनमें वास्तविकता झलकने लगे x x x x x साधारणत:

---

१. प्रेमचन्द 'उपन्यास-रचना' विविध प्रसंग, भाग-३, प्रका० हंस इलाहाबाद, संस्करण- प्रथम १९६२, पृ० सं० १

२. प्रेमचन्द 'उपन्यास-रचना' पृ० सं० २०,

३. सम्पा० रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' प्रतिनिधि कहानियां भूमिका, पृ० सं०- ४३, प्रका० इलाहाबाद, सं- छटा १९५८,

प्लाट वह कथा है, जो उपन्यास पढ़ने के बाद साधारण पाठक से हृदयपट पर अंकित हो जाती है।"[१]

२२- कथानक के विषय विभिन्न हो सकते हैं, जितना ही व्यापक-क्षेत्र में लेखक की पहुंच होगी, उसका कथानक भी उतना ही विशाल हो सकता है। साधारणत: कथानक के विषय सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक आदि होते हैं। स्वयं प्रेमचन्द की कथा का क्षेत्र समाज था। प्रेमचन्द ने कथानक के छै भेद स्वीकार किए हैं।[२]

(१) कोई अद्भुत घटना
(२) कोई गुप्त रहस्य
(३) मनोभाव चित्रण
(४) चरित्रों का विश्लेषण और तुलना
(५) जीवन के अनुभवों को प्रकट करना
(६) कोई सामाजिक या राजनीतिक सुधार

उपन्यास किसी उद्देश्य विशेष की भावना से प्रेरित होकर लिखा जाता है, तब उपन्यास के अन्तर्गत ये विभिन्न प्रकार के भेद लेखक की रुचि-नुसार प्रकट हो जाते हैं। आधुनिक उपन्यास तो पूर्ण रूप में अपने में उद्देश्य-निहित होता है। पाश्चात्य उपन्यासकारों में डिकेन्स के प्राय: सभी उपन्यास टाल्सटाय के कई उत्तम उपन्यास, मैक्सिमगोर्की तुर्गनेव, बालज़ाक, ह्यूगो, मेरी करेली, ज़ोला आदि के प्रधान उपन्यास सुधार के उद्देश्य से ही रचे गए।

---

१. प्रेमचन्द- `उपन्यास-रचना` पृ० सं०- २१,

२. प्रेमचन्द- `उपन्यास-रचना` पृ० सं०- २२,

प्रेमचन्द लिखते हैं—"जब साहित्यिक रचना किसी सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक मत के प्रचार के लिए की जाती है तो वह ऊँचे पद से गिर जाती है—इसमें कोई सन्देह नहीं, लेकिन आज कल परिस्थितियां इतनी तीव्रगति से बदल रही हैं, इतने नए नए विचार पैदा हो रहे हैं, कि लेखक कदाचित साहित्य के आदर्श को ध्यान में रख ही नहीं सकता"[1] ऐसी स्थिति में जब कि रचनाएं विचार-प्रधान अधिक होती जा रही हैं, लेखक का कर्तव्य हो जाता है कि वह विचार अथवा सुधार-भावना के साथ ही उपन्यास की रोचकता का भी ध्यान रक्खे। उपन्यास मनुष्य के सामाजिक और वैयक्तिक अथवा दोनो प्रकार के जीवन का रोचक साहित्यिक प्रतिरूप है जो प्रायः एक कथा-सूत्र के आधार पर निर्मित होता है। रोचकता उपन्यास का अनिवार्य तत्त्व है। प्रेमचन्द के अनुसार : "अच्छे प्लाट में . . . . . सरलता, मौलिकता, रोचकता होनी चाहिए।"[2] कथानक जीवन की सरस घटनाओं की एक श्रृंखला है जो जीवन की व्याख्या या विवेचन करने में समर्थ होती है अतएव उपन्यास की सफलता कथानक के प्रयोग या उसके विकास पर निर्भर रहती है। कथानक के विकास की पांच स्थितियां होती है। आरम्भ, आरोह, चरमस्थिति, अवरोह, पतन या अन्त।

प्रारम्भ :

२३- कथा का प्रारम्भ, कथा का महत्त्वपूर्ण अंग है, जैसा लेखक शुरू में पाठक की रोचकता पर आधिपत्य स्थापित करता है, वैसा ही मनोभाव पाठक का अन्त तक कथा के साथ बना रहता है। कथा का प्रारम्भ आकस्मिक होना चाहिए। ऐसा प्रतीत हो कि घटना का मूल-सूत्र अन्यत्र किसी अकथित

---

१. प्रेमचन्द,- 'साहित्य के उद्देश्य' संस्करण- प्रथम १९५४, प्रका० हंस, इलाहाबाद पृ० सं०- ५६,

२. प्रेमचन्द 'उपन्यास-रचना' पृ० सं० २५,

घटना में है। पाठक की कौतूहल-वृत्ति सजग हो सके। वरना पाठक सुषुप्तावस्था में उपन्यास को समाप्त करता जाएगा। उपन्यासकार का यह धर्म हो जाता है कि वह पाठक की सार-ग्राहिणी-प्रवृत्ति की स्वाभाविकता के विषय में भी ध्यान रक्खे। कथा शृंखलाबद्ध हो, कथा का पूर्वापर सम्बन्ध हो और घटनाएं एक दूसरे से परस्पर अविच्छेद्य रूप में ग्रथित हों, केवल पात्रों का परिस्थितियों-नुसार भिन्नता का प्रतिपादन हो। लेखक को अपनी घटनाओं के प्रति सदैव सतर्क और सजग रहना चाहिए जिससे वह अपने मन में निश्चय कर सके कि अमुक घटना अमुक स्थल पर प्रारम्भ हुई, और अमुक स्थल पर विकसित और समाप्त हुई। क्योंकि पात्र ही परिस्थितियों के निर्माता होते हैं और परिस्थितियों में पात्र अच्छी तरह जाने पहचाने जाते हैं। प्रेमचन्द कथा का प्रारम्भ सहज, स्वाभाविक ढंग से पात्रों के आधार पर करते हैं। उन पात्रों की विवशता परिस्थितियों को जन्म देने लगती है। "दरोगा कृष्ण चन्द्र अपनी भलाइयों पर पछता रहे थे ... लोग बुराइयों पर पछताते हैं"[१] अब कथा प्रारम्भ का संकेत दे देता है बेचारा भला मनुष्य क्यों पीड़ित है? इसके पश्चात् आरोह के ढंग पर प्रेमचन्द पात्र की दुर्बल-मनोवृत्ति परिस्थिति को, परिचय के रूप में स्वयं प्रस्तुत करते हैं जो कथा के विकास अनिवार्य अंग है।" दरोगा कृष्णचन्द्र रसिक, उदार और बड़े सज्जन मनुष्य थे .... किन्तु मातहतों की दृष्टि में उनके इस व्यवहार का कुछ भी मूल्य न था .... हमारा पेट नहीं भरता हम भलमनसी को लेकर क्या करें .... सूखी रोटियां चांदी के थाल में परोसी जाएं तो भी पूरियां न हो जाएंगी।"[२] कथा इन्हीं घात प्रतिघातों में आरम्भ होने के बाद, विकसित होने लगती है।

---

१. सेवासदन,- पृ० सं० १

२. सेवासदन,- पृ० सं० १

चरमस्थिति :

२४- कथा के प्रारम्भ के पश्चात् कथा का विकास होता है जो सामान्य ढंग से बढ़ता है, इसके पश्चात्-चरम-स्थिति आती है जो कथा का मध्यान होता है। सम्पूर्ण-कथा बहु-मुखी होकर अपने मध्यान पर प्रकाशित हो जाती है। एक एक पात्र, एक परिस्थिति सब पाठकों के सम्मुख आ जाती है। चरम-विन्दु के अन्तर्गत आरम्भ में प्रस्तुत की हुई घटना, पात्र, समस्या आदि का विस्तार दिया जाता है। मुख्य घटना के विकास के लिए अन्य घटनाओं की योजना, पात्रों के चरित्र, अन्तर्द्वन्द आदि का चित्रण समस्या के स्वरूप का उद्घाटन और उसकी दिशा आदि का स्पष्टीकरण इसी भाग में होता है। चरम-विन्दु कथा के उद्देश्य के पीठिका उपस्थित कर देता है। इस पीठिका में सजकर कथाकार का उद्देश्य प्रभावान्वित कराने में समर्थ होता है। चरम-विन्दु पर आकर कथा की आत्मा प्रकाशित हो जाती है। पाठक उसी आलोक में कथा के अवरोह पर आता है। यह कथा का वह भाग है, जहाँ पहुंच कर पाठक की सम्पूर्ण-सम्वेदना कथा की ओर उन्मुख हो जाती है। अत: लेखक का यह कर्त्तव्य है, स्वाभाविक विकास के द्वारा पाठक को चरम-विन्दु पर ले जाए। इसके लिए यह अपेक्षित है कि वह कथा-वस्तु के मध्य-भाग को उतना ही विस्तार दे जितना घटनाओं और पात्रों के विकास के लिए आवश्यक हो। लेखक का उत्तरदायित्व हो जाता है कथा के संतुलन में, उसके कौतुहल-वृत्ति में एक क्रम-बद्धता रखे। पाठक को कथा में भटकना न पड़े। पाठक कथा के प्रशस्त-मार्ग पर सहज ढंग से आगे बढ़ सके। लेखक अपने दायित्व के निर्वाह के लिए भाव, भाषा, शैली, कथा-संगठन, सभी की सृष्टि में एक-सूत्रता का ध्यान रखना चाहिए।

२५- कथा में चरम-विन्दु की कोई सीमा नहीं होती, वह लेखक की योग्यता और समर्थ पर निर्भर करता है। उपन्यास-कार चरम-विन्दु की योजना किसी भी स्थल पर कर सकता है, इस सम्बन्ध में कोई निश्चित नियम नहीं। कथा के आरम्भ और बीच का समस्त प्रसार चरम-विन्दु की स्थिति-विधान का ही प्रयत्न है। चरम-विन्दु पर पहुंच कर कथा समस्त-सूत्रों द्वारा एकोन्मुख हो जाती है। प्रेमचन्द के उपन्यासों की यह विशेषता है कि कथा अत्यन्त ही सामान्य ढंग से एक समतल, सपाट मैदान पर विचरने वाली जल-तरंगनी के समान प्रवाहित होती है। कथा में सुगठितता होती है। घटनाओं का विन्यास शृंखला के रूप में होता है। प्रसंग यथास्थान विन्यस्त रहते हैं, उनका उचित विभाजन होता है। कथा के विभिन्न व्यापारों में उचित गति, कथा के स्थलों में घनिष्टता और दृढ़ता रहती है। प्रेमचन्द ने अपने सभी उपन्यासों में चरम-विन्दु की योजना विशेष रूप से प्रस्तुत नहीं की है। उनके उपन्यासों में सभी गुण पर्याप्त मात्रा में हैं, परन्तु कथा-विकास का जहां तक प्रश्न है, कथा का विकास सामान्य और संतुलित ढंग से हुआ है, कथा का चरम-विन्दु वही स्थिति हो सकती है, जहां पर उपन्यासों के पात्र प्रेरणा स्वरूप अपने जीवन में आदर्शात्मक-परिवर्तन आरम्भ करते हैं और इसके लिए कथा का चरम-विन्दु पात्रों की योजना पर सम्भव है। 'सेवा-सदन' की 'सुमन'[१] 'गोदान' की मालती,[२] 'खन्ना'[३] आदि पात्रों की जब मानवीयवृत्तियों का जागरण होता है, वहीं पर कथा चरम-विन्दु को स्पर्श करती है।

---

१. 'सेवासदन', पृ० सं०- १२६,

२. 'गोदान' पृ० सं०- ३०७,

३. वही ,, - २६४,

अन्त :

२६- एक साधारण कहावत है कि `अन्त भला तो सब भला` यह उक्ति जितनी उपन्यास के साथ सार्थक होती है, अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं। उपन्यास का अध्ययन अत्यन्त धैर्य के साथ किया जाता है, इस कारण फलागम् का विशेष महत्त्व है। उपन्यास का अन्त, सम्पूर्ण उपन्यास के सौन्दर्य-वृद्धि को या तो पाठकों के मन में खिला देता है अथवा निरर्थक प्रतीत होने लगता है। उपन्यास के `अन्त` का उद्घाटन के विषय में लेखक प्रारम्भ से ही सोच लेता है। `अन्त` के विषय में लेखक की मनोवृत्ति, उसका लक्ष्य, उद्देश्य, अन्तर-मन सब का सहयोग रहता है। कथा के समाष्टि-प्रभाव अथवा प्रभावान्वित का सम्बन्ध उपन्यास के `अन्त` से जुड़ा रहता है। `अन्त` ही लेखक की प्रतिभा की कसौटी है। लेखक `अन्त` की उपेक्षा नहीं कर सकता। `अन्त` की उपेक्षा करना कथा की संजीवन-शक्ति के साथ अनर्थ करना है। `अन्त` में सम्पूर्ण-कथा के भाव निहित-रहते है। कथा में जो कुछ भी आरम्भ किया जाता है, उसी का घनिष्ट सम्बन्ध अन्त से रहता है। कथा का `अन्त` अप्रत्याशित रहता है, वह सुखान्त और दुखान्त दोनो हो सकता है। यह लेखक की इच्छा पर निर्भर है, इसके लिए कोई सामान्य नियम नहीं है। `अन्त` पाठक के जितना निकट होता जाएगा, उतनी पाठक की सम्वेदना तीव्र होती जाएगी। `अन्त` पूर्णत: लेखक की सामर्थ और प्रतिभा पर निर्भर करता है। कभी कभी दुख-पूर्ण `अन्त` भी सहानुभूति पूर्ण लगता है, पाठक `अन्त` से दुखी होकर भी सान्त्वना ग्रहण करता है। `गोदान` का `होरी` अपनी प्रतिक्रियात्मक प्रकृति, रूढ़िवादिता और धर्म-भीरुता से अपने को मिटा देता है। `गोदान` का अन्त दुखान्त है, लेकिन पाठकों के लिए होरी का पार्थिव-शरीर विलीन हो जाता है और होरी की स्मृति सदैव के लिए सजग। `अन्त` की सफलता यही है कि पाठकों पर अपने लक्ष्य का प्रभावशाली रूप प्रस्तुत कर सकें। अन्त के विषय में किसी भी विद्वान का कोई प्रतिपादित नियम सर्वमान्य नहीं है। अत: लेखक को अपने मूलभाव को परिपक्व करते हुए कथा की समाप्ति करनी चाहिए।

२७- प्रेमचन्द के उपन्यासों की कथावस्तु समाज-सापेक्ष है लेकिन उसमें व्यक्ति-कल्याण का भी उतना ही महत्व है जितना समाज-सुधार का। प्रेमचन्द उपन्यास को ज्ञान का पोषक और मनुष्य के सांस्कृतिक-विकास का परिचायक मानते थे। वह लिखते हैं : "हमारी सभ्यता साहित्य पर ही आधारित है। हम जो कुछ है साहित्य के बनाए हुए हैं।"[१] जन-संस्कृति को बनाने और फैलाने में कथा-साहित्य का बड़ा हाथ होता है। अतएव उपन्यासकार का दायित्व विशेष रूप में महत्वपूर्ण है। मनुष्य का जीवन आज तक परिस्थितियों के प्रति संग्राम कर रहा है। उपन्यासकार प्रतिकूल परिस्थितियों में अपना अस्तित्व बनाए रखने की शक्ति संचित करने की प्रेरणा देता है। वह अपनी कल्पना से अनुकूल परिस्थितियों के निर्माण की चेष्टा करता है। प्रेमचन्द लिखते हैं : "साहित्यकार का लक्ष्य x x x x x आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है।"[२] उपन्यास-कार मनुष्य के नैतिक उत्थान का प्रणेता, क्रान्ति दृष्टा, तथा मनुष्य विश्लेषण का सृष्टा है। इसी कारण उपन्यास की कथा-वस्तु इन विचारों से संगठित रहती है। गोर्की ने अपने उपन्यासों की कथावस्तु में संसार के सभी भागों की शोषित जनता की वेदना को, उनकी आशा-आकांक्षाओं को और विजय पाने की इच्छा-शक्ति को, व्यक्त किया है। गोर्की का जीवन आज हमें महान् और महत्वपूर्ण प्रतीत होता है क्योंकि वास्तविक जीवन से उपन्यास का इतना सादृश्य है कि उसके मूल्य कुछ सीमा तक जीवन के ही मूल्य हैं। उपन्यास का महत्व इस बात में है कि वह अपने वैविध्य के कारण कितने विशाल-क्षेत्र को अपना सकता है और मानव-जीवन के कितने विस्तृत अंश का स्पर्श कर सकता है। मनोरंजन के साथ-साथ वह ज्ञान भी प्रदान करता है। वह मनुष्य के अन्दर और बाहर की

---

१. प्रेमचन्द 'जीवन में साहित्य का स्थान' संकलन-साहित्य के उद्देश्य, प्रका० हंस, इलाहाबाद, जुलाई १९५७ सं- प्रथम, पृ०सं०- २७,

२. प्रेमचन्द, 'साहित्य के उद्देश्य' पृ० सं०- १५,

सभी प्रवृत्तियों को दिखा कर उनका स्पष्टीकरण करता है और जीवन को प्रेरणा देता है। उपन्यासकार का ध्येय व्यक्ति और समाज के साथ ही साथ मनुष्य को समग्र रूप में समझ कर, उसके जीवन के सात्त्विक लक्ष्यों को प्रकट करना है। आज तक विज्ञान के द्वारा प्राप्त तथ्यों के परे जो सत्य है, उसकी ओर मनुष्य को अग्रसर करना उपन्यासकार का कर्तव्य है। प्रेमचन्द लिखते हैं :"साहित्य का सम्बन्ध बुद्धि से उतना नहीं जितना भावों से है। बुद्धि के लिए दर्शन है, विज्ञान है, नीति है। भावों के लिए कविता है, उपन्यास है, गद्य-काव्य है।"[१] उपन्यास हमारे भावों को जगाने का साधन है क्योंकि उपन्यास जीवन के सबसे निकटस्थ साहित्यिक-रूप है। उपन्यास का रूप और ध्येय जीवन के ही रूप और ध्येय हैं और उसका मूल्य जीवन का मूल्य है, उसकी कथावस्तु-जीवन की कथा-वस्तु है।

उपन्यासों की कथावस्तु :

२८- कथावस्तु पर उनके युग की सामान्य परिस्थितियों का विशेष प्रभाव है। उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध ने भारतीय जनता एवं साहित्य को राजनीति के क्षेत्र में खींच लाने का प्रयत्न किया। बीसवीं शती के आरम्भ में साहित्य, जनता और राजनीति तीनों मे अक्षुण्ण सम्बन्ध स्थापित हो गया। नेता जनता की महान शक्ति की घोषणा करके उनको प्रेरणा देने के प्रयत्न में लगे थे। जनता अपनी अन्तर्निहित शक्ति को समझ कर सजीव होने लगी और लेखक के कानों में जन-विप्लव की तुमुल ध्वनि गूंज उठी। ऐसी परिस्थिति में लेखक को जनता के जीवन और वाणी का तिरस्कार

---

१. प्रेमचन्द 'साहित्य के उद्देश्य' पृ० सं०- २०

करना असम्भव था । प्रेमचन्द लिखते हैं । "आज-कल परिस्थितियाँ इतनी तीव्र गति से बदल रही हैं, इतने नए-नए विचार पैदा हो रहे हैं, कि कदाचित् अब कोई लेखक (सिर्फ) साहित्य के आदर्श को ध्यान में रख ही नहीं सकता । यह बहुत मुश्किल है कि लेखक पर इन परिस्थितियों का असर न पड़े ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ विक्टर ह्यूगो का 'ले मिजरेबुल' टाल्सटाय के अनेक ग्रन्थ डिकेन्स की कितनी रचनाएं विचार-प्रधान होते हुए भी उच्च-कोटि की साहित्यिक कृतियाँ हैं ।"[1] प्रेमचन्द जागरूक कलाकार थे, जनता को जनार्दन समझते थे और जीवन को ही साहित्य का सर्वोत्कृष्ट होना एक ओर राजनैतिक विवशता थी, दूसरी ओर उनकी अपनी आन्तरिक-प्रेरणा । प्रेमचन्द की रचनाओं में राजनीति से सम्बन्धित विशद चित्रण है लेकिन प्रेमचन्द को केवल राजनीति का प्रणेता नहीं मान सकते । राजनीति ने उनके साहित्य पर प्रभाव डाला है, किन्तु साहित्य का आधार उसका विषय प्रस्तुत करने में प्रेमचन्द की अनुभूति ही सबसे अधिक सहायक है । जनता को समझने वाले, जनता के प्रति वास्तविक सहानुभूति रखने वाले, जन-जीवन को अपना जीवन समझने वाले, जन-हित के लिए आत्मानुभूति देने वाले प्रेमचन्द अपनी समाज-व्यवस्था से असन्तुष्ट थे । गांधी जी की भाँति प्रेमचन्द भी जन-साधारण के लिए ही सुख-और स्वराज्य की कामना करते थे । प्रेमचन्द को जनता की शक्ति पर पूरा विश्वास था, इसी कारण वे अपने साहित्य के माध्यम से ऐसी प्रेरणा जनता में भरना चाहते थे जो मंगलमयी भावना को तीव्र करे ।

२६- प्रेमचन्द का प्रथम उपन्यास 'असरारे मआविद' है जो ८ अक्तूबर १६०३ के अंक में छपा था (बनारस से निकलने वाले उर्दू साप्ताहिक- 'आवाज़े खल्क' में सिलसिलेवार निकला।)[2] इसकी कथावस्तु धार्मिक-वातावरण

१.प्रेमचन्द 'साहित्य के उद्देश्य' पृ० सं०—

२.प्रेमचन्द प्रका०- हंस, इलाहाबाद १६६२, संस्करण प्रथम, भूमिका-पृ०सं०६

से ली गई है । समाज में फैली धार्मिक अजीर्णताओं और रूढ़ियों को अपनी कथा में प्रस्तुत किया है । कथानक साधारण है और घटनाओं का बाहुल्य है । प्रारंभिक उपन्यास होने के कारण प्रेमचन्द चरित्र की व्याख्या नहीं कर पाए । सीधे सादे ढंग से कहानी समाज का चित्र, उनमें रहने वालों की लीलाएं वर्णन होती हैं । प्रेमचन्द अपने युग की सामाजिक-परिस्थिति का कुप्रभाव जो नर-नारियों पर पड़ रहा था, दिखा कर उसमें सुधार की भावना प्रकट की है । कथा में प्रवाह के स्थान पर शिथिलता है । भाषा का तो कोई प्रश्न ही नहीं क्यों कि मूल उपन्यास उर्दू का था, यह रूपान्तर मात्र है ।

३०- `हम खुर्मा व हम सवाब` इसका प्रकाशन १६०६ ई० में ज़माना में हुआ था । बहुत काल पश्चात् इसका परिवर्तित रूप `प्रतिज्ञा` (सन् १६२७) नाम से प्रकाशित हुआ । विधवाओं की समस्या प्रधान कहानी के रूप में प्रस्तुत की गई है । प्रेमा और पूर्णा की कथाएं भी प्रधान कथानक से सम्बन्धित हैं । प्रारंभिक रचना होने के कारण कथा-सौष्ठव का स्वाभाविकतापूर्ण निर्वाह नहीं हो सका है । ऐसा प्रतीत होता है कि कथा-वस्तु लेखक के उद्देश्य को ही विशद रूप में लेकर चली है, जिसमें प्रमुखता `समाजगत समस्या` की है ।

३१- `रूठी रानी` का प्रकाशन भी क्रमगत रूप में `ज़माना` (सन् १६०७) में हुआ था । रूठी रानी की कथावस्तु ऐतिहासिक है । अपने पूर्व उपन्यासों की भांति इसमें भी प्रेमचन्द `कला` को गौण और `उद्देश्य` को प्रमुख रूप में प्रकट करते हैं । प्रारंभिक कृति होने के कारण कथा घटना-बाहुल्य अधिक है ।

३२- वरदान (१९१२) प्रेमचन्द का प्रारंभिक उपन्यास है। यह उस युग की रचना है जब प्रेमचन्द कलाकार की दृष्टि से पूर्ण सज्ञान न थे। `वरदान` में कला, की दृष्टि से कथा दोषपूर्ण है और संगठन शिथिल है। कथा-विकास में अनेक स्थलों पर अस्वाभाविक पद्धति का प्रयोग किया गया है। विरजन और प्रताप की प्रेम कहानी, कमलाचरण की मृत्यु[1], पिता की मृत्यु[2], प्रताप का सन्यासी होना[3] आदि योजनाएं कृत्रिम लगती है और कथा-विकास में सहज स्वाभाविकता के स्थान पर कथा पर थोपी हुई प्रतीत होती हैं। विरजन का कवियत्री होना, प्रताप का साधु होना, माधवी की प्रताप (बालाजी) के प्रति एक निष्ठा सब अविश्वसनीय और अस्वाभाविक घटनाएं हैं। प्रेमचन्द की उद्देश्य प्रिय वर्णन शैली ने उपन्यास को नीरस नहीं होने दिया, यद्यपि कथा शृंखलाबद्ध नहीं है।

३३- प्रेमचन्द की कला का प्रस्फुटन `सेवासदन` (१९१६) से प्रारम्भ होता है। हिन्दी-उपन्यास के इतिहास में `सेवासदन` का विशिष्ट स्थान है। `सेवासदन` की कथा के दो रूप हैं: एक और कथा `सुमन` के जीवन की कहानी है, जो बचपन में माता-पिता से उचित शिक्षा न पा कर अपनी प्रवृत्तियों को विनाश की ओर ले जाती है। बचपन से सुमन सुन्दर, चंचल और अभिमाननी थी, उसने गृह-कला की निपुणता की शिक्षा मां बाप से नहीं पायी थी, उसका चरित्र उत्शृंखल/ असन्तोषी था, थोड़े में गुजर करना और सन्तोष करना उसने सीखा न था, उसकी मनोवृत्तियों की दुर्बलता ने उसमें आत्म-संयम् का पाठ नहीं पढ़ाया था। अपनी इच्छाओं पर निग्रह न होने से नारी का पतन किस प्रकार होता है; यही कथा का मूल रूप है। सुमन

---

१. वरदान, संस्करण- पांचवां, प्रका० हंस, इलाहाबाद,
   मार्च- १९५६, पृ० सं० १११,
२. ,, ,, पृ० सं० ११४,
३. ,, ,, पृ० सं० १२३,

के पतन में परिस्थितियों का क्या सहयोग है, यह कथा भी समानान्तर रूप में चली है। दहेज की कुप्रथा के कारण दारुण अनर्थों की सृष्टि होती है, सुधारकों के पारस्परिक वैमनस्य और चारित्रिक दौर्बल्य से समाज में पतितों और आश्रयहीन बहनों का सर्वनाश होता है, इन परम्परागत पापों को पराजित करने के लिए किस त्याग, बलिदान और प्रेम की आवश्यकता है, आदि विषयों का उल्लेख प्रेमचन्द ने कथा-रूप में किया है। कथानक का केन्द्र-बिन्दु सुमन है सारी घटनाएं उसी से सम्बन्ध रखती हैं। संयोग और परिस्थिति-योजना द्वारा घटनाओं की प्रगति की गई है। यह परिस्थितियां बड़े स्वाभाविक ढंग से पात्रों के कार्य-व्यापार द्वारा उत्पन्न होती हैं, इनके निर्माण में किसी कृत्रिम पद्धति का प्रयोग नहीं किया गया है। इस लिए 'सेवासदन' उद्देश्यपूर्ण रचना होकर भी कलात्मक कृति है।

३४- 'प्रेमाश्रम' (सन् १६२१) प्रेमचन्द को जन-साधारण के लेखक के रूप में प्रस्तुत करनेवाला प्रथम उपन्यास है। 'प्रेमाश्रम' की कथा-सामग्री का क्षेत्र व्यापक समाज है, जिसमें नगर और ग्राम दोनों का विषद चित्रण है। इस उपन्यास में विकास-विस्तार के कारण पात्र-संख्या भी अधिक है। विभिन्न समस्याओं को लेकर कथा-वस्तु का निर्माण किया गया है। प्रेम, घृणा, स्वार्थ, त्याग, सुख-दुख आदि के भाव अभिव्यक्त करने वाली घटनाओं का सन्निवेश करके, जीवन के विषद चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। लेकिन प्रेमचन्द की कल्पना, अनुभूति और वर्णन-शक्ति ने कुछ स्थलों के बड़े विशद चित्र[1] खींच दिए हैं जो उपन्यास-कला के लिए उपर्युक्त नहीं हैं।

---

१. प्रेमाश्रम, पृ० सं०—३३०, ३६७,

३५- कथावस्तु की घटनाओं के मुख्य केन्द्र बनारस, गोरखपुर और लखनऊ हैं। मुख्य केन्द्रों का निर्णय ज्ञानशंकर के कार्य-कलाप के आधार पर किया गया है। इन्हीं तीन केन्द्रों के बीच ज्ञानशंकर के कार्य-कलाप सम्पन्न होते हैं। बनारस में वह लखनपुर के शोषण का प्रबन्ध करता है। गोरखपुर में गायत्री को अधिकृत करने में प्रयत्नशील है और लखनऊ में राय कमला नंद की रियासत पर दृष्टि रखता है। ज्ञानशंकर की महत्वाकांक्षा भी इन्हीं तीनों केन्द्रों में सीमित है। गौण केन्द्र के रूप में नैनीताल, लखनपुर और हाजीगंज हैं। हाजीगंज प्रेमशंकर के `प्रेमाश्रम` की फलक दिखाता है।[१] `प्रेमाश्रम` की कथा जमींदार और कृषक के सम्बन्ध पर आधारित है। दोनो का सम्बन्ध ही संघर्ष का मूल रूप है, जिसकी निष्पत्ति बाद में `प्रेमाश्रम` की सृष्टि से होती है।

३६- `रंगभूमि` (सन् १६२५) की कथावस्तु प्रेमचन्द के रचना-कौशल का महत् उदाहरण है। इसमें समाज का चित्रण व्यापक रूप में आया है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, नगर-ग्रामीण, छूत-अछूत, स्त्री पुरुष सभी वर्ग के लोगों के जीवन का चित्र है। औद्योगिक शोषण, राजनीतिक परतन्त्रता और संघर्ष से ओत-प्रोत इस उपन्यास में भारतीय-जीवन के अनेक पक्षों पर दृष्टिपात किया गया है। प्रेमचन्द ने बढ़ती हुई पूंजीवादी-सभ्यता के सम्पर्क में आने पर ग्राम-जीवन की सरल-सन्तोषमयता के अस्त-व्यस्त होने का चित्र खींचा है। `रंगभूमि` की कथा बनारस के निकट पांडेपुर से आरम्भ होती है। बाद में उसका विकास बनारस, राजस्थान (उदयपुर) आदि स्थानों को लेकर होता है। पांडेपुर उन ग्रामीण व्यक्तियों

१.(ऊपर लिखित स्थान नक्शे में देखिए)

का निवास-स्थान है, जिन्हें दमन और संघर्ष का सामना करना पड़ता है। बनारस उच्च मध्यवर्गीय और कतिपय भूमिपतियों का निवास-स्थान है। उदयपुर में जसवन्त नगर सामन्ती शासन और देशी राज्यों का प्रतीक बन कर आया है। उपन्यास विभिन्न कथा-सूत्रों में होकर चला है। सूरदास की कथा, विनय और सोफिया की कथा, गांव की विभिन्न उपकथाएं जो प्रासंगिक रूप में प्रस्तुत हैं। कथा का नायक सूरदास है और कथा भी उसी के संघर्षमय व्यस्तता में चली है।

३७- `कायाकल्प` (१६२६) में दो प्रकार के कथानकों की योजना है सामाजिक और आध्यात्मिक कथा की दृष्टि से प्रेमचन्द का यह अनूठा उपन्यास है, विभिन्न पात्रों को लेकर पुनर्जन्म की कथा कही गयी है, इसमें अलौकिकता के स्थान पर चमत्कार तत्त्व अधिक है। आज की वैज्ञानिक दुनिया में ऐसी घटनाएं निर्मूल प्रतीत होती हैं। `कायाकल्प` के कथानक में स्थान स्थान पर अनावश्यक विस्तार की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। प्रेमचन्द ने कहीं कहीं पर पात्रों के विषय में इतने अधिक विवरणात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है कि रोचकता के स्थान पर नीरसता आ गयी है। मुंशी बृजधर की वार्तालाप[1], ठाकुर गुरुसेवक सिंह की बिमारी[2], लोगों द्वारा धूर्त ज्योतिषी[3] की दुर्गति आदि प्रसंग वस्तु-विन्यास में अनावश्यक से लगते हैं। जिसका मुख्य कथावस्तु से कोई सम्बन्ध नहीं जुड़ता।

३८- `निर्मला` (सन् १६२६) प्रेमचन्द का अत्यन्त गम्भीर और दुखान्त उपन्यास है, सम्पूर्ण कथावस्तु पर विषाद की गहरी छाया है और कालिमा है समाज के अभिषापों की, जो एक निरीह बालिका को दहेज

---

१. प्रेमचन्द `कायाकल्प`, प्रका०- सरस्वती (बनारस), संस्करण-११ १६५६, पृ० सं०- ७२

२. कायाकल्प, पृ० सं० २११-२१२,

३. कायाकल्प, पृ० सं० १५०,

की दूषित प्रथा के कारण बूढ़े तोताराम को सौंप देते हैं। `निर्मला` का कथानक पर्याप्त संगठित है। समस्त घटनाएं एक दुर्भाग्य ग्रस्त कन्या के जीवन के चतुर्दिक केन्द्रित हैं। कथानक की समस्त घटनाएं `निर्मला` की करूण कहानी को अधिकाधिक प्रभाव तीव्रता प्रदान करती हैं यह घटनाएं समुचित वेग से लक्ष्य प्राप्ति की ओर अग्रसर होती हैं। इसके लिए प्रेमचन्द ने आकस्मिकता और संयोग का प्रयोग किया है। उपन्यास में इनका आधिक्य अरूचिकर हो उठा है। पात्रों की मृत्यु तो दूभर हो गयी है। `निर्मला` के पिता उदयभान की मृत्यु[1] तो अनुकूल प्रतीत होती है, जिसमें संयोग की स्पष्ट छाप है। सुधा के बालक की मृत्यु हृदयाद्रावक लगने लगती है।[2]

३६- `गबन` (सन् १६३१) की कथावस्तु आरम्भ से अन्त तक `गबन` की घटना पर चहुंमुखी होती चलती है। मुख्य कथा रमानाथ और जालपा की है जो स्पष्टत: दो भागों में विभाजित है, जिसका प्रथम केन्द्र है प्रयाग और बाद का अर्द्ध भाग कलकत्ता का है। रमानाथ और जालपा दोनों ही कथा के सम्बन्ध सूत्र हैं। उसी के कार्य-व्यापार से वस्तु-विन्यास को विकास मिला है। मुख्य कथा के विकास में प्रासंगिक कथाओं की भी योजना है। विषय का सुचारू विकास है। कथा स्वाभाविकता को लिए हुए है।

४०- `कर्मभूमि` (सन् १६३२) में कथा पांच भागों में विभक्त है। प्रथम भाग पिता समरकान्त और पुत्र अमरकान्त के संघर्ष से प्रारम्भ होता है। धीरे धीरे घटनाएं फैलने लगती हैं और विकास पाती हैं। प्रेमचन्द ने कथा के साथ बड़े व्यापक ढंग से राजनीति धर्म, समाज और आर्थिक प्रवृत्तियों

---

१. प्रेमचन्द,- `निर्मला` प्रका० हंस, इलाहाबाद, पृ० सं० १७
२. `निर्मला` पृ० सं०- १५१,

को कथा के साथ पिरो लिया है । ये प्रवृत्तियाँ पग-पग पर भारतीय समाज और व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित करती हैं । उपन्यास की मुख्य कथा अमर और सुखदा की है । मुख्य कथा के पूर्णत्व के निमित्त कुछ गौण कथाएँ उससे सम्बद्ध की गयी हैं । मुन्नी का लज्जापहरण काँड[1] मन्दिर की कथा,[2] हरिद्वार में यात्री-दम्पति की कथा,[3] पर्वतीय ग्राम में मुन्नी अमर का नवीन प्रेम[4] आदि का इतना विस्तार अनावश्यक लगता है । कथानक की मूल प्रेरणा दोष-पूर्ण शिक्षा और दाम्पत्य-प्रेम की विषमता है । लेकिन कथा व्यापक जन आन्दोलन, म्युनिसिपैलिटी की पराजय, वर्ग-संघर्ष, अछूतों में असन्तोष आदि को लेकर चली है ।

४१- `गोदान` (सन १६३६) का कथानक प्रत्यक्ष जीवन के तत्वों से निर्मित होकर प्रस्तुत हुआ है । `गोदान` के कथानक की सभी घटनाएँ कल्पना-प्रसूत होने पर भी असम्भव नहीं जान पड़ती । हम अपने पार्श्ववर्तीय जीवन में नित्य-प्रति इसी प्रकार की घटनाएँ घटित होते देखते हैं । इन घटनाओं को प्रत्यक्ष जगत की अनुभूतियों का सबल आधार प्राप्त है । पात्रों के अन्तर्जगत में होने वाले स्पन्दनों को भी मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का समर्थन प्राप्त है । सम्भाव्यता की सीमा का कहीं भी अतिक्रमण नहीं हुआ है । कथा समाज-सापेक्ष अधिक है, व्यक्ति विशेष का इतना महत्त्व नहीं । कथा का केन्द्र ग्राम और नगर दोनो है । गाँव की कथा होरी और धनिया को लेकर चली है, लेकिन उपकथाओं के रूप में पूरे गाँव की कहानी सिमट गयी है । नगर की कथा भी पर्याप्त विस्तार के साथ अंकित है । मुख्य कहानी ग्राम-जीवन की कहानी है, जिसको पूँजीवादी सभ्यता ने विशृंखलित और ध्वस्त कर दिया है । कृषक-जीवन की यह विपत्ति-कथा

---

१. कर्मभूमि, प्रका०- हंस इलाहाबाद, पृ० सं०- ५४-----६५,
२. ,, ,, ,, ,, पृ० सं०- २००----२१६,
३. ,, ,, ,, ,, पृ० सं०- १८१----१८६,
४. ,, ,, ,, ,, पृ० सं०- २६१,

प्रेमचन्द इन शब्दों में कहते हैं जो एक दम सजीव हो उठी है : `घर का एक हिस्सा गिरने गिरने को हो गया था । द्वार पर केवल एक बैल बंधा हुआ था, वह भी नीमजान × × × × × अब इस घर के सँभलने की क्या आशा है । × × × × यह दशा कुछ होरी की ही न थी । सारे गाँव पर यह विपत्ति थी । ऐसा एक आदमी भी नहीं, जिसकी रोनी सूरत न हो । चलते-फिरते थे, काम करते थे, पिसते थे, घुटते थे, इसलिए कि पिसना और घुटना उनकी तकदीर में लिखा था । जीवन में न कोई आशा है और न कोई उमंग, जैसे उनके जीवन के सोते सूख गए हों और सारी हरियाली मुरझा गयी हो । × × × × × भविष्य अन्धकार की भाँति उनके सामने है । × × × सारी चेतनाएं शिथिल हो गयीं हैं । द्वार पर मनों कूड़ा जमा है; दुर्गन्ध उड़ रही है; मगर उनकी नाक में न गन्ध है, न आँखों में ज्योति × × × × × × स्वाद से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं । उनकी रसना मर चुकी है । उनके जीवन का स्वाद लोप हो चुका है । × × × × पतन की वह इन्तहा है जब आदमी शर्म और इज्जत को भी भूल जाता है ।[१] कृषक-वर्ग की दुरावस्था का यह सजीव चित्रण आरम्भ से अन्त तक हुआ है । जीवन और मृत्यु दोनों में उसका शोषण होता है । भारतीय किसान अपनी मृत्यु, अपनी प्रतिष्ठा, अपनी भावना और अपनी जिन्दगी सभी के द्वारा पीड़ित होता है । वह अपने शोषकों के द्वारा लूटा और कलंकित किया जाता है । वे लोग उसको बेदखल करते और उसका अधिकार छीन लेते हैं । इन्हीं विषम-परिस्थितियों की प्रेरणा से प्रेरित `गोदान` का कथानक संगठन-बद्ध है । कला की दृष्टि से

---

१. `गोदान` पृ० सं०— ३५६,

सम्पूर्ण कथा क्रम-बद्ध, रोचक, परिपूर्ण है, लेकिन राय साहब का `धनुष-यज्ञ` और फिर पठान का आगमन,[१] मालती-मेहता का साथ नदी पार करना,[२] शिकार खेलना,[३] मिर्जा साहब की कुश्ती[४] आदि प्रसंग अरुचिकर प्रतीत होते हैं। सर्वथा निर्दोष तो कोई रचना हो ही नहीं सकती, अत: कुछ न्यूनताओं के रहने पर भी कथानक की दृष्टि से `गोदान` सफल उपन्यास है। कथा सरल एवं तरल गति से आदि से अन्त तक पहुँच जाती है।

४२- `मंगलसूत्र` (सन् १९४८) प्रेमचन्द का अपूर्ण उपन्यास है, इस कारण कथा-वस्तु, उसके संगठन, रोचकता, मौलिकता आदि के विषय में निर्णय असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। इसके लक्ष्य-संधान के सम्बन्ध में अंतिम मत नहीं दिया जा सकता। किन्तु यह नि:संशय है कि इसके प्रत्येक परिच्छेद में आर्थिक,सामाजिक अन्याय के विरुद्ध विद्रोह का स्वर है। अतएव यह निष्कर्ष स्वयं-सिद्ध है कि `मंगलसूत्र` का विधान लोक मंगल के अदम्य विश्वास से अनुप्राणित है। प्रेमचन्द अपने लक्ष्य को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं : "बस हो तो सारे संसार की व्यवस्था बदल डाले x x x x जिस व्यवस्था से सारे समाज का उद्धार हो सकता है, वह थोड़े से आदमियों के स्वार्थ के कारण दबी पड़ी हुई है"[५] उद्धार का रास्ता संघर्ष का रास्ता है, देवता बनना कायरता है और जड़ता भी है।

---

१. प्रेमचन्द, `गोदान` संस्करण- १५, प्रका०-सरस्वती : बनारस, पृ० सं० ७०

२. ,, ,, ,, पृ० सं० ७६,

३. ,, ,, ,, पृ० सं० ७७,

४. ,, ,, ,, पृ० सं० २३६,

५. "मंगलसूत्र", - पृ० सं० २८६,

पात्र योजना : चरित्र—चित्रण

४३- उपन्यास प्राय: वस्तु प्रधान और पात्र-प्रधान दोनो प्रकार के होते हैं । बहुधा ऐसा देखा जाता है कि जिस उपन्यास में वस्तु-विधान की प्रमुखता हैं वहा चरित्र-चित्रण में अधिक सौन्दर्य नहीं आ सका है । प्रेमचन्द चरित्र-प्रधान उपन्यासों का पद ऊँचा मानते हैं ।[१] वह लिखते हैं : "उपन्यासकार की सबसे बड़ी विभूति ऐसे चरित्रों की सृष्टि करना है जो अपने सद्व्यवहार और सद्विचार से पाठक को मोहित कर ले x x x x x चरित्रों को उत्कृष्ट और आदर्श बनाने के लिए यह जरूरी नहीं कि वह निर्दोष हों । x x x x x चरित्र को सजीव बनाने के लिए उसकी कमजोरियां का दिग्दर्शन कराने से कोई हानि नहीं होती यही कमजोरियां उस चरित्र को मनुष्य बना देती हैं"[२] प्रेमचन्द के अधिकाश पात्र यथार्थ जीवन से लिए गए हैं, इसीलिए चरित्र-चित्रण में स्वाभाविकता और सरसता आ गयी है । प्रेमचन्द ने पात्र-योजना में परम्परागत-संस्कारों और रूढ़िवादिता का विशेष प्रभाव परिरक्षित किया है । पात्र परम्परागत संस्कारों के कारण रूढ़िवादी और दुर्बल आत्मा हैं । अन्त और बाह्य सारे दुखों को ढोते हैं लेकिन उससे मुक्ति पाने की उनमें सामर्थ नहीं और अन्त में प्रेमचन्द का 'होरी' एक ऐसा चिरस्मृणीय महान पात्र है जो अपनी अन्त: -बाह्य परिस्थितियों से जूझ कर मर जाता है लेकिन मर्यादाओं को तोड़ने की उसमें सामर्थ नहीं, वह धर्म-भीरू है । चरित्र-चित्रण इन्हीं पात्रों के अनरूप सामान्य गति से हुआ है ।

---

१. प्रेमचन्द 'मंगलसूत्र' 'प्रेमचन्द' स्मृति अंक' प्रका० हंस इलाहाबाद, १६५६, पृ० सं०- २८६,

२. प्रेमचन्द 'साहित्य के उद्देश्य' संस्करण-प्रथम, १६५६ प्रका० हंस इलाहाबाद, पृ० सं०- ४६,

३. प्रेमचन्द 'उपन्यास' (विविध-प्रसंग-भाग३) संस्करण- प्रथम, प्रका- हंस, इलाहाबाद, १६६२, पृ० सं०- ३५,

४४- आदर्श-पात्रों के चरित्र-चित्रण में प्रेमचन्द ने उनमें 'देवत्व' को अधिक मात्रा में जगाया है। ये पात्र दुर्बल-आत्मा के हैं लेकिन जीवन-संघर्ष और जन-सेवा का पथ ग्रहण करते है। यथार्थ जीवन की असफलता ही उनकी सच्ची विजय है। वह चरित्र-वान और त्यागी हैं और कर्मवीर बन कर नव-समाज के निर्माण में जनता का नेतृत्व करते हैं। 'प्रेमाश्रम' का प्रेमशंकर, 'कायाकल्प' का चक्रधर, 'कर्मभूमि' का अमरकान्त, 'रंगभूमि' का विनय आदि विभिन्न योजनाओं और आश्रम का निर्माण करके और हृदय-परिवर्तन करके ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। प्रेमचन्द की 'आदर्श' और 'सुधार' भावना ने पात्रों को यथार्थ-रूप में आने की स्वतन्त्रता नहीं दी। यद्यपि प्रेमचन्द ने स्वयं लिखा है "जहाँ मनुष्य अपने मौलिक, यथार्थ, अकृत्रिम रूप में है, वही आनन्द है"[१] प्रेमचन्द चरित्र-चित्रण को मानव-जीवन का अभिन्न अंग मानते थे, इसीलिए पात्रों के सजीव चरित्रों का दिग्दर्शन कराने हेतु सदैव प्रयत्नशील रहे। जहाँ उनके पात्र अकृत्रिम और यथार्थ रूप में आए है, चरित्र-चित्रण अधिक सुन्दर बन पड़ा है। एक स्थान पर प्रेमचन्द ने उपन्यास और उसके पात्रों के विषय में लिखा है—"उपन्यास के पाठकों की रुचि अब बदलती जा रही है। अब उन्हें केवल लेखक की कल्पनाओं पर सन्तोष नहीं ××। भविष्य उन्हीं उपन्यासों का है, जो अनुभूति पर खड़े हों। × × × हमारे चरित्र कल्पित न होंगे बल्कि व्यक्तियों के जीवन पर आधारित होंगे × × × × × × यों कहना चाहिए कि भावी उपन्यास जीवन-चरित्र होगा, चाहे किसी बड़े आदमी का या छोटे आदमी का × × × × × पर उसका आधार यथार्थ पर होगा।"[२] प्रेमचन्द सदा मनुष्यों को भीतर से जानने का ही प्रयत्न करते रहे और उनके अन्त: मन को अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करते रहे, यही उनकी प्रेरणा थी, लक्ष्य था, और उद्देश्य था, जितना वह कर पाए वही उनकी सफलता थी।

---

१. प्रेमचन्द 'साहित्य के उद्देश्य' प्रका०- सरस्वती संस्करण-प्रथम १६५६, पृ० सं०-

२. प्रेमचन्द 'साहित्य के उद्देश्य' पृ० सं०- ७४, ७५,

४५- पात्रों के चरित्र-चित्रण में घटनाओं का विशेष महत्त्व है। घटनाएं चरित्रों को उभारती है, तो चरित्र पुन: नवीन परिस्थितियों को जन्म देते हैं। इस प्रकार जीवन-संग्राम में हार और जीत की घटनाएं पात्रों के चरित्रों को निखारती हैं और कभी चरित्र घटनाओं को उभारता है।

४६- प्रेमचन्द के पात्रों का चरित्र-चित्रण सामान्यत: दो स्वरूपों में प्रकाशित हुआ है। १. सत् और २.असत्। सत् से अभिप्राय, मनुष्य का वह आचरण जो नीति-सम्मत और समाज के अनुकूल हो। इससे उल्टे आचरण के पात्र खलनायक के रूप में समाज और नीति के विरुद्ध आचरण करते हैं जो न्याय-संगत नहीं। प्रेमचन्द के प्रारंभिक उपन्यासों में पात्र `टाइप` या कृत्रिम रूप में हैं इस कारण प्रारम्भ के कुछ उपन्यासों : `असरारे मआबिद` से वरदान तक चरित्र-चित्रण साधारणत: एक ही ढंग का है। `सेवासदन` प्रेमचन्द की कलाकृति है जिसमें प्रेमचन्द सफल कथाकार के रूप में हिन्दी-जगत में प्रवेश करते हैं। `सेवासदन` को सुमन स्थिति की विवशता से ही वेश्यावृत्ति ग्रहण करती है, किन्तु उस विषम-परिसथति को सामने लाकर खड़ा करती है, उसकी अपनी भोग भावना और चरित्र की दुर्बलता और जब वह इस जघन्य-वृत्ति से छुटकारा पाना चाहती है, तब भी उसका अपना ही मनोबल काम करता है। सुमन घर में मखमली जूते पहनती और स्वादिष्ट पदार्थ खाती थी,[१] लेकिन जब विवाह के पश्चात् गजानंद के पास गई तो १५) रू० महीने में गुजर-बसर करनी होती थी। सुमन की जीभ स्वादिष्ट और मीठे पदार्थों के लिए तरसा करती थी। यद्यपि सुमन भोली से घृणा करती, उसके हाथ का पानी तक पीने को तैयार नहीं थी, तथापि जब मौलूद के बाद वह कहती है—मिठाई भेज दूं, ब्राम्हण लाया है तो सुमन इन्कार न कर सकी[२]। उसने दबी जुबान से अनुमति दे दी। आगे चल कर जीभ का यह स्वाद भी उसके पतन का एक कारण बन गया। यह बिलकुल स्वाभाविक है कि सुमन अपनी परिस्थितियों की विधात्री

---

१. `सेवासदन` पृ० सं०- ६,

२. `सेवासदन` पृ० सं०- २८,

है और उन्हीं परिस्थितियों द्वारा वह अच्छी तरह जानी-पहचानी भी जाती है। सुमन एकदम कुमार्ग पर नहीं चल पड़ी होती। अनेक घटनाओं और समाज के व्यवहार से उसे बराबर प्रेरणा मिलती है लेकिन कुल-मर्यादा और रुढ़ियों के संस्कार उसे रोके रखते हैं। उसने सगर्वा और सुन्दर होते हुए भी जिस निर्धन पति के साथ निभाने का प्रयत्न किया, उसकी ओर से उसे तनिक भी प्रोत्साहन नहीं मिला उल्टा शंका, सन्देह, लांछना ही पाई, यह सब चित्रण स्वाभाविक ढंग के हैं, प्रेमचन्द का सुधारवाद या आदर्शवाद किसी की तनिक भी गन्ध नहीं आती।

४७- प्रेमचन्द ने अपने सभी उपन्यासों में और सभी पात्रों में यही दो स्थितियां दिखाई हैं। पात्र के चरित्र-चित्रण में परिस्थिति और पात्र का मनोबल, उसके संस्कार दोनों का प्रमुख हाथ है। प्रत्येक उपन्यास में यही बात देखने को मिलती है कि परिस्थितियों द्वारा पात्र जाना पहचाना जाता है और पात्र के द्वारा स्वयं स्वाभाविक ढंग से परिस्थितियों का जन्म होता जाता है जिससे उसके चरित्र में निखार आता है। शील-निरूपण के इन्हीं साधनों के प्रयोग से प्रेमचन्द ने पात्रों के चरित्रों को सम्पूर्ण उपन्यास में चित्रित किया है, जो स्वाभाविक प्रतीत होते हैं। सभी पात्र सामाजिक तथा जाने पहचाने लगते हैं। किसी प्रकार की दैविक अद्भुतता नहीं है। परिस्थितियों के घात-प्रतिघात में पड़कर प्रत्येक स्त्री-पुरुष पात्र ने अपने जीवन का, चरित्र का बहुमुखी विकास पाने का प्रयत्न किया है। परिस्थितियों के थपेड़ों ने चाहे उसे किसी भी ओर ढकेला हो, इसकी लेशमात्र भी चिन्ता नहीं।

४८- प्रेमचन्द ने चरित्र-चित्रण में कुछ स्थितियां ऐसी भी प्रस्तुत की हैं जो अविश्वासीय लगती हैं। `सेवासदन` की सुमन वेश्यालय में "पतित होकर भी खानपान का विचार करती थी"[१] जिसने केवल भोग भावना से ही

---

१. `सेवासदन` पृ० सं० ६३

प्रेरित होकर अपने पति गृह को त्याग दिया हो, सब प्रकार के सुख और आराम करना, जिसका एक मात्र उद्देश्य हो, अपने घर में जिसका चूल्हे के सामने जाने को जी न चाहता हो वही सुमन विलास के स्थान पर पहुंच कर अपने हाथ से भोजन बनाने का आडम्बर रचे, कुछ स्वाभाविक नहीं लगता। 'रंगभूमि' का सूरदास अपनी शक्ति का प्रदर्शन भी बहुत कुछ इसी प्रकार करता है "मन इतने दुखी न हो, मांगना तुम्हारा काम है, देना दूसरों का काम"[१] ऐसे ऊंचे भाव रखने वाला चक्षु-विहीन भिखारी भीख के पीछे पूरा एक मील गाड़ी का पीछा करता चला गया। 'कायाकल्प' का शंखधर "रात्री के उस अगम्य अंधःकार में शंखधर भागा जा रहा था। उसके पैर पत्थर के टुकड़ों से छलनी हो गए थे x x x x x गिरता पड़ता भागा चला जा रहा था"[२] 'कर्मभूमि'[३] में मुन्नी का चरित्र भी स्थान स्थान पर अस्वाभाविक लगता है। मुन्नी एक साधारण स्त्री होकर, अपनी मुक्ति पर जनता पर प्रभुत्व स्थापित करती है। उसका भाषण, पति और बालक को छोड़ना, अमरकान्त के साथ उसका रहन-सहन रहस्यमय लगता है।

४६- प्रेमचन्द चरित्र-चित्रण में वातावरण, परिस्थिति, मनुष्य, उपयोगिता, मन की स्थिति आदि का ध्यान रखकर चरित्र-चित्रण करते हैं, इसी कारण वह मनोवैज्ञानिक और स्वाभाविक लगता है। प्रत्येक श्रेणी और वर्ग के पात्र स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक लगते हैं। और पाठक के मन पर उसकी छाप छोड़ जाते हैं। प्रेमचन्द के पात्र पाठकों से आत्मीयता स्थापित कर लेते हैं, पाठक उनके सुख-दुख से सुखी और व्याकुल होने लगता है। प्रेमचन्द के स्त्री-पुरुष पात्रों ने हमारे हृदयों को प्रभावान्वित किया है और सच्चे त्याग सेवा, सन्तोष की प्रेरणा दी है।

---

१. 'रंगभूमि' पृ० सं० १३,
२. 'कायाकल्प' पृ० सं० २६७,
३. 'कर्मभूमि' पृ० सं० ८१, १६०, १६६,

५०- कुछ आलोचकों का मत है कि प्रेमचन्द के पात्र `टाइप या वर्ग विशेष` से सम्बोधित रहते हैं। समाज-चित्रण के उपकरण मात्र हैं। लेकिन क्या सब कुछ समाज ही है, उनका अपना व्यक्तित्व नहीं, राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि की चेतना स्वयं पात्रों में भी है। जिस समाज में ये पात्र रहते हैं, उससे ये जाने-पहचाने अच्छी तरह जाते हैं लेकिन समाज को इन की मनोवृत्तियां ही प्रभावित करती हैं। इस कारण पात्रों की `टाइप` के ढाचे में डालना पात्रों को निर्जीव करना है और उनके साथ अन्याय करना है।

कथोप कथन :

५१- उपन्यास में कथोपकथन एक ऐसा तत्व है जिससे उपन्यास-लेखक अपनी रचना को वास्तविकता का रूप देने में सफल हो जाता है। इससे ऐसा आभास होने लगता है कि हम वास्तविक जगत् के जन-समुदाय में विचरण कर रहे हैं। कथोपकथन के द्वारा उपन्यास का सारा व्यापार हमें वास्तविक जगत के व्यवहार के अनरूप ही फलकने लगता है। पाठक लेखक की काल्पनिक-सृष्टि का स्वयं रसास्वादन करने का अवसर प्राप्त कर लेता है।

५२- कथोपकथन का तत्व पात्रों को जीवन्त रूप में उपस्थित करते हुए उनकी प्रकृति को प्रत्यक्ष रूप में प्रकट करता है। "पात्रों के स्वराघात या लहजे, लय और प्रवाह, शैली, अनुरंजकता और अलंकरण, सभी के प्रभाव से कथोपकथन सम्पन्न होता है। कथोपकथन के द्वारा ही विभिन्न पात्रों में एक दूसरे के विरुद्ध सन्तुलन पैदा होता है तथा प्रत्येक के चरित्र-चित्रण में परिपूर्णता आती है। कथाक्रम के स्वाभाविक विकास में भी कथोपकथन अपना समुचित योग प्रदान करता है। कथोपकथन के मूल में व्यापार चलता हुआ अनुभव होता है। लेकिन कथोपकथन का विशेष उपयोग पात्रों के व्यक्तित्व

के उद्घाटन में किया जाता है। इससे पात्रों की उमंगों, प्रवृत्तियों, अनुभूतियों पर विशेष प्रकाश पड़ता है। प्रेमचन्द लिखते हैं : "उपन्यास में वार्तालाप जितना अधिक हो और लेखक की कलम से जितना ही कम लिखा जाए उतना ही अच्छा है।"[१] प्रेमचन्द ने सच ही कहा है क्योंकि वार्तालाप सुगम-साध्य है, बातचीत से मन कभी नहीं थकता, वह सरल-गति से चलता है। प्रेमचन्द ने वार्तालाप के अंश पर्याप्त मात्रा में प्रस्तुत किए हैं। प्रेमचन्द अपने विचारों और भावनाओं को रोक नहीं पाते, ~~प्रत्येक विचारों और भावनाओं को रोक नहीं पाते,~~ प्रत्येक पात्र के मनोभावों को बीच बीच में स्वयं ही बताने लगते हैं। प्रेमचन्द अपने पात्रों को केवल कर्मभूमि में छोड़ कर अलग नहीं हो जाते वह उनके विचारों और भावों की दिशा बताते चलते हैं। इसी कारण कथानक सरल, सजीव, स्पष्ट, संक्षिप्त और सजीव बने हैं। 'प्रेमाश्रम' का ज्ञानशंकर "अपने चाचा प्रभाशंकर की सरलता, श्रद्धालुता और निर्मलता के आकाश में उन्हें अपनी स्वार्थान्धता, कपटशीलता और मलिनता अत्यन्त कालिमापूर्ण और ग्लानिमय दिखाई देने लगी ... ... (लेकिन) शिक्षित आत्मा इतनी दुर्बल नहीं हो सकती .... उसने आँखें खोलीं, देखा कि मन मुझे काँटों में घसीटे लिए चला जाता है। वह अड़ गयी, धरती पर पैर जमा दिए और निश्चय कर लिया इससे आगे न बढ़ूँगी।"[२] इसी प्रकार के अनेक दृष्टान्त प्रेमचन्द के सभी उपन्यासों में पर्याप्त मात्रा में हैं। पात्र अपनी चरित्रगत विशेषता के साथ कथा में प्रवेश करते हैं। और वार्तालाप उनके चरित्रों में और सौष्ठव ला देते हैं। ग्रामीण पात्रों की बातें अवश्य मनमोहक और सजीव भाषा में हैं। 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', और 'गोदान' में ग्रामीण पात्र बड़े ही मर्मस्पर्शी ढंग से अपने

---

१. प्रेमचन्द 'साहित्य का उद्देश्य'

२. 'प्रेमाश्रम' पृ० सं०— ४६,

दैनिक जीवन के सुख-दु:ख कहते हैं : "बलराज ने धूएं में आंखें मलते कहा, काहे दादा, आज गिरधर महाराज तुम से क्यों बिगड़ रहे थे ? लोग कहते हैं बहुत लाल-पीले हो रहे थे ? ‸ ‸ ‸ ‸ ‸ अरे तो कोई झगड़ा थोड़े ही हुआ । गिरधर महाराज ने कहा, तुम्हें घी देना ही पड़ेगा ‸ ‸ ‸ ‸ (बलराज) न हुआ मैं, नहीं तो दिखा देता । (विलासी) नहीं तुम तो लार्ड गवर्नर हो । घर में भूनी भांग नहीं, उस पर इतना घमंड ‸ ‸ ‸ ‸ ‸ ‸ ‸ अरे जा आया है बड़ा योद्धा बनके[१] इसी प्रकार `रंगभूमि` में जगधर, सूरदास, भैरो, नायकराम आदि बात ही बात में आपस में भिड़ जाते हैं, वह उसको कहता है, दूसरा तीसरे का गला पकड़ता है बातें मनोरंजक हो गयी हैं ।[२]

५३- कथोपकथन की स्वाभाविकता में भाषा का बहुत प्रभाव है । प्रेमचन्द के उपन्यासों में उनका भाषा-विषयक आदर्श स्वाभाविकता की दृष्टि से निर्धारित हुआ है । प्रेमचन्द ने पुष्ट एवं मुहावरेदार भाषा लिखी है । हिन्दी का जातीय रूप, सरल, देशीय, कहावतों, मुहावरों के द्वारा निर्धारित हो सकता है । प्रेमचन्द ने इस जातीय रूप को अपने उपन्यासों में स्थान दिया । प्रेमचन्द ने गहन से गहन दार्शनिक तत्वों का निरूपण व्यवहारिक भाषा में किया है । `रंगभूमि` का सूरदास इतना महान जीवन आदर्श अपनी सहज, सरल शब्दावली में प्रस्तुत करता है । "इसकी चिन्ता न कीजिए । हानि-लाभ, जीवन-मरण, जस-अपजस विधि के हाथ है । हम तो खाली मैदान में खेलने के लिए बनाए गए हैं । ‸ ‸ ‸ ‸ सभी चाहते हैं हमारी जीत हो, लेकिन जीत एक की ही होती है, तो क्या इससे हारने

---

१. `प्रेमाश्रम` पृ० सं० १३,
२. `रंगभूमि` पृ० सं० १७-१६,

वाले हिम्मत हार जाते हैं ? वे फिर खेलते हैं ; फिर हार जाते हैं, तो फिर खेलते हैं । × × × × × हाँ नीयत ठीक रहनी चाहिए ।"[१] प्रेमचन्द दार्शनिक सैद्धान्तिक अंशों का प्रयोग करते हुए भी भाषा की व्यवहारिकता को नहीं भूलते । प्रेमचन्द ने अनुभूति मूलक उक्तियों का भी प्रयोग किया है : "जनता अत्यन्त क्षमाशील होती है । अगर अब भी आप जनता को यह दिखा सकें कि इस दुर्घटना पर आपको दुख है, तो कदाचित् प्रजा आपका फिर सम्मान करे" "सच्ची नेक नामी अपने मन में होती है, अगर अपना मन बोले कि मैने जो कुछ किया, वही मुझे करना चाहिए था, इसके सिवा दूसरी बात करना मेरे लिए उचित न थी, तो वही नेक-नामी है ।"[२]

५४- प्रेमचन्द के कथोपकथन कथा के अभिन्न अंग बन गए हैं । पात्रों की छोटी सी छोटी बात का सम्बन्ध कथा से जुड़ा रहता है । कथा की रोचकता और प्रवाह में कथोपकथन सहायक हैं । 'प्रेमाश्रम' में दुखरन भगत कहता है : "तहसीलदार साहब तो ऐसे मालुम होते हैं जैसे कोल्हू अभी पहले आए थे तो कैसे दुबले पतले थे, लेकिन दो ही साल में उन्हें न जाने कहाँ की मोटाई लग गई । सुक्खु "रिसवत का पैसा देह फुला देता है । × × × × × बिना हराम की कौड़ी खाए देह फूल ही नहीं सकती ।"[३] पात्रों की वार्तालाप से ही उस युग की समाज व्यवस्था का आभास होने लगता है । प्रेमचन्द ने कभी भी अपने युग की समाज-व्यवस्था की सराहना नहीं की । कथा के साथ ही, कथोपकथन पात्रों के चरित्र-विकास अथवा घटना-प्रसार में भी सहायक हैं ।

---

१. 'रंगभूमि' ५१८,
२. 'रंगभूमि' ,, ,
३. प्रेमाश्रम, पृ० सं० ६

५५- प्रेमचन्द ने जहाँ कथोपकथनों के माध्यम से अपने विचारों का स्पष्टीकरण करने का प्रयत्न किया है, वहाँ इनका महत्व विचारों की गम्भीरता, सत्यता, तर्कमयता आदि गुणों के आधार पर स्थापित किया जा सकता है। इस प्रकार के संवाद प्रत्येक उपन्यास में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। 'रंगभूमि'[1] में मिसेज सेवक और सोफिया की बातें, 'गोदान'[2] में होरी और रायसाहब, मेहता और मालती आदि आदि के संवाद भाषण या प्रेमचन्द के अपने विश्लेषण ही प्रतीत होते हैं। ऐसे लम्बे कथोपकथनों को विधायक तत्व की दृष्टि से कथोपकथन कहना समुचित नहीं लगता। ये तो प्रेमचन्द की अपनी व्याख्या या इनका अपना प्रकथन ही लगता है। लेकिन जहाँ पर प्रेमचन्द ने अपने को हटा लिया है पात्रों की बातचीत बड़ी स्वाभाविक, उपयुक्त और सजीव हुई है। सच तो यह है कि इनमें पर्याप्त मात्रा में चुस्ती और सरसता है। इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द को उल्लेखनीय सफलता भाषा पर अधिकार होने के कारण प्राप्त हुई है। पात्र अपनी स्थिति-अनुकूल भाषा का प्रयोग करते हैं। होरी और धनिया की बातें, पति-पत्नी की मान-मनौती बड़ी सुखकर है। "उसने परास्त होकर होरी को लाठी, मिरजई, जूते, पगड़ी और तमाखू का बटुआ लाकर सामने पटक दिए ---------- होरी ने आँखें तरेर कर कहा- क्या ससुराल जाना है? जो पाँचों पोसाक लायी है? ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ अच्छा रहने दो, मत मुँह से असुभ निकालो----------"[3] इनकी सफलता का रहस्य भाषा की पात्रानुरूपता में ही विद्यमान है। प्रेमचन्द की भाषा जन-जीवन के अधिक निकट है। जीवन की पूरी-पूरी छाप उनकी कला रचना एवं भाषा पर है।

---

१. रंगभूमि, पृ० सं०- १६३, १६४, १६५,
२. गोदान, पृ० सं०- १३, १४, १५, ३३१, ३३३,
३. गोदान, पृ० सं०- ६,

देशकाल और वातावरण :

५६- उपन्यास में देशकाल और वातावरण का चित्रण महत्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि यह पृष्ठभूमि के अतिरिक्त समय की परिस्थितियों से भी परिचय कराता है । देशकाल के अन्तर्गत उन सब सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रवृत्तियों का चित्रण अभीष्ट है जो उपन्यास की परिस्थितियों को प्रभावित करती हैं । देशकाल तत्व के लिए वातावरण शब्द भी प्रयुक्त किया जा सकता है कथानक की घटनाओं में स्पष्टता, वास्तविकता तथा सजीवता लाने में इसकी उपयोगिता है । स्थान और समय की पृष्ठभूमि में पात्रों का चित्रण करने से वे पात्र मानव के अनुरूप प्रतीत होने लगते हैं । पात्रों का व्यक्तित्व उभार पाता है और सजीव लगता है । देशकाल व वातावरण की स्पष्टता से कथा का उद्देश्य, विचार मूर्त होकर ग्राह्य बन जाते हैं । वातावरण दो प्रकार का हो सकता है ।

प्राकृतिक सामाजिक

पात्रों और स्थिति के अनुरूप ही प्रकृति का प्रयोग किया जाता है । सामान्यतः प्राकृतिक-वातावरण में उन सब स्थानों का चित्रण सम्मिलित रहता है, जिनमें पात्र विचरण करता है और अपने व्यापारों का विस्तार करता है । सामाजिक वातावरण के चित्रण में भी इसी सीमित विस्तार का ध्यान रखा जाता है । इसमें वे सब सामयिक परिस्थितियाँ समाविष्ट हो जाती हैं जिनकी विस्तृत छाया में पात्रों को व्यापार करते चित्रित किया जा सकता है ।

५७- प्रेमचन्द के उपन्यासों की प्रवृत्ति मानव-जीवन का व्यापक ~~का व्यापक~~ चित्र प्रस्तुत करने की है । मानव-जीवन बहुत विस्तृत है । इसी कारण प्रेमचन्द के उपन्यासों में समाज के प्रत्येक वर्ग के जीवन के चित्र प्राप्त हैं ।

उन्होंने उच्च, मध्य, निम्न सभी वर्ग के चित्रण में उनकी समस्याओं पर दृष्टिपात किया है । प्रेमचन्द ने केवल बाह्य जीवन को ही नहीं लिया बल्कि पारिवारिक जीवन के अंतरंग में प्रवेश कर यह दिखाया है कि उनमें सुख और शान्ति का सर्वथा अभाव है । उच्च वर्ग परोपजीवी और शोषक है, वह किसी भी स्वस्थ समाज-व्यवस्था का अंग नहीं हो सकता । मध्यवर्ग की अपनी आर्थिक और सैद्धान्तिक समस्याएं हैं, वह कभी प्रगति की ओर बढ़ता है तो कभी प्रतिक्रियावादी बन बैठता है । निम्न-वर्ग की सबसे बड़ी समस्या पेट की समस्या है । यह वर्ग अशिक्षा, रूढ़ि और अन्ध-विश्वास के अन्धकार में पड़ा हुआ है । समाज के इसी रूप का चित्रण प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में किया । समाज-चित्रण में प्रेमचन्द ने यथार्थवादी दृष्टि से काम लिया है, इसी कारण इसमें इतिहास पृष्ठभूमि के रूप में सम्बद्ध है । देशकाल अथवा वातावरण व्यापकता में विस्तृत है । प्रेमचन्द ने कला और लक्ष्य को एकनिष्ठ करके अपने उपन्यासों का रचना-विधान तैयार किया है । इसी कारण देशकाल, वातावरण, चरित्र-चित्रण कथोपकथन, कथानक सभी उद्देश्यपूर्ण हैं ।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में देशकाल का प्रतिबिम्ब :

५८- प्रेमचन्द अपने उपन्यासों में या तो सामाजिक-समस्याओं को लेकर चले हैं या राष्ट्र की चलती हुई राजनीतिक-समस्या । किन्तु, समाज या राष्ट्र के किसी एक ही अंग को पकड़ कर नहीं चलते । उसके भिन्न-भिन्न अंगों तथा स्वरूपों का विश्लेषण करते हुए, देशकाल का जो मार्मिक चित्र उपस्थित करते हैं, उसमें इतिहास की सच्चाई भी रहती है और कला की सुन्दरता भी । हमारे घरेलू तथा सार्वजनिक जीवन के जितने भी अंग हैं, हमारे जीवन-व्यापार के जितने भी क्षेत्र हैं, हमें अपने कार्य-क्षेत्र

में जिन-जिन परिस्थितियों एवं घटनाओं का सामना करना पड़ता है, उन सभी बातों पर पूरा-पूरा प्रकाश डाले बिना इनकी कला एक पग भी आगे नहीं बढ़ती । प्रेमचन्द की कला का उद्देश्य यह भी रहता है कि वह हमें आस-पास की सभी वस्तुएं दिखाती चले और उन वस्तुओं के सम्बन्ध में सत्यता स्पष्ट हो जाए । हमारे समाज में जितने प्रकार के लोग रहते हैं, उन सबके आचार-विचार, रीति-रिवाज, रहन-सहन तथा उनकी जीवन-स्थिति से सम्बन्ध रखने वाली अन्यान्य छोटी-मोटी बातों का सवांग सुन्दर वर्णन उपस्थित करके, हमारे सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन को संचालित करने वाली भिन्न-भिन्न संस्थाओं तथा उनकी कार्य-प्रणालियों की वस्तु-स्थिति का दर्शन होता है और देश-काल सम्बन्धी सच्चा ज्ञान होता है जो उपन्यास का एक आवश्यक कार्य है । लोकोपयोगी होना कला का सबसे बड़ा गुण है, जिसका प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में ध्यान रक्खा है । हम कहाँ हैं, क्या हैं, कैसे हैं, इसका वास्तविक ज्ञान प्राप्त किए बिना किसी भी प्रकार का समयोचित कर्त्तव्य निर्धारित नहीं किया जा सकता । प्रेमचन्द सदैव ऐसा ही करते हैं । वह अपनी कला से हमारे ज्ञान-पथ को सुगम और सुखद बनाने का प्रयत्न करते हैं ।

५६- प्रेमचन्द के उपन्यासों की सब से बड़ी विशेषता यह है कि वे एकांगी नहीं होते । समाज और राष्ट्र से सम्बन्ध रखने वाली थोड़ी-बहुत सभी प्रकार की बातों का उनमें समावेश रहता है । `सेवासदन` में ग्राहस्थ जीवन से सम्बन्ध रखने वाली घटनाओं का भी वर्णन है और उन बातों का भी जो सार्वजनिक जीवन के भिन्न-भिन्न कार्यों से सम्बन्ध रखती है । `प्रेमाश्रम` में भिन्न-भिन्न प्रकार के पारिवारिक जीवन के चित्र हैं, किसानों और जमींदारों की अवस्था का विषद-वर्णन किया गया है, वकीलों और डाक्टरों की नैतिक सच्चाई (झूठ-पाखंड) का स्वरुप दिखलाया गया है,

संस्थाएं खोल कर स्वार्थ-साधन करने वाले लोगों के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है । `रंगभूमि` की कथा एक अंधे भिखारी की बात को लेकर चलती है, किन्तु अन्त तक पहुंचते-पहुंचते वह हमें समाज का एक अंग खोल कर दिखा देती है, उसके एक-एक स्वरुप का ज्ञान करा देती है ।`रंगभूमि`की कथा में हमें भिन्न-भिन्न स्थिति, भिन्न-भिन्न प्रकृति, भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों तथा भिन्न-भिन्न आदर्शों का परिचय होता है । रंक और राजा, पंडित-पुरोहित, ईसाई सभी जाति और वर्ग के प्राणी सम्मिलित हैं । `कायाकल्प` में भी गाहस्थ-जीवन के प्राय: सभी अंगों पर प्रकाश डाला गया है । साम्प्रदायिक झगड़े तथा किसान आन्दोलन से सम्बन्ध रखने वाली राजनीतिक घटनाओं का भी सजीव विवरण उपस्थित किया गया है । इसमें से यदि पारलौकिक अंश हटा दिए जाएं तो अन्य चित्रण जो समाज की लौकिकता से सम्बन्ध रखते हैं, बड़े ही रंग-बिरंगे हैं और हंसते-बोलते हैं । `गबन` में स्त्रियों के अत्यधिक आभूषण-प्रेम पर ही व्यंग किया गया है । आगे कथा के रुप में हमारे धन-जन की प्राण-सम्मान की रक्षा का भार है, किस प्रकार अपने दायित्व का दुरुपयोग करते हैं आदि आदि रुपों में कथा-प्रवाह हुआ है । `कर्मभूमि` के प्रारंभिक पृष्ठों पर ही अपनी प्रचलित शिक्षा-प्रणाली की निस्सारता का गहरा और सच्चा कटाक्ष है । ज्यों-ज्यों कथा आगे बढ़ती है और आकार-प्रकार बढ़ता जाता है, अन्त में कथा हमारे सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन के प्राय: सभी मुख्य-मुख्य प्रश्नों को लाकर हमारे सामने रख देती है । `निर्मला`, `प्रतिज्ञा`, `वरदान` भी छोटे तो अवश्य है, किन्तु इनमें भी हमारी सामाजिक स्थिति के सजीव चित्र हैं । यही प्रेमचन्द के उपन्यासों की विशेषता है कि उसमें जीवन की सम्पूर्णता, व्यापकता एवं वास्तविकता का पूरा-पूरा स्वरूप है, जिसके सहयोग से जीवन के एक-एक स्वरूप, एक-एक अंग से पूर्णत: परिचित हो जाते हैं ।

६०- प्रेमचन्द के उपन्यासों की अन्य विशेषता यह है, उस पर सामायिकता की गहरी छाप है। प्रेमचन्द ने अतीत के राग नहीं आलापे। वर्तमान से ही हमारा साक्षात्कार कराया है। `गोदान` में एक स्थान पर प्रेमचन्द ने कहा है— "मैं भूत की चिन्ता नहीं करता, भविष्य की परवा नहीं करता। मेरे लिए वर्तमान ही सब कुछ है। भविष्य की चिन्ता हमें कायर बना देती है, भूत का भार हमारी कमर तोड़ देता है, हसमें जीवन की शक्ति इतनी कम है कि भूत और भविष्य में फैला देने से वह और भी क्षीण हो जाती है। हम व्यर्थ का भार अपने ऊपर लादकर, रुढ़ियों और विश्वासों और इतिहासों के मलवे के नीचे दबे पड़े हैं। उठने का नाम नहीं लेते, वह सामर्थ ही नहीं रही जो शक्ति, जो स्फूर्ति मानव-धर्म को पूरा करने में लगनी चाहिए थी"[१]

६१- हमारे दैनिक जीवन की घटनाओं पर ही प्रेमचन्द की कला स्थिर रहती हैं, उन्हीं के आधार पर खड़ी होकर वह अपने स्वरुप का विकास करती है। अपने समय का सर्वांग-सुन्दर चित्र उपस्थित करने में प्रेमचन्द विश्वस्त प्रतिनिधि कलाकार थे। अपने उस युग की गंभीर भावनाओं तथा समस्याओं के बड़े व्याख्याता थे। प्रेमचन्द ने अपने २५ वर्षीय-साहित्यिक जीवन-काल में सन् १९३६ से पूर्व का राष्ट्रीय-धर्म की मार्मिक और प्रभावोत्पादनी व्याख्या की है। सच तो यह है कि प्रेमचन्द का प्रस्तुत किया हुआ साहित्य समसामयिकता की छाप लिए हुए है, इसी से उसकी `आत्मा` को हम अच्छी तरह पहचान सकते हैं।

समसामायिकता के भीतर कला की चिरन्तनता

६२- प्रेमचन्द की अन्य प्रमुख विशेषता है। समसामयिक चित्रण से प्रेमचन्द के साहित्य की स्थायित्वता में किसी प्रकार का दोष नहीं आता, जैसा बार बार प्रस्तुत शोध में स्पष्ट है। रचनाओं का महत्त्व इसी बात में है

---

१. गोदान, पृ०सं० १९९,

कि वे सामयिक होकर भी सर्वकालीन हैं। सामयिकता का आश्रय ग्रहण किए बिना कोई भी कला अपनी स्वाभाविकता और सजीवता का सच्चा प्रभाव नहीं अभिव्यक्त कर सकती। अपने समय का सच्चा चित्र खींचे बिना कोई भी कलाकार अपनी कला के द्वारा लोक-धर्म का पालन नहीं कर सकता। संसार के जितने भी महान कलाकार हुए हैं, उनकी रचनाओं में अपने ही समय का सच्चा प्रतिनिधित्व रहा है। रुसी, फ्रान्सीसी, अंग्रेजी तथा योरपीय भाषाओं की जितनी भी रचनाएं हैं उनका अध्ययन इस का प्रमाण है कि वे अपने देश, काल का प्रतिनिधित्व कर रही हैं। गोर्की की 'मां', 'जनता के बीच', 'मेरे विश्वविद्यालय' सब अपने युग की रचना हैं। किन्तु समय के साथ उनकी महत्त्वता कम नहीं अधिक ही है।

६३- साहित्य में सामयिकता के लिए थोड़ा-बहुत ही स्थान सुरक्षित रहता है, क्योंकि वह उसी समाज का प्रतिबिम्ब होता है। उसी में लेखक का स्वयं पोषण हुआ है। उसके समय में उसका समाज जिस रुप में रहता है, अपनी रचनाओं में उसको उसी रुप में अभिव्यक्त करना लेखक का एक बड़ा भारी नैतिक-दायित्व है। इस प्रकार लेखक जनता की कर्तव्य-भावना को उत्तेजित करता है और वस्तु-स्थिति का सच्चा ज्ञान प्राप्त कराता है। प्रेमचन्द अपने इस कर्तव्य-पथ को भलि-भांति समझते थे। किन्तु कला को स्थायित्व प्रदान करने वाली बात भी उनमें थीं। उसका आवरण आगे चल कर भले ही बदल जाए, उनके मूल-तत्त्वों का तो कभी लोप नहीं हो सकता। समाज और राष्ट्र की उपरी समस्याओं पर ही प्रेमचन्द की कला टिकी हो, ऐसी बात नहीं। वह मानव-जीवन की आभ्यान्तिरिक समस्याओं से भी सम्बन्ध रखती है। विधवा-विवाह तथा वृद्ध तथा विधुर-विवाह की समस्याएं आगे चल कर शायद समाज में न रह जाएं किन्तु 'पूर्णा' और 'निर्मला' के नारी हृदय की तड़पती हुई वेदना तो

सदा जीवित रहेगी । हिन्दु-मुसलिम झगड़े भले ही बन्द हो जाएँ (जिनकी कोई आशा नहीं) किन्तु 'कादिर' और 'मनोहर' 'ख्वाजा महमूद' और यशोदानंद तथा 'सलीम' और 'अमर' की अनुपम मैत्री की आवश्यकता किसी न किसी रूप में बनी ही रहेगी । हमारी राजनीतिक स्थिति में चाहे परिवर्तन आ जाए, परन्तु समाज और राष्ट्र को उन उन्नत भावनाओं की आवश्यकता सदैव बनी रहेगी, जो प्रेमशंकर, चक्रधर, सूरदास, जान्हवी, जालपा आदि नर-नारियों के चरित्र को उज्ज्वल बनाने वाली हैं । प्रेमचन्द के उपन्यासों के कितने पृष्ठ प्रेम-विदग्ध नर-नारियों के अस्तित्व से हैं, उनको कौन मिटा सकता है ? जब तक मानव-हृदय की इन निगूढ़ भावनाओं को स्पर्श करने की क्षमता बनी रहेगी तब तक वे समसामयिक होकर भी क्षणिक नहीं कहे जा सकते । इतना सब कुछ होने पर भी समसामयिकता का अपना विशेष महत्त्व है । वह अपने युग के इतिहास का दिग्दर्शन कराता है । 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि' की समस्या अपने युग की मूल प्रवृत्तियों का सच्चा परिचय देती है ।

प्रेमचन्द के कथा-साहित्य पर सम्यक् दृष्टि :

६४- प्रेमचन्द के सभी उपन्यासों में भारतीय-जीवन के विषद-चित्रण मिलते हैं । प्रेमचन्द-जीवन के चित्रकार थे और चित्रण हेतु उपन्यास को साधन मानते थे । उन्होंने मानवीय-मनोभावों के विभिन्न रूप, मर्म-विचार, पशुत्व-देवत्व, उत्कर्ष-अवकर्ष, सत्-असत् आदि का व्यापक-रूप में उल्लेख किया है । जीवन के सभी पक्षों का उल्लेख करते हुए प्रेमचन्द ने मानव-धर्म, सेवा, त्याग, संयम् पर ही विशेष बल दिया है । उपन्यास एक ऐसी साहित्यिक विधा है, जिसमें आकर्षक रूप में मनुष्य की वैविध्यपूर्ण प्रकृति, उसके बुद्धि वैभव और भाव समृद्धि का अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है । प्रत्येक उच्च-कोटि का उपन्यास जीवन है—कम से कम जीवन का वह रूप है जो लेखक ने देखा है । जीवन जितना ही विशाल है, उतना ही उपन्यास का क्षेत्र भी विस्तृत है । उपन्यास जीवन का सर्वांगीण निरीक्षण करता है । प्रेमचन्द ने भी "मानव चरित्र

पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व माना है`[१]

६५- प्रेमचन्द मनुष्य का उद्धार सच्ची सेवा में ही समझते थे। वे लिखते हैं।-`सत्ययुग में मनुष्य की मुक्ति ज्ञान से होती थी त्रेता में सत्य से, द्वापर में भक्ति से, पर इस कलियुग में इसका केवल एक मार्ग है और वह है सेवा। इसी मार्ग पर चलो और तुम्हारा उद्धार होगा। जो लोग तुमसे भी दीन, दुखी, दलित हैं, उनकी शरण में जाओ और उनका आशीर्वाद तुम्हारा उद्धार करेगा। कलियुग में परमात्मा इसी दुःखसागर में वास करते हैं`।[२] सेवा-पथ का उपदेश देने के पश्चात् प्रेमचन्द सेवा के साधन भी बताते हैं-`तुम्हारे हृदय में दया है, प्रेम है, सहानुभूति है और सेवाधर्म के यही मुख्य साधन हैं`[३] प्रेमचन्द का विचार था : `सुख संतोष से प्राप्त होता है और आदर सेवा से`[४] प्रेमचन्द दूसरे स्थान पर मेहता से कहलाते हैं : `संसार में सबसे बड़े अधिकार सेवा और त्याग से मिलते हैं`[५] उपन्यासों में प्रेमचन्द के आदर्श पात्र मानव-धर्म की ओर उन्मुख, होते हैं, और देवत्व को प्राप्त करते हैं। लेकिन आदर्श पात्रों के साथ ही उन्होंने निकृष्ट पात्रों को भी सेवा मार्ग में प्रशस्त किया है। यद्यपि प्रमुख-पात्र तो हितेच्छु त्यागी एवं जनता के सेवक ही हैं। प्रेमचन्द की रचनाएं आरम्भ में अवश्य सुधारवादी आन्दोलन की मूक-वेदना थी। `प्रतिज्ञा`, `वरदान,` `सेवासदन` आदि में प्रेमचन्द सुधारक अधिक थे अपेक्षाकृत कलाकार, लेकिन धीरे-धीरे उनकी प्रतिभा में विकास होता गया और सुधार-

---

१. ले० प्रेमचन्द `साहित्य के उद्देश्य` संस्करण-प्रथम, प्रका० हंस, इलाहाबाद, जुलाई १६५४, पृ० सं०- ५४,
२. सेवासदन, पृ० सं०- ३४१,
३. सेवासदन, पृ० सं०- ३४१,
४. सेवासदन, पृ० सं०- ६४,
५. गोदान, पृ० सं०- १६५,

भावना पर कलाकार का मन प्रभावशाली होता गया जो साहित्य का महान् गुण है । जीवन की वास्तविकता से उनकी कला में निखार उत्पन्न हुआ ।

६६- प्रेमचन्द ने अपने सभी उपन्यासों में विभिन्न समस्याओं : धार्मिक, सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक आदि को अपनी विचार-धारा के अनुसार प्रस्तुत किया है और उसके समाधान भी प्रकट किए हैं । लेकिन `गोदान में पिछले उपन्यासों की भाँति उपदेश प्रवृत्ति विशेष प्रभाव-शालिनी नहीं, `गोदान` में जीवन के विभिन्न पक्षों को लेकर दार्शनिक की भाँति उसका विश्लेषण किया गया है । मि० मालती आधुनिक-सभ्यता की प्रतिभा है तो गोविन्दी प्राचीन आदर्श की अतिमूर्ति जो सेवा में ही सच्ची शान्ति खोजती है । मि० मेहता दार्शनिक हैं । मि० खन्ना पूँजीवाद की साकार मूर्ति और राय साहब जमींदारों के प्रतिनिधि और होरी, धनिया तथा अन्य ग्रामीण सभी पात्र अपने अपने वर्ग के प्रतिनिधि हैं । `गोदान` में प्रेमचन्द एक ऐसा मूल-भाव अथवा ध्वनि साकार करते हैं, जिससे हम जीवन की विषमता दूर कर सकें, चाहे वह जीवन को किसी भी क्षेत्र में हो और मन और कर्म से उच्च आदर्शों की ओर प्रेरित हों—यही उनका उद्देश्य है ।

६७- प्रेमचन्द के उपन्यासों की अन्य विशेषता : अपने सभी पात्रों में हृदय परिवर्तन की प्रवृत्ति लाने की है । उपन्यास के अन्त में ऐसा आभास होने लगता है कि सभी प्रमुख-प्रमुख पात्र जनता के सच्चे सेवक बनकर एक ही दिशा से सोचने और विचरने लगते हैं । `प्रेमाश्रम` `कर्मभूमि` में यह प्रवृत्ति विशेष रूप में है । लेकिन `गोदान` में प्रेमचन्द यथार्थवाद के अधिक निकट आगए थे । उनको अब मानव जीवन का कल्याण दूसरों के सहारे नहीं स्वयं अपने पैरों पर खड़े होने में ही दीखता है । वे जीवन की मिथ्या-परिपाटियों

का अन्त करके सर्व-व्यापी-शक्ति का अनुभव करते हैं। `गोदान` में गोबर कहता है—`अपना भाग्य खुद बनाना होगा, अपनी बुद्धि और साहस से, इन आफतों पर विजय पाना होगा। कोई देवता, कोई गुप्त शक्ति उनकी मदद करने न आएगी।`[१]

उद्देश्य की व्यापकता :

६८- प्रेमचन्द ने अपने सभी उपन्यासों में उद्देश्य की व्यापकता में अपनी कला का निर्माण किया। उनका विश्वास था—`साहित्य हमारे जीवन को स्वाभाविक और स्वाधीन बनाता है। × × × उसी की बदौलत मन का संस्कार होता है।`[२] यही प्रेमचन्द का मुख्य उद्देश्य था जो विभिन्न रूपों में प्रस्फुटित हुआ। उन्होंने विस्तृत समाज और विशाल राष्ट्र की व्यापक एवं गम्भीर समस्याओं पर पूरा-पूरा प्रकाश डाला है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने जीवन-व्यापार के प्रायः सभी क्षेत्रों से कथा-सामग्री का संचय किया। सभी प्रकार और सभी-वर्गों के नाना जीवों के रंग-बिरंगे चित्र उन्होंने अपने सभी-उपन्यासों में खींचे हैं। राज्य से लेकर रंक तक, महलों और अटारियों से लेकर झोपड़ियों के दृश्य प्रेमचन्द के उपन्यासों की साहित्य-सामग्री के विषय हैं। प्रेमचन्द ने उपन्यासों की कथा-सामग्री एकत्र करते हुए वास्तविकता की उपेक्षा नहीं की, लेकिन साथ ही इस बात का भी ध्यान रक्खा है कि उनके उपन्यासों की वास्तविकता किसी प्रकार की नग्न अश्लीलता का पर्याय न बन जाए। मानव-जीवन की मलिन से मलिन वास्तविकता की ओर संकेत करते समय भी प्रेमचन्द ने शिष्टता के उपकरणों का ही काम लिया है : `सेवासदन` वाली सुमन वेश्यालय में बैठ कर भी अश्लील और अवाञ्छनीय व्यापारों का प्रगटीकरण नहीं करती।[३] वह जानती है : `निर्लज्जता सब कष्ट से दुःसह है`[४]।

---

१. `गोदान` पृ० सं०- ३५६,
२. `साहित्य का उद्देश्य` पृ० सं०-६,
३. सेवासदन- पृ० सं० १००,
४. सेवासदन- पृ० सं०- १३१,

६६- 'कर्मभूमि' की मुन्नी के सतीत्त्व-अपहरण की बात प्रेमचन्द केवल 'चीत्कार'[१] से हमें बता देते हैं । उपन्यासों में जहां कहीं भी दुखद और लज्जाजनक प्रसंग आया है, प्रेमचन्द ने अपने कलात्मक संयम से और अपनी स्वाभाविक सुरुचि से, पूरी सतर्कता का ध्यान रक्खा है । उपन्यासों में घृणित चित्रण अथवा प्रसंग मिलते हैं, लेकिन घृणित वातावरण से कुत्सित लालसाओं का अवांछनीय उदय नहीं होता बल्कि उसके स्थान पर सुधार की प्रवृत्ति का उदय होता है । मन घृणित पात्र के उद्धार के लिए कातर हो उठता है ।

कथा-सामग्री :

७०- प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों की कथा-सामग्री मंगलमयी कलात्मक प्रवृत्ति से प्रेरित होकर संचय की है । इस कारण कथा का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है । उन्होंने चारों ओर का ज्ञान और अनुभव की आंखें दौड़ाकर, जो उपकरण एकत्र किए हैं, उनके साथ हमारा पूरा परिचय है । कथा-सामग्री के दो साधन हैं : १. ग्रामीण जीवन, २. नागरिक जीवन । प्रेमचन्द का विचार था : "ग्रामीण जीवन में एक प्रकार की ममता होती है जो नागरिक-जीवन में नहीं पायी जाती, एक प्रकार का स्नेह-बन्धन होता है जो सब प्राणियों को छोटे हो या बड़े, बांधे रहता है ।"[२]

७१- नागरिक जीवन के अन्तर्गत तो प्रेमचन्द ने विभिन्न अभावों का ही अनुभव किया । यधपि नगर की चहल-पहल और आकर्षण की ओर जनता का विशेष झुकाव है । प्रेमचन्द ने नागरिक जीवन की विभिन्न-समस्याओं का व्यापक रूप में उल्लेख किया है । विधवा विवाह, बहु विवाह, आधुनिक शिक्षा की समस्या, मध्यवर्ग में प्रदर्शन की प्रवृत्ति, तथा पैसे की ओट

---

१. कर्मभूमि- पृ० सं०- २४,
२. सेवासदन,- पृ० सं०- ६६,

में जितने भी शिकार होते हैं, वह सब नगरों का ही प्रसाद है। लेकिन अब उसकी कालिमाएं गाढ़े रंग में गांव में भी पहुंचने लगी हैं। प्रेमचन्द ने अपने ही युग में इस विषमता को जो आर्थिक-शोषण के कारण उत्पन्न हो गयी है और जिसने ग्राम जीवन को भी विषाक्त से भर दिया है, अच्छी तरह समझ लिया था। इस कारण ग्रामीण-जीवन भी अपनी वास्तविकता में ही चित्रित किया गया है। किसानों और जमींदारों के अधिकार-युद्ध का तो विषद चित्रण `प्रेमाश्रम` `कर्मभूमि` `कायाकल्प` में है ही। इसके अतिरिक्त उद्योग-आन्दोलन, मजदूर आन्दोलन आदि आदि विभिन्न जीवन-व्यापारों का चित्रण मिलता है। प्रेमचन्द ने ग्रामीण और नागरिक जीवन से कथा-वस्तु लेकर दोनो को एक दूसरे के सामीप्य लाने का पूर्ण प्रयत्न किया है। क्योंकि वे दोनों के जीवन को पृथक नहीं समझते थे। प्रेमचन्द का एक मात्र लक्ष्य दोनों जीवन में समन्वय स्थापित करना था। वे नगर और ग्रामीण जीवन के आचार-विचार, व्यवहार, गुण-अवगुण सुख-दु:ख में एकात्म स्थापित करना चाहते थे। यद्यपि प्रेमचन्द स्वयं ग्रामीण थे, और उनका अधिकांश जीवन गांव में ही व्यतीत हुआ, फिर भी ग्रामीण जीवन के चित्रण में गांधी जी का प्रभाव, उनके विचार और उनकी ग्रामीण प्रेरणा को भी स्वीकार करना पड़ेगा।

पात्रों का चरित्र-चित्रण :

७२- प्रेमचन्द का विचार था कि मनुष्य के अन्दर उच्च भावनाओं का सर्वथा लोप नहीं होता। निकृष्ट व्यक्तियों में भी कुछ उच्च-विचार एवं भावनाएं होती हैं। प्रेमचन्द ने अपने सभी आदर्श पात्रों को यथार्थ और आदर्श के सम्मिश्रण से मानव ही चित्रित किया है। वह देवत्व के पद को नहीं प्राप्त कर सकें हैं। `रंगभूमि` में एक स्थान पर सूरदास के चरित्र के विषय में प्रेमचन्द लिखते हैं : `वह साधु न था, देवता न था, फरिश्ता

न था । एक क्षुद्र, शक्तिहीन प्राणी था, चिन्ताओं और बाधाओं से घिरा हुआ, जिसमें अवगुण भी थे और गुण भी । गुण कम थे, अवगुण बहुत । क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ये सभी दुर्गुण उसके चरित्र में भरे हुए थे, गुण केवल एक था । किन्तु ये सभी दुर्गुण उस पर गुण के सम्पर्क से .... देवगुणों का रूप धारण कर लेते थे .... अन्याय देख कर उससे रहा नहीं जाता था ।"[1]

७३- 'कर्मभूमि'[2] का कालेखां, 'कायाकल्प'[3] का धन्नासिंह जिनका परिस्थितियों में पड़कर पतन हो गया था, अमरकान्त और चक्रधर के सम्पर्क से अन्त में साधु प्रवृत्ति के सदाचारी प्राणी बन जाते हैं । कालेखां दीन भाव से बोला : "क्यों मेरी नजात का द्वार बन्द करते हो भाई : दुनिया तो बिगड़ गयी, क्या आक़बत भी बिगाड़ना चाहते हो ?"

७४- अपने सभी उपन्यासों में प्रेमचन्द इस स्थिति को स्पष्ट करते हैं कि परिस्थिति का प्रभाव मानव-चरित्र पर अलक्षित—रूप से अनिवार्यतः पड़ता रहता है । 'कायाकल्प'[4] का वही चक्रधर जो गाय की जीवन-रक्षा के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग करने को कटिबद्ध हो जाता है, जो जेल के दरोगा के बचाने के प्रयत्न में स्वयं अपने को संगीन का निशाना बना लेता है, जो मजदूरों और किसानों का सच्चा सेवक है—जब वैभव के मादक वातावरण में रहने लगता है, तब थोड़ी देर के लिए ही यही, कुछ न कुछ अवश्य बदल जाता है । "....अपनी मोटर उलट जाने पर वह एक किसान से कहता है—'तुम लोगों को उसे ठेल कर ले चलना पड़ेगा .... मैं कहता हूं, तुमको चलना पड़ेगा .... मैं सीधे से कहता हूं-------।" और जब इस प्रकार 'सीधे से' कहने पर भी कोई प्रभाव उस किसान पर नहीं पड़ता तो वह 'बाज की तरह किसान पर टूट पड़ता है' 'एक धक्का देकर' कहता है— 'चलता है या जमाऊं दो चार हाथ' तुम लात के आदमी बात से क्यों मानने लगे ।"[5]

---

१. रंगभूमि-पृ०सं०- ५३३,
२. कर्मभूमि-पृ०सं०- ३६५,
३. कायाकल्प-पृ०सं० १४०,
४. कायाकल्प- पृ० सं० २७, १४३
५. कायाकल्प- पृ० सं० २४६,

७५- इस प्रकार के आकस्मिक स्वभाव—परिवर्तन को `चक्रधर` स्वयं समझ जाता है। `रियासत की बू कितनी गुप्त और अलक्षित रूप से उसमें समा जाती हैं` `कितना गुप्त और अलक्षित रूप से उसकी मनुष्यता का, चरित्र का, सिद्धान्त का ह्रास हो रहा है।` इस घटना के कारण `चक्रधर को रातभर नींद नहीं आयी` वह समझ गया कि `इस वातावरण में रह कर, मेरे लिए अपनी मनोवृत्तियों को स्थिर रखना असाध्य है। धन में धर्म है, दया है, उदारता है, लेकिन इनके साथ ही गर्व भी है, जो इन गुणों को मटियामेट भी कर देता है। इसी के परिणाम-स्वरूप, वह धन-जन का मोह छोड़ कर वैरागी बन जाता है।

कथोपकथन :

७६- घटनाओं को प्रगतिशील बनाने के लिए और शील-स्वभाव पर प्रकाश डालने के लिए ही कथोपकथन का प्रयोग होता है। कथोपकथन घटना या पात्र में पारस या सम्बन्धित होता है। इसके द्वारा वस्तु-विधान तथा शील-निरुपण की प्रणाली में सुगमता, सरसता तथा मनोरंजन की अभिवृद्धि होती है। प्रेमचन्द ने दोनों प्रकार के : विश्लेषणात्मक और अभिन्यात्मक कथोपकथनों का प्रयोग किया है। [१]`सेवासदन` में `सुमन` और उसके `स्वामी` की बातचीत उनके स्थिति-परिवर्तन के साथ परोक्ष और अपरोक्ष दोनो प्रकार का सम्बन्ध रखती है। आपस की बात-चीत एक ओर `गजाधर` का रोष उभारती है तो दूसरी ओर `सुमन` की मनोवृत्ति पर भी अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहती। अपने पति गजाधर का अंतिम वाक्य सुमन के `टिमटिमाते हुए आशा रुपी दीपक को बुझा देता है।` वह घर से निकल जाती है। इसी वार्तालाप के परिणाम-स्वरूप सुमन और

----

१. सेवासदन,- पृ० सं०- ४६,५०,

गजाधर दोनों की जीवन स्थिति सर्वथा भिन्न-भिन्न रुप-ग्रहण कर लेती है। `निर्मला`[१] उपन्यास में उदयभानु तथा उसकी स्त्री कल्याणी का पारस्परिक वार्तालाप रुप बदलते-बदलते इतना बदल जाता है कि दोनों ही क्षुब्ध हो उठते हैं। कल्याणी का क्षोम तो अपने बच्चे सूर्यभानु की प्यार भरी तोतली बोली `पुकालता तोता तुम कुनती ही न ती` नष्ट हो जाता है। किन्तु पति किसी प्रकार शमन नहीं कर सकने के कारण घर से चल खड़े होते हैं और सदा के लिए मृत्यु की गोद में सो जाते हैं। परन्तु कल्याणी का भविष्य और उससे अधिक `निर्मला` का जीवन अन्धकारमय हो जाता है।

७७- `प्रेमाश्रम`[२] में भी लखनपुर वाले किसानों की स्थिति-परिवर्तन का बहुत कुछ कारण `गिरधर` कारिन्दा और `मनोहर` किसान की उत्तेजनापूर्ण वार्तालाप ही है, जिसने अन्त तक विषाद की गहरी छाया लखनपुर पर फैला दी।

७८- प्रेमचन्द के उपन्यासों में उद्देश्य की रक्षा और पूर्ति के साधन में कथोपकथन बड़े ही सजीव और स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत किए हैं। कथोपकथन पात्रों की प्रवृत्ति के अत्यधिक निकट हैं। वार्तालाप स्वाभाविक-ढंग की होती है, किसी प्रकार का कोई आडम्बर नहीं। देहाती पात्र उसी गर्व से वार्तालाप करता है जैसे शिक्षित समुदाय के प्राणी, कोई पात्र भी अपने वार्तालाप में किसी प्रकार की कोई हीनता अनुभव नहीं करता। वार्तालाप शील-स्वभाव को स्पष्ट करते हैं। यद्यपि शिक्षित समुदाय शिष्टता की ओट में अपने व्यक्तित्व को छिपाने का पूर्ण प्रयत्न करता है। फिर भी उसकी

---

१. निर्मला, पृ० सं०- १३,

२. प्रेमाश्रम, पृ० सं०- ७,

वार्तालाप से उसके शील स्वभाव का संकेत मिल ही जाता है । `प्रेमाश्रम` का ज्ञानशंकर इसी प्रकार का पात्र है । पद, मर्यादा, स्थिति, वर्ग के अन्तर्गत विभिन्न पात्र अत्यन्त ही स्वाभाविक और सहज ढंग से अपने-अपने वर्ग में हंसते बोलते हैं । उनका आपस में हास-परिहास भी रस पूर्ण होता है । विभिन्न उपन्यासों में प्रसंग ग्रामीण पात्रों की वार्तालाप के साथ सुख-दुख, हास-परिहास के सुन्दर नमूने हैं । अबोध बच्चों की वार्तालाप उनकी ही बोली और जिज्ञासायुक्त शब्दों में व्यक्त की गई है । `निर्मला` और `रंगभूमि` में सूरदास और मिठुआ की वार्तालाप इसके उदाहरण है । पति-पत्नी के पारस्परिक संभाषण में मान, प्रेम, रुठने-मनाने के नाना प्रकार के उपकरण संजोये हुए हैं । `गबन` में इसके उदाहरण मिलते हैं । सपत्नियों का झगड़ा और फिर एक दूसरे पर अग्नि-वाण-वर्षा का मनोरंजक-कारी रुप `कायाकल्प` में मिलता है । व्यवसाय-बुद्धि से सम्बन्ध रखने वाली व्यवहारिक शिष्टता के बहाने मोहक वाग्जाल बिछाकर ग्राहकों को फंसाने वाली कुशल व्यापारियों की मनोवृत्तियों का परिचय हमें `ग़बन` में दीख पड़ता है ।

७६- प्रेमचन्द अपने पात्रों से उनकी प्रकृति के अनुरुप ही शब्द और भाषा का प्रयोग कराते हैं । मक्कार की बातें मक्कारी से भरी हुई होती हैं । सत्यप्रिय की सच्चाई से । क्रोधी साधारण बातचीत में भी अपना क्रोध नहीं छिपा पाता । शान्त-प्रकृति का पात्र (प्रेमशंकर : `प्रेमाश्रम`) शब्दों द्वारा ही सहिष्णुता का आदर्श खड़ा कर देते हैं । `रंगभूमि` में ईश्वर सेवक अपनी बातचीत के ढंग में `ईसू मुझे अपने दामन में छिपा` `ग़बन` में इन्स पेन्टर साहब` हल्फ से कहता है` आदि आदि वाक्यों को अपनी बातचीत के बीच `टेक` बनाकर बोलते हैं । अंग्रेजी पढ़े लिखे पात्र हिन्दी के साथ बीच बीच में अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग करते हैं । मुसलमान

पात्र बराबर उर्दू में बातचीत करते हैं । अपढ़ पात्र व्याकरण की अशुद्धियों से भरपूर-भाषा के व्यवहारिक रूप को बोलते हैं । `धर्म` को `धरम` `शास्त्रार्थ` को `सरतार्थ` देहाती पात्र ग्रामीण शब्दों का प्रयोग करते हैं । कथोपकथन में रस के संचारी भाव का यथा-शक्ति प्रयोग है । प्रत्येक पात्र स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध में इसका महत्व है । इन सब गुणों से सर्व-सम्पन्न पात्र पाठकों के हृदय को स्पर्श करने वाले हैं और यही प्रेमचन्द के उपन्यासों की सफलता का सबसे बड़ा रहस्य है । प्रेमचन्द ने अपने उद्देश्य की पूर्ति में कथोपकथन को कहीं भी लचर नहीं होने दिया । इस प्रकार कथोपकथन प्रेमचन्द के उद्देश्य के प्राण हैं ।

क हा नी

भाग— २

क हा नी

सैद्धान्तिक-पक्ष :

८०- साहित्य के विभिन्न स्वरूपों के अन्तर्गत `कहानी` का अपना स्वतन्त्र और महत्वपूर्ण स्थान है। कहानी जीवन का भावात्मक अनुकरण है, जिसका आधार जीवन की एक उत्तेजनाप्रद घटना है। प्रेमचन्द के शब्दों में : `मनुष्य ने जगत में जो कुछ सत्य और सुन्दर पाया है और पा रहा है, उसी को साहित्य कहते हैं और गल्प भी साहित्य का एक भाग है।`[1]

८१- कहानी की परिभाषा और उसका स्वरूप निरंतर परिवर्तन होने के कारण, किसी एक निश्चित परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आ सकता। विषय और विधान दोनों दृष्टियों से कहानी ने इतने रूप धारण कर लिए हैं कि परिभाषा की परिधि में उसे घेरना प्राय: असम्भव सा हो गया है। वैसे : कहानी को स्वत: पूर्ण रचना कह सकते है, जिसमें जीवन के किसी एक तत्व, मर्म अथवा लक्ष्य की एक ही घटनात्मक स्थिति में अभिव्यक्ति हो। विभिन्न विद्वानों ने `कहानी` की विभिन्न परिभाषाएं दी हैं। पाश्चात्य विद्वान एलेरी कहानी को घुड़ दौड़ के समान मानते हैं, जिसमें आरम्भ और अन्त का सबसे अधिक महत्व रहता है। एच० जी० वैल्स का कहना है कि कोई भी रचना जो बीस मिनट में पढ़ी जा सके कहानी कही जाएगी। ब्रैंडर मैथ्यू कहानी में एक ही चरित्र अथवा एक ही स्थिति के द्वारा, अनेक भावनाओं

---

१. प्रेमचन्द,- मानसरोवर भाग- १, भूमिका, प्रकाशन- हंस,
पृ० सं०- १

का चित्रण हो, कहानी की संज्ञा प्रदान करते हैं । इन सब परिभाषाओं के अतिरिक्त (एनसाइक्लो पीडिया ब्रटानिका) में भी कहानी की परिभाषा पर विचार किया गया है, उसमें दी गयी परिभाषा का भाव इस प्रकार है, अर्थात् "अन्त में स्वतन्त्र साहित्यिक विधा के रूप में कहानी का वर्णन करते हुए इससे अधिक और क्या कहा जा सकता है कि वह संक्षिप्त, अत्याधिक संगठित तथा पूर्ण कथा रूप है ।"[१]

८२- भारतीय विद्वान लेखकों में 'अज्ञेय' कहानी को जीवन की प्रतिछाया मानते हैं, और जीवन स्वयं एक अधूरी कहानी है, एक शिक्षा है जो उम्र भर मिलती है और समाप्त नहीं होती । जैनेन्द्र कुमार कहानी को भूख की संज्ञा देते है जो निरंतर समाधान पाने की कोशिश करती रहती है । हमारे अपने सवाल होते हैं, शंकाएं होती हैं, चिन्ताएं होती हैं और हम उनका अन्तर, उनका समाधान खोजने का, पाने का सतत प्रयत्न करते रहते हैं । विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर कहानी का स्वरूप स्थिर किया जा सकता है ।

८३- कहानी साहित्यिक अभिव्यक्ति का एक रूप है, तथा इसका सम्बन्ध किसी घटना अथवा चरित्र की विशेषता से होता है । कहानी जीवन के अत्यधिक निकट है अर्थात जीवन की ही प्रतिछाया है जो कि इतनी संक्षिप्त और छोटी होती है कि एक ही बैठक में पढ़ी जा सके । कहानी का विस्तार, कहानी में कल्पना का उपयोग, कहानी में रस की आवश्यकता

---

१. राम प्रकाश दीक्षित, 'हिन्दी कहानी' प्रकाशन-आगरा, संस्करण- प्रथम, १६६०, पृ० सं०- ७

आदि आदि लक्षण कहानी के स्वरूप के प्रमुख अंग हैं। लेकिन डा० वृन्दावन लाल वर्मा जी के शब्दों में : "कहानी का विस्तार कम हो अथवा अधिक, वह बीस मिनट से समाप्त हो जाए अथवा एक बैठक में, उसमें कल्पना का सहारा लिया जाए या न लिया जाए आदि बातों से कहानी को कुछ लेना देना नहीं है। ××××××× कहानी की जान तो कहानी का कहानीपन है। कहानी में यदि कहानीपन नहीं, तो उसमें कुछ भी नहीं, वह व्यर्थ है। कहानीपन के अभाव में उसे चाहे जो कुछ कहा जाए, कहानी नहीं कहा जा सकता ×××××××××"[१]

८४- कहानी में कहानीपन के लिए दो बातों की आवश्यकता होती है। प्रभाव की एकता (Unity of impression) और प्रतिपाद्य की एकान्तता। कहानी की कोई घटना, कोई चरित्र, कोई वातावरण, कोई विचार का, इनमें से किसी एक का कहानी में कैसे प्रतिपाद्य किया गया है।

८५- कहानी के सर्वांगपूर्ण विकास के लिए कहानी के स्वरूप, उसकी प्रभावता, प्रतिपाद्य के साथ ही कहानी के अन्य तत्वों का भी विश्लेषण आवश्यक है। समालोचना जगत में कहानी के चार-पांच तत्व प्रसिद्ध हैं : कथानक, पात्र अथवा चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, वातावरण, भाषा-शैली और उद्देश्य।

---

१. ____________________

८६- विषय की दृष्टि से एक तथ्यता के साथ, एक निश्चित प्रभाव की सृष्टि कहानी का एक मात्र ध्येय है। कहानी लेखक एक निश्चित विषय अथवा तथ्य, एक मूल भाव या अनुभूति के सहारे पाठकों पर एक निश्चित प्रभाव डालने का प्रयत्न करता है। इस निश्चित प्रभाव की अन्विति के लिए वह घटनाओं, परिस्थितियों, पात्रों की कल्पना करता है। ये सभी तत्व कहानी के सामंजस्य-पूर्वक विकास में सहयोग देते हैं। इन सभी तत्वों का अपना अलग-अलग महत्व है। कहानी के रचना-विधान में अथवा कहानी के संगठन में इन सभी तत्वों का समुचित सामंजस्य होना अनिवार्य है।

कथा-वस्तु :

८७- कहानी के तत्वों में कथा-वस्तु का प्रमुख स्थान है। इसमें जीवन के किसी एक अंग की व्याख्या रहती है, अतएव इसका आकार संक्षिप्त होता है। कहानी में घटनाओं का अनावश्यक विस्तार सम्भव नहीं। प्रेमचन्द ने लिखा है : 'उपन्यास घटनाओं, पात्रों और चरित्रों का समूह है ; आख्यायिका केवल एक घटना है'[१]।

आरम्भ :

८८- कथावस्तु के सम्बन्ध में सामान्य बातें विशेष रूप से उपयोगी हो जाती हैं। कथा का आरम्भ किस प्रकार हुआ है; लेखक ने चमत्कारिक ढंग अपनाया है अथवा साधारण ढंग से कथा को आगे बढ़ाया है। आरम्भ कहानी का परिचय है, यदि परिचय ही सफल न होगा तो सम्पूर्ण कहानी का प्रभाव भी मन्द पड़ जाएगा। कहानी के इसी आदि भाग की अभिव्यक्ति

---

१. प्रेमचन्द,- 'साहित्य के उद्देश्य' प्रका० हंस, १९५६, पृ० सं०- ३७,

पर कहानी लेखक की सफलता-असफलता निर्भर करती है। यदि कहानी का यह भाग पाठक के हृदय में जिज्ञासा, कुतूहल आकर्षण नहीं उत्पन्न कर सका तो कथा-संगठन की यह असफलता ही है। कथा-संगठन की रचना के सम्बन्ध में कहानी-लेखकों के विभिन्न मत हैं, इस कारण किसी एक मत को निर्धारित करना कठिन है। कहानीकार अपनी दृष्टि, प्रणाली, शैली अथवा स्वयं निर्मित विचारधारा के अनुसार कथानक का अपनी कहानी में प्रतिपाद्य करता है। लेकिन आरम्भ की सफलता के लिए यह जरूरी है कि उसमें कहानी का बीज निहित हो, उसमें प्रधान घटना, मुख्य समस्या तथा पात्र आदि का परिचय संक्षेप में करा दिया जाए। कहानी के आरम्भ का, कहानी के शेष भाग से घनिष्ट सम्बन्ध हो। कहानी के आरम्भ में कहानी का उद्देश्य-संकेत हो।

मध्य :चरम-विन्दु :

८६- कथानक का मध्यभाग चरम-विन्दु की सृष्टि करता है। चरम-विन्दु कहानी लेखक की योग्यता और सामर्थ्य पर निर्भर है कि वह चरम-विन्दु की योजना किस स्थल पर करे, इस सम्बन्ध में कोई निश्चित नियम नहीं दिया जा सकता। कहानी के आरम्भ और अन्त के बीच का समस्त प्रसार चरम-विन्दु की स्थिति-विधान का ही प्रयत्न है। चरम-विन्दु पर पहुंचने के लिए कहानी लेखक समस्त सूत्रों को एकोन्मुख कर देता है।

अन्त :

६०- अन्त कहानी की अन्तिम अवस्था है। यह सुखान्त भी हो सकता और दुःखान्त भी। कहानी के आरम्भ की भांति, अन्त भी आकर्षक और प्रभावपूर्ण होना चाहिए। कुछ समालोचकों का विचार है कि कहानी का

अन्त चमत्कारिक होना चाहिए लेकिन चमत्कारपूर्ण ढंग से अन्त होने में कहानी एक आवेश बन कर रह जाएगी, उसका स्थायी अस्तित्व मानस-पटल पर न अंकित हो सकेगा आरम्भ की भांति, कहानी के अन्त को भी विचार-पूर्वक गढ़ना चाहिए । अन्त की उपेक्षा करने से कहानी का समस्त सौन्दर्य अथवा प्रभाव नष्ट हो सकता है । कहानी के मूल भावों का परिपाक और उसकी तीव्र सम्वेदना, कहानी के इसी भाग में स्फुरित होती है ।

पात्र : चरित्र-चित्रण :

६१- कहानी की कथा-वस्तु के अन्तर्गत जिन घटनाओं अथवा परिस्थितियों को ग्रहण किया जाता है, उसकी अभिव्यक्ति पात्रों द्वारा होती है । आधुनिक कहानी चरित्र-विश्लेषण पर ही आधारित होती है । प्रेमचन्द ने भी चरित्र-प्रधान कहानियों का पद ऊँचा माना है । प्रेमचन्द लिखते हैं : "जब हमारे चरित्र इतने सजीव और इतने आकर्षक होते हैं कि पाठक अपने को उनके स्थान पर समझ लेता है, तभी उस कहानी में आनन्द प्राप्त होता है । अगर लेखक ने अपने पात्रों के प्रति पाठक में यह सहानुभूति नहीं उत्पन्न कर दी, तो वह अपने उद्देश्य में असफल है"[१] इस प्रकार कहानी में पात्र का सर्वोपरि महत्व है । कहानी का प्रतिपाद्य, चाहे कोई घटना हो, चाहे कोई वातावरण अथवा कोई भाव, वह पात्र के अभाव में खड़ा नहीं हो सकता । पात्र घटनाओं का संचालन करते हैं । कथानक में सजीवता लाते हैं और कहानी की अभिव्यक्ति तो पूर्णतः पात्रों पर ही निर्भर है । अब प्रश्न उठता है कि पात्र किस ढंग के हों ? पात्र किसी भी श्रेणी अथवा वर्ग का हो, लेकिन सजीव होना चाहिए तथा यथार्थ जीवन के मनुष्यों से मिलता-जुलता हो । पात्रों का मनोविश्लेषण कभी कहानी लेखक करता है तो कभी

---

१. प्रेमचन्द : मानसरोवर, भाग- १ भूमिका पृ० सं०- १०,

पात्रों के संवाद, पात्रों की चरित्र-गत विशेषता को स्पष्ट कर देते हैं। उत्तम कहानी में पात्रों के संवाद नाटकीय प्रभाव उत्पन्न कर देते हैं। पात्रों के संवाद भी सहज, स्वाभाविक, और परिस्थिति के अनुकूल हों तभी रचना प्रभावपूर्ण होगी।

कथोपकथन : संवाद :

६२- कहानी के तत्वों में कथोपकथन अथवा संवाद का विशेष रूप से महत्व है। वह कथा भाग को विकसित करता है, भाषा-शैली का निर्माण करता है तथा पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को उपस्थित करता है। अनुकूल तथा स्वाभाविक संवाद पात्रों की परिस्थिति की व्याख्या तथा मनोवृत्ति का उद्घाटन कर सकते हैं। सफल संवाद, कहानी लेखक के अनुभव, ज्ञान तथा पर्यवेक्षण शक्ति आदि के परिचायक होते हैं। संवाद की योजना में यह विचारात्मक प्रश्न है कि कथोपकथन निरर्थक आवश्यकता से अधिक लम्बा और देश-काल के विरुद्ध न हो। संवाद द्वारा पात्रों का व्यक्तित्व स्वतन्त्र रूप से सामने आता है। पात्र के व्यक्तित्व की सूक्ष्म जानकारी और परिस्थिति का सम्यक् ज्ञान, स्वाभाविक तथा सजीव कथोपकथन योजना के लिए आवश्यक है। इन गुणों के साथ कथोपकथन में साभिप्रायता का गुण भी होना चाहिए। कथोपकथन यदि सार्थक नहीं तो वह कहानी की गति का विघातक हो जाएगा। कथोपकथन का निश्चित अर्थ होना चाहिए और उसका सीधा सम्बन्ध कहानी के प्रतिपाद्य से हो।

वातावरण : देशकाल :

६३- कहानी में स्वाभाविकता और सजीवता लाने के लिए वातावरण अथवा देशकाल का चित्रण नितान्त आवश्यक है। घटनाएँ अथवा कथानक का अस्तित्व किसी वातावरण में ही सम्भव है। वातावरण में पात्रों की बाह्य

स्थिति तथा मन:स्थिति दोनों का समावेश किया जाता है । कहानी-लेखक कहानी-रचना में जिस स्थान तथा समय का वर्णन करता है, अथवा समाज के जिस अंग का वर्णन करता है, उसका स्वाभाविक तथा यथातथ्य चित्रण `कहानी` के वातावरण की सफल अभिव्यक्ति का परिचायक है । वातावरण का सम्बन्ध कहानी के कथानक, संवाद के साथ जुड़ा होता है, इसके साथ ही कहानी की मूल संवेदना से भी इसका पूरा योग रहता है । वातावरण दो प्रकार का होता है : भौतिक और मानसिक । भौतिक वातावरण बाह्य चित्र उपस्थित करता है और मानसिक वातावरण मन का चित्र । वास्तव में भौतिक और मानसिक वातावरण को एकदम अलग नहीं कर सकते । वे दोनों परस्पर निकट रूप में सम्बद्ध रहते हैं । भौतिक वातावरण ही मानसिक वातावरण की विवेचना उपस्थित करता है । वस्तुत: कहानी में बाह्य वातावरण का जो चित्रण रहता है, उसी के अनुकूल मानसिक वातावरण भी बन जाता है । कहानी लेखक जिस वर्ग के पात्रों का चरित्र-चित्रण प्रस्तुत करता है, उसका यथार्थ ज्ञान होना अनिवार्य है । क्योंकि लेखक को पात्रों की मानसिक तथा देशकाल गत परिस्थिति से अवगत होना पड़ता है । इसी कारण यदि कहानी का वातावरण अस्वाभाविक अथवा अनुपयुक्त हुआ तो कहानी प्रभाव शून्य हो जाएगी ।

भाषा :

६४- जगत की अनुभूति तथा अभिव्यक्ति भाषा द्वारा होती है । भाषा किसी अर्थ को प्रकट करती है । जगत का ज्ञान प्राप्त करने तथा देने के लिए भाषा का सहारा लिया जाता है । भाषा कहानी का ऐसा तत्व है, जिसका सम्बन्ध सम्पूर्ण कहानी से होता है । भाषा भावों को व्यक्त

करती है । भाषा की सफलता पर कहानी की सफलता निर्भर करती है । भाषा पात्रों और परिस्थितियों के अनुकूल होती है । भाषा विभिन्न प्रकार की हो सकती है । संस्कृत गर्भित, तत्सम, तत्भव, लोकज आदि । लेकिन भाषा की सफलता इस बात पर निर्भर करती है, कि कहानी का विषय गम्भीर है अथवा सहज । विषय के अनुसार भाषा परिष्कृत, गम्भीर, सहज स्वाभाविक हो जाती है । भाषा के तीन रूप हो सकते हैं : बोलचाल की मुहावरेदार भाषा, संस्कृत-गर्भित अलंकृत भाषा, गम्भीर और परिष्कृत भाषा ।

शैली :

६५- कहानी में भावों, विचारों अथवा तथ्यों को प्रकट करने की रीति को शैली कहते हैं । प्रत्येक लेखक अपनी साहित्यगत वस्तु को अपने ढंग से व्यक्त करता है । इसलिए प्रत्येक लेखक की शैली भिन्न होती है । शैली के उचित उपयोग पर ही कहानी की सफलता निर्भर करती है । शैली और साथ में भाषा दोनो पात्र और परिस्थिति के अनुकूल होनी चाहिए । उसका सशक्त, सुगठित और सौष्ठव सम्पन्न होना आवश्यक है । उत्तम कहानी में विषय-वस्तु तथा प्रतिपादन शैली दोनो का विशेष रूप से महत्व है । यदि कहानी की अनुभूति कृत्रिम है तो शैली भी स्वाभाविक न हो सकेगी । प्रत्येक कहानी लेखक अपने विचार, भाव, कल्पना और स्वभाव के अनरूप शैली का निर्माण करता है । उसकी गम्भीरता और विनोदशीलता उसकी शैली में प्रतिविम्बित हो जाती है । रचना-शैली की कोई संख्या निर्धारित नहीं की जा सकती कहानी लेखक अपने सीमित क्षेत्र में अभिव्यक्ति-शैली के सब गुण सतर्कतापूर्वक उपस्थित करता है । शैली के द्वारा किसी लेखक के कलात्मक गुण-दोष का व्यापक रूप में परख कर सकते हैं । शैली के आधार पर ही किसी कहानी लेखक की रचना दूसरे कहानीकार की रचना से पृथक की जाती है । लेकिन कहानी की अभिव्यक्ति शैली का प्रकृत रूप क्या होना चाहिए अथवा

शैली कितने प्रकार की होती है। यह बतलाना कठिन है। समालोचना जगत में विद्वानों ने हिन्दी कहानियों की प्रतिपादन शैली की व्याख्या के अन्तर्गत कहानी की शब्द-योजना, पद तथा वाक्य-विन्यास, लोकोक्ति, मुहावरे आदि का उल्लेख किया है।

लक्ष्य : उद्देश्य :

९६- प्रत्येक साहित्यगत-वस्तु का अपना लक्ष्य अथवा उद्देश्य होता है। रचना निरुद्देश्य नहीं होती। उद्देश्य कहानी की मूल-प्रेरणा का कार्य करता है। उद्देश्य अथवा लक्ष्य की सिद्धि के लिए ही तो कहानी की योजना की जाती है और उसको सफल बनाने के लिए कहानी के संगठन, उसके विधान, भाषा शैली का सफल प्रयास किया जाता है। उद्देश्य ही कहानी का वह विन्दु है, जहाँ से कहानी को प्रेरणा मिलती है, उसका आरम्भ, विकास और अन्त होता है। साधारणत: कहानी का उद्देश्य मनोरंजन कराना माना जाता है। किन्तु इस कथन में आंशिक सत्य है। मात्र मनोरंजन को ही कहानी का उद्देश्य मानना, कहानी को उसकी गरिमा से अलग करना है। कहानी जीवन की अभिव्यक्ति है। इसलिए जीवन सम्बन्धी तथ्य तथा आदर्शों को उपस्थित करना अथवा मनुष्य की किसी अनुभूति को व्यक्त करना ही कहानी का लक्ष्य अथवा उद्देश्य होना चाहिए। कहानी किसी परिस्थिति के उद्घाटन को, किसी समस्या के स्वरूप निरूपण को, किसी चरित्र की झाँकी अथवा किसी आदर्श की संवेदना को अपना लक्ष्य बनाती है। अभिप्राय यह है कि उसका एक निश्चित और महत्वपूर्ण उद्देश्य होता है, जो केवल मनोरंजन ही नहीं, मानसिक तृप्ति भी देता है। प्रेमचन्द स्वयं इस मत के समर्थक थे। "तत्वहीन कहानी से चाहे मनोरंजन भले ही हो जाए, मानसिक तृप्ति नहीं होती। ××× यह सच है कि हम कहानियों में उपदेश नहीं चाहते; लेकिन

विचारों को उत्तेजित करने के लिए कुछ न कुछ अवश्य चाहते हैं । वही कहानी सफल होती है, जिसमें इन दोनों में से मनोरंजन और मानसिक तृप्ति में से, एक अवश्य उपलब्ध हो ।"[१] उद्देश्य को उपस्थित करने में बस इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह कहानी में प्रकट न किया जाए ।(प्रेमचन्द की प्रारंभिक कहानियों में इस प्रकार का दोष मिलता है) वरन् स्वत: व्यंजित हो । उद्देश्य को सीधे-सादे ढंग से प्रकट करना, कहानी के अन्त को शिथिल करना है । इसके साथ ही कहानी की संवेदना की तीक्ष्णता भी नष्ट हो जातीहै और प्रभावकता में बाधा उत्पन्न होती है । सीधे सीधे कहानी कह देने से कहानी उपदेशात्मक या शिक्षाप्रद हो जाती है जिसमें फिर कहानी का रस नहीं रह जाता । शिक्षा देने के उद्देश्य से लिखी कहानियों में कौशल का अभाव ही रहेगा । कहानी में जीवन का चित्रण कुछ इस तरह करना चाहिए कि शिक्षा अपने आप स्फुरित हो, तभी कहानी के उद्देश्य की सफलता है । कुछ कहानियाँ ऐसी होती हैं, जिनमें उद्देश्य बिलकुल स्पष्ट नहीं होता, लेकिन चित्रण का एक दृष्टिकोण अवश्य रहता है । अत: उद्देश्य असीमित है, उसमें कहानी लेखक की दृष्टि, जीवन-जगत का क्षेत्र अथवा पात्रों की चारित्रिक विशेषता की झलक दिखाना ही कहानी लेखक का कर्तव्य अथवा उद्देश्य हो जाता है ।

---

१. प्रेमचन्द : मानसरोवर— भाग- १, भूमिका,
पृ० सं० ६,

प्रेमचन्द की कहानियाँ

कला विधान का विश्लेषण :

६७- प्रेमचन्द की कुल कहानियाँ अपनी विषयगत विशेषताओं के साथ पांचवें अध्याय में उल्लिखित हो चुकी हैं। इन कुल कहानियों का कला की दृष्टि से धीरे-धीरे क्रमगत विकास हुआ है। प्रेमचन्द की प्रारंभिक कहानियों में (जो १६२० से पूर्व लिखी गयीं थीं) प्रेमचन्द के आदर्श, उनका लक्ष्य, आदेश, अनुभूति, परामर्श सभी स्पष्ट रूप में झलकते हैं। ये कहानियाँ हमारे लिए ऊँचे आदर्श के साथ कर्तव्य-पालन के कितने ही उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। 'बड़े घर की बेटी'[१] 'सज्जनता का दंड'[२] 'सौत'[३] ~~'पंच-परमेश्वर'~~[४] 'नमक का-दरोगा'[५] 'उपदेश'[६] 'परीक्षा'[७] 'ईश्वरीय-न्याय'[८] 'महातीर्थ'[९] 'सेवामार्ग'[१०]

---

१. भारतीय सम्मिलित परिवार के दैनिक जीवन का उद्घाटन है।
२. ठाकुर शिवसिंह के स्वभाव का चित्रण करते हुए उत्कोच लेने के कुव्यसन पर मार्मिक शब्दों में चोट है।
३. सौत समस्या पर प्रकाश डाला गया है।
४. 'पंच ईश्वर का साकार रूप है, उसके समक्ष हिन्दू और मुसलमान दोनों बराबर हैं, इस विश्वास की प्रतिष्ठा कहानी में है।
५. उत्कोच का विरोध और सच्चाई का समर्थन है।
६. सार्थक जीवन का उपदेश दिया गया है।
७. दया और धर्म की प्रतिष्ठा हुई है।
८. स्वयं प्रेमचन्द उपदेशक के रूप में पाठकों के सम्मुख हैं।
९. बालक के प्यार में ही कैलाशी को महातीर्थ का महात्म्य प्राप्त हो जाता है।
१०. सेवा करो, प्रेम सेवा से ही मिल सकता है। इस प्रकार सेवा की मार्मिक-व्यंजना है।

'पशु से मनुष्य'[1] 'दुर्गा का मन्दिर'[2] आदि (६२) बासठ कहानियों में भारतीय समाज की जर्जर स्थिति अपने नग्न रूप में दिखायी गयी है। सन् १६२० से पूर्व की कहानियों में भारतीय समाज की विभिन्न समस्याओं की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया गया है। मानव-जीवन पर व्यक्तिगत, पारिवारिक और देश, धर्म तथा समाज की समस्याएं कैसा रूप धारण करती हैं और ऐसे समय वह कैसा आचरण करता है, यही इन कहानियों में प्रदर्शित किया गया है। इन कहानियों में आदर्श-चरित्रों के स्थान पर, पात्रों के आचरण सम्मुख आते हैं। इस काल की अधिकांश कहानियों में समाज के निम्न तथा मध्यम-वर्ग के प्राणियों की विभिन्न समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। इनमें समाज के गुण-अवगुण दोनों को सहानुभूति पूर्ण ढंग से देखा गया है। प्रेमचन्द जन-साधारण में से थे। इसलिए उनमें जन-साधारण के सुख-दु:ख की अनुभूति विशेष रूप से तीव्र थी।

६८-प्रेमचन्द की बासठ कहानियां जो काल-क्रम की दृष्टि से प्रयोग-काल के अन्तर्गत आती हैं, उनमें कला का रूप शैशवास्था में था। सभी कहानियों के कथानक लम्बे और इतिवृत्तात्मक मिलते हैं। कहानी का आरम्भ परिचयात्मक-ढंग पर होता है। पहली स्थिति में पात्रों का पूर्व-परिचय और दूसरी में परिस्थिति का पूर्ण-परिचय प्राप्त हो जाता है। प्रेमचन्द अधिकांशत: कहानियों में एक ही प्रधान घटना रखते हैं। कथानक की गति उस की ओर होती है, सारी बात का प्रभाव भी उसी पर केन्द्रित रहता है। प्रेमचन्द की कहानी का प्रभाव भी सधा हुआ और संगठित होता है। प्रेमचन्द का मानवीय-प्रेम उनकी कहानियों का प्राण है। उदाहरण: में 'बूढ़ी-काकी'

---

१. सहज- सहानुभूति से एक साधारण मनुष्य भी उठ सकता है, इसी का उल्लेख है।

२. ,, ,, ,, ,, त्याग के रूप की व्याख्या की है।

को ले सकते हैं- बूढ़ी काकी की वृद्धावस्था की मनोवृत्तियों का, प्रारम्भ में ही उद्घाटन कर दिया गया है। "बुढ़ापा बहुधा बचपन का पुनरागमन हुआ करता है। बूढ़ी काकी में जिह्वा-स्वाद के सिवा और कोई चेष्टा शेष न थी और न अपने कष्टों की ओर आकर्षित करने का, रोने के अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा ही"[१] उपर्युक्त विवरण में 'बूढ़ी काकी' की वृद्धावस्था की मन: चेष्टाओं का पूर्ण परिचय मिल जाता है। इसके आगे बूढ़ी काकी की दयनीय स्थिति का और परिचय मिलता है : "उनके पति को स्वर्ग सिधारे कालान्तर हो चुका था। बेटे तरुण होकर बस चले थे ‹ ‹ ‹ ‹ भतीजे के सिवाय कोई न था ‹ ‹ ‹ ‹ उसी भतीजे के नाम उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति लिख दी थी ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ ‹"[२] उक्त दोनों अवतरणों से बूढ़ी काकी का पूर्ण परिचय स्पष्ट हो जाता है और अब बूढ़ी काकी के विषय में सोचना कुछ शेष नहीं रह जाता। ठीक यही स्थिति उनकी अन्य प्रारंभिक कहानियों में भी दीखती है। आरम्भ में ही कथा और पात्र का परिचय इसी प्रकार हुआ है।

६६- प्रारम्भ की कहानियों में प्रेमचन्द की यह धारणा थी कि कहानी के आरम्भ में ही परिस्थिति का पूर्ण परिचय हो। ये कहानियाँ पूर्व-पीठिका के रूप में आरम्भ हुई हैं। इन कहानियों की मुख्य समवेदना की सारी परिस्थिति शुरू में ही स्पष्ट हो जाती है और सारा वातावरण जिसके धरातल पर कहानी का निर्माण हुआ है, सहज और सीधे ढंग से आगे बढ़ता है। दूसरे कहानी के शुरू में ही कहानी के सभी तत्वों का : कथानक, पात्र, समस्या आदि का भी परिचय मिल जाता है। जैसे : "साधारण मनुष्यों की तरह शाहजहांपुर के डिस्ट्रिक्ट इन्जिनियर सरदार शिवसिंह में भी भलाइयाँ

---

१. 'बूढ़ी काकी' मान सरोवर : भाग- ८, पृ० सं०- १४८,
२. वही,

और बुराइयां दोनो वर्तमान थीं । भलाई यह थी कि उनके यहां न्याय और दया में कोई अन्तर न था । बुराई या थी कि वे सर्वथा निर्लोभ और नि:स्वार्थ थे । भलाई ने मातहतों को निडर और आलसी बना दिया था, बुराई के कारण उस विभाग में सभी अधिकारी उनकी जान के सारे तत्व इन पंक्तियों में विद्यमान हैं । कहानी का बीज इसमें है कि सरदार शिवसिंह दयालु और निर्लोभी जीव है, लेकिन यह सज्जनता उनको दंड के रूप में मिलती है । प्रारम्भ में ही सरदार शिवसिंह के मनोभावों का पता चलता है और समस्या रूप में उनकी सज्जनता आती है जिसने मातहतों को निडर और आलसी बना दिया है और सभी अधिकारी उनकी जान के दुश्मन हो गए हैं । तात्त्विक दृष्टि से प्रेमचन्द की कहानी का आरम्भ कलात्मक श्रेणी में नहीं आ सकता । परिचयात्मक आरम्भ अथवा वर्णात्मक भूमिका, कहानी की मुख्य समवेदना को प्रवाह-शक्ति को कुंठित कर देती है । कौतुहल-वृत्ति भी मन्द पड़ जाती है । कहानी की आत्मा में विकास के बदले पूर्व-प्रकाश आ जाता है ।

१००- संक्षेप में प्रेमचन्द की प्रारंभिक कहानियों की कथा-वस्तु के विकास में प्रस्तावना मुख्यांश, चरम-उत्कर्ष तथा पृष्ठ-भाग का सौन्दर्य स्पष्ट रूप से परिलक्षित हुआ है । आरम्भ में प्रेमचन्द की सभी कहानियां मुख्यात्मक-अन्त में समाप्त होती हैं । कहानियां घटनाओं के फल अथवा पात्रों की परिस्थिति की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करती हुई, समाप्त होती हैं । कहानियों के शीर्षक भावनाओं को तीव्र करने वाले हैं—यथा—`ईश्वरीय-न्याय`, `सेवा-मार्ग`, `महातीर्थ`, `खून सफेद`, `परीक्षा` `पंच-परमेश्वर`, `सज्जनता का दंड`, `गरीब की हाय`, `बेटी का धन`, `धर्म-संकट`, `बलिदान`, `सच्चाई का उपहार` आदि । ये सभी शीर्षक

---

१. `सज्जनता का दंड` मानसरोवर भाग-१, पृ० सं०- २६३,

संक्षिप्त हैं तथा कहानी की विषय-वस्तु से उनका सीधा-सम्बन्ध है। प्रेमचन्द की कहानी-रचना का उद्देश्य पतित समाज को आदर्श-रूप में विकसित करने का था। अत: प्रेमचन्द अपनी कहानियों में यथार्थ के सहारे आदर्श की स्थापना करते हैं। इसी कारण प्रेमचन्द की कहानियों का अन्त नीतिपूर्ण तथा सुखान्त होता है। जैसे—"झगड़ू, तुमने इस समय मेरी बात, मेरी लाज, मेरा धर्म कहाँ तक कहूँ मेरा सब कुछ रख लिया। मेरी डूबती नाव पार लगादी। कृष्ण मुरारी तुम्हारे इस उपकार का फल देंगे। और मैं तो तुम्हारा गुण जब तक जीऊँगा, गाता रहूँगा" `बटी का-धन` "स्वामी जी सेवा-मार्ग पर चलकर मैं अब अभिलाषाओं से पूरी हो गयी x x x x साधु ने इन शब्दों को सुना, तारा के चरणों पर माथा नवाया और गंगा की ओर चल दिया" `सेवा-मार्ग` प्रेमचन्द ने कुछ कहानियों के अन्त तो मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा है। जैसे : `सचाई का उपहार` `ईश्वरीय-न्याय`। प्रेमचन्द क्योंकि उर्दू से हिन्दी में अवतरित हुए थे, अत: उनकी प्रतिपादन शैली आरम्भ से ही परिष्कृत, गम्भीर और स्पष्ट थी। उसमें किसी प्रकार उलझाव अथवा कृत्रिमता नहीं थी। वह भावों के साथ सहज और स्वाभाविक ढंग से आगे बढ़ती जाती है।

विकास-कालीन कहानियाँ : (१९२०-१९३०—संख्या १०८)

१०१- आरंभिक-काल से, विकास-काल में प्रवेश करने पर, प्रेमचन्द की कहानियाँ कलात्मक रूप में विकसित हुईं। इतनी अधिक कहानी-रचना के पश्चात् अब प्रेमचन्द के सम्मुख कहानी का लक्ष्य, उसका रचना-विधान दोनों स्पष्ट थे। प्रेमचन्द ने इस काल में अपनी कहानियों की भूमिका में अपने विचार व्यक्त किए हैं। सन् १९२४ में `प्रेम-प्रसून` और सन् १९२६ में `प्रेम-द्वादशी` में प्रेमचन्द ने कहानी-कला और उसके रचना-विधान, शैली,

भाव, भाषा के सम्बन्ध में लिखा है : "हमारा ख्याल है कि आख्यायिका में ये तीन गुण अवश्य होने चाहिए—आध्यात्मिक या नैतिक उपदेश, अत्यन्त सरल-भाषा, स्वाभाविक-वर्णन-शैली"[1] प्रेमचन्द ने इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर अपनी सभी कहानियों की रचना की और ये गुण पर्याप्त मात्रा में इस काल की कहानियों में मिलते हैं। प्रेमचन्द ने अपने विचारों को यथा-सम्भव कहानी का रूप दिया है। प्रत्येक कहानी अपने लक्ष्य अथवा उद्देश्य से परिपूर्ण है। भाषा भी भावों के अनरूप है।

१०२- विकास-कालीन कहानियों में कहानी कहने की प्रणाली अत्यन्त रोचक और सारगर्भित है। उसमें मानव-चरित्र का चित्रण सहज और स्वाभाविक-ढंग से हुआ है। प्रेमचन्द अनुभव कर चुके थे कि जो भाव अथवा विचार जनता के हृदयों को स्पन्दित करता है, वही साहित्य पर भी अपना प्रभाव डालता है। इसी कारण प्रेमचन्द की कहानी-कला, उनके अनुभवी जीवन का अंग थी। प्रेमचन्द ने अपने समय की आत्मा को पहचान लिया था और इतिहास की विकासात्मक शक्तियों को समझकर, उनको स्वयं अपना बना लिया था। प्रेमचन्द के साहित्य की शाश्वतता, प्रभावता, महानता और व्यापकता के साथ उनकी साहित्यगत-कलात्मक प्रकृति और गुण दोनों का ही स्थायी और मूल्यवान सम्बन्ध है। प्रेमचन्द ने जीवन के गहरे और अमिट रेखा-चित्र अत्यन्त ही कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किए हैं। जीवन के ये चित्र विकास और निर्माण-पथ की ओर अग्रसर हुए हैं। प्रेमचन्द का लक्ष्य मानव-विकास था। प्रेमचन्द ने अपने उद्देश्य को बहुत ही कलात्मक ढंग से अपनाया और प्रस्तुत किया है।

---

१. प्रेमचन्द, 'प्रेम-प्रसून' की भूमिका, संस्करण द्वितीय, १९५९; प्रकाशन-सरस्वती : बनारस, पृ० सं० ८

१०३- प्रेमचन्द का ध्येय समाज-सुधार था । परन्तु कला की बातें कुछ गौण होकर आती हों, ऐसा नहीं हुआ है । सुधार का लक्ष्य कहानी में छिपा हुआ है । प्रेमचन्द की बचपन की अध्ययन-प्रियता ने, उनकी चिन्तन-शक्ति को उर्वर कर दिया था । वह कल्पना-शील प्राणी थे ।

१०४- विकास कालीन कहानियों में यथा-सम्भव परिमार्जन हुआ है । शुरू की कहानियों के कथानक लम्बे, इतिवृतात्मक और छिपकाता किए हुए थे लेकिन बाद में कथानक की दिशा में विकास हुआ । कथानक अपने समग्र रूप में कहानी के अनरूप और कलात्मक वृत्ति को सन्तोष देने लगे । वस्तुत: यहां आकर स्वयं प्रेमचन्द ने कहानी-कला की धारणा के सम्बन्ध में प्रकाश डाला है । प्रेमचन्द ने कहानी की लम्बाई, घटनाओं का बाहुल्य, चरित्रों का समूह आदि के विरोध में कहा है : `आख्यायिका में इस बाहुल्य की गुंजाइश नहीं । बल्कि कई सुविज्ञजनों की सम्मति तो यह है कि उसमें केवल एक ही घटना या चरित्र का उल्लेख होना चाहिए`[२] उपर्युक्त प्रकाश में प्रेमचन्द ने कहानियों के विस्तार और इतिवृत्ति में सुधार की चेष्टा की है तथा लम्बे कथानक से छोटे कथानकों की ओर जाने का प्रयत्न स्पष्ट है । इस काल में कहानियां भी अधिक लिखी गयीं । `निर्वासन`, `दीक्षा`, `भूत`, `क्षुब्दा`, `नैराश्य लीला`, `माता का हृदय`, `मुक्ति-मार्ग`, `लाग-डाट`, `लाल-फीता`, `शान्ति`, `इस्तीफा`, `मन्त्र`, `आगा-पीछा`, `धिक्कार`, `सुभागी`, `जुलूस`, `समरयात्रा`, `मैकू`,[३] आदि कहानियों के कथानकों के सम्बन्ध उपर्युक्त सत्य सफलता से चरितार्थ होता है । इन कहानियों में उतना ही कथानक लिया गया है, जितने से कहानी की मूल संवेदना सम्बन्धित है ।

---

१. प्रेमचन्द : `प्रेम प्रसून` की भूमिका, संस्करण-द्वितीय, १६५६, प्रकाशन-सरस्वती बनारस, पृ० सं०- ८,

२. प्रेमचन्द : `प्रेम प्रसून` भूमिका, पृ० सं०- ७,

३. १६२०-१६३० तक की कहानियां हैं, लेकिन सभी कहानियाँ परिष्कृत नहीं । कुछ कहानियां इस युग में भी लम्बी और वर्णनात्मक, घटना-बाहुल्य हो गयी हैं ।

की भाषा का प्रयोग कराया गया है । प्रेमचन्द की अधिकांश कहानियाँ पात्रों की परिस्थिति का यथावश्यक परिचय देती हुई आरम्भ होती हैं । इनमें घटनाओं की अपेक्षा कोई भाव अथवा समस्या प्रमुख हो जाती है ।

उत्कर्ष काल की कहानियाँ (५७) १६३०—३६

१०६- इस काल तक आते आते प्रेमचन्द करीब एक सौ सत्तर से ऊपर कहानियाँ लिख चुके थे । इन कहानियों में प्रेमचन्द ने सभी विषयों को छुआ था । कहानी के विषय भी कहानी-कला के विकास के साथ सुघड़, परिमार्जित और सूक्ष्म हो गए थे । प्रारम्भिक कहानियों में प्रेमचन्द के विचारों का वृत्त सीमित था । प्रथम अवस्था की कहानियों में सम्मिलित कुटुम्ब की समस्या नैतिक दृष्टिकोण से अपनाई गई थी । भारतीय संस्थाओं के प्रति गहरे संस्कार होने के कारण प्रेमचन्द ने इन कहानियों में हिन्दू-सम्मिलित परिवार की जर्जरित अवस्था दिखलाते हुए भी उसकी पूरी रक्षा की है । विकास-काल की कहानियों में सम्मिलित-परिवार के सदस्य आर्थिक समस्या को लेकर लड़ते या भंग होते दिखलाए गए हैं । अब सम्मिलित परिवार के सामने रोटी और काम का प्रश्न आता है । परिवार के सदस्य और परिश्रम करने पर भी भरपेट भोजन नहीं पाते । अतः किसी न किसी प्रश्न को लेकर परिवारों में नित्य-प्रति कलह होती रहती है । उत्कर्ष काल की कहानियों के विषय में प्रेमचन्द ने स्वयं अपने विचार व्यक्त किए हैं : " वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है । उसमें कल्पना की मात्रा कम, अनुभूतियों की मात्रा अधिक होती हैं; बल्कि अनुभूतियाँ ही रचना-शील भावना से अनुरंजित होकर कहानी बन जाती हैं ; मगर यह समझना भूल होगी कि कहानी जीवन का यथार्थ चित्र है । यथार्थ जीवन का चित्र मनुष्य स्वयं हो सकता है, परन्तु

कहानी के पात्रों के सुख-दु:ख से हम जितना प्रभावित होते हैं उतना यथार्थ जीवन से नहीं होते, जब तक यह निजत्व की परिधि में न आ जाए। ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ अगर यथार्थ को हूबहू खींच कर रख दें, तो उसमें कला कहाँ है। कला केवल यथार्थ की नकल का नाम नहीं है। कला दीखती तो यथार्थ है, पर यथार्थ होती नहीं। उसकी खूबी यही है कि वह यथार्थ न होते हुए भी यथार्थ मालूम न हो।"[१]

१०७- यह सच है कि हम कहानियों में उपदेश नहीं चाहते, लेकिन विचारों को उत्तेजित करने के लिए, मन के सुन्दर भावों को जागृत करने के लिए, कुछ न कुछ अवश्य चाहते हैं। वही कहानी सफल होती है, जिसमें इन भावों को उत्तेजित करने की प्रेरणा होती है। कहानी भी सब से उत्तम वही हो सकती है, जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो। यही कारण है कि इस काल में आकर प्रेमचन्द की कला-रेखाएं सजीव होकर स्वयं बोलने लगीं और उनमें कहानी का यथार्थ धरातल तथा मनोवैज्ञानिक अनुभूतियां उभर आयीं। प्रेमचन्द कहानी की आत्मा की ओर अधिक झुके।

१०८- प्रेमचन्द की कहानियों के कथानक पात्र विश्लेषण पर स्थिर हो गए। पात्रों की मनोगति स्वयं घटनाओं की सृष्टि करने लगी। 'कुसुम' 'उन्माद' 'वेश्या' 'ज्योति' 'कैदी' 'धिक्कार' 'घासवाली' 'अलग्योझा' 'मां' 'गुल्ली डन्डा' 'जेल' 'सुभागी' 'बालक' 'सद्गति' 'स्वामिनी' आदि आदि कहानियाँ एक ही संवेदना की इकाई पर, इनके कथानक स्थिर हैं। इन कहानियों में मनोभावों की रेखा ही स्वत: कहानी के रूप से निर्मित हो गयी है। और मनोवैज्ञानिक अनुभूति ही सम्पूर्ण कहानी की प्रेरणा है। प्रेमचन्द की

---

१. प्रेमचन्द, मानसरोवर- भाग-१, भूमिका, संस्करण- नवां, सितम्बर १९५०, प्रका०- हंस—पृ०सं०—६,

कहानियों के पात्र भी सच्चे मानव प्रतीत होते हैं। वे पूर्णत: सफल रूप से हमारी मनोवैज्ञानिक अनुभूतियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनमें स्वाभाविक मानव-चरित्र का सा आरोह-अवरोह रहता है। वे हमारी सारी निर्बलताओं, कुंठाओं के चित्र बन गए हैं। यही कारण है कि इस काल की कहानियां चरित्र-प्रधान हो गयीं हैं और कहानियों के चरित्र भी सजीव और अमर हो गए हैं।

१०६- दृश्य और छवि के वर्णनों में प्रेमचन्द ने विकास-काल में ही बहुत सफलता प्राप्त कर ली थी। उनकी रचना में चित्रात्मकता तथा अत्यन्त सूक्ष्मता से तथ्यों की अभिव्यक्ति प्रकट होने लगी थी। प्रेमचन्द की लेखनी में अत्यधिक तीव्रता और प्रौढ़ता आ गयी थी, अब उनमें विश्वास जाग उठा था।

भाषा-शैली

अध्याय—७

प्रेमचन्द की भाषा :

१- २० वीं शताब्दी का आरम्भ राष्ट्रीय पुनर्जागरण और स्वतन्त्रता-संग्राम के लिए किए गए सामूहिक सर्वतोमुखी प्रयत्नों का युग था। इस संघर्ष में राष्ट्र केवल आत्मभिव्यक्ति ही नहीं अपितु आत्म-परिचय और अपने को खोजने और पाने की प्रक्रिया में लगा हुआ था। एक ओर जहां ब्रिटिश सरकार के चुंगलों से देश को आजाद कराने के लिए कोशिश हो रही थी, वहीं उसी के साथ-साथ देश अपने खोए और भूले बिसरे जीवन-मानों और मूल्यों को भी फिर से पहचानने और प्राप्त करने की कोशिश कर रहा था। कला और साहित्य के क्षेत्र में यह प्रक्रिया बहुत तेजी के साथ चल रही थी। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने बहुत पहले ही जो नारा लगा दिया था कि "निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल," उसको व्यवहारिक रूप देने का कार्य आरम्भ हो गया था।

२- इसी संदर्भ में हिन्दी उर्दू अथवा हिन्दुस्थानी के आन्दोलन और उससे सम्बन्धित समस्याओं पर विचार किया जा सकता है। ब्रिटिश सरकार ने सरकारी भाषा के रूप में फारसी के स्थान पर उर्दू को स्वीकार कर लिया था। फलत: उर्दू का प्रभाव हमारे सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पूरी तरह पड़ रहा था और हिन्दी अपने को अपदस्थ अनुभव कर रही थी। हिन्दी के समर्थकों का यह विचार था कि जब तक सरकारी कार्यालयों में हिन्दी को मान्यता नहीं प्राप्त होती तब तक सामाजिक जीवन में भी हिन्दी को उसका सही स्थान प्राप्त नहीं हो सकता। भाषा के अतिरिक्त लिपि का प्रश्न भी सामने था। हिन्दी के लिए नागरी लिपि का प्रयोग होता था और उर्दू के लिए फारसी लिपि का, इस प्रकार दो लिपियों और दो भाषाओं का संघर्ष चल रहा था। इस संघर्ष को कम करने अथवा समाप्त करने की कोशिश करने के बजाय विदेशी

सरकार इस संघर्ष को और भी घना बना रही थी । राष्ट्रीय-आन्दोलन ज्यों-ज्यों तीव्र होता गया, त्यों-त्यों भाषा का यह आन्दोलन भी तीव्र होता गया । धीरे धीरे उर्दू राजकीय भाषा और हिन्दी विद्रोह की भाषा अथवा राष्ट्र-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित होने लगी । यद्यपि इस संघर्ष के माध्यम से हिन्दी को अपना प्राप्य मिलता जा रहा था, परन्तु इसके कारण हिन्दी और उर्दू के बीच कटुता भी बढ़ती जा रही थी । इस भाषागत कटुता ने साम्प्रदायिकता का रूप धारण कर लिया और हिन्दी हिन्दुओं की तथा उर्दू मुसलमानों की भाषा के रूप में मानी जाने लगी । यह उस राष्ट्रीय एकता के लिए घातक सिद्ध हुई जिसके बिना स्वराज्य-प्राप्ति असम्भव थी । हिन्दी के समर्थक एक ओर हिन्दी को राज्यभाषा और राष्ट्र-भाषा के रूप में देखना चाहते थे, दूसरी ओर वे उर्दू को हिन्दी की एक शैली-मात्र मानते थे । यहां हिन्दी का अर्थ था खड़ी-बोली-हिन्दी।वे नागरी लिपि को सर्वथा वैज्ञानिक और व्यावहारिक मानते थे । फारसी लिपि की अवैज्ञानिकता उनके लिए स्वयं सिद्ध थी । उर्दू के-समर्थक न तो उर्दू भाषा को छोड़ने के लिए तैयार थे न अपनी लिपि को । फलत: एक ओर नागरी प्रचारणी-सभा और हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा दूसरी ओर `अंजुमन-तरक्किये उर्दू` ने अपनी-अपनी भाषा और लिपि के सम्बन्ध में आन्दोलन आरम्भ कर दिये । इसी संघर्ष और द्वंद्व के युग में प्रेमचन्द का आविर्भाव और अभ्युत्थान हुआ । भाषा-गत इस समस्या को हल करने के लिए महात्मा गांधी के नेतृत्व में हिन्दुस्तानी का आन्दोलन शुरू हुआ । इस आन्दोलन का आधार यह था कि हिन्दी और उर्दू के सरल शब्दों को लेकर के एक मिली-जुली भाषा चालू की जाए । यह भाषा ऐसी हो जो दोनों लिपियों में समान रूप से लिखी जा सके । इस दृष्टि की वैज्ञानिकता को भाषा शास्त्रियों ने चुनौती दी । हिन्दी अथवा उर्दू के समर्थकों का सहयोग इस आन्दोलन को प्राप्त नहीं हो सका और यद्यपि आज हिन्दी संविधान में राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकृति हो गयी है, परन्तु हिन्दी और उर्दू का भाषागत एवं लिपिगत भेद अब भी बना हुआ है । यह एक राष्ट्रीय दुर्घटना ही थी कि हिन्दी-उर्दू के इस

संघर्ष के कारण अंग्रेजी अपने स्थान पर कायम रह गयी और आज भी वह अपने स्थान पर यथावत् बनी हुई है। हिन्दी का आन्दोलन मूलत: अंग्रेजी विरोध का आन्दोलन था परन्तु इस आन्दोलन का रूप बिगड़ गया और जिस राष्ट्रीय जीवन की अभि-व्यक्ति हिन्दी के माध्यम से होनी चाहिए थी, वह नहीं हो पाई।

३- इस सम्पूर्ण युग में लेखकों का एक बहुत बड़ा दल इस बात के लिए प्रयत्नशील रहा कि वह चाहे हिन्दी का प्रयोग करे अथवा उर्दू का-तत्सम शब्दों के स्थान पर अधिकाधिक मात्रा में तद्भव एवं देशज शब्दों का प्रयोग करे, जिससे भाषा सरल और सर्वजन-सुलभ बन सके और लेखक का सन्देश सरलतापूर्वक जन-समुदाय तक पहुँच सके। ऐसे लेखकों में प्रेमचन्द अग्रणी थे, उन्होंने अपनी रचनाओं में सरल भाषा का प्रयोग किया। प्रेमचन्द युग की वाणी थे। उस समय राजनीति में और समाज सुधार के आन्दोलन में मनुष्य से विचारशील और कर्मशील बनने और रूढ़िगत परम्पराओं और अन्ध-विश्वासों को त्याग कर आगे बढ़ने की माँग की जा रही थी। प्रेमचन्द ने इस माँग को पूरा किया। यह बात बिलकुल सच है कि जनता के हृदयगत भाव जनता ही की भाषा में अच्छी तरह व्यक्त किए जा सकते हैं। साधारण जनता संस्कृत-साहित्य की ओर पूज्य-भाव अवश्य रख सकती है, परन्तु उसका हृदय तो उन्हीं भावों को ग्रहण कर सकता है, जो उसकी भाषा में व्यक्त किए जाएं। साहित्य-क्षेत्र में, जिस प्रकार तुलसीदास ने लोक-जन्य-भाषा के सहारे साहित्य सर्जना करके समाज की रक्षा की और साहित्य की शोभा बढ़ायी, उसी प्रकार प्रेमचन्द ने जनवादी कलाकार के रूप में जनता के विचार जनता की ही भाषा में व्यक्त किए। जिस प्रकार देश की समृद्धि के लिए स्वराज्य अनिवार्य था उसी प्रकार साहित्य की उन्नति के लिए भाषा। प्रेमचन्द के शब्दों में "कौम की जबान वह है जिसे कौम समझे, जिसमें कौम की आत्मा हो, जिसमें कौम के जज़्बात हों।"[१]

---

१. 'साहित्य के उद्देश्य' ले० प्रेमचन्द, पृ०सं०- १९२ प्रथम संस्करण- जुलाई १९५४, हंस-प्रकाशन,

४- प्रेमचन्द जनसुलभ भाषा के पक्षपाती थे। उनकी भाषा में जितनी अनेक रूपता मिलती है, सम्भवत: अन्य दूसरे लेखक की भाषा में नहीं। भारतेन्दु तथा बालकृष्ण भट्ट के प्रयत्न से उस समय तक भाषा का पर्याप्त विकास और परिष्कार हो चुका था, किन्तु प्रेमचन्द की भाषा में अपना अलग ही निरालापन और रोचकता है। उन्होंने हिन्दी, उर्दू, बंगला, फ़ारसी, अंग्रेजी-सभी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग करने में किसी प्रकार का कोई संकोच नहीं किया। प्रेमचन्द उर्दू से हिन्दी में आए थे, इसलिए उर्दू-गद्य-शैली की प्राय: समस्त स्पृहणीय विशेषताएं उनकी हिन्दी गद्य-शैली में विद्यमान हैं। भाषा-प्रयोग की दृष्टि से प्रेमचन्द सदैव उदार रहे। भाषा की विशुद्धता के वे इतने पक्षपाती न थे जितने उसकी सर्वमान्य स्वीकृति अर्थात् व्यवहारिक रूप के। अन्य शब्दों के व्यवहार-रूप पर प्रेमचन्द को कोई आपत्ति न थी, वरन् वे इसके समर्थक थे। प्रेमचन्द का विचार था— "ऐसी जबान जिसके लिखने और समझने वाले थोड़े से पढ़े लिखे लोग ही हों, मसनुई, बेजान और बोझल हो जाती है। जनता का मर्म-स्पर्श करने की, उन तक अपना पैगाम पहुंचाने की, उसमें कोई शक्ति नहीं रहती।"[१]

५- प्रेमचन्द ने अपने एक भाषण में भाषा-सम्बन्धी विचारों को व्यक्त करते हुए कहा—"अपने हिन्दू दोस्तों से भी मेरा यही नम्र निवेदन है कि जिन शब्दों ने जन-साधारण में अपनी जगह बना ली है, और उन्हें लोग आपके मुंह या कलम से निकलते ही समझ जाते हैं, उनके लिए संस्कृत-कोष की मदद लेने की जरूरत नहीं। 'मौजूद' के लिए 'उपस्थित', 'इरादा' के लिए 'संकल्प' 'बनावटी' के लिए 'कृत्रिम' शब्दों को काम में लाने की कोई खास जरूरत नहीं। प्रचलित-शब्दों को उनके शुद्ध रूप में लिखने का रिवाज भी भाषा को अकारण ही कठिन बना देता है। खेत को क्षेत्र, बरस का वर्ष, छेद को छिद्र, काम को कार्य, सूरज को सूर्य, जमुना को

---

१. 'साहित्य के उद्देश्य', पृ० सं० १६२,

यमुना लिख कर आप मुंह और जीभ के लिए ऐसी कसरत का सामान रख देते हैं, जिसे नब्बे फीसदी आदमी नहीं कर सकते । इसी मुश्किल को दूर करने और भाषा को सुबोध बनाने के लिए कवियों ने बृजभाषा और अवधी में शब्दों के प्रचलित रूप ही रक्खे थे । जनता में अब भी उन शब्दों का पुराना बिगड़ा हुआ रूप चलता है, मगर हम विशुद्धता की धुन में पड़े हुए हैं ।"[१]

६- प्रेमचन्द ने एक स्थान पर विशुद्धतावादियों पर व्यंग्य करते हुए लिखा है— "परन्तु आज क्या परिस्थिति है? हमारे हिन्दी वाले इस बात पर तुले हुए हैं कि हम हिन्दी से भिन्न भाषाओं के शब्दों को हिन्दी में किसी तरह घुसने ही न देंगे ? उन्हें `मनुष्य` से तो प्रेम है परन्तु `आदमी` से पूरी-पूरी घृणा है । यद्यपि `दरख्वास्त` जन-साधारण में भली-भांति प्रचलित है परन्तु फिर भी उनके यहां इसका प्रयोग वर्जित है । इसके स्थान पर वे `प्रार्थना-पत्र` ही लिखना चाहते हैं, यद्यपि जन-साधारण इसका मतलब बिलकुल ही नहीं समझता । `इस्तीफा` को वे किसी तरह मंजूर नहीं कर सकते और इसके स्थान पर `त्याग-पत्र` रखना चाहते हैं । `हवाई जहाज` चाहे कितना ही सुबोध क्यों न हो, परन्तु उन्हें `वायुयान` की सैर ही पसन्द है । उर्दू वाले तो इस बात पर और भी अधिक लट्टू हैं । वे `खुदा` को तो मानते परन्तु `ईश्वर को नहीं मानते । `कुसूर` तो वे बहुत से कर सकते हैं, परन्तु `अपराध` कभी नहीं कर सकते । `खिदमत` तो उन्हें बहुत पसन्द हैं, परन्तु `सेवा` उन्हें एक आंख भी नहीं भाती । इसी तरह हम लोगों ने उर्दू और हिन्दी के दो अलग-अलग कैम्प बना लिए हैं । और मजाल नहीं कि एक कैम्प का आदमी दूसरे कैम्प में पैर भी रख सके । इस दृष्टि से हिन्दी के मुकाबले में उर्दू में कहीं अधिक कड़ाई है ।"[२]

---

१. `हिन्दी-उर्दू की एकता` आर्य समाज के अन्तर्गत आर्य भाषा सम्मेलन, के वार्षिक अवसर पर लाहौर में दिया गया भाषण ।

२. ले० प्रेमचन्द, `उर्दू, हिन्दी और हिन्दुस्तानी``साहित्य के उद्देश्य` प्रका० हंस, इलाहाबाद, संस्करण- प्रथम, जुलाई १६५४, पृ०सं० २१०,

७- प्रेमचन्द इस विशुद्धतावाद के उसी प्रकार विरोधी थे जिस प्रकार उनके पूर्ववर्ती साहित्यकार भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र और पंडित बालकृष्ण भट्ट आदि । भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की भाषा सरल, सरस और सुन्दर थी । विद्वानों के मतानुसार भाषा-शैली का आधुनिकतम् रूप भी वास्तव में भारतेन्दु-युग से ही हुआ । भारतेन्दु ने भावानुसार शब्दों का प्रयोग किया और उन्होंने बोलचाल के शब्दों के व्यवहारिक-रूप का अधिक ध्यान रक्खा । भारतेन्दु जी के युग में ही बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र की शैलियों को अधिक लोक-प्रियता प्राप्त हो चुकी थी । इन लेखकों की भाषा अधिक सजीव और चुटीली होती थी, साथ ही मर्म-स्थल पर आघात करने वाली । लेकिन बाद में महावीर प्रसाद द्विवेदी की गद्य-शैली में हमें **पहली** कलापूर्ण गद्य अथवा भाषा शैली के दर्शन होते हैं । हिन्दी में आचार्य द्विवेदी की सफलता का रहस्य, उनकी अपनी नव-निर्मित भाषा-शैली ही थी । कहीं तर्क-पूर्ण, कहीं ओजपूर्ण, कहीं भावपूर्ण, कहीं तथ्य-प्रधान, परन्तु सदैव आकर्षक, नितान्त सरल; यही द्विवेदी जी का हिन्दी के लिए महत्त्वपूर्ण योगदान था, जिसका अनुकरण उनके समकालीन और बाद के लेखकों ने किया ।

८- प्रेमचन्द उर्दू से हिन्दी में आए थे, इसलिए स्वभावत: उनकी भाषा-शैली पर, उनके उर्दू-ज्ञान और उर्दू-प्रेम की छाप स्पष्ट है । उनकी `अमावस्या-की रात, नामक कहानी में से जो आरंभिक कहानियों में से है, एक उदाहरण प्रस्तुत है : — "नाज़रीन आप जानते हैं, मैं कौन हूं ? आपका ज़र्द चेहरा, आपका तने लाग़िर, आपका ज़रा सी मेहनत में बेदम हो जाना, आपका लज़्ज़ा दुनिया से महरूम रहना, आपकी ख़ाना तरीकी, यह सब इस सवाल का नफी में जवाब देते हैं ।"[१] प्रेमचन्द ने उर्दू गर्भित-शैली

---

१. मान सरोवर, भाग- ६, लेखक- प्रेमचन्द, `अमावस्या की रात्रि` पृ० सं० २१२, हंस प्रकाशन,

के साथ ही, उसी अधिकार से संस्कृत-गर्भित भाषा को भी अपने साहित्य में सम्मानपूर्ण स्थान दिया । प्रेमचन्द, जैसा कि उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है, दोनो भाषा के रूपों के पक्षपाती थे और अपने विचारों में प्रवाह लाने के लिए दोनों ही भाषाओं के शब्दों को मान्यता प्रदान की ।

संस्कृत गर्भित शैली का उदाहरण :

९- वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक-विश्लेषण और जीवन के यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है । उसमें कल्पना की मात्रा कम और अनुभूतियों की मात्रा अधिक होती है । इतना ही नहीं बल्कि अनुभूतियों की रचनाशील भावना से अनुरंजित होकर कहानी बन जाती है ।"[1]

१०- प्रेमचन्द की वास्तविक भाषा जो उनका सबसे अधिक प्रतिनिधित्व करती है, वह सरल सहज हिन्दी वाली भाषा ही है । प्रेमचन्द ने तद्भव शब्दों का प्रयोग किया और बोलचाल के देशज शब्दों का तो यथा-स्थान पात्रों के शील-स्वभावानुसार प्रयोग करते ही रहे । इस शैली में न तो संस्कृत-निष्ठता मिलती है और न अरबी-फारसी शब्दों का बाहुल्य । प्रेमचन्द जब किसी स्थिति, भाव या पात्र का चित्र उपस्थित करना चाहते हैं तो वे इसी भाषा का आश्रय लेते हैं । देखिए एक उदाहरण—"सुमन जब अपने द्वार पर पहुँची तो उसके कान में एक बजने की आवाज आई । वह आवाज उसकी नसनस में गूँज उठी । वह अभी तक दस-ग्यारह के धोखे में थी । प्राण सूख गए । उसने किवाड़ की दरारों से

---

१. ले० प्रेमचन्द `कहानी-कला` `साहित्य के उद्देश्य` प्रका० हंस इलाहाबाद संस्करण प्रथम, जुलाई १९५४, पृ० सं० ४१,

से झाँका, ढिबरी जल रही थी, उसके धुएं से कोठरी भरी हुई थी और गजाधर हाथ में डंडा लिए चित्त पड़ा जोर से खर्राटे ले रहा था। सुमन का हृदय काँप उठा। किवाड़ खटखटाने का साहस नहीं हुआ।"[१]

११- प्रेमचन्द ने समर्थ साहित्यकार की भाँति अपनी बात को अधिक मार्मिक बनाने के लिए आलंकारिक-भाषा-शैलियों का भी यथा-स्थान अपने उपन्यासों और कहानियों में प्रयोग किया है। प्रेमचन्द में रूपक और उपमा का बड़ा ही सुन्दर प्रयोग मिलता है। प्रेमचन्द की भाषा तीखी, पैनी तथा मर्मस्थल पर आघात करने वाली है, चुस्त, मुहावरेदार और अलंकारमयी भी है। उपमा इसकी विशेषता है। जनसाधारण के जीवन से यह अपने चित्र बनाती है। प्रेमचन्द स्वयं भाषा के सम्बन्ध अपने मत प्रकट करते हैं—"आदर्श व्यापक होने से भाषा अपने आप सरल हो जाती है। भाव सौन्दर्य, बनाव-सिंगार से बेपरवाही ही दिखा सकता है। जो साहित्यकार अमीरों का मुंह जोहने वाला है, वह रईसी रचना-शैली स्वीकार करता है; जो जन-साधारण का है वह जन-साधारण की भाषा में लिखता है।"[२] यद्यपि प्रेमचन्द का सम्पूर्ण साहित्य जन-साधारण की ही भाषा में प्रस्तुत है; फिर भी उन्होंने अपनी भाषा में रूपक और उपमा के सहारे चमत्कार उत्पन्न किया है और उसकी मार्मिकता बढ़ायी है। आरम्भ में अवश्य प्रेमचन्द की भाषा में शिथिलता थी और हिन्दी को भाषा का यह रूप ग्राह्य न था। इस प्रकार की अनेक अपूर्णताएं 'वरदान' में मिलती हैं। लेकिन धीरे-धीरे प्रेमचन्द अपनी त्रुटियों से परिचित हुए और विभिन्न भाषाओं के 'तत्सम' शब्दों के मोह को तोड़ कर 'तद्भव' शब्दों अथवा

---

१. 'सेवासदन', पृ० सं०- ४५, हंस प्रकाशन,

२. लखनऊ में प्रगतिशील लेखक संघ के पहले अधिवेशन में सभापति आसन से दिया गया भाषण। (१९३६)

जन प्रचलित शब्दों के प्रयोग से अपनी भाषा को सुन्दर सहज और प्रवाहपूर्ण बनाया। उनकी परिष्कृत भाषा का यह रूप देखिए : "मेरी कक्षा में सूर्य प्रकाश से ज्यादा ऊधमी कोई लड़का न था, बल्कि यों कहो कि अध्यापन-काल के दस वर्षों में मुझे ऐसी विषम प्रकृति के शिष्य से साबका न पड़ा था। कपट-क्रीड़ा में उसकी जान बसती थी। ऐसे-ऐसे षड्यंत्र रचता, ऐसे फन्दे डालता, ऐसे बाँधनू बाँधता कि देखकर आश्चर्य होता था।"[१]

१२- प्रेमचन्द की भाषा में परिष्कार के साथ ही सौन्दर्य और चित्रोपमता का गुण भी परिलक्षित होने लगा। उनके उपन्यासों में भाषा का यही रूप उनका प्रतिनिधित्व करता है। इसमें उनके भाषा-सम्बन्धी सभी दोषों का परिहार, परिमार्जन एवं परिष्कार हुआ। देखिए— "यह सोचता हुआ वह अपने द्वार पर आया। बहुत ही सामान्य झोपड़ी थी। द्वार पर एक नीम का वृक्ष था। किवाड़ों की जगह बाँस की टहनियों की एक टट्टी लगी हुई थी। टट्टी हटाई। कमर से पैसों की छोटी पोटली निकाली जो आज दिन भर की कमाई थी।"[२]

१३- प्रेमचन्द हिन्दी-उर्दू के ऐक्य में विश्वास करते थे। उनका कहना था—"यूँ तो अभी हिन्दी और उर्दू अपने सार्थक रूप में भी पूर्ण नहीं हैं ... एक एक भाव के लिए उन्हें कितना सरमगजन करना पड़ता है। सरल शब्द मिलते ही नहीं, मिलते हैं, तो भाषा में खपते नहीं, भाषा का रूप बिगाड़ देते हैं, खीर में नमक के डले की भाँति आकर मज़ा किरकिरा कर देते हैं"[३] लेकिन सभी भाषाओं के शब्दों के प्रति प्रेमचन्द समान रूप से उदार थे। उनका कहना था कि जब देश में सब जाति के लोग हैं तो हमें साहित्य

---

१. मानसरोवर [भाग-४] पृ० सं० १

२. 'रंगभूमि', पृ० सं० १२

३. दक्षिण भारत, हिन्दी प्रचार सभा में, दिया गया भाषण— २६ दिसम्बर, १९३४,

में भी सब जाति के, सब भाषाओं के शब्दों का प्रयोग करके साहित्य को विशाल और व्यापक बनाना चाहिए । प्रेमचन्द का विश्वास था—"भाषा हमारी आत्मा का बाहरी रूप है । भाषा का सीधा सम्बन्ध हमारी आत्मा से है"[१]

१४- प्रेमचन्द की भाषा पर गांधी जी की हिन्दी-हिन्दुस्तानी सम्बन्धी विचार धारा का भी प्रभाव था । प्रेमचन्द ने पात्रों की सामाजिक स्थिति के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है । भाषा के अन्तर्गत प्रेमचन्द को इस बात की बहस नहीं थी कि संस्कृत के मूल शब्दों का प्रयोग न किया जाए, बल्कि वह चाहते थे कि कोई भी शब्द हो और किसी भी भाषा का हो, इससे कोई आपत्ति नहीं, देखना इस बात को है कि वह शब्द जन-प्रचलित है अथवा नहीं । यदि उसका जनता में व्यवहार किया जाता है तो तत्सम् होने पर भी प्रेमचन्द ने उसका प्रयोग किया । इस प्रकार प्रेमचन्द के कथा-साहित्य में बहुत से तत्सम-शब्द भी मिलेंगे । प्रेमचन्द चाहते थे कि वही भाषा लिपिबद्ध हो जो पात्रों के मुख से सहज, सरल और स्वाभाविक ढंग से, बिना किसी काठिन्य के आप से आप प्रवाहित होती है । उदाहरण— प्रेमचन्द के एक मुसलमान पात्र की भाषा का नमूना : "वल्लाह ! क्या इन्कसार है, कितनी खाकसारी है ! इसी को शराफत कहते हैं कि इन्सान अपने को भूल न जाए । ××× खुदा ने यह दरजा अता किया मगर तुम्हारा मिजाज़ वही है ×××××× इतनी हिम्मत, इतनी दिलेरी, अपनी अस्मत के लिए जान पर खेल जाने का यह जोश, राज-कुमारियों में ही हो सकता है । खुदा आपको हमेशा खुश रक्खे । आपको देखकर आँखें मसरूर हो गयीं ×× ××× उनकी सी पाकीज़ासिफ़त खातून दुनिया में कम होंगी ।"[२] "किसी की मजाल है कि हमारी दीनी उमूर में मज़ाहमत करें" "जनाब, जिहाद करना

---

१. बम्बई के राष्ट्रभाषा सम्मेलन के लिए दिए गए भाषण से— (२०-१०-३४),

२. कायाकल्प, पृ०सं० ३२१, सरस्वती प्रकाशन, मार्च १६५६,

कोई खाला जी का घर नहीं" "बजा है आपकी शहादत तो कहीं नहीं गयी है । ज़िल्लत तो हमारी है ।" "आप ही फ़ैसला कीजिए कि दीनी मामलात में उलमा का फ़ैसला वाजिब है, या उमरा का ?"[१]

हिन्दू पात्रों की शुद्ध हिन्दी भाषा के उदाहरण देखिए— "प्रेमशंकर को देखते ही राय साहब ने उठ कर बड़े तपाक से उनका स्वागत किया, ... क्षमा कीजिएगा, मैं इस समय देवोपासना करने जा रहा हूँ, पर आप से मिलने के लिए ऐसा उत्कंठित था कि एक क्षण का विलम्ब भी न सह सका । आपको देख कर चित्त प्रसन्न हो गया । संसार ईश्वर का विराट स्वरूप है । जिसने संसार को देख लिया, उसने ईश्वर के विराट् स्वरूप का दर्शन कर लिया यात्रा अनुभूत ज्ञान प्राप्त करने का सर्वोत्तम साधन है ।"[२] "गायत्री को इन वार्ताओं में असीम आनन्द आ रहा था । प्रातः काल उसने ज्ञानशंकर को एक विनयपूर्ण पत्र लिखा । इस लेख की चर्चा न करके अपनी विडम्बनाओं का वृतान्त लिखा और साग्रह निवेदन किया कि आप आकर इलाके का प्रबन्ध अपने हाथ में ले, इस डूबती हुई नौका को पार लगाएं । उसका मनोमालिन्य मिट गया था । .... ज्ञानशंकर ने अपने श्रद्धाभाव से उसे वशीभूत कर लिया था"[३]

१५- प्रेमचन्द व्यवहारिक-भाषा के पक्षपाती थे । इसीलिए उनकी भाषा में आवश्यकतानुसार विदेशी शब्दों को भी स्थान मिला— देखिए : "ऐसा सलूक उस आदमी के साथ किया जाता है जिसमें कुछ आदमियत बाकी रह गयी हो ।" "ओ डेमिट ! बक-बक मत करो, ... नहीं तो हम ठोकर मारेगा"[४] प्रेमचन्द ने विषय, भाव और विचारों के अनुकूल अपनी भाषा को यथा-स्थान संवारा है । प्रेमचन्द ने गम्भीर भाव

---

१. कायाकल्प, पृ० सं० ३१, सरस्वती प्रकाशन, मार्च १९५९,
२. प्रेमाश्रम, पृ० सं०- १२७, हंस- प्रकाशन,
३. प्रेमाश्रम, पृ० सं०- १४६, हंस- प्रकाशन,
४. कायाकल्प, पृ० सं०- १५६, १५७, सरस्वती प्रकाशन,

गम्भीर भाषा में, और सरल भाव सरल भाषा में व्यक्त किए हैं। इससे उनकी भाषा में स्वाभाविक उतार-चढ़ाव बना रहता है। साथ ही, वह भाव, समय, स्थान, अवसर और तत्सम्बन्धी वातावरण के अनुकूल है। उन्होंने अपने कथोपकथन में इस बात का विशेष ध्यान रक्खा है। अपनी भाषा में प्रवाह लाने के लिए प्रेमचन्द ने सरल, सजीव शैली को मान्यता प्रदान की और चित्रण करते समय अलंकारों के लालित्य ने भाषा में चार चांद लगा दिए हैं। हास्य-व्यंग्य, मुहावरे, सूक्तियां सभी की अनुपम छटा सम्पूर्ण साहित्य में प्रस्तुत है।

१६- प्रेमचन्द के नारी पात्र अत्यन्त ही भावपूर्ण, करुणामय शैली में अपने भाव व्यक्त करते हैं। "इन्दु, मुझे उनके साथ रहते रहते उनसे इतना प्रेम हो गया है कि उन से एक दिन भी अलग रहना मेरे लिए असाध्य-सा जान पड़ता है। x x x x जानती हूं, कभी न कभी वियोग होगा ही; इस समय मुझे सब से बड़ी चिन्ता अपनी बात खोने की है।" "इन्दु ने मर्माहत भाव से देखा और अपने कमरे में चली गयी x x x x नहीं तो इन्दु के लिए अपने उद्‌गारों को रोकना अत्यन्त कठिन हो जाता। उसके मन में रह रह कर इच्छा होती थी कि चल कर क्षमा मांगू ------------ कह दूं—बहन मेरा कुछ वश नहीं है, मैं कहने को रानी हूं, वास्तव में मुझे उतनी भी स्वाधीनता नहीं, जितनी मेरे घर की दासियों को है।"[1]

१७- प्रेमचन्द की भाषा का ग्रामीण रूप सभी उपन्यासों और कहानियों में परिलक्षित हुआ है। नगर के पात्रों की भाषा यदि साहित्यिक है तो ग्रामीण पात्र देहाती भाषा में अपने भावों को व्यंजित करते हैं। ग्रामीण पात्रों के कथोपकथन में देहाती भाषा का प्रयोग सर्वत्र हुआ है। भाषा के इस रूप में तत्सम शब्दों का बाहुल्य नहीं है। चलते, व्यवहारिक तद्भव शब्दों का ही प्रयोग है। इस प्रकार ग्रामीण पात्रों के कथोपकथनों में 'भिच्छुक', 'भिरस्ट', 'खरच', 'धरम', 'दुरदसा', परासचित, लिल्लाम, बाम्हन, जजमानी, परथा आदि तद्भव शब्द तथा मांहना, ओसाना, मोट बराना आदि विशिष्ट

---

१. 'रंगभूमि' पृ० सं०- ८७, भारतीय प्रकाशन,

विशिष्ट शब्द भाषा को देहाती रूप प्रदान कर देते हैं।

१८- प्रेमचन्द की भाषा निर्विवाद रूप से अपने में परिपूर्ण है। वस्तु-वर्णन एवं भावाभिव्यंजन की उसमें पूरी क्षमता है। उनकी भाषा मनोवेगों को तरंगित कर सकती है, चरित्र का विश्लेषण कर सकती है, विचारों का, नीति का संकेत कर सकती है। आज अपने देश में भाषा की किसी पद्धति को यदि व्यावहारिक कहा जा सकता है तो वह यही प्रेमचन्द की अपनी रची हुई सरल, सहज, स्वाभाविक भाषा ही है। इस भाषा के सर्वप्रिय होने में, सर्वग्राह्य होने में कोई सन्देह नहीं है। देश की, संस्कृति की, दर्शन-विज्ञान की, मानव-मन की प्रत्येक भावना और विचार का इस भाषा में प्रकाशन हुआ है। इस प्रकार प्रेमचन्द की भाषा सब प्रकार से सशक्त, सजीव, अनुकरणीय एवं उपादेय है।

शैली :

१- `शैली` अंग्रेजी `Style` का अनुवाद है और अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से हिन्दी में आया है। प्राचीन साहित्य-शासन में शैली से मिलते-जुलते अर्थ को देने वाला एक शब्द प्रयुक्त हुआ है `रीति`। आचार्य वामन `रीति` को काव्य की आत्मा मानते हैं। उपन्यास के तत्व के रूप में शैली का विशिष्ट स्थान है। प्रत्येक उपन्यास के वर्ण्य-विषय के अनुसार एक विशिष्ट शैली की आवश्यकता होती है, किन्तु उसका पूर्ण महत्त्व तभी पूर्ण होता है, जब वह उत्तम ढंग से उपयोग में लायी जाए। उपन्यास में शैली-तत्व इसी उत्तम ढंग से कथा-वस्तु को प्रस्तुत करने में प्रयुक्त होता है।

२- शैली अभिव्यंजना या अभिव्यक्ति की रीति को कहते हैं। प्रेमचन्द के शब्दों में : "अभिव्यक्ति मानव-हृदय का स्वाभाविक गुण है। मनुष्य जिस समाज में रहता है, उसमें मिलकर रहता है, जिन मनोभावों से वह अपने मेल के क्षेत्र को बढ़ा सकता है, अर्थात् जीवन के अनन्त प्रवाह में सम्मिलित हो सकता है, वही सत्य है।"[१] यह अभिव्यक्ति व्यक्तिगत रुचि, सुविधा, योग्यता और संस्कार के आधार पर की जाती है। प्रत्येक विषय पर व्यक्ति का अपना दृष्टिकोण रहता है। परिणामत: शैली के विभिन्न रूप दिखाई देते हैं। लेखक के व्यक्तित्व के अनुकूल ही स्वयं उसकी अपनी शैली का निर्माण होता है। यह उनके विचारों-भावों का परिधान है।[२] शैली मूलत: एक व्यक्तिगत गुण है। वह मनुष्य का स्वभाव है। शैली लेखक के व्यक्तित्व की प्रतिकृति मात्र है। इसीलिए शैली जितनी ही प्राणवान होगी, उतना ही उभरेगा। शैली जैसा कालीइल अपने जर्नल में कहता है, लेखक का कोट नहीं, उसकी त्वचा है।[३]

---

१. प्रेमचन्द : साहित्य के उद्देश्य : पृ० सं०- ५१, प्रथम-संस्करण,

२. Style is the dress of thoughts - Pope

३. "Style is not the coat of winter but his skin" carlyle,

३- उपन्यास महाकाव्य की भाँति साहित्य की सबसे विस्तृत विधा है। अतः भाषा के साथ ही शैली का निर्वाह अपेक्षाकृत दुरूह कार्य है। उपन्यास की अन्तरात्मा को प्रकट करने की कलात्मक सामर्थ्य शैली में ही होती है। इस दृष्टि से प्रेमचन्द की शैली सर्व-गुण-सम्पन्न है। प्रेमचन्द में शैली के प्रायः सभी गुण अपनी उचित मात्रा में विद्यमान हैं। प्रेमचन्द की रचनाओं में विचारों की परिपक्वता और विशदता दृष्टिगोचर होती है। सामयिक जीवन की प्रत्येक समस्या पर प्रेमचन्द ने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट रूप में उल्लिखित किया है। इन विचारों में कहीं परस्पर विरोध या असंगति नहीं दिखायी देती। रचनाओं में रसात्मकता है, विशेषतः करुण रस का परिपाक हुआ है। प्रायः सभी घटनाएँ करुण भाव को ही उद्वेलित करती परिलक्षित होती हैं। निम्नलिखित पंक्तियों में भारी प्राण ममता उभरी पड़ रही है : "धनिया ने स्नेह में डूबी भर्त्सना से कहा—देह में तो दम नहीं, काम करते हो जान देकर" पुत्र के लिए ममता का चित्र है—"गोबर ने माँ-बाप के चरण छुए ^ ^ ^ ^ धनिया ने उसे आशीर्वाद दिया, उसका सिर अपनी छाती से लगा कर मानो अपने मातृत्व का पुरस्कार पा गयी। उसका हृदय गर्व से उमड़ा पड़ता था ^ ^ ^ ^ ^ कोई उसकी आँखें देखे, उसका मुख देखे, उसका हृदय देखे, उसकी चाल देखे, रानी भी लजा जाएगी।"[1] अन्य उदाहरण करुणा के मार्मिक चित्र का है—"होरी ने धनिया को दीन आँखों से देखा, दोनों कोयों से आँसू की दो बूँदें ढुलक पड़ी। क्षीण स्वर में बोला—मेरा कहा सुना माफ करना धनिया। अब जाता हूँ। गाय की लालसा मन में ही रह गयी। रो मत धनिया, कब तक जिलायेगी। सब दुर्दशा तो हो गयी। अब मरने दे।"[2]

---

१. गोदान, पृ० सं०- २०७,

२. गोदान, पृ० सं०- ३६३,

४- प्रेमचन्द की शैली में शब्द शक्तियों के उपयोग से चित्रमयता, मर्मस्पर्शिता और भावों के मूर्तिकरण के लिए अपेक्षित शब्दों, मुहावरों, वाक्यों का प्रयोग है ।—"मि० सेठ ने विलायती टूथ पावडर, विलायती ब्रुश से दांतों में मला, विलायती साबुन से नहाया, विलायती चाय विलायती प्यालियों में पी, विलायती बिस्कुट विलायती मक्खन के साथ खाया, विलायती दूध पिया । फिर विलायती सूट धारण करके, विलायती सिगार मुंह में दबा कर घर से निकले, और अपनी मोटर सायकिल पर बैठ फ्लावर शो देखने चले गए ।"[१] प्रेमचन्द ने व्यंगात्मक ढंग से विलायती सभ्यता का नमूना प्रस्तुत किया है । इसी प्रकार की चित्रोपमता ग्रामीण वर्णन में की है : "हल्कू ने घुटनियों को गर्दन में चिपकाते हुए कहा—क्यों जबरा जाड़ा लगता है ? ∧ ∧ ∧ ∧ ∧ जबरा ने पड़े पड़े दुम हिलाई और अपनी कूं-कूं को दीर्घ बनाता हुआ एक बार जम्हाई लेकर चुप हो गया ।"[२]

५- प्रेमचन्द की सफलता का रहस्य, उनकी स्वाभाविक, सरल शैली है जो भाषा के रूप में इतिवृतात्मक ढंग से प्रयोग की गई है । भाषा के प्रति प्रेमचन्द अत्यन्त उदार हैं इसी कारण शैली भी भावों का अनुसरण करती है । भावोद्वेग के अनुरूप ही उसमें तीव्रता, मन्दता, तरलता संचारित होती है । प्रेमचन्द में अपनी रचनाओं की अन्तरात्मा को स्पष्ट करने की कलात्मक सामर्थ्य है । "कार्तिक का महीना था । वायु में सुखद शीतलता आ गयी थी । सन्ध्या हो चुकी थी । सूरदास अपनी जगह पर मूर्तिवत् बैठा हुआ किसी इक्के या बग्घी के आशाप्रद शब्द पर कान लगाए था । सड़क के दोनो ओर पेड़ लगे हुए थे । गाड़ीवानों ने उनके नीचे गाड़िया डाल दीं । उनके

---

१. पति-पत्नी, मान० भाग- पृ० सं०-
२. पूस की रात, मान० भाग१, पृ० सं०- १६३,

पछाईं बेल टाट के टुकड़ो पर खली और भूसा खाने लगे । गाड़ीवानों ने भी उपले जला दिए । कोई चादर पर आटा गूंधता था, कोई गोल गोल बाटियां बनाकर उपलों पर सेकता था । किसी को बर्तनों की जरूरत न थी सालान के लिए धुइयं का भुरता काफी था । और, इस दरिद्रता पर भी उन्हें कुछ चिन्ता न थी ।"[१]

६- प्रेमचन्द की शैली में सजीवता है । पात्रों का चित्रण, उनकी वार्तालाप, हाव-भाव, हास-विलास, परिहास सभी जीवन्त गद्य-शैली में लिखे गए हैं । प्रेमचन्द की उत्कृष्ट सजीव गद्य शैली का उद्धरण देखिए—"दूसरी महिला जो ऊँची ऐड़ी का जूता पहने हुए हैं और जिनकी मुख छवि पर हँसी फूटी पड़ती है, मि० मालती हैं । x x x x x x आप नवयुग की साक्षात् प्रतिमा हैं । गात कोमल, पर चपलता कूट कूट कर भरी हुई x x x x x मेकअप में प्रवीण, बला की हाजिर जवाब, पुरुष मनोविज्ञान की अच्छी जानकार, आमोद-प्रमोद को जीवन का तत्त्व समझने वाली लुभाने और रिझाने की कला में निपुण, जहाँ आत्मा का स्थान है वहाँ प्रदर्शन, जहाँ हृदय का स्थान है, वहाँ हाव-भाव; मनोद्गारों पर कठोर निग्रह जिसमें इच्छा और अभिलाषा का लोप-सा होगा ।[२] अन्य उद्धरण ग्रामीण बालिका का है—"सिलिया सांवली, सलोनी, छरहरी बालिका थी, जो रूपवती न होकर भी आकर्षक थी । उसके हास में, चितवन में, अंगों के विलास में हर्ष का उन्माद था, जिससे उसकी बोटी-बोटी नाचती रहती थी, सिर से पांव तक भूसे के अणुओं में सनी, पसीने से तर, सिर के बाल आधे खुले, वह दौड़ दौड़ कर अनाज ओसा रही थी, मानो तन-मन से कोई खेल-खेल रही हो ।"[३] इस प्रकार प्रेमचन्द की गद्यशैली में उत्कृष्ट सजीवता अनेक स्थलों पर मिलती है । शैली की

---

१. रंगभूमि, पृ० सं०- ६,

२. गोदान, पृ० सं० ५६,

३. गोदान, पृ० सं० २४६,

सजीवता से ही विचारों में प्रवाह उत्पन्न होता है और शैली का प्रवाह ही रसानुभूति में सहायक होता है ।

७- प्रेमचन्द के विचार सुलझे हुए थे । उन्होंने साहित्य का अध्ययन, मनन और चिन्तन सब कुछ उदार मानवतावादी दृष्टिकोण से किया था जिसमें सच्चाई के साथ हित और परोपकार की भावना और उद्देश्य था । प्रेमचन्द का विश्वास था कि जो भाव और विचार लोगों के हृदय को स्पन्दित करते हैं, वही साहित्य पर भी अपनी छाया डालते हैं । साहित्य हमारे भावों और विचारों में गति उत्पन्न करता है । यदि शैली समतल नहीं, प्रवाहपूर्ण नहीं, परिष्कृत नहीं तो रचना में ग्राह्यशक्ति क्षीण हो जाती है । प्रेमचन्द ने प्रवाहपूर्ण गद्य-शैली के निर्माण में अपना परिचय दिया है । प्रेमचन्द के सम्पूर्ण साहित्य में उनकी प्रवाहपूर्ण परिष्कृत-शैली के अनेक अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत हैं । प्रेमचन्द की शैली में प्रवाह के साथ ही अन्य गुण प्रभावात्मकता का है । प्रेमचन्द की रचनाएं मर्मस्पर्शी हैं, हृदय को बेधती हुई अपने गन्तव्य पर जा पहुंचती हैं—"जीवन लालसा प्राणी मात्र में व्यापक है । जिन्दा रहने के लिए आदमी सब कुछ कर सकता है । जिन्दा रहना जितना ही कठिन होगा, बुराइयां भी उसी मात्रा में बढ़ेंगी, जितना ही आसान होगा, उतनी ही बुराइयां कम होंगी । हमारा यह पहला सिद्धान्त होना चाहिए कि जिन्दा रहना हरेक के लिए सुलभ हो[१]।-----------------"अच्छी सभ्यता है । जिस सभ्यता की स्पिरिट स्वार्थ हो । वह सभ्यता नहीं है; संसार के लिए अभिषाप है, समाज के लिए विपत्ति । ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ मेरी कसौटी तो मानवता है ।"[२]

---

१. दो कब्रे, मान०- भाग- ४, पृ० सं० ४६,

२. स्मृति के पुजारी, मान०- भाग- ४, पृ० सं० २६६,

८- प्रेमचन्द की रचनाएं सहज हैं; स्वाभाविक हैं और सरल शैली में लिखी गयी हैं। यह मन पर प्रभाव डालने वाली हैं, किन्तु इसके साथ ही भावुकता-पूर्ण हैं। कहीं कहीं भाषा-भावमय और काव्यमय हो उठी है। `रंगभूमि` की भाषा मूलरूप से भावपूर्ण और कवित्वपूर्ण शैली में है। "चांदनी छिटकी हुई थी और शुभ्र-ज्योत्सना में सूरदास की मूर्ति एक हाथ में लाठी टेकती हुई और दूसरा हाथ किसी अदृश्य दाता के सामने फैलाए खड़ी थी— वही दुर्बल शरीर था, हंसलियां निकली हुईं, कमर टेढ़ी, मुख पर दीनता और सरलता छाई हुई साक्षात सूरदास मालुम होता था। x x x x बस ऐसा मालुम होता था, मानो कोई स्वर्ग-लोक का भिक्षुक देवताओं से संसार के कल्याण का वरदान मांग रहा है।"[१] प्रेमचन्द की गद्य-शैली में व्यंग्य, मुहावरे, सूक्तियां सबों का समुचित प्रयोग हुआ है। मुहावरों और कहावतों से भाषा सशक्त हो गयी है। सूक्ति प्रयोग से शैली में स्मरणीयता और प्रभावात्मकता में अभिवृद्धि हुई है। प्रेमचन्द के व्यंग्य धर्म, पाखंड, समाज के ढोंग पर प्रहार करते है और अपना प्रभाव भी छोड़ जाते हैं।

---

१. रंगभूमि, पृ० सं०- ५४७,

प्रेमचन्द के पात्र

अध्याय—८

प्रेमचन्द के पात्र :

१- प्रेमचन्द ने मानव-जीवन का कल्पना-प्रसूत चित्र अपने पात्रों के चित्रण में प्रस्तुत किया है। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास और कहानियों में ऐसे पात्रों की कल्पना की है, जो वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करते हैं। भगवान की सृष्टि में मानव अपना विशेष आकार-प्रकार लेकर तथा सबल-दुर्बल मनोवृत्तियों को धारण करके जीवन यापन करता है। उपन्यास और कहानियां भगवान की सृष्टि का ही एक अंश हैं। इनमें भी मानव-जीवन के प्रतीक ये पात्र भी स्थूल शरीर धारण करते हैं और लेखक इनमें प्राण-प्रतिष्ठा करता है। इनकी वृत्तियां भी सक्रिय होती हैं। सुख-दुख की मूल अनुभूतियों से इनमें भी राग-द्वेष-मूलक मनोविकार उत्पन्न होते परिलक्षित होते हैं। किसी के प्रति विरक्ति, किसी के प्रति दया, क्षमा और अन्य किसी के प्रति क्रोध, घृणा, भय प्रकट करते हुए ये पात्र पाठकों के सामने आते हैं। लेखक अपनी सृष्टि में विचरने वाले पात्रों के बाह्य और अन्तर जगत दोनों का पूरा-पूरा विवरण देने का प्रयत्न करता है। इस प्राण-प्रतिष्ठा में, अन्तर्जगत् के विश्लेषण में जितनी कुशलता आ सकती है, उतनी ही उसकी सफलता का प्रमाण है।

२- प्रेमचन्द लिखते हैं— 'पात्रों की सृष्टि में ईश्वरदत्त शक्ति मुख्य वस्तु है। जब तक यह शक्ति न होगी, उपदेश, शिक्षा अभ्यास सभी निष्फल होगा। यह शक्ति अभ्यास से भी बढ़ायी जा सकती है।'[१] मनुष्य

---

१. प्रेमचन्द, 'साहित्य के उद्देश्य', पृ० सं० ६३,

प्रकृति-पुत्र है । विश्व-बन्धु है । मनुष्यत्व-ज्ञान की सीमा का संस्थान है तथा शान्ति का सजग साधक । वह मोक्षसोपान के रूप में मृत्यु-लोक में देवत्व का आश्रय लेता है । लेकिन इसके साथ ही शैतान के व्यापारों का पक्का पुराना साझीदार भी बना हुआ है और अपने ही संसार में नरक का ठेकेदार भी । यही विचार प्रेमचन्द का था— "मानव-चरित्र न बिलकुल श्यामल होता है, न बिलकुल श्वेत । उसमें दोनों ही रंगों का विचित्र सम्मिश्रण होता है । स्थिति अनुकूल हुई तो वह ऋषितुल्य हो गया, प्रतिकूल हुई तो नराधम । वह अपनी परिस्थितियों का खिलौना-मात्र है ।"[१]

३- प्रेमचन्द सामाजिक-विकास में विश्वास रखते थे, उनका उद्देश्य जनमत को शिक्षित करना था । उपन्यास इसी मनुष्यत्व-पूर्ण मानव का जीवन खंड है । उपन्यास के पात्र अपनी विविधता में जीवन के वैविध्य की विचित्रता से होड़ लेते हैं । ये पात्र परिवार तथा विश्व-बन्धुत्व के आदर्श की छाया में वृद्धि पाते हैं और अमर लोग में विचरण करते हैं । "उपन्यास मनुष्य की यथार्थताओं से बना एक घर है"[२] इस कारण उपन्यास और कहानियों में अन्य तत्वों के साथ पात्रों का विश्लेषण सर्वोपरि है ।

---

१. प्रेमाश्रम,- पृष्ठ-संख्या—४२२,

२. The novel was a house built of facts about people. Their behaviour, environment, development income, passion. Stephen spender:- 'The novel and narrative poetry' The Pengiun New-Writing' Pengiun book, p.g. 125, September 1942. प्रस्तुतकर्त्ता जनार्दन झा 'द्विज' 'प्रेमचन्द की उपन्यास-कला' प्रकाशन : छपरा (बिहार), संस्करण : प्रथम पृ० सं०—५४

प्रेमचन्द ने जीवन की साधारण घटनाओं को ही अपने उपन्यास-कहानी का विषय बनाया। उन्होंने जीते-जागते इन्सानों का स्वाभाविक चित्र उपस्थित किया। प्रेमचन्द लिखते हैं— "मेरे अधिकांश पात्र वास्तविक-जीवन से लिए गए हैं, गो उन्हें काफी अच्छी तरह पर्दे से ढक दिया गया है। जब तक किसी चरित्र का कुछ आधार वास्तविकता में न हो, तब तक वह छाया-सा, अनिश्चित-सा रहता है और उसमें विश्वास पैदा करने की ताकत नहीं आती।"[१]

४- वाराणसी और उसके आस-पास के गांव ही प्रेमचन्द की अधिकांश कहानियों और उपन्यासों के रंगमंच हैं। इसी वातावरण में उनकी कला अधिक निखरती है। प्रेमचन्द ने समाज के अन्तर्गत विभिन्न वर्गों के पात्रों का निर्माण किया है। समाज को मूलत: तीन वर्गों—उच्च, मध्य तथा निम्न—में विभाजित करके, उनके पात्रों का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया जा सकता है :—
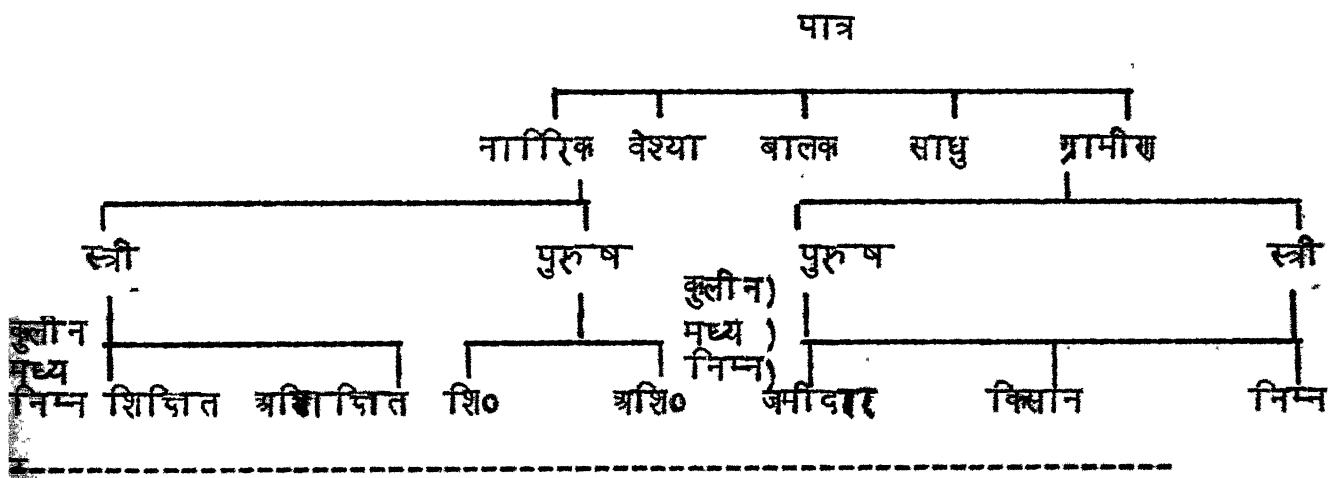
१. प्रेमचन्द, "चिट्ठी-पत्री" भाग- २, प्रका० हंस, इलाहाबाद, १९६२, पृ० सं० २३५,

५- वस्तुत: इस प्रकार के वर्गीकरण का कोई वैज्ञानिक तथा एक-सूत्रीय मानदंड नहीं है क्योंकि इनके भी अनेक उप-वर्ग निश्चित किए जा सकते हैं। इन उप-वर्गों के मध्य कोई रेखा निश्चित करना कठिन है। ऐसी स्थिति में वर्गों और उपवर्गों को आंशिक रूप में स्वीकार करके पात्रों का विभाजन स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

कुलीन पात्र :

६- प्रेमचन्द ने कुलीन पात्रों में समाज के उस कुलीन-वर्ग को लिया है, जिसका अभ्युदय अंग्रेजी-राज में हुआ। राजा, रईस, जज, वकील, डाक्टर, प्रोफेसर, सम्पादक, बड़े-बड़े सरकारी अमले इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। कुलीन-वर्ग के सभी पात्र जो विभिन्न उपन्यासों और कहानियों में आते हैं; उनकी मुख्य विशेषता यह है कि वे सभी पात्र अपने युग की परिस्थितियों के दास है। `प्रेमाश्रम` के राय कमला नंद, `गोदान` के राय साहब अमर पाल सिंह, `कर्मभूमि` के `समरकान्त` आदि अपने वर्ग के प्रतिनिधि पात्रों के रूप में प्रस्तुत हैं। सामाजिक-प्रथाएं इन कुलीन पात्रों के गले में फांसी की गांठ की तरह उलझी हुई हैं। ये पात्र उन्हें सुलझाने का प्रयत्न करते हैं, लेकिन सुलझा नहीं पाते। प्रथा-पालन उनके जीवन का प्रमुख कर्तव्य हो जाता है। उसी को निभाने में इन पात्रों के जीवन की सार्थकता है। कुलीन पात्रों की सृष्टि में आर्थिक-विषमता का अधिक गहरा रंग है। कुलीन पात्रों का वैभव, विलास, सुख, आनन्द, उपभोग आदि सब दीन, हीन, दुर्बल, जड़ किसान और मजदूरों द्वारा उपार्जित धन पर ही अवलम्बित है। इन दीनों से लेकर वे अपना विशाल परिवार पालते हैं। "हमारे चचेरे, फुफेरे, ममेरे, मौसेरे भाई जो इसी रियासत

की बदौलत मौज उड़ा रहे हैं, कविता कर रहे हैं, जुए खेल रहे हैं, शराबें पी रहे हैं और ऐयाशी कर रहे हैं- - - -"[१] "रहने के लिए मनोहर आवास बनता है, बड़े-बड़े समारोह होते हैं, लाखों रुपए कन्या के विवाह में, पुत्र की पढ़ाई, मुकदमेबाजी, निर्वाचनों में विजयी होने में व्यय होते हैं।"[२] यही कुलीन वर्ग की विशेषता है। जज, वकील, डाक्टर, अध्यापक, सम्पादक— सभी 'धन' के पुजारी हैं। महज 'धन' ही उनके जीवन की सार्थकता है।

मध्यवर्गीय—पात्र :

७- इस वर्ग में नगर के कर्मचारी, जो किसी प्रकार अपनी जीविका चलाए जाते हैं, उन पात्रों का चित्रण है। पाश्चात्य सभ्यता के आधार ने जीवन के मध्यकालीन और आधुनिक दृष्टिकोण के बीच एक गहरी खाई खोद दी थी। प्रेमचन्द की आरंभिक कृतियों का सम्बन्ध विशेष रूप से मध्यवर्गीय समाज के इसी संघर्ष से है।

८- मध्यवर्ग के साथ प्रेमचन्द की विशेष सहानुभूति थी। उनके प्रमुख मध्यवर्गीय पात्र नैतिकता को अपना कर चले हैं। नैतिक मूल्यों के प्रति प्रेमचन्द की गहरी आस्था थी। उन्होंने अनीति की कहीं विजय नहीं दिखायी है। सत्य की सदैव असत्य पर विजय दिखाना ही प्रेमचन्द का जीवन-दर्शन था। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों और कहानियों में भारतीय-समाज में उभरनेवाले इस प्रगतिशील मध्यवर्ग के नैतिक मूल्यों को प्रतिष्ठित किया

---

१. गोदान, पृष्ठ-संख्या- १३

२. वही

है । मध्य-वर्ग में दूसरी विशेषता—समझौते की भावना, विशेष रूप से दिखायी देती है । प्रेमचन्द के `वरदान`, `प्रतिज्ञा`, `सेवासदन`, `निर्मला`, `गबन` आदि उपन्यासों में मुख्य रूप से मध्यवर्गीय समस्याओं को लेकर पात्रों के चरित्रों का विश्लेषण किया गया है । प्रेमचन्द का `गबन` मध्यवर्ग की समस्याओं का उद्घाटन करने वाला सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है । `कायाकल्प` में भी मध्यवर्गीय पात्रों की बहुलता है । लेकिन `गबन` में चरित्र-चित्रण को पर्याप्त स्थान दिया गया है । `गबन` का प्रमुख पात्र रमाकान्त है । रमाकान्त का चित्रण मध्यवर्ग की समस्याओं की पृष्ठभूमि में किया गया है । मध्यवर्गीय-सम्मान-भावना ही पात्रों की मुख्य विशेषता है । इसी सम्मान-भावना के कारण रमाकान्त गबन करता है और अपने जीवन को संकट में डालता है । रमाकान्त के मन का अन्तर्द्वन्द्व अन्तर और बाह्य दोनों है । रमाकान्त के मन का अन्तर्द्वन्द्व और बाह्य परिस्थितियाँ, दोनों ही यथार्थ रूप में चली हैं ।

६- भारत में मध्यवर्ग का उदय अंग्रेजी-साम्राज्य के फलस्वरूप हुआ । उन्नीसवीं शताब्दि के उत्तरार्द्ध में भारतीय मध्यवर्गीय समाज का स्वरूप सामने आया । श्री हुमायूं कबीर ने तत्कालीन भारत वर्ष की सामाजिक स्थिति का विश्लेषण करते हुए लिखा है—"समस्त प्राचीन मूल्यों पर विश्वासों को चुनौती दी जा रही थी । विश्वास और रीति-रिवाजों के प्राचीन रूप ढह रहे थे । सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थाएं तीव्र गति से टूट रही थीं । भारत वास्तविक अर्थ में परिवर्तन की अनिश्चित दशा में था । प्राचीन सामाजिक संगठन अव्यवस्थित हो रहा था । नए तत्व उभर रहे थे, जिनकी किसी भी बीते युग में कोई मिसाल नहीं मिलती ।"[१] मध्य-वर्ग पर

---

१. ले० श्री हुमायुं कबीर, `दी इंडियन हैरिटेज` पृ०-सं०-११६-११७, प्रस्तुकर्ता महेन्द्र भटनागर `समस्यामूलक उपन्यासकार` संस्करण द्वितीय, १६६१, पृ० सं० - २५,

एक ओर पाश्चात्य प्रभाव पड़ रहा था जो दूसरी ओर भारतीय सुधारवादी संस्थाओं का। मध्य-वर्ग के उदय और विकास में पूंजीवादी व्यवस्था का भी काफी हाथ था।

निम्न-वर्ग :

१०- हमारी सभ्यता और संस्कृति का एक बहुत बड़ा भाग निम्न अथवा अछूत वर्ग के अभिशाप से व्यथित था। उसका शिक्षा पर कोई अधिकार न था। अन्धकार में वह उत्पन्न होता था, और फिर उसका पालन-पोषण, जीवन-मरण सब अज्ञान और अन्धकार की प्रगाढ़ छाया में ही होता था। ज्ञान-विज्ञान के चमत्कार से दूर वह अपना दीन-हीन निरीह और दयनीय जीवन व्यतीत करता था। मूर्खता, अन्धविश्वास, कलह, लोभ, भय आदि सभी दुर्गुण उसके अपमानित जीवन के आभूषण थे।

११- बीसवीं शताब्दी के भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम के कर्णधारों के सम्मुख यह प्रमुख समस्या थी कि जिस देश में सात करोड़ लोग निम्न वर्गीय कह कर, सम्मानित समाज से अलग कर दिये जायं, उनका कल्याण किस प्रकार सम्भव होगा। गांधी जी ने निम्नवर्ग को सर्वप्रथम राजनैतिक-कल्याण का रूप देकर उनका उद्धार करने का प्रयत्न किया। वह स्वयं हरिजन बस्तियों में रहते थे। गांधी जी का कहना था "छुआछूत हिन्दू-समाज का भयंकर कलंक है।" बिना इनके उद्धार के स्वतन्त्रता-संग्राम सफल नहीं हो सकता।

१२- प्रेमचन्द ने निम्नवर्ग के अन्तर्गत नगर और गांवों दोनों जगह के वर्गों का चित्रण अपने उपन्यासों में किया। अछूत और निम्नवर्ग के रहन-सहन का स्तर जितना दयनीय गांवों में है, उतना ही नगरों में भी है।

उनका रहन-सहन साक्षात् नरक के समान है । निम्न-वर्ग का चित्रण यों तो थोड़ा बहुत सभी उपन्यासों में मिलता है, लेकिन 'कर्मभूमि' में विस्तार के साथ धोबी, मेहतर, नाई और कहार वर्ग का चित्रण किया गया है ।

१३- प्रेमचन्द दलितों में बढ़ती हुई नयी चेतना का अनुभव कर रहे थे । दलित-वर्ग कुलीन कहलाने वाले समाज की स्वार्थपरता तथा निरंकुशता का अनुभव कर रहा था और अब अपने जीवन से उकता कर विद्रोह के लिए आतुर था । निम्न-वर्ग का कुलीन वर्ग के साथ अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । वह कुलीन वर्ग की सेवा में ही अपने जीवन की सार्थकता समझता था । परन्तु युगों की दासता से निम्न वर्ग में हीन-भावना विशाल छाया के रूप में व्याप्त हो गयी थी । वे सदा झुकते गए और धनी-मानी जन उनको अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए दबाते गए । प्रेमचन्द ने इन सब रूढ़ियों को ललकारा । गांधी जी के समान ही प्रेमचन्द ने कहा— "वहीं ऊंचा है, जिसका मन शुद्ध है, जिसने वर्णों का स्वांग रच कर समाज के अंग को मान्य और दूसरे को मलेच्छ नहीं बनाया ।"[१]

---

१. कर्मभूमि-पृ०सं०— २०५,

ग्रामीण—पात्र :

१४- प्रेमचन्द ने वैसे तो सभी वर्गों के और सभी प्रकार के लोगों के बारे में लिखा है, लेकिन मुख्यत: सफलता किसानों के चित्रण में ही मिली है। प्रेमचन्द के किसान पात्र समाज, बिरादरी, धर्म, कानून, परिवार, रीति-रिवाज सब को मान कर चलते हैं, लेकिन कोई भी उनका सहायक नहीं होता, न प्रकृति, न समाज। दोनों ही उसके साथ खिलवाड़ करते हैं। सभी उसे खाते हैं, उसे नोचते हैं। भाई उससे छल करते हैं, बिरादरी डांड भरवाती है। थानेदार रिश्वत मांगता है। महाजन और ब्राह्मण उसे चूसते हैं, उसका अपना बेटा भी उसे बुरा कहता है, उसे पिसता छोड़ कर चला जाता है।[१] इन्हीं परिस्थितियों में प्रेमचन्द ने विभिन्न किसान पात्रों का चरित्र-चित्रण किया है। कुछ पात्र तो रूढ़िवादी हैं जो अपनी परम्परा से सिमटे रहने में ही सन्तोष का अनुभव करते हैं, जैसे 'होरी' और कुछ अन्य पात्र समय के परिवर्तन के साथ अपने को बदल लेते हैं जैसे 'मनोहर', 'गोबर' आदि।

१५- प्रेमचन्द के पात्रों की यह विशेषता है कि वह 'सिम्बोलिक' हैं। हमें इन पात्रों के रूप में ग्रामीण समाज की विविध समस्याएं और उनके बीच पड़ा हुआ व्यक्ति याद आता है। 'गोदान' हमारे ग्रामीण जीवन का एक अत्यन्त जीवित एवं मनोहर चित्र है। इसमें ग्रामीण जीवन की आशा है, निराशा है, त्याग है, भोग है, प्रेम है, द्वेष है, सरलता है, कुटिलता है। इसमें हमारे ग्रामीण-दाम्पत्य जीवन का सरल, कर्तव्य के सूत्र में बंधा हुआ प्रेम है। यौवन का विनोद है। यौवन का उल्लास है। इसमें गृह-कलह है और उसी कलह का परिमार्जन। निराशा और अन्धकार से भरे हुए इस

---

१. 'गोदान' का गोबर पिता को छोड़ कर लखनऊ चला जाता है।

ग्रामीण जीवन की पार्श्वभूमि पर नागरिकता का विनोद, समाज-सेवा, शिक्षा, वाणी-विलास आदि सब अपने अहंकार के साथ खड़े हैं। अपने सारे दुर्गुणों और दोषों के साथ भी ग्रामीण जीवन का अपना सत्व है, अपना व्यक्तित्व है, जिसका प्रदर्शन पात्रों के चरित्र-चित्रण के माध्यम से सम्भव है। `गोदान` में होरी भोला, दातादीन, फिंगुरू सिंह, नोखेराम, मँगरू साह और पटेश्वरी प्रसाद ग्रामीण जीवन के विविध अंगों के प्रतिनिधि हैं।

१६- नारी पात्रों में सिलिया, धनिया, फुनिया, सहुआइन, सुभागी आदि दलित-समाज विषयक सम्पूर्ण आत्म-मंथन की मूल संवेदना हैं, जिसका आद्योपान्त आलोड़न होता रहा है और जो निजी सजीवता, तीव्रता विदग्धता एवं व्यापकता की सर्वोत्कृष्टता के कारण अमर हैं। प्रेमचन्द ने ग्रामीण पात्रों का चित्रण दो वर्गों में किया है। १. शोषक, २. शोषित। शोषित पात्रों में उन सभी पात्रों की गणना है जो किसानों और भूमिहीन मजदूरों का शोषण करते हैं, जमींदार सब से पहले आता है। प्रभाशंकर[1] पुराने ढंग के जमींदार हैं, जो अब अदृश्य हो रहे हैं। उनके स्थान पर एक नए ढंग का जमींदार वर्ग बन रहा है जो गरीब जनता के ऊपर अत्याचार करने में बहुत अधिक निर्दय है। ज्ञानशंकर[2] जमींदारों के इस नए वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। राय साहब अमर पाल सिंह नवीन दृष्टिकोण के उदारपन्थी जमींदार हैं जो अपनी रैय्यत से मित्रता का भाव दर्शा कर, व्यवस्था को दोषी ठहरा कर अपने किसानों को चूसते हैं। `होरी` ऐसा ही आघात खाया हुआ प्राणी है। अन्त तक होरी की श्रद्धा रायसाहब के साथ बनी रहती है और स्वयं सामन्तवादी व्यवस्था के कारण ही वह बर्बाद

---

१. "किसी समय यह परिवार बहुत प्रतिष्ठ था, किन्तु ऐश्वर्य के अभिमान और कुल-मर्यादा-पालन ने उसे धीरे-धीरे इतना गिरा दिया कि, जब मोहल्ले का बनिया पैसे-धेले की चीज भी उसके नाम पर उधार न देता था" (प्रेमाश्रम, पृ०सं० ६)

२. "ज्ञानशंकर के हृदय में भावी उन्नति की बड़ी-बड़ी अभिलाषाएं थीं। वह अपने परिवार को फिर समृद्ध और सम्मान के शिखर पर ले जाना चाहते थे।" (प्रेमाश्रम, पृ०सं०- १०)

हो जाता है जिसके प्रतीक राय साहब हैं। यह विपत्ति केवल होरी की नहीं, सारे गांव पर यह विपत्ति थी "मानो उनके प्राणों की जगह वेदना ही बैठी उन्हें कठपुतलियों की तरह नचा रही हो। वे चलते-फिरते थे, काम करते थे, पिसते थे, घुटते थे, इसलिए कि पिसना और घुटना उनकी तकदीर में लिखा था"[१] इन पात्रों के जीवन में न कोई आशा है, न कोई उमंग, जैसे उनके जीवन के सोते सूख गए हों। यही है ग्रामीण जीवन का दयनीय चित्र, जिसको प्रेमचन्द ने प्रस्तुत किया है।

---

१. गोदान, पृ० सं०— ३५६,

प्रेमचन्द के विशिष्ट पात्र :

१७- प्रेमचन्द के सभी पात्र या तो किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं अथवा उनमें कोई मूलभूत ऐसी विशेषता होती है, जिससे प्रभावित होकर प्रेमचन्द उनका चित्र उतारते हैं। क्योंकि प्रेमचन्द ने लिखा है : "मेरे अधिकांश चरित्र वास्तविक जीवन से लिए गए हैं।" इसी विशेषता को दृष्टि में रख कर प्रेमचन्द के विशिष्ट पुरुष और नारी पात्रों का यहां उल्लेख किया गया है। यद्यपि प्रेमचन्द के सभी स्त्री-पुरुष पात्रों का अपना अस्तित्व है, लेकिन यहां पर उनमें से कुछ महत्वपूर्ण पात्रों पर ही विचार किया जायगा :—

पुरुष पात्र	नारी पात्र
१- प्रेमशंकर (प्रेमाश्रम)	१- जान्हवी (रंगभूमि)
२- ज्ञानशंकर (,,)	२- सोफिया (,,)
३- जोन सेवक (रंगभूमि)	३- सुखदा (कर्मभूमि)
४- विनय सिंह (,,)	४- निर्मला (निर्मला)
५- अमरकान्त (कर्मभूमि)	५- लौंगी (कायाकल्प)
६- समरकान्त (,,)	६- मालती (गोदान)
७- होरी (गोदान)	७- धनिया (,,)
८- राय साहब (,,)	८- गोविन्दी (,,)
९- चन्द्र प्रकाश खन्ना (गोदान)	
१०- मेहता (गोदान)	
११- गोबर (गोदान)	

प्रेमचन्द के मुख्य पात्र :

प्रेमशंकर :

१८- `प्रेमाश्रम` में प्रेमशंकर पात्र का निर्माण प्रेमचन्द ने एक आदर्श पात्र के रूप में किया है। आदर्श इस अर्थ में कि उसमें सदिच्छाएं, सेवा, त्याग, परोपकार, सन्तोष, ऐसी सद्वृत्तियों का प्रस्फुटन सामान्य मानव से अधिक मात्रा में है। प्रेमशंकर का व्यक्तित्व अथवा उसकी प्रकृति और स्वभाव सात्विक गुणों के मिश्रण से बने हैं। अपने अमरीका-प्रवास में प्रेमशंकर ने कृषि-शास्त्र का अध्ययन किया और अपनी भारत-भूमि लौटने पर उन्होंने किसानों की सेवा और उनके जीवन-सुधार कार्य को अपने जीवन का ध्येय बना लिया। "सेवा की धुन ने उन्हें शारीरिक-सुखों से विरक्त कर दिया था। किसी गांव में हैजा फैलने की खबर मिलती, कहीं कीड़े ऊख के पौधों का सर्वनाश किए डालते थे; कहीं आपस में लठियाव होने का समाचार मिलता; प्रेमशंकर हाकियों की भांति इन सभी स्थानों पर पहुंचते और यथासाध्य कष्ट निवारण का प्रयास करते।"[१]

१९- कृषकों की सेवा के लिए यह आवश्यक था कि नगर छोड़कर गांव में बसा जाए। इसी के निमित्त प्रेमशंकर ने बनारस छोड़ कर हाजीगंज में रहना प्रारम्भ किया। अमेरिका-प्रवास से उन्हें अभक्ति हो गयी थी। "वहां धन और प्रभुत्व की इतनी क्रूर लीलाएं देखीं कि अन्त में उनसे घृणा हो गयी। यहां के देहातों और छोटे शहरों का जीवन उससे कहीं सुख कर है। मेरा विचार भी सरल जीवन व्यतीत करने का है। हां यथासाध्य कृषि की उन्नति करना चाहता हूं।"[२] प्रेमशंकर ने इन्हीं विचारों के आधार पर सरल और सन्तोषमय

---

१. `प्रेमाश्रम`- पृ० सं०- १३२,
२. `प्रेमाश्रम`- पृ० सं०- ११६,

ज्ञानशंकर :

२२ ज्ञानशंकर प्रेमशंकर का छोटा भाई है, किन्तु स्वभाव में भाई-भाई में बहुत बड़ी भिन्नता है। एक ही पिता के दो विरोधी स्वभाव वाले दो पुत्र, फूल और कांटे के अनरूप हैं। यद्यपि प्रेमशंकर बड़ा भाई है और उसका प्रभाव छोटे भाई पर पड़ना चाहिए था, लेकिन ज्ञानशंकर का लालन-पालन साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों के अनुकूल होता रहा, वह इतना पुरुषार्थी नहीं कि प्रतिकूल परिस्थितियों में जन्म लेकर अपने को उठा सके। ज्ञानशंकर पर वातावरण का पूरा-पूरा प्रभाव है। उसकी शिक्षा-दीक्षा भी उसके चरित्र के अनुकूल हुई है। जमींदार का पुत्र होने के नाते उसके हृदय में भावी-उन्नति की ऊँची से ऊँची अभिलाषाएं अंकुरित हो रही हैं। वह अपने परिवार को फिर से समृद्धि और सम्मान के शिखर पर ले जाना चाहता है। यद्यपि ज़मींदारों का दिवाला निकल गया है जिसकी सूचना लखनपुर की हवेलियां देती हैं : "मकान के दो खंड आमने--सामने बने हुए थे ...... दोनों खंडों के बीच की जमीन बेलबूटों से सजी हुई थी .... लेकिन दोनों ही खंड जगह-जगह से टूट फूट गए थे कहीं कोई कड़ी टूट गयी थी और उसे थूनियों के सहारे रोका गया था .... किसी समय यह परिवार नगर में बहुत प्रतिष्ठित था, किन्तु ऐश्वर्य के अभिमान और कुल मर्यादा पालन ने इतना गिरा दिया ...."[१] ज्ञानशंकर ने सन्तोष का पाठ नहीं पढ़ा था, इसीलिए उसकी पत्नी विद्या भी अपने पति से विचारों से विक्षुब्ध रहती है। पत्नी को परमार्थ पर स्वार्थ से अधिक श्रद्धा है और अपने पति को भी समझाने का प्रयत्न करती है, पर

---

१. 'प्रेमाश्रम', पृ० सं०- ६,

ज्ञानशंकर इतने हीन नहीं कि पत्नी के धर्म पूर्ण ज्ञान के सम्मुख सिर झुका दें। वह उसको मूर्ख समझते हैं तथा समय-समय पर उसका अपमान करते हैं। अतएव ज्ञानशंकर का दाम्पत्य-जीवन, जो चित्त की शान्ति का एक प्रधान साधन है, सुख कर नहीं रह पाता।

२३- ज्ञानशंकर का जीवन सिद्धान्त है : "मैं विचार का उपासक हूं ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ मैं अपनी विचार स्वतन्त्रता के सामने लोक मत की लेश मात्र भी परवाह नहीं करता। जीवन आनन्द से व्यतीत हो, यही हमारा अभीष्ट है। यदि संसार स्वार्थपरता कह कर इसकी हंसी उड़ाए, निंदा करे तो मैं उसकी सम्मति को पैरों तले कुचल डालूंगा ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ मैं तो इसे भी सर्वथा अनुचित समझता हूं, कि कोई असमय और बिना पूर्व सूचना के मेरे घर आए, चाहे वह मेरा भाई ही क्यों न हो ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ यह जीवन-संग्राम का युग है और यदि हमको संसार में जीवित रहना है तो हमें विवश होकर नवीन और पुरुषोचित सिद्धान्तों के अनुकूल बनना पड़ेगा"[१] ज्ञानशंकर नयी सभ्यता की जिन विशेषताओं में मानसिक भक्ति रखता है, उनका स्वयं व्यवहार में लाना उसके लिए कठिन है। लेकिन शिक्षित आत्मा इतनी दुर्बल नहीं होती। ज्ञानशंकर कपट, स्वार्थ और लोभ में अपनी जीवन-यात्रा आरम्भ करता है। नवीन और पुरुषोचित सिद्धान्त से उसका अभिप्राय-दयाहीन स्वार्थपरता और जनता का अनवरत शोषण था। ज्ञानशंकर जीवन को जीवन-संग्राम मानता है, इसलिए नीति, धर्म, विवेक का उसमें गुजर नहीं। ज्ञानशंकर स्वच्छन्द और सुखपूर्ण जीवन के लिए कपट, दगा, फरेब सब कुछ उपयुक्त समझता है। ज्ञानशंकर का विश्वास है औचित्य-अनौचित्य का निर्णय हमारी सफलता के अधीन है।

---

१. 'प्रेमाश्रम', पृ० सं०- ४४,

२४- ज्ञानशंकर का जीवन-दर्शन उसे जिस कुपथ पर चलाता है, वह अनीति और अविचार का लम्बा मार्ग है । ज्ञानशंकर की प्रवृत्तियों के मूल में वह शिक्षा-प्रणाली है, जिसने मनुष्य को स्वार्थ-सेवी बना दिया है । प्रेमचन्द लिखते हैं ; "उन्होंने ऐसे घर में जन्म लिया था, जिसने कुल-मर्यादा की रक्षा में अपनी 'श्री' का अन्त कर दिया था । ऐसी अवस्था में उनको सन्तोष में ही शान्ति मिल सकती थी, पर उनकी उच्च-शिक्षा ने, उन्हें, जीवन को एक वृहत् संग्राम-क्षेत्र समझना सिखाया था । उनके सामने जिन महान् पुरुषों के आदर्श रक्खे गए थे, उन्होंने भी संघर्ष-नीति का आश्रय लेकर सफलता प्राप्त की थी ।"[1] प्रेमचन्द आगे वर्तमान शिक्षा का उल्लेख करते हैं— "यह वह शिक्षा न थी जो अपने झोपड़े का द्वार खुला रखने का अनुरोध करती, जो दूसरों को खिलाकर आप खाने की नीति सिखाती × × × × × ज्ञानशंकर किसी को आश्रय देने की कल्पना भी नहीं कर सकते थे ।"[2]

२५- प्रेमचन्द ने इस दोष का कारण भी प्रकट किया है कि ज्ञानशंकर को स्वार्थ-सेवी बनाने में उसकी धर्म-विहीन शिक्षा का ही दोष है । ज्ञानशंकर ने आरम्भ से ही भौतिक शिक्षा प्राप्त की थी । उसके गुरुजन स्वयं स्वार्थ के पुतले थे । उन्होंने कभी भी सरल, सन्तोषमय जीवन का आदर्श ज्ञानशंकर के सम्मुख नहीं रक्खा था । आधुनिक शिक्षा-प्रणाली आत्मिक विकास की ओर कभी ध्यान ही नहीं देती, मनुष्य के मनोगत भावों को, उसके उद्गारों को सन्मार्ग पर ले जाने की चेष्टा ही नहीं करती, इसी लिए ज्ञानशंकर भी जो कुछ भी है, अपनी शिक्षा-प्रणाली का बनाया

---

१. 'प्रेमाश्रम', पृ० सं०- ४२२,
२. 'प्रेमाश्रम', पृ० सं०- ४२३,

हुआ है। इसी के फलस्वरूप जिस स्वार्थ सिद्धान्त ने ज्ञानशंकर के जीवन-दर्शन की आधार-शिला रक्खी वह मनुष्य की सद्वृत्तियों को पीस कर पी गयी। ज्ञानशंकर के चरित्र में दम्भ, द्वेष, ईर्ष्या, कपट, पाखंड, अनीति, अनाचार, अविचार प्रतिफलित होते हैं। ज्ञानशंकर की स्वार्थ-सिद्ध में जो भी बाधक बना उसी पर ज्ञानशंकर ने विरोध वृत्ति से प्रहार किया। ज्ञानशंकर अपने सहपाठी ज्वालासिंह पर मिथ्या आक्षेप लगाता है।[१] भाई प्रेमशंकर पर साथ कपट व्यवहार करता है।[२] प्रेमशंकर की पत्नी श्रद्धा को धर्म और बिरादरी से भयातुर करके उसको उसके पति प्रेमशंकर से विमुख रखने का ही प्रयत्न करता है।[३] ज्ञानशंकर अपनी स्वार्थ-सिद्ध के नए-नए मार्ग खोजता है। ज्ञानशंकर के शब्दों में उसी के उद्गार : " भैया क्यों कर काबू में आएंगे? खुशामद से ? कठिन है वह एक ही घाघ हैं। नम्रता और विनय से ? असम्भव है। नम्रता का जवाब सद्व्यवहार हो सकता है, स्वार्थ-त्याग नहीं। फिर क्या कलह और अपवाद से? कदापि नहीं, इससे मेरा पक्ष और भी निर्बल हो जाएगा। इस प्रकार भटकते-भटकते उछल पड़े। वाह मैं कितना मन्द-बुद्धि हूँ। बिरादरी इन महाशय को घर में पैर तो रखने देगी नहीं, ये बेचारे मुझसे क्या छेड़छाड़ करेंगे . . . . . प्रकट में मैं उनसे भ्रातृवत् व्यवहार करता रहूँगा, बिरादरी की संकीर्णता और अन्याय पर आंसू बहाऊँगा . . . . शायद श्रद्धा भी उनसे खिंच जाए . . . धार्मिक प्रवृत्ति की स्त्री है . . . . अब मैं निर्भय होकर भ्रात-स्नेह का आचरण कर सकता हूँ"[४]।

२६-ज्ञानशंकर की स्वार्थ-साधना का अन्त इतने ही तक नहीं सीमित रहा, उसने और चहुमुखी हाथ-पैर फैलाए। ज्ञानशंकर की अन्धी स्वार्थ-साधना ने श्वसुर रायकमलानंद को विष दे डाला[५] और लखनपुर के

---

१. प्रेमाश्रम, पृ० सं०- १८
२. प्रेमाश्रम, पृ० सं०- १२१
३. प्रेमाश्रम, पृ० सं०- ११८
४. प्रेमाश्रम, पृ० सं०- १२६,
५. प्रेमाश्रम, पृ० सं०- १०२ २०२

निरीह किसानों के घर उजाड़ दिए ।[१] स्वार्थ-सेवा में ही जैसे ज्ञानशंकर की आत्मा बसती थी । ज्ञानशंकर पर स्वार्थ का प्रभाव छाया हुआ था, उसको सत्-असत् का भी ज्ञान नहीं रहा । अपनी पत्नी विद्या की उपेक्षा करके, उसकी छोटी बहन गायत्री की सम्पत्ति को हड़प करने के लिए भक्ति का झूठा स्वांग रचा ।[२] ज्ञानशंकर की महत्वाकांक्षा धन-सम्पत्ति की उपासना में केन्द्रस्थ थी जिस के पक्ष पर चल कर उसकी दुर्नीति और दुष्कृत्य गहरे चिन्ह छोड़ गए । ज्ञानशंकर के दुष्कृत्यों का प्रकटीकरण रायसाहब इन शब्दों में करते हैं : "तुम इस भ्रम में पड़े हुए हो कि मनुष्य अपने भाग्य का विधाता है यह सर्वथा मिथ्या है । हम तकदीर के खिलौने हैं, विधाता नहीं ^ ^ ^ ^ ^ तुम्हें क्या मालूम है कि जिसके लिए तुम सत्यासत्य में विवेक नहीं करते, पुण्य और पाप को समान समझते हो, वह उस शुभ-मुहूर्त तक सभी विघ्न-बाधाओं से सुरक्षित रहेगा ?"[३]

२७- प्रेमचन्द पुनः स्पष्ट करते हैं । "धन कमाओ, समृद्धि प्राप्त करो, किन्तु अपनी आत्मा और ईमान को उस पर बलिदान न करो । धूर्तता और पाखंड, छल और कपट से बचते रहो"[४] अन्तः ज्ञानशंकर भाग्यवश एक बड़ी सम्पत्ति के अधिनायक हो भी जाते हैं तो उसका उपभोग उनके लिए दुष्कर कार्य हो जाता है । "सौभाग्य से उनका प्रसाद निर्मित हो चुका था । अब वह दूसरों को आश्रय देने को तैयार थे । उनकी धान्यशाला परिपूर्ण हो चुकी थी । अब उन्हें भिक्षुओं से घृणा न थी । सम्पत्तिशाली होकर वह उदार, दयालु, दीन-वत्सल और कर्तव्य-परायण हो गए थे ^ ^ ^ ^ ^ ^ ज्ञानशंकर अब ख्याति और सुकीर्ति के लिए लालायित रहते थे ^ ^ ^ ^ ज्ञानशंकर का सौभाग्य अब मध्यान्ह पर था ।"[५]

---

१. `प्रेमाश्रम` पृ० सं०- ३१४
२. `प्रेमाश्रम` पृ० सं०- २६४
३. `प्रेमाश्रम` पृ० सं०- २६५,
४. `प्रेमाश्रम` पृ० सं०- २६५,
५. प्रेमाश्रम` पृ० सं०-४२३, ४२४,

२८- अन्त में ज्ञानशंकर का पुत्र मायाशंकर पिता की इच्छा के विरुद्ध रियासत के सब अधिकार त्याग देता है । ज्ञानशंकर प्रारब्ध का यह आघात नहीं झेल पाते—"आज प्रारब्ध ने उन्हें परास्त कर दिया । अब तक उन्होंने सदैव प्रारब्ध पर विजय पायी थी ... एक क्षण पहले उनका भाग्य भवन जगमगाते हुए दीपकों से प्रदीप्त हो रहा था .... अब उनके चारों तरफ गहरा, घना, भयावह अन्धेरा था .... वह सोचते चले जाते थे, क्या इसी उद्देश्य के लिए मैंने अपना जीवन सम्पूर्ण किया ? ... ... हा वैभव-लालसा ! तेरी बलिवेदी पर मैंने क्या नहीं चढ़ाया ? अपना धर्म, अपनी आत्मा तब भेंट कर दी ; तेरे भाड़ में मैंने क्या नहीं झोंका? अपना मन, वचन, कर्म सब कुछ आहुति कर दी । क्या इसीलिए कि कालिमा के सिवाय और कुछ हाथ न लगे?"[1]

२९- प्रेमचन्द ने ज्ञानशंकर के चरित्र की व्यंजना से यह स्पष्ट कर दिया कि मनुष्य जो कुछ भी है, वह विधाता के हाथ का खिलौना मात्र है । मनुष्य दीन और परवश है, भविष्य प्रबल और निर्मम कठोर । प्रेमचन्द ने जीवन की निःसारता को सिद्ध कर दिया । ज्ञानशंकर अन्त में निराशा के प्रगाढ़ क्षणों में गंगा की गोद में कूद कर आत्महत्या कर लेता है और उनका विश्रान्त जीवन चंचल लहरों में शान्त हो जाता है ।

---

१. 'प्रेमाश्रम', - पृ० सं० ४४३,

जॉन सेवक :

३०- जॉन सेवक अधेड़ उम्र का एक व्यवहारकुशल ईसाई सज्जन है । प्रेमचन्द ने जॉन सेवक की सृष्टि औद्योगिकरण की समस्या, गाँव में उसका विस्तार और जन जीवन पर अशुभ प्रभाव के चित्रण हेतु की है । जॉनसेवक उद्योगपति है । वह अपने स्वार्थ के पीछे न्याय-अन्याय की चिन्ता नहीं करता । सिगरेट का कारखाना खड़ा करने के लिए, जॉनसेवक को सूरदास की भूमि चाहिए जॉनसेवक उस जमीन के लिए साम, दाम, दंड से पाने का प्रयत्न करता है । जॉनसेवक की मनोवृत्ति को सूरदास अपनी सहज भाषा में खोलकर रख देता है : "सूरदास लाठी टेकता हुआ धीरे-धीरे घर चला ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ यह है बड़े आदमियों की स्वार्थपरता : पहले कैसी हेकड़ी दिखाते थे, मुझे कुत्ते से भी नीचा समझा, लेकिन ज्यों ही मालूम हुआ कि जमीन मेरी है, कैसी लल्लो-चप्पो करने लगे"[१] जॉनसेवक पैसे की शक्ति में विश्वास करता है और ऐश्वर्य को ही जीवन का स्वर्ग समझता है । उसके जीवन का अधिकांशत: धन, संघर्ष, व्यवसाय की कतर-ब्योंत में व्यय होता है । उसके जीवन का मूल्य महज़ पैसा है । जॉनसेवक की घर-बार सब पैसे के केन्द्र-बिन्दु पर अटके हैं । जॉनसेवक में उद्योगपति बनने की महत्वाकांक्षा चरम-विन्दु पर है और इसके लिए वह नीति-अनीति सब कुछ कराती है । जॉनसेवक कूटनीति और कानून का सहारा लेकर एक अन्धे, भिखारी सूरदास की जमीन हड़प करता है, जिसको सूरदास अपनी सम्पत्ति नहीं, पुरखों का धरोहर समझ कर उनके नाम और वंश की रक्षा करने हेतु ग्रामवासियों को चरवाहे के लिए छोड़े हुए है । सूरदास को पैसों का

---

१. रंगभूमि, पृ० सं०- १४

लालच देता है, और सूरदास माया-मोह से दूर, त्याग का पुतला आत्म सम्मान की निमित्त आशा से अपने को ही विलीन कर देता है। सूरदास कहता है—"इन्हें मैं अपनी जमीन दिए देता हूं। ५) दिखाते थे, मानो मैने रूपए देखे ही नहीं। पांच तो क्या पांच सौ भी दें, तो भी जमीन न दूंगा, मोहल्लेवालों को कौन मुंह दिखाऊंगा। इनके कारखाने के लिए बिचारी गउएं मारी मारी फिरें।"[१]

३१- जौन सेवक अपने स्वार्थ-साफल्य की चेष्टा में तिनके तिनके का सहारा पकड़ते हैं। उनकी पुत्री सोफिया की अग्नि-दुर्घटना के कारण राजा भरतसिंह से परिचय हो जाता है। जौनसेवक अपनी पुत्री के कारण राजा भरतसिंह से मिलते हैं। प्रेमचन्द लिखते हैं : "जौनसेवक उन मनुष्यों में थे, जिनका व्यक्तित्व शीघ्र ही दूसरों को आकर्षित कर लेता है। उनकी बातें इतनी विचारपूर्ण होती थीं कि दूसरे अपनी बातें भूल कर उनकी सुनने लगते थे। वे अनुभवशील और मानव-चरित्र के अच्छे ज्ञाता थे। ईश्वरदत्त प्रतिभा थी, जिसके बिना किसी सभा में सम्मान नहीं प्राप्त हो सकता। इस समय वह (जौनसेवक) भारत की औद्योगिक और व्यावसायिक दुर्बलता पर अपने विचार प्रकट कर रहे थे।"[२] अपनी इन मूलभूत विशेषताओं के कारण जौनसेवक कुंवर साहब के हृदय पर विजय पाते हैं और फिर अपनी औद्योगिक-शक्ति का परिचय देते हुए सूरदास की भूमि को लेने की भूमिका प्रस्तुत करते हैं—"आपकी कृपा ने मुझे धृष्ट बना दिया है। मैने जो जमीन पसन्द की है, वह पान्डेपुर के आगे पक्की सड़क पर स्थित है ×××× उसका मालिक एक अन्धा फकीर है। ×××× मैं उसे पांच हजार तक देता था; पर राजी न हुआ। ×××× दिन भर तो भीख मांग कर गुजर करता है, उस पर इरादे इतने लम्बे हैं।"[३]

---

१. रंगभूमि,- पृ० सं० १३,
२. रंगभूमि, - पृ० सं० ४६,
३. रंगभूमि, - पृ० सं० ५३,

३२- जान सेवक अपनी व्यवहार-कुशल बुद्धि से कुंवर भरतसिंह को पट्टी पढ़ा कर उनके दामाद महेन्द्रसिंह जो चतारी के राजा हैं उनसे भी अपना उल्लू सीधा करते हैं ।"[१]

३३- प्रेमचन्द लिखते हैं—"धन का देवता आत्मा का बलिदान पाये बिना प्रसन्न नहीं होता"[२] और जॉनसेवक अपने देवता की उपासना तन-मन से करता है । जॉनसेवक को मानापमान की कोई चिन्ता नहीं, उसका लड़का प्रभु सेवक नायकराम से लड़ आता है, पर वह उससे जाकर माफी मांग आता है ।[३] धन, ऐश्वर्य की प्राप्ति के निमित्त वह अपनी आत्मा तक की परवाह नहीं करता । जॉन सेवक का उद्देश्य धन-संचय करना है । इसके लिए जिस व्यावहारिक चातुर्य की आवश्यकता होती है वह उसमें पर्याप्त मात्रा में है । जॉन सेवक सोफिया की रानी परिवार से घनिष्ठता को अपना कार्य सिद्धि का साधन बना कर पांडेपुर की जमीन प्राप्त करता है । सामाजिक-क्षेत्र में जॉनसेवक की सफलता का कारण भी उसकी व्यवहार बुद्धि है । जॉनसेवक लक्ष्य-सिद्धि पर विश्वास करता है, चाहे उसका साधन पवित्र हो अथवा अपवित्र । वह अपने कार्य-कर्त्ता से कहता है ; "आप सोच रहे होंगे, मैंने ‹ ‹ ‹ ‹ ‹केवल घटना का यथार्थ वृत्तांत क्यों न कह सुनाया; किन्तु--- बिना रंग भरे मुझे यह फल प्राप्त हो सकता था ?

---

१. "राजा साहब मानव-चरित्र के ज्ञाता थे, बने हुए तिलक धारियों को खूब पहचानते थे ‹ ‹ ‹ ‹ एक दीन दुर्बल अन्धे की भूमि को जो उसके जीवन का एकमात्र आधार हो, उसके कब्जे से निकाल कर एक व्यवसायी को दे देना, उनके सिद्धान्त के विरुद्ध था ‹ ‹ ‹ ‹ ‹लेकिन यह जानते हुए जोनसेवक के साथ सद्व्यवहार करना कुंवर भरतसिंह को एक भारी ऋण से मुक्त कर देगा, वह उस प्रस्ताव की अवहेलना न कर सके ।" रंगभूमि, पृ०सं० ७१-७२,

२. रंगभूमि, पृ०सं०- ५३,

३. "आप ही का नाम नायकराम पांडे है न ? मैं आप से कल की बातों की क्षमा मांगने आया हूं । "रंगभूमि,- पृ० सं० १४२,

संसार में किसी काम का अच्छा या बुरा होना उसकी सफलता पर निर्भर है।"[१] जोनसेवक जी—जान से अपने व्यवसाय को विघ्न-बाधाओं से हटाते चलते है और कूटनीति से उसकी रक्षा करते हैं। अपने कारखाने की अव्यवस्था को रंगभर कर शहर के चेयरमैन महेन्द्रकुमार से बताते हैं।"[२]

३४- जॉन सेवक की कुटिलता और द्रव्योपासना से उसका पुत्र प्रभुसेवक भी क्षुब्ध हो उठता है। वह एक स्थान पर कहता है:—"व्यवसाय कुछ नहीं है, अगर नर-हत्या नहीं है। आदि से अन्त तक मनुष्यों को पशु समझना और उनसे पशुवत् व्यवहार करना इसका मूल सिद्धान्त है।"[३] जोनसेवक की धन-लिप्सा ने पुत्र और पुत्री में धन के प्रति वैराग्य उत्पन्न कर दिया है। लेकिन पिता जोनसेवक निराशामय धैर्य के साथ प्रातःकाल से सन्ध्या तक अपने व्यवसायिक धन्धों में रत रहता है जोनसेवक की अभिलाषा, इच्छा जो कुछ भी है, वह धन है। जोनसेवा को धन से निःस्वार्थ प्रेम है।

---

१. रंगभूमि, पृ० सं०- ११२, ११३,

२. "इस भांति कुछ देर और बातें करके और राजा साहब को खूब भरकर जोनसेवक विदा हुए। रास्ते में ताहिर अली सोचने लगा-साहब की दुर्गति से अपना स्वार्थ सिद्ध करने में जरा भी संकोच नहीं हुआ। क्या ऐसे धनी-मानी, विशिष्ट, विचारशील, विद्वान् प्राणी भी इतने स्वार्थभक्त होते हैं।"
"रंगभूमि,- पृ० सं०- ११२, ११३,

३. "रंगभूमि,- पृ० सं०- ३८४,

३५- जॉनसेवक का धर्म व्यवसाय का आश्रयदाता है । उसका व्यापारिक-लक्ष्य कैसे सिद्ध हो, यही उसके लिए मुख्य बात है । जोनसेवक पुत्र पिताको धर्म के विरुद्ध आचरण करते देखता है, तो क्षुब्ध हो उठता है और पिता (जोनसेवक) से कहता है : "उस बेकस अन्धे की जमीन पर कब्जा करने के लिए आप जिन साधनों का उपयोग कर रहे हैं, क्या वे धर्म-संगत हैं ? धर्म का अन्त वहीं हो गया, जब उसने कह दिया कि मैं अपनी जमीन किसी तरह न दूंगा । अब कानूनी विधानों से, कूटनीति से, धमकियों से अपना मतलब निकालना, आपको धर्म-संगत मालुम होता हो; पर मुझे तो वह सर्वथा अधर्म और अन्याय ही प्रतीत होता है ।"[१] जोनसेवक अपने धर्म का रहस्य अपने मुंह से अपने पुत्र को समझाता है : "क्या तुम समझते हो कि मैं और मुझ जैसे और हजारों आदमी, जो नित्य गिरजे जाते हैं, भजन गाते हैं, आँखें बन्द करके ईश-प्रार्थना करते हैं, धर्मानुराग में डूबे हुए हैं? कदापि नहीं । ××××× धर्म केवल स्वार्थ-संगठन है । ××××× लेकिन इतना अविश्वास होने पर भी मैं रविवार को सौ काम छोड़ कर गिरजे अवश्य जाता हूँ । न जाने से अपने समाज में अपमान"[२] होगा । उसका मेरे व्यवसाय पर बुरा असर पड़ेगा ।

३६- जॉनसेवक ने जीवन को संग्राम के रूप में स्वीकार किया है और जीवन की सफलता के लिए शक्ति का प्रयोग करने वाला एक दृढ़ प्रतिज्ञ व्यक्ति है । लेकिन अन्त में हम देखते हैं जोनसेवक के लिए धन किसी लक्ष्य का साधन नहीं रह जाता, धन स्वयं लक्ष्य हो जाता है । व्यवसाय की वृद्धि के साथ धन की बढ़ता है, लेकिन जोनसेवक की धन-कामना, विद्या-व्यसन की भांति तृप्त नहीं होती ।

---

१. रंगभूमि, पृ० सं०- ७४,

२. रंगभूमि, पृ० सं०- ७५,

३७- प्रेमचन्द ने बड़े कौशल्य से पूंजीवादी विशेषताओं के प्रतीक जोन सेवक का चित्र खींचा है । प्रेमचन्द अपनी चुटीली भाषा से बीच-बीच में जोनसेवक की चरित्रगत-विशेषता को और भी कटु शब्दों में व्यक्त करते हैं । "जोनसेवक धार्मिक हैं, पर उसका असली धर्म मुनाफा है ।" इस प्रकार जोनसेवक ही नहीं प्रेमचन्द का प्रत्येक पात्र अपनी सामान्य विशेषताओं के अनरूप व्यक्त हुआ है । जोनसेवक पूंजीपति हैं तो धन के सभी गुण-अवगुण उनमें पराकाष्ठा पर हैं । प्रेमचन्द के सभी पात्र अपने वास्तविक रूप में प्रकट होते हैं । प्रेमचन्द ने मानव-मन के अन्तराल में प्रविष्ट होकर अन्तर-मन का विशेष-अध्ययन नहीं किया । उन्होंने सामान्य ढंग से पात्रों के भाव और कर्म की एकरूपता के अभाव में जो प्रत्यक्ष रूप में अन्तर्द्वन्द्व होता है, उसका स्वाभाविक स्पष्टीकरण किया है, जिससे पात्र वास्तविक अथवा यथार्थ प्रतीत हों । प्रेमचन्द प्राय: आरम्भ में ही पात्र की वैयक्तिक दुर्बलता को स्पष्ट कर देते हैं । इसीलिए पात्र की अन्त: भावधारा और उस पर सामाजिक-भय, मान मर्यादा के कार्य-व्यापार सब अधिकतर समानान्तर भाव-धारा अथवा विचारगत विशेषताओं में चलते हैं । यही मुख्यत: प्रेमचन्द के पात्रों की सामान्य विशेषताएं हैं, जिनको लेकर प्रेमचन्द आरम्भ से अन्त तक चले और विभिन्न वर्गों का चित्रण प्रस्तुत किया ।

समरकान्त :

३८- प्रेमचन्द ने अपने युग को सजीव बनाने के लिए उसी वातावरण से पोषित पात्रों का चित्रण किया है। समरकान्त अपने युग, काल, परिस्थिति, एक साथ सभी मानव-विचारों से उत्पन्न मूर्ति हैं। समरकान्त धन को सर्वोपरि मानते हैं। वह पक्के व्यावसायिक हैं। और व्यवसाय में वैध और अवैध उपायों का समान रूप से व्यवहार करते हैं। व्यावसायिक विषयों में वह पक्के यथार्थवादी हैं और अनुभवों के आधार पर उनका निष्कर्ष है कि ईमानदारी व्यवसाय के लिए नहीं बनी।

३९- समरकान्त की आकृति आजकल के सेठों से मिलती-जुलती है। उनके चरित्र की अन्य विशेषता यह थी कि व्यापार और धर्म को सदैव अलग रखते हैं। एक ओर वे चोर-डकैतों से आधे चौथाई दामों पर चीजें खरीद कर रुपया कमाते हैं, दूसरी ओर गंगा स्नान को जाते हैं, मूर्ति-पूजा करते हैं, व्रत रखते हैं और दान देते हैं। पैसे को पकड़ कर रखना और पैसे को खर्च करना वे दोनों काम जानते हैं। एक ओर उनका लड़का समय पर फीस नहीं दे पाता, दूसरी ओर अपने पठान नौकर की विधवा को ५) महीने देते हैं और जब वह नहीं आती तो उसकी तलब स्वयं पहुंचा आते हैं। अपने पैसे से वे ठाकुरद्वारा बनवाते हैं। बाल्मीकि रामायण की कथा के लिए नगर के सबसे धनी व्यक्ति लाला धनीराम १०१) देते हैं तो समरकान्त ८९९)। इसी प्रकार गांव वालों की दवा-दारू के लिए सलीम १००) देता है तो लाला उसमें ९००) मिला देते हैं। पोते के जन्म मे एक ओर डाक्टर को रुपये देना उन्हें अखरता है, दूसरी ओर बाबा बनने की प्रसन्नता में वे वेश्याओं का नाच कराते हैं। धन कहाँ खर्च करना चाहिए, कहाँ नहीं, इसे वह भली-भांति जानते हैं।

४०- लौकिक सफलता पर उनकी दृष्टि बराबर रहती है । अमर जब कुछ न कमाकर राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेता है तो वे निर्दय होकर उसे घर से निकाल देते हैं । उसके साथ उसकी बहू और लड़की भी चली जाती है । इसका कोई प्रभाव उनके ऊपर नहीं पड़ता । इसी प्रकार जब डा० शान्ति कुमार म्यूनिस्पैलिटी से गरीबों के लिए जमीन लेने की बात करते हैं, तो वे उन्हें सदस्यों को रिश्वत देने की सलाह देते हैं । काम कैसे भी होना चाहिए, समरकान्त की दृष्टि इसी पर रहती है । साधनों की चिंता वे नहीं करते ।

४१- धर्म के सम्बन्ध में उनके विचार बड़े रूढ़िवादी हैं । अमर सकीना को अपनी पत्नी के रूप में घर में लाना चाहता है । लाला जी इसे कैसे स्वीकार कर सकते हैं ? परिणाम यह होता है कि वह घर का परित्याग कर दूर गाँव में सेवा करने चला जाता है । इसी प्रकार वे मन्दिर में अछूतों का प्रवेश रोकने के लिए पूरा प्रयत्न करते हैं । इतना होने पर भी लाला जी कहीं पिता और मनुष्य भी हैं । जब वे अपनी पुत्रवधू और बेटी को अछूतों का पक्ष लेते देखते हैं तो वे उनके विचारों का समर्थन करने लगते हैं । अमर अपनी गिरफ़्तारी की सूचना उन्हें नहीं देता । इसका उन्हें बहुत दुःख होता है । जेल में वे बहू और पोते से मिलने जाते हैं । जिस दिन उन्हें इस बात की अनुभूति होते है कि उनकी सन्तान उनके पापों का प्रायश्चित कर रही है, उसी दिन उनमें भी देश-सेवा की भावना का जन्म होता है । म्यूनिस्पैलिटी के विरुद्ध जो आन्दोलन चलता है, उसमें वे भी भाग लेते हैं और गिरफ़्तार कर लिए जाते हैं । इस प्रकार परिवार की ममता उन्हें व्यापार से राष्ट्र-सेवा के क्षेत्र में खींच लाती है । जिनके लिए धन एकत्र किया है, जब वे ही उसे भोगना नहीं चाहते तो लालाजी उसका संचय करके क्या करेंगे? इस प्रकार जीवन की परिस्थितियाँ उनके दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन कर देती हैं ।

४२- आरम्भ में समरकान्त प्रतिक्रियात्मक आदमी हैं और अपने पुत्र अमरकान्त को भी वैसा ही बनाए रखने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु जब पुत्र धन को ठुकराकर चला जाता है तब उन्हें बड़ी व्यथा होती है। यह सच है कि धन की एकाग्र उपासना में समरकान्त ने पुत्र-प्रेम विस्मृत कर दिया था लेकिन वही समरकान्त पुत्र के वियोग से सन्तप्त वैरागी हो जाते हैं उन्होंने धन की उपासना इसीलिए की थी कि उनके पुत्र को सुख-पूर्वक जीवन-यापन का अवसर मिले। पिता के लिए इससे बढ़कर मनोव्यथा और क्या हो सकती है कि जिस पुत्र के लिए उसने सब कुछ दिया वही उसे छोड़कर चला गया? उन्होंने अपनी अंतर्पीड़ा को इन शब्दों में व्यक्त किया था— 'लेकिन माँ बाप की कामना तो यही होती है, कि उनकी सन्तान को कोई कष्ट न हो। जिस तरह उनको मरना पड़ा, उसी तरह उनकी सन्तान को न मरना पड़े। जिस तरह धक्के खाने पड़े, कर्म अकर्म सब करने पड़े, वे कठिनाइयाँ उनकी सन्तान को न झेलनी पड़ें। दुनिया उन्हें लोभी, स्वार्थी कहती है, उनको परवाह नहीं होती लेकिन जब अपनी ही सन्तान अपना अनादर करे तब सोचो अभागे बाप के दिल पर क्या बीतती है? उसे मालूम होता है सारा जीवन निष्फल हो गया। आगे चल कर पुत्र-प्रेम ने ही उनकी कायापलट कर दी। पुत्र से बिछुड़कर ही उन्होंने पुत्र-प्रेम को समझा। पुत्र-प्रेम के कारण ही लोभी और कृपण समरकान्त लोक सेवा में अपना सर्वस्व लुटाने के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं, यहाँ तक कि जेल-यात्रा भी करते हैं। उनकी सदाशयता पुत्र की श्रद्धा अर्जित करने में समर्थ होती है और अंत में स्नेह का बन्धन दृढ़ हो जाता है।

होरी :

४३- होरी किसान है, जिसमें व्यावहारिक कृषक-बुद्धि का प्राधान्य है। जिसे उसकी व्यवहार-कुशलता कहा गया है वह वस्तुत: उसकी व्यावहारिक कृषक-बुद्धि है जो पग-पग पर उसे याद दिलाती रहती है कि जब दूसरों के पांवों तले अपनी गर्दन दबी हुई है, तो उन पांवों को सहलाने में ही कुशल है।"[1] इसी निष्कर्ष के आधार पर वह जमींदार से मिलते जुलते रहने में अपना हित देखता है। उसकी कृषक-बुद्धि उसे सब परि-स्थितियों में अवश्य संभाल लेती है किन्तु जीवन के मूल प्रश्नों की समस्या का समाधान करने में वह पूर्णतया असफल है। आरम्भ से अन्त तक होरी का चरित्र परिस्थितियों से हारने और जूझने की कथा है। उसकी पराजय का कारण समाज की शोषणवृत्ति का प्रहार ही नहीं है, अपितु उसकी व्यक्तिगत वृत्तियाँ और दुर्बलताएं भी हैं। सम्मिलित परिवार से पृथक होने के उपरान्त भी वह उसकी दुर्वह मर्यादा का बोझ ढोता रहा है। हीरा के भाग जाने पर वह पुनिया के खेतों की रोपाई करता है। इससे उसकी अपनी खेती की हानि होती है। इसी प्रकार झूठी मर्यादा की रक्षा के लिए वह रुपए उधार लेकर भी हीरा के घर की तलाशी से बचाना चाहता है। अलग्योझा के उपरान्त भी वह रक्त का सम्बन्ध नहीं तोड़ता और भाइयों की विपत्तियाँ झेलने में अपनी दुरावस्था और बढ़ा लेता है। जिस प्रकार भाइयों द्वारा पीड़ित होने पर भी वह उनका साथ नहीं छोड़ता, उसी प्रकार समाज द्वारा उत्पीड़ित होने पर भी वह उससे पृथक जीवन की

---

१. गोदान,- पृ० सं०-१७,

कल्पना नहीं कर सकता। समाज की प्रतिष्ठा और मर्यादा के विरुद्ध वह कोई कदम उठाने का साहस नहीं रखता क्योंकि उसका विश्वास है कि "पंच में परमेश्वर रहते हैं।"[१] इसीलिए वह समाज का कष्ट-प्रद और न्याय-विरुद्ध नियंत्रण आँख मींच कर स्वीकार कर लेता है। झुनिया को आश्रय देकर उसने समाज की मर्यादा भंग की थी। फलस्वरूप समाज का न्यायनिरत दंड स्वीकार करना अनिवार्य होगया। उसकी पत्नी धनिया जब पंचों द्वारा निर्धारित दंड का विरोध करती है तो होरी उसके सामने हाथ जोड़ कर कहता है—"धनिया, तेरे पैरों पड़ता हूँ, चुप रह। हम बिरादरी के चाकर हैं, उसके बाहर नहीं जा सकते। वह जो दंड लगाती है, उसे सिर झुकाकर मंजूर कर। नक्कू बनकर जीने से तो गले में फाँसी लगाना अच्छा है।..... मैं बिरादरी से दगा न करूँगा।"[२] वस्तुत: बिरादरी उसके जीवन का अविभाज्य अंग है। यह उसके जीवन में वृक्ष की भाँति जड़ जमाए हुए थी और उसकी नसें उसके रोम-रोम में बिंधी हुई थीं। उसकी धारणा है कि बिरादरी से निकल कर उसका जीवन विशृंखल हो जायगा—तार-तार हो जायगा। इसीलिए अपने पैरों कुल्हाड़ी मार कर वह समाज का दंड स्वीकार करता है जिससे उसके परिवार को भूखों मरने की नौबत आ जाती है। उसके अन्धविश्वास उसकी दुरावस्था की वृद्धि करते रहते हैं और धर्मभीरु तो वह इतना है कि "ईश्वर का रौद्र रूप सदैव उसके सामने रहता" है। दातादीन ऐसे महाजन उसकी इस धर्मभीरुता से अनुचित लाभ उठाने में नहीं चूकते। इसी कारण वह भोला के हाथ अपने बैल खोकर संताप सहता है। इन व्यक्तिगत वृत्तियों और दुर्बलताओं के कारण अथक परिश्रम और प्रयत्नों के उपरान्त भी चिरस्थायी निर्धनता से उसका उद्धार नहीं हो पाता। उसके

---

१. गोदान,- पृ० सं०- १२८,

२. गोदान,- पृ० सं०- १२८,

साथ ही जमींदार और महाजनों का निर्दय शोषण उसकी कमर तोड़ देता है। परिवार को सुखी-सन्तुष्ट देखने के निमित्त वह जीवन-पर्यन्त सक्रिय रहा, किन्तु सुख के दिन मृगतृष्णा के मायाजाल की भांति उससे दूर भागता गया। उसकी समस्त निष्ठा और आस्था के टुकड़े-टुकड़े कर दिए गये। "आज तीस साल तक जीवन से लड़ते रहने के बाद वह परास्त हुआ है और ऐसा परास्त कर दिया गया है और जो आता है उसके मुंह पर थूक देता है। वह चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा है, भाइयों मैं दया का पात्र हूं, मैंने नहीं जाना जेठ की लू कैसी होती है और माघ की वर्षा कैसी होती है। इस देह को चीर कर देखो, इसमें कितना प्राण रह गया है, कितना जख्मों से चूर, कितना ठोकरों से कुचला हुआ। उससे पूछो, कभी तूने विश्राम के दर्शन किए, कभी तू छांह में बैठा। उस पर यह अपमान। और वह अब भी जीता है, कायर, लोभी, अधम। उसका सारा विश्वास जो अगाध होकर स्थूल और अन्धा हो गया था, मानों टूक-टूक उड़ गया हो।"[१] फिर भी उसने आशा न छोड़ी। किसान से श्रमिक बन गया किन्तु जीवन की कोई भी अभिलाषा पूर्ण होती न दिखाई दी। अनवरत परिश्रम की प्रक्रिया में जीवन शक्ति-क्षीण होने लगी और जीवन का घात-विघात योद्धा संघर्ष-शक्ति के अवसान में मृत्यु के अंधकार में समा गया।

४४- होरी का देवत्व उसके कष्टों का कारण है। वह आवश्यकता से अधिक सीधा है। पंचों को वह परमेश्वर समझता है, उनका आदेश ईश्वर-वाक्य समझ कर उसके आगे सिर झुकाता है। उसने मानवता के आगे आर्द्र होकर झुनिया को शरण दी है। उसकी इस शरण्यता का पंचों ने उसे दंड दिया। उसका हुक्का-पानी बन्द कर दिया। वह जाति-बहिष्कृत होकर

---

१. गोदान,- पृ० सं०- २२१,

२. गोदान,- पृ० सं०- ३५७,

कैसे रहे। उसकी सामाजिक चेतना उसे कुरेदने लगी, वह कराह उठता है। उसकी व्यावहारिक कुशलता जो भोला को वश में कर चुकी थी वह काफूर हो जाती है। उसकी आँखें पंचों की दूषित स्वार्थ-भावना को नहीं देख सकती हैं। वह उन्हें आत्म-समर्पण कर देता है। वे उस पर सौ रुपये नकद और तीस मन अनाज का दंड लगा देते हैं। यह निर्धन किसान इतनी राशि कहाँ से दे ? यह उसे उसके देवत्व का पारितोषिक मिल रहा है। वह अपना देवत्व इन शब्दों द्वारा बाहर बहा रहा है :— 'पंचों, हमारे पास जो कुछ है, वह अभी खलिहान में है, एक दाना भी घर में नहीं है। आप जितना चाहो ले लो। सब लेना चाहो सब ले लो। हमारा भगवान मालिक है, जितनी कमी पड़े, उससे हमारे दोनों बैल ले लेना।'[१]

४५- कहाँ है मानवता? मानव तो मननशील होता है। होरी की विचार शीलता अंश मात्र भी इन शब्दों में नहीं है। इसमें तो अविवेकपूर्ण त्याग है। यही त्याग उसे मानवता के क्षेत्र से बाहर धकेल देता है। वह देवत्व के क्षेत्र में प्रविष्ट होने लगता है। यह स्थूल शरीर उसे देवता भी तो नहीं बनने देता। वह तो त्रिशंकु की तरह अधर में लटकने पर विवश है। उसकी इस परवशता पर झुंझलाने के लिए यथार्थता 'धनिया' के रूप में पहुंच जाती है। फिर भी वह अपनी शोचनीय स्थिति से मोह जोड़ बैठता है। वह आँसू बहाता है परन्तु इसे झटका देने के लिए उद्यत नहीं होता। धनिया की झुंझलाहट किसी काम नहीं आती है। होरी अपने देवत्व की गठरी सिर पर उठाए उन्मत्त हो उठता है। बिरादरी का आतंक उसे अपने सिर पर अनाज ढोने की उत्तेजना देता है। इस प्रकार अनाज ढोकर वह अपने हाथों अपनी कब्र खोद लेता है। वह पंचों को अपनी सत्यता से प्रसन्न कर लेना चाहता है परन्तु उस भोले को पता नहीं कि ये आराध्य देव नहीं हैं, ये तो पशुता के प्रतीक हैं। क्या पशुता कभी सत्यता से प्रसन्न हो सकती है? इनसे दया की आशा करना अपने आपको धोखा देना है। उसका आदर्शवाद उसकी आँखें बन्द कर देता है और वह पंचों के रूप में आई

---

१. गोदान,- पृ० सं०- १२७,

हुई पाशविकता का दर्शन नहीं करता । वह अधर्म को धर्म, अनीति को नीति मान लेता है । क्या यह अनाज जो वह सिर पर ढो-ढो कर झिंगुरी सिंह की चौपाल में इकट्ठा कर रहा है केवल उसी के परिश्रम का फल है ? क्या धनिया और झुनिया ने इस कार्य में उसका हाथ नहीं बंटाया था? तो वह क्यों उनके मुंह के कौर को छीनकर इन पिशाचों की तृप्ति की योजना कर रहा है? क्या यह अनीति नहीं है ? होरी का आदर्श अन्धा है । वह इस अनीति को देख नहीं पाता है । धनिया को उसके हाथ से टोकरी छीन लेनी पड़ती है ।

४६- सुनते हैं, जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है । होरी की अन्तरात्मा ने भी इसी श्रुति पर अन्धविश्वास किया है । निस्सन्देह, भोला ने उसे गाय दी थी, होरी के सिर पर उसके अस्सी रुपए थे । भोला ने ये रुपए लेने का संकल्प नहीं किया था । परन्तु झुनिया के कुकृत्य ने उसे विरोधी बना दिया था । इसी कृत्य का प्रतिशोध लेने के लिए वह अपने रुपयों के बदले में होरी के दोनों बैल खोल ले जाता है । वह भोला को धर्म की दुहाई देता है परन्तु कौन सुनता है ? गांव वाले होरी की सहायता के लिए आ पहुंचते हैं । होरी की धर्म प्रियता आड़े बैठती है । सब होरी को तिरस्कार की आंखों से देखते हैं । वह अपनी धर्म के प्रति अन्ध-भक्ति के कारण बैलों से हाथ-धो बैठता है और पिस जाता है । सच है वह यथार्थ धर्म का प्रत्याख्यान करता है और उसका फल भोगता है । अज्ञानमूलक धर्म कभी रक्षक नहीं हो सकता ।

४७- गोबर नगर से वापस आता है । होरी की दुर्दशा देखकर झल्ला उठता है । वह उसके भोलेपन को उसकी दुर्दशा का कारण बताता है । "इधर-गोई खो बैठे, उधर डेढ़ सौ रुपये डांड के भरे । यह है गऊ

होने का फल ।'[१] वह होरी की आंखों से आदर्श का पर्दा हटा देना चाहता है और उसे समझा देना चाहता है कि दुनिया पैसे की है, हुक्का-पानी कोई नहीं पूछता ।

४८- होरी धर्म और नीति का भय मानता है । मातादीन से उसने तीस रुपये लिए थे । अब वह उसके व्याज सहित २००) रु० मांगता है । गोबर उसे ७०) रु० से एक पैसा अधिक देना नहीं चाहता है । होरी के पेट में धर्म की क्रान्ति मच जाती है । उसका धर्म भीरु मन त्रस्त हो उठता है । वह ब्राह्मण के रुपए मार कर उसके कोप का भाजन नहीं बनना चाहता । अन्धविश्वास ग्रस्त उसकी आत्मा ब्राह्मण के शाप से डरती है और वह दातादीन के चरणों में गिरकर कहता है 'महाराज जब तक मैं जीता हूं, मैं तुम्हारी एक-एक पाई चुकाऊंगा ।'[२]

४६- धर्म और नीति के संस्कार उसके मन में इतनी दृढ़ता से जमे हुए हैं कि वे विकट परिस्थितियों के आघात से भी उखड़ते नहीं हैं । इनकी जड़ बहुत गहराई तक पहुंची हुई है । परम्परागत सामाजिक व्यवस्थाओं का पालन वह अपना धर्म समझता है । प्रथा का उल्लंघन उसकी दृष्टि में अधर्म है । वह सोना का विवाह करना चाहता है । आर्थिक परिस्थितियां बाधक हैं । फिर भी दहेज प्रथा का पालन करने के लिए उधार लेता है । कुल-मर्यादा का पालन करके वह अपनी आत्मा की सन्तुष्टि कर लेना चाहता है । इस प्रकार परिस्थितियां उसके जीवन में कोई परिवर्तन उपस्थित नहीं करतीं । वह अविकसित रह जाता है । वह अपनी स्थिरता का संकेत करता है । इसका यह अर्थ नहीं है कि वह निर्जीव है, जड़ है । उस पर परिस्थितियों की विषमता की कोई प्रतिक्रिया उत्पन्न ही नहीं होती है । प्रतिक्रिया होती है और बड़ी तीव्रता के साथ होती है । रूपा के विवाह के अवसर पर उसकी रूढ़िग्रस्त आत्मा भी एक बार हिल उठती है । इसका चित्रण इन शब्दों में हुआ है :—'मगर जब ईश्वर ने उसे इस लायक नहीं बनाया तो कुश-कन्या के

---

१. गोदान, पृ० सं०- २१४,
२. गोदान, पृ० सं०- २२०,

सिवा और वह क्या कर सकता है । लोग हँसेंगे, लेकिन जो लोग खाली हँसते हैं, और कोई मदद नहीं करते, उनकी हँसी की वह क्यों परवा करे[१] स्पष्ट है कि इस समय वह यथार्थ की सीमा में चक्कर काट रहा है । इस क्षेत्र में आते ही उसका काम सिद्ध हो जाता है । उस पर बेदखली का मुकदमा था । लगान वह चुका नहीं पाया था । जमीन बेचकर ही वह रकम चुका सकता था । वह दातादीन के कहने के अनुसार रामसेवक से दो सौ रुपया लेकर अपनी कन्या रूपा का विवाह उसके साथ कर देता है । यह उसका यथार्थ की सीमा में प्रवेश है । पर रुपये हाथ में पकड़ते ही उसकी आत्मा में छिपा आदर्श हुंकार उठता है । उसके हृदयाकाश में अपमान की काली घटा उमड़ने लगती है । उसकी पराजय साकार होकर उसकी आँखों के सामने नाचने लगती है । वह इस भयंकर नृत्य को देखकर काँप उठता है ।

५०- होरी यथार्थ का स्पर्श करके भी आदर्शवादी ही रहता है । लेखक ने यथार्थ के समीप पहुँचा कर, उसे निर्जीव होने से बचा लिया है । वह भोला के साथ दुलारी; सहुआइन के साथ, नोहरी के साथ यथार्थवादी व्यावहारिक व्यक्तियों के सदृश बातें करता है । अन्यत्र आदर्श उसे दबा लेता है । रूपा के विवाह पर रामसेवक से दो सौ रुपया लेकर यथार्थवाद की शरण लेता है, परन्तु शीघ्र ही उस पर आदर्श की छाया आ पड़ती है । वह यथार्थवाद की शरण लेने में अपनी पराजय अनुभव करता है । आदर्शवाद उसकी सहायता करता है और वह जीवन के अन्तिम दिनों में इसी की छत्रछाया में निवास करता है । हीरा ने उसके जीवन में कष्टों के बीज बोए थे । वह उसी का फल भोग रहा था । हीरा आकर क्षमा याचना कर लेता है । बस, उसका आदर्शवाद धन्य हो जाता है । हीरा की कृतज्ञता उसकी पराजय को विजय में परिणत कर देती है । लेखक स्वयं उसके मन की इस प्रफुल्लता का चित्रण इन शब्दों में कर देता है—"होरी प्रसन्न था । जीवन के सारे संकट,

---

१. गोदान, पृ० सं० ३५२,

सारी निराशाएं मानों उसके चरणों पर लोट रही थीं । कौन कहता है, जीवन-संग्राम में वह हारा है । यह उल्लास, यह गर्व-यह पुलक क्या हार के लक्षण हैं । इन्हीं हारों में उसकी विजय है । उसकी छाती फूल उठी है । मुख पर तेज आगया है ।"[१]

५१- कल्पनाओं में विचरना, उन्हीं में अपने सुख का स्त्रोत मानना ही आदर्शवाद है । जो कल्पना के मधुर रस से अपना मुंह मीठा करना चाहता है वह यथार्थवाद का विरोध करता है । हीरा की कृतज्ञता में अपने सुख-स्वर्ग को मानने वाला होरी वस्तुत: आदर्शवादी है । यथार्थ दुनिया में अपने भांडार को धन-अन्न से भर लेने वाला ही सुखी माना जाता है । उसकी दृष्टि में वह सुखी है जिस पर ऋण का बोझ नहीं, जिसने लोक-लाज के लिए अपने आप को जोखिम में नहीं डाला, जिसकी बहुत बड़ी धन-राशि बैंकों में संचित है, वही तो आनन्द का उपभोग करता है । होरी की दृष्टि इसके विपरीत सोचती है—"सौ को दुबला करके तब एक मोटा होता है । ऐसे मोटेपन में क्या सुख? सुख तो जब है कि सभी मोटे हों ।"[२]

५२- यथार्थ दुनिया में तो दूसरों के सुख से ईर्ष्या उत्पन्न होती है । होरी की दुनिया आदर्श की दुनिया है । इसमें सबके सुख में अपने सुख की भावना समृद्ध होती है । होरी कल्पना-लोक का प्राणी है । कभी-कभी इस धरातल पर भी विचरने आ जाता है । यह धरातल उस जैसे प्राणियों के अनुकूल नहीं है, अतएव लेखक उसे अन्त में इस लोक से दूर हटाने की योजना बनाकर अमरलोक का वासी बना देता है ।

---

१. गोदान,- पृ० सं०- ३६१,
२. गोदान,- पृ० सं०- ३६२,

राय साहब :

५३- राय साहब अमर पाल सिंह का चरित्र इन शब्दों में स्पष्ट हो जाता है। " राय साहब ने पिछले सत्याग्रह-संग्राम में बड़ा यश कमाया था। कौंसिल की मेम्बरी छोड़कर जेल चले गए थे। तब से उनके इलाके के असामियों को उनसे बड़ी श्रद्धा हो गयी थी। यह नहीं कि उनके इलाके में असामियों के साथ कोई खास रियायत की जाती हो, या डाँड़ और बेगार की कड़ाई कुछ कम हो; मगर यह सारी बदनामी मुख्तारों के सिर जाती थी राय साहब की कीर्ति पर कोई कलंक न लग सकता था .... असामियों से वह हँस कर बोल लेते थे ..... रायसाहब राष्ट्रवादी होने पर भी हुक्काम से मेल-जोल बनाए रखते थे .... साहित्य और संगीत के प्रेमी थे, ड्रामा के शौकीन, अच्छे वक्ता थे, अच्छे लेखक, अच्छे निशाने बाज।"[1]

५४- राय साहब, ज्ञानशंकर[2] के समान ही जमींदार-वर्ग के पात्र हैं, लेकिन उनमें ज्ञानशंकर की भाँति कटुता, क्रूरता तथा अपने असामियों के प्रति कुरूपता या वैषमय नहीं। राय साहब अपने असामियों से सज्जनता और नम्रता का भाव रखते हैं, इसलिए आमदनी और अधिकार में जौ भर की भी कमी न होने पर भी उनका यश बढ़ता ही है। लेकिन राय साहब की सृष्टि से शोषक और शोषित मनोवृत्तियों का अन्तर भली भाँति स्पष्ट हो जाता है। राय साहब की सृष्टि होरी[3] की आर्थिक-विषमता को अधिक गहरा रंग देती है। रायसाहब का वैभव आनन्दोपभोग होरी जैसे दीन कृषकों द्वारा उपार्जित धन पर ही अवलम्बित है। इन दीनों से ही धन लेकर वह

---

१. गोदान,- पृ० सं० १२,
२. ज्ञानशंकर पात्र "प्रेमाश्रम"
३. होरी, किसान है, रायसाहब का असामी।

अपना विशाल परिवार पालते हैं। रायसाहब के रहने के लिए मनोहर आवास है, बड़े बड़े समारोह करते हैं, मित्र-मंडली के साथ मद्य-मांस तथा अन्यान्य खाद्य-पेय पदार्थों का सेवन करते हैं, लाखों रुपए कन्या के विवाह में, पुत्र की पढ़ाई में, मुकदमेबाज़ी में, निर्वाचनों में विजयी होने में व्यय होते हैं। इसके विपरीत वे दीन किसान भूखे-नंगे संकटो में ही अपना जीवन व्यतीत कर देते हैं। यही विषमता स्पष्ट करने के लिए रायसाहब की सृष्टि हुई है और उनकी मित्र-मंडली की, जो पूंजी वर्ग के प्रतीक हैं।

५५- राय साहब होरी के गांव से पांच मील दूर सेमरी गांव में रहते हैं। राय साहब किसानों के प्रति सहानुभूति प्रकट करके, उन्हें लूटते हैं। प्रेमचन्द के शब्दों में : "सिंह का काम तो शिकार करना है ; अगर वह गरजने और गुर्राने के बदले मीठी बोली बोल सकता, तो उसे घर बैठे मन-माना शिकार मिल जाता है। शिकार की खोज में उसे जंगल में न भटकना पड़ता"[१] रायसाहब इसी प्रकार अपना दुहरा रूप धारण करके धन के साथ यश का भी संचय करते हैं। दो रंगी चाल उनकी अपनी विशेषता है। कौंसिल छोड़ कर सत्याग्रह आन्दोलन में जीत भी जाते है और दूसरी ओर शासक-वर्ग से अपना सम्बन्ध भी घनिष्ट रखते हैं। उनको उपहार देते हैं, डालिए भेजते हैं, कर्म भरित्रों को दस्तूरियां भी बंधी हैं। रायसाहब संसार को व्यवहार को समझते है और लोकाचार के अनरुप चल कर अपनी भौतिक उन्नति में सफलता प्राप्त करते हैं।

---

१. गोदान- पृ० सं०- २२,

५६- रायसाहब की कथनी और करनी में बड़ा अन्तर है। मुंह से मानवता का गुण-गान करते हैं, किसानों के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हैं, लेकिन वही रायसाहब जो एक पल पहले मानवता की मूर्ति बने हुए थे, आँखें निकाल कर बोले—" मैं इन दुष्टों को ठीक करता हूं ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ एक आने रोज के हिसाब से मजूरी मिलेगी, जो हमेशा मिलती रही है; और इसी मजूरी पर उन्हें काम करना पड़ेगा, सीधे करें या टेढ़े।"[१] इस प्रकार राय साहब केवल मौखिक सहानुभूति से अपनी बुराई छिपा लेते हैं। राय साहब का दोहरा व्यक्तित्व जैसे पूजा-पाठ करके, दान-यज्ञ करके, भगवान की कृपा भी प्राप्त कर लेता है और लोक-निंदा का रिश्वत से मुंह भी बन्द कर देता है। "होरी तुम अब जाओ ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ जो बात मैने कही उसका ख्याल रखना। तुम्हारे गांव से मुझे कम से कम पांच सौ की आशा है।"[२]

५७- राय साहब के जीवन में कृत्रिमता का प्राचुर्य्य है। वह अपनी वाक् शक्ति के द्वारा अपना ऐसा रूप प्रकट करते हैं कि दूसरा उनके आन्तरिक रूप को समझने में भूल कर सकता है। उनकी वाक्-शक्ति उनके व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाने का प्रयत्न करती है —" मैं खुद सद्भावना करते हुए भी स्वार्थ नहीं छोड़ सकता और चाहता हूं कि हमारे वर्ग को शासन और नीति के बल से अपना स्वार्थ छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया जाए। इसे आप कायरता कहेंगे, मैं इसे विवशता कहता हूं। ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ समाज की ऐसी व्यवस्था, जिसमें कुछ लोग मौज करें और अधिक लोग पिसे और खपें, कभी सुखद नहीं हो सकती। ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ इस व्यवस्था ने हम जमींदारों में कितनी विलासिता, कितना दुराचार, कितनी पराधीनता और कितनी निर्लज्जता

---

१. गोदान, पृ० सं० १५,
२. गोदान, पृ० सं० १५,

भर दी है, यह मैं खूब जानता हूँ; लेकिन मैं इन कारणों से इस व्यवस्था का विरोध नहीं करता < < < < < इस शान को निभाने के लिए हमें अपनी आत्मा की इतनी हत्या करनी पड़ती है कि हममें आत्माभिमान का नाम भी नहीं रहा । < < < < <प्रगति का जरासी आहट पाते ही हम कांप उठते हैं < < < < हमें अपने उपर विश्वास नहीं रहा, न पुरुषार्थ ही रह गया"[1] ।

५८- राय साहब अपने व्यक्तित्व को ऊँचा दिखाने के लिए किस चतुराई से वह अपनी बुराई स्वीकार करके भी अपने व्यक्तित्व पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ने देते । वह अपनी बुराई कह कर, अपने उज्ले पक्ष की प्रतिष्ठा करके, सुनने वाले को भुलावे में डाल देते हैं । एक बार जेल जाकर, इसी के सहारे अपनी सब बुराइयों को छिपा जाना चाहते हैं । वह जिस वातावरण में पले हैं, जन्म से रहे हैं, उसको एक-दम छोड़ना उनके बस में नहीं ।

५९- रायसाहब अपनी स्वार्थ-सिद्धि में इतने बावले हो गए हैं कि सब तरह से तैयार हैं, बस, उनका स्वार्थ पूरा होना चाहिए । यदि कहीं अपने को बुरा कह कर काम निकलता है तो अपने को सब से बुरा कहने को उद्यत हैं । यदि कहीं क्षमा मांगने से, खुशामद से काम चलता है तो वह ऐसा करने में भी हिचकते नहीं । कार्य-सिद्ध होना चाहिए, यही राय साहब का लक्ष्य है । राय साहब को कोई भी निंदनीय कार्य करने में संकोच नहीं,

---

१. गोदान, पृ० सं० ५४,

वह रिश्वत देते हैं, दीवाली-दशहरा पर बैना भेजते हैं, दावतें करते हैं। राय साहब यह स्वयं स्वीकार करते हैं कि अगर जमींदार और ताल्लुकेदार धर्मात्मा बन कर रहें तो उनका जिन्दा रहना कठिन है। एक बार मन में इच्छा उत्पन्न होने पर, उसे पूरा करने में वे ऊँच-नीच सब कुछ करने को उद्यत रहते हैं।

६०- इस प्रकार अपने बुद्धि-बल से, धन-बल से, जन-बल से भौतिक उन्नति करने के पश्चात् भी राय साहब शान्तिपूर्वक नहीं रह पाते। भौतिक पदार्थों के पीछे, यश के पीछे, दिन-रात चक्कर काटने वाले राय साहब सब कुछ प्राप्त करके भी अशान्त हैं। रायसाहब सब कुछ प्राप्त करके भी अशान्त हैं। रायसाहब दूसरों का शोषण करके स्वयं मोटा होना चाहते हैं। इसलिए वह अपने स्रष्टा की भावना को पूर्ण करने में पर्याप्त सफल हैं।

चन्द्र प्रकाश खन्ना :

६१- प्रेमचन्द के शब्दों में " खन्ना धनवान् हैं, रसिक हैं, मिलनसार हैं, रुपवान् हैं, अच्छे खासे पढ़े लिखे हैं और नगर के विशिष्ट पुरुषों में हैं। ××××× खन्ना के पास विलास के ऊपरी साधनों की कमी नहीं, अव्वल दर्जे का बंगला है, अव्वल दर्जे का फर्नीचर, अव्वल दर्जे की कार और अपार धन ×××× खन्ना अपने गाहकों के साथ जितना ही मीठा और नम्र था, घर में उतना ही कटु और उद्दंड ×××× शिष्ठता उसके लिये केवल दुनिया को ठगने का एक साधन थी, मन का संस्कार नहीं"[१]

६२- मिस्टर खन्ना का यह ठाट बाट, उसकी प्रकृति और बनावटी शिष्टाचार सब कुछ गरीबों की लूट का प्रतिफलन् है। अर्थ-व्यवस्था में जमीदारी प्रथा ने कृषकों का शोषण किया है तो पूंजीवादी व्यवस्था में मजदूरों को शोषण खन्ना ऐसे पूंजीपतियों द्वारा हुआ है। पूंजीपतियों को जमींदारों से सहारा मिला। ग्रामों में यदि जमींदार ने किसान को चूसा तो नगर में पूंजीपति शोषक बन गया। खन्ना पूंजीपति हैं, बैंक के मैनेजर, शक्कर मिल के मैनेजिंग-डायरेक्टर। खन्ना की दृष्टि में व्यापार मित्रता, मानवता आदि सब उदात्त गुणों से ऊपर है। व्यापार के क्षेत्र में केवल व्यापार का ध्यान रखना पड़ता है। खन्ना व्यापार करते समय किसी को मित्र नहीं समझते। राय साहब जैसे ताल्लुकेदार को भी खन्ना की खुशामद करनी पड़ती है। जब राय साहब जैसे इसके पास ऋण लेने आते हैं तो सुनिए खन्ना साहब की व्यापारिक-वार्तालाप—"बैंक ने एक तरह से लेन-देन का काम बन्द कर दिया है। मैं कोशिश करूंगा कि आपके साथ खास रियायत की जाए; लेकिन

---

१. गोदान,- पृ० सं० - १८१, १८२,

Business is business, यह आप जानते हैं । पर मेरा कमीशन क्या रहेगा? मुझे आपके लिए ख़ास-तौर पर सिफ़ारिश करनी पड़ेगी < < < < < राय साहब का मुँह गिर गया । खन्ना उनके अन्तरंग मित्रों में थे < < < < और यह उनसे कमीशन की आशा रखते हैं, इतने बेमुरव्वती? आखिर वह जो इतने दिनों से खन्ना की खुशामद करते हैं, वह किस दिन के लिए? < < < < < राय साहब उदास मन से बोले—आपकी जो इच्छा हो; लेकिन मैं आपको अपना भाई समझता था ।"[1]

६३- "खन्ना ने कृतज्ञता के भाव से कहा—यह आपकी कृपा है । मैंने भी सदैव आपको अपना बड़ा भाई समझा है, और अब भी समझता हूँ । कभी आपसे कोई पर्दा नहीं रक्खा------लेकिन व्यापार एक दूसरा ही क्षेत्र है । यहाँ कोई किसी का दोस्त नहीं, कोई किसी का भाई नहीं । < < < < <कल दफ़्तर के वक्त आएं । लिखा-पढ़ी करलें बस, बिजनेस खत्म।"[2] खन्ना की यही व्यावसायिकता उनके चरित्र के उत्तम अंश पर सदा छायी रहती है, जिसके फलस्वरूप वह निन्द्यतम उपायों का अवलम्ब लेते है । एक पक्के पूँजीपति की भाँति ही वह धन के उपासक हैं । उनकी सारी आत्मिक, बौद्धिक और शारीरिक शक्तियों का उपयोग धन की उपासना में ही व्यय होता है ।

६४- पूँजीपति अर्थ-व्यवस्था की मूलभूत विशेषताएं अर्थ और काम खन्ना में पराकाष्टा पर है । काम व अर्थ आधुनिक अर्थ-व्यवस्था की मुख्य देन हैं । खन्ना काम-तृप्ति के लिए आधुनिक ढंग की महिला मि० मालती के पीछे भागते हैं—"मालती बरसों खन्ना की हृदयश्वरी रह चुकी थीं; पर उसे उन्होंने सदैव खिलोना समझा था । इसमें सन्देह नहीं कि वह

१.गोदान, पृ० सं०- २३६,
२.गोदान, पृ० सं०- २३६,

खिलौना उन्हें बहुत प्रिय था। उसके खो जाने या टूट जाने या छिन जाने पर वह खूब रोते .... लेकिन थी वह (मालती) खिलौना ही ...... वह (खन्ना) कभी उसके (मालती) विलास आवरण को छेद कर उसके अन्त:करण तक न पहुंच सके थे"[१]

६५- खन्ना की अर्थ-लौलुपता का चित्र भी लज्जास्पद है, लेकिन है वर्तमान अर्थ--व्यवस्था का यथार्थ रूप ही, जो मानवता विघटन की ओर उन्मुख है। "मेरा नाम खन्ना है------ पहली मिल में हमने २० प्रतिशत का नफा दिया। मैंने प्रोत्साहित होकर यह मिल खोला-------मैंने बैंक के दो लाख इसमें लगा दिए--------मैंने अपने सिद्धान्तों की कितनी हत्या की है। कितनी रिश्वतें दी हैं, कितनी रिश्वतें ली हैं। किसानों की ऊख तौलने के लिए कैसे आदमी रक्खे, कैसे नकली बाट रक्खे----------"[२]

६६- इस प्रकार खन्ना काम और अर्थ की चिन्ता में अपना जीवन व्यतीत करता है और अन्त में दिवालिया तक हो जाता है। "मैं एक घंटा नहीं, आध घंटा पहले दस लाख का आदमी था। लेकिन अब जिस मकान में मैं रहता हूं वह मेरा नहीं है, जिस बर्त्तन में खाता हूं वह भी मेरा नहीं है--------वह खन्ना अब धूल में मिल गया।"[३]

६७- खन्ना अपना सर्वस धन पिपासा में समाप्त कर देते हैं और अन्त में उनकी निर्जीव, निराश, आहत आत्मा सान्त्वना के लिए व्याकुल हो उठती है। अपनी पत्नी गोविन्दी के आश्रम में ही उन्हें सच्ची स्नेह में डूबी सान्त्वना मिलती है। "वही गोविन्दी जिस पर हमेशा उन्होंने

---

१. गोदान,- पृ० सं०- २८८,
२. ,, ,, ,,- २६३,
३. ,, ,, ,,- २६३,

ज़ुल्म किए, जिसका हमेशा अपमान किया, जिसको सदैव जीवन का भार समझा, जिसकी मृत्यु की सदैव कामना करते रहे, वही इस समय जैसे अंचल में आशीर्वाद और मंगल और अभय लिए उन पर वार रही थी । ^ ^ ^ ^ ^ ^ ^ इस दुर्बलदशा में, इस घोर विपत्ति में मानो वह उन्हें कंठ से लगा लेने के लिए खड़ी थी ।"[१]

६८- खन्ना ने अपनी इस पतिव्रत साध्वी पत्नी का कभी आदर न किया था, मालती के तितलीपन पर मुग्ध थे । गोविन्दी के धैर्य्य, त्याग, शील और प्रेम का सदैव उन्होंने तिरस्कार ही किया था । रूप के पुजारी मालती के आगे पीछे शलभ की भांति मंडराया करते थे । खन्ना धन और वैभव से मालती को अपने वश में करना चाहते थे और मालती उन्हें बन्दर की तरह नचाती थी—"खन्ना व्यथित स्वर में बोले—मैं तो केवल उसके रूप का पुजारी था ^ ^ ^ ^ ^ तोते से ज्यादा निठुर जीव और कौन होगा; लेकिन केवल उसके रूप और वाणी पर मुग्ध होकर लोग उसे पालते और पिंजरे में रखते हैं । मेरे लिए मालती उसी तोते के समान थी ^ ^ ^ ^ ^ इसके पीछे मैंने हजारों रुपए बिगाड़ दिए । जब उसका रुक्का पहुंचा, फौरन रुपए मेरी कार आज भी उसकी सवारी में है । उसके पीछे मैंने अपना घर चौपट कर दिया । हृदय में जितना रस था, वह ऊसर की ओर इतने वेग से दौड़ा कि दूसरी ओर का उद्यान बिलकुल सूखा रह गया ।"[२] मालती खन्ना का अपमान करती है और फिर उसकी भूल का समाधान भी कर देती है—"मैं रूपवती हूं । तुम भी मेरे अनेक चाहने-वालों में से एक हो । वह मेरी कृपा थी जहां मैं औरों के उपहार लौटा देती थी, तुम्हारी सामान्य से सामान्य चीजें भी धन्यवाद के साथ स्वीकार कर लेती

---

१. गोदान,- पृ० सं०- २६४,

२. गोदान,- पृ० सं०- २३७,

थी और जरूरत पड़ने पर तुमसे रुपए भी माँग लेती थी । अगर तुमने धनोन्माद में इसका कोई दूसरा अर्थ लगा लिया हो तो---------। मगर यह समझ लो धन ने आज तक किसी नारी के हृदय पर विजय नहीं पायी ।"[१]

६६- मिल जलने पर और मजदूरों के हड़ताल के बाद खन्ना का दूसरा रूप भी हमारे सामने आता है । प्रेमचन्द के शब्दों में—"अन्य कितने ही प्राणियों की भाँति खन्ना का जीवन भी दोहरा या दु-रुखी था । एक ओर वह त्याग और जन-सेवा और उपकार के भक्त थे, तो दूसरी ओर स्वार्थ, विलास और प्रभुता को ‹ ‹ ‹ ‹ कदाचित् उनकी आत्मा का उत्तम आधा सेवा और सहृदयता से बना हुआ था, मद्धिम आधा स्वार्थ और विलास से"[२]

७०- प्रेमचन्द की आदर्शोन्मुख अभिरूचि ने खन्ना के व्यक्तित्व में सेवा और सहृदयता के बीच प्रदर्शित करके, उसके चरित्र में विकास उपस्थित किया है । खन्ना की मिल में आग लगती है लेकिन इसी संकट की स्थिति में खन्ना के अन्त:करण का परिष्कार होता है । धन के बढ़ाने के लिए जो जो कुकर्म किए थे वे सब उनकी आँखों के सामने नाचने लगते हैं । उसकी आत्मा पिघल उठती है । यदि उसकी पत्नी गोविन्दी ने सहारा न दिया होता तो वह मृत्यु का ही आवाहन करते लेकिन ऐसे गाढ़े समय में गोविन्दी उसकी आत्मा का परिष्कार करने के लिए, मानवता का उज्जवल रूप प्रस्तुत करती है—"अब तक तुम्हारे जीवन का अर्थ था आत्मसेवा, भोग और विलास ।

---

१. गोदान,- पृ० सं०- २४३,

२. गोदान,- पृ० सं०- २८६,

देव ने तुम्हें उस साधन में वंचित करके तुम्हें ज्यादा ऊँचे और पवित्र जीवन का रास्ता खोल दिया है। x x x x x x धन खोकर अगर हम अपनी आत्मा को पा सकें तो यह कोई महँगा सौदा नहीं है। न्याय सैनिक बन कर लड़ने में जो गौरव, जो उल्लास है, क्या उसे इतनी जल्दी भूल गए?"[१] गोविन्दी सहचर्य से खन्ना में मनुष्यता का उदय होता है। आपसी जलन और अशान्ति समाप्त हो जाती है। अब खन्ना शोषक और पूँजीपतियों के प्रतीक होकर भी मानव धर्म के प्रेरक हैं।

---

१. गोदान, पृ० सं०- २६५,

मेहता :

७१- `गोदान` में मेहता की प्राण-प्रतिष्ठा एक दार्शनिक और विचारक के रुप में हुई है । उनके विचारों में गम्भीरता, नारी जाति के प्रति श्रद्धा और ममत्व है । वस्तुत: यह प्रेमचन्द के विचारों के प्रतिनिधि और आदर्श हैं । लेकिन प्रेमचन्द ने इनमें सजीवता लाने के लिए, उसे सजीव व्यक्तित्व प्रदान किया है । मेहता का सैद्धान्तिक-व्यक्तित्व अपने में परिपूर्ण है । दर्शन-शास्त्र के प्राध्यापक होने के कारण जगत् का गम्भीर विश्लेषण किया है, मानव जीवन के अध्ययन, विवेचन ने पर्याप्त विवेक-शक्ति प्रदान की है ।

७२- मेहता के जीवन का दूसरा पक्ष अत्यन्त अव्यावहारिक है । अविवाहित होने के कारण उनको व्यावहारिक जगत का विशेष अनुभव नहीं है । मेहता सबको अपने विशेष जीवन सिद्धान्तों के अनुरुप व्यवहार करता देखना चाहते हैं । मनुष्य को वे प्राकृतिक रूप में देखना चाहते हैं और जीवन को आनन्दमय बनाने के पक्षपाती हैं । नारी के विषय में उनका आदर्श ऊँचा है । आदर्श नारी को ही वे आदर्श पत्नी समझते हैं । इसी से गोविन्दी को श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं । इसी श्रद्धा की प्रेरणा से मेहता ने गोविन्दी के पति खन्ना को मालती के प्रभाव से मुक्त किया । यद्यपि वे अनीश्वरवादी थे, पर सेवा धर्म में विश्वास रखते थे । मालती में परिवर्तन उनके शुभ-संयोग के कारण ही था । सब कुछ होने पर भी मेहता दार्शनिक थे । ग्रह-प्रबन्ध में असफल, एक हजार रुपए कमाने पर भी खाली हाथ रहते थे । मालती के सहयोग से मेहता को व्यावहारिकता का ज्ञान हुआ । मालती के हृदय में जो स्निग्धता थी, उसने मित्रता का रुप धारण कर दोनों की आत्मा को सदैव के लिए मिला दिया ।

७३- मेहता जीवन के विकास को अपना लक्ष्य बनाता है, परन्तु स्वयं वास्तविक जीवन से ऊपर विचरने में सलग्न रहता है । प्रेम का व्यावहारिक रुप उसके सम्मुख नहीं रहता । "मालती के पूछने पर-बताओ तुम कैसे प्रेम से सन्तुष्ट होगे? 'बस यही कि जो मन में हो, वही मुख पर हो । मेरे लिए रंग रूप और हाव-भाव और नाज़ो-अन्दाज का मूल्य उतना ही है, जितना होना चाहिए । मैं वह भोजन चाहता हूं, जिससे आत्मा की तृप्ति हो ।"[१] मेहता प्रेम की पूर्णता के लिए त्याग, तपस्या और सेवा की उपयोगिता को विशेष रूप से स्वीकार करता है । मानवमन के अध्ययन ने अपनी विलक्षण शक्ति का उसे अभिमान है । मेहता को विश्वास है कि स्वांग रुप रचकर उथलेपन से उसके हृदय को स्पर्श नहीं कर सकता । स्वच्छन्द जीवन से मेहता के मन में अनुराग उत्पन्न होता है । उनकी आत्मा प्रकृत के विराट ज्ञान की, उस प्रकाश की उस अगम्यता की, उसके प्रत्यक्ष विराट रुप में देखती है ।

७४- प्रोफेसर मेहता ने नारी जीवन पर भी गम्भीरता से मीमांसा की है । वह पुरुष और स्त्री का कार्य क्षेत्र पृथक-पृथक स्वीकार करते हैं । स्त्रियों का पुरुष क्षेत्र में आना, उसकी धारणा के अनुसार युग का कलंक है । मेहता के शब्दों में—"यह पुरुषों का षड्यन्त्र है । देवियों को ऊंचे शिखर से खींचकर अपने बराबर बनाने के लिए, उन पुरुषों का जो कायर हैं, जिनमें वैवाहिक जीवन का दायित्व संभालने की क्षमता नहीं है । ××
× × × × × पश्चिम में इनका षड्यन्त्र सफल हो गया और देवियां तितलियां बन गयीं × × × × × × × × भारत में भी × × × × शिक्षित बहनें × ×
× गृहणी का आदर्श त्याग कर तितलियों का रंग पकड़ रही हैं ।"[२] मेहता

---

१. गोदान,- पृ० सं०- ६०,
२. गोदान,- पृ० सं०- १६५,

प्राणियों के विकास में स्त्री के पद को, पुरुषों के पद से श्रेष्ठ समझते हैं। मेहता के शब्दों में "इसलिए जब मैं देखता हूं, हमारी उन्नत विचारों वाली देवियां उस दया श्रद्धा और त्याग के जीवन से असन्तुष्ट होकर संग्राम और कलह और हिंसा के जीवन की ओर बढ़ रही हैं और समझ रही हैं कि यही सुख का स्वर्ग है तो मैं उन्हें बधाई नहीं दे सकता।"[१] "स्त्री पुरुष से उतनी ही श्रेष्ठ है, जितना प्रकाश अन्धेरे से। मनुष्य के लिए क्षमा और त्याग और अहिंसा जीवन के उच्चतम आदर्श हैं। नारी इस आदर्श को प्राप्त कर चुकी है"[२]

७५- मेहता नारी को केवल माता कहता है।[३] इसके अतिरिक्त वह जो कुछ है, वह सब मातृत्व का उपक्रम मात्र। मातृत्व उनकी दृष्टि में संसार की सबसे बड़ी साधना, सबसे बड़ी तपस्या सबसे बड़ा त्याग और सबसे महान विषय है। नारी वास्तव में नारी है, यदि वह अपने जीवन का, व्यक्तित्व का नारीत्व को लय कर दे।

७६- मेहता के जीवन का आदर्श सात्त्विक, पवित्र, और सच्चा है। उनके विचार जो उन्होंने नारी के प्रति, उसके अधिकारों के प्रति जागरूक रूप में प्रकट किए हैं इस प्रकार हैं—"किन शब्दों में कहूं कि स्त्री मेरी नजरों में क्या है। संसार में जो कुछ सुन्दर है, उसी की प्रतिमा को मैं स्त्री कहता हूं। मैं उससे यह आशा रखता हूं कि उसे मैं मार भी डालूं तो प्रतिहिंसा का भाव उसमें न आए"[४]

---

१. गोदान,- पृ० सं०-, १६०,
२. गोदान,- पृ० सं०- १६१,
३. गोदान,- पृ० सं०- २००,
४. गोदान,- पृ० सं०- १४८,

७७- मेहता पूर्ण रूप से आदर्शवादी हैं। यथार्थता से ऊपर वह अपने बनाए सैद्धान्तिक जगत में परिभ्रमण करते हैं। मानव जीवन की इतनी गम्भीर विवेचना करने के उपरान्त भी वह अपनी आदर्श-प्रियता अथवा जीवन-संगिनी में जो बात देखना चाहते हैं वह यथार्थता को स्पर्श नहीं कर सकती। "मेरे जेहन में औरत वफ़ा और त्याग की मूर्ति है, जो अपनी बेज़बानी से, अपनी कुर्बानी से, अपने को बिलकुल मिटा कर पति की आत्मा का एक अंश बन जाती है। x x x x x स्त्री पृथ्वी की भाँति धैर्यवान है, शान्ति सम्पन्न है, सहिष्णु है।"[1]

७८- मेहता सैद्धान्तिक व्यक्तित्त्व के धनी थे और व्यावहारिक दृष्टि से अपूर्ण। यथार्थता से दूर आदर्श शिखर पर बैठ कर संसार पर अपनी ही धारणा का प्रकाश देखना चाहते हैं। मालती जो 'गोदान' का महत्वपूर्ण स्त्री-पात्र है, उसके निकट सम्पर्क में आने से मेहता का आदर्शवाद के नीचे दबा, कुचला, व्यक्तित्व अब बाहर दीख पड़ता है। मेहता के आदर्श विचार और उनका नारी का महानतम् एवं आदर्श पक्ष, देश और जाति के लिए उपयोगी है। मेहता मानव जीवन की एकता में विश्वास करते थे। उनका उद्देश्य मानव जाति को एक दूसरे के समीप लाना, भेद-भाव मिटाना और मातृ भाव को दृढ़ करना था। अपने उद्देश्य के निमित्त उन्होंने सेवा पथ ग्रहण किया। मेहता अपने जीवन का आदर्श इस प्रकार प्रकट करते हैं। "मैं प्रकृति का पुजारी हूँ और मनुष्य को उसके प्राकृतिक रूप में देखना चाहता हूँ x x x x x x जीवन मेरे लिए आनन्दमय क्रीड़ा है, सरल, स्वच्छन्द जहाँ कुत्सा, ईर्ष्या और जलन के लिए कोई स्थान नहीं x x x मैं भूत की चिन्ता नहीं करता, भविष्य की परवा नहीं करता। मेरे लिए वर्तमान ही सब कुछ है।"

---

१. गोदान,- पृ० सं०- १४७,

अमरकान्त

७६. " जिन्दगी की वह उम्र, जब इन्सान को मुहब्बत की सबसे ज्यादा जरूरत होती है, बचपन है । उस वक्त पौधे को तरी मिल जाए, जिन्दगी भर के लिए उसकी जड़ें मजबूत हो जाती हैं । उस वक्त खुराक न पाकर, उसकी जिन्दगी खुश्क हो जाती है । . . . . . वही भूख मेरी जिन्दगी है ।" (१) अमरकान्त के जीवन की यही समीक्षा है । वह धनी मानी पिता सेठ समरकान्त का पुत्र है लेकिन उसके चरित्र का निर्माण अभाव और दुर्व्यवहार की परिस्थितियों में होता है । अभाव आर्थिक नहीं, स्नेह का है ।" उस सात साल के बालक ने नयी मां का बड़े प्रेम से स्वागत किया, लेकिन उसको शीघ्र मालूम हो गया । उसकी नयी माता उसकी जिद और शरारतों को क्षमा दृष्टि से नहीं देखती ।
" ------- (२)

८०. बचपन से ही पिता के स्नेह के बदले तिरस्कार और विमाता के दुर्व्यवहार से अमरकान्त के चरित्र का विकास अस्वस्थ, असंतुलित और अविकसित ढंग से होता रहा । पिता के द्वेष ने पिता और पुत्र में असामान्यता उत्पन्न कर दी ।" जिस बात का पिता ने विरोध किया, वह पुत्र के लिए मान्य हो गयी और जिसको सराहा वह त्याज्य । महाजनी के हत्कंडे और षड्यंत्र उसके सामने रोज ही रचे जाते थे । उसे इस व्यवहार से घृणा हो ती थी ।" (३) अमरकान्त के इस व्यवहार का कारण कोई पूर्व-संस्कार न था बल्कि अमरकान्त के चरित्र-निर्माण में `पितृ-द्वेष` का प्रमुख स्थान है जिसकी छाया में उसका जीवन विभिन्न रूपों में उठता गिरता है । प्रेमचन्द के शब्दों

---

(१) कर्मभूमि - पृ०सं० १३५
(२) कर्मभूमि - पृ०सं० ६
(३) कर्मभूमि - पृ०सं० ६

में अमरकान्त देह का दुर्बल , बुद्धि का मन्द । पौधे को कभी मुक्त प्रकाश न मिला । कैसे बढ़ता , कैसे फैलता । बढ़ने और फैलने के दिन कुसंगति और असंयम में निकल गए । " (१)

८१. बचपन के पश्चात किशोरावस्था में अमरकान्त का विवाह धनी परिवार में ऐसी कन्या से हुआ जो "त्याग की जगह भोग, शील की जगह तेज, कोमल की जगह तीव्र संस्कार लिए हुए थी । सिकुड़ने और सिमटने का उसे अभ्यास न था । वह युवक प्रवृत्ति की युवती, ब्याही गयी युवती प्रकृति के युवक से जिसमें पुरुषार्थ का कोई गुण न था ।" (२)

८२. अमरकान्त अपनी खुशियों से निराश होकर संयमी, अल्पव्ययी तथा परिश्रमी हो गया । पिता के विशाल भवन में उसके लिए सिर्फ एक कोठरी थी जिसमें पिता के विरोध करने पर भी चर्खा चलाया जाता और उसको आत्मशुद्धि का साधन बताता । अमरकान्त ने अपने जीवन में माता के स्नेह का सुख न जाना था, इसीलिए मन सदैव आश्रय और आधार के लिए विभिन्न मार्गों का अवलम्ब लेता था । माता रेणुका का क्षणिक स्नेह पाकर पुन: एक बार अमरकान्त की आत्मा अपने में शक्ति और उत्साह का अनुभव करने लगी । कीर्ति - लाभ के सुख को पाने के अभ्यास और परिमार्जन से दैनिक समाचार और सामयक साहित्य से अमरकान्त को रुचि हुई । दैनिक समाचार पत्रों के पढ़ने से अमरकान्त में राजनैतिक ज्ञान का विकास हुआ । अमरकान्त का जीवन दो-मुखी हो गया । एक ओर पितृ-द्वेष था, दूसरी ओर सामाजिक वातावरण, जिसमें उसको त्याग, सेवा-संयम और पुरस्कार की आशा थी, जिससे वह कीर्ति-लाभ पा सकता था । यह अमरकान्त की आत्मिक भूख थी, लालसा थी जो उसके मन और विचारों का निर्माण कर रही थी ।

---

(१) कर्मभूमि - पृ०सं० ७

(२) कर्मभूमि - पृ०सं० ८

८३. पिता-पुत्र का पारस्परिक मनोमालिन्य सैद्धान्ति रूप में प्रकट हुआ । पितृ-द्वेष धन तक ही सीमित न रहा अपितु धन की प्रभुता से उत्पन्न समस्त अन्याय और अनीति का प्रतिकार कर उसके मन की कटुता को एक सामयिक आधार मिल गया जिससे उसके जीवन को निश्चित दिशा मिली । सामाजिक विषमता और अविचार से पीड़ित समस्त प्राणियों के उद्धार के निमित्त अमरकान्त ने सेवा का पथ अपनाया । परोपकार के लिए जीवन का उपयोग उसका लक्ष्य बन गया । आत्म-वेदना की अनुभूति ने लोक-वेदना की गहराई को अनुभव प्रदान किया । अमरकान्त की स्वाभिमान प्रकृति देश की पराधीनता के दुस्सह भार को नहीं सह पायी । विदेशियों के अनाचार देखकर वह सोचता " इन टके के सैनिकों की इतनी हिम्मत कैसे हुई ? यह गोरे सिपाही इंगलैण्ड की निम्नतम श्रेणी के मनुष्य होते हैं । इनका साहस कैसे हुआ ? इसीलिए कि भारत पराधीन है । यह लोग जानते हैं कि यहां के लोगों पर उनका आतंक छाया हुआ है । वह जो अनर्थ चाहें करें । कोई चूं नहीं कर सकता । यह आतंक दूर करना होगा । इस पराधीनता की जंजीर को तोड़ना होगा ।" (१) देशवासियों के साथ शासक-मंडल की अनीति देखकर अमरकान्त का रक्त खौलने लगता था । पराधीनता से देश को मुक्त कराने के निमित्त अमरकान्त राष्ट्रीय उत्थान में संलग्न समस्याओं के कार्यक्रम में सक्रिय सहयोग देने लगा । गांव में अन्याय के राज्य के विरुद्ध वह जन-आन्दोलन का नेता बना । अमरकान्त की सुनिश्चित धारणा थी कि अन्याय औरअनीति के सम्मुख नत होने से अच्छा है कि इनका विरोध करते हुए मर मिटा जाए । अमरकान्त गांधी-युग में उत्पन्न हुआ था । इस कारण समाज और मानव-जाति के प्रति जो एक

---

(१) "कर्मभूमि" पृ०सं०- २७

गहरी निष्ठा की लहर उठी थी , उसमें अमरकान्त बह गया । लेकिन निरन्तर परिश्रम, अभ्यास और सेवा करने पर भी अमरकान्त का विद्रोही मन, सुख-सन्तोष और आशा को न पा सका । अमरकान्त जीवन भर कर्म-परायण रहकर भी कर्म के उद्देश्य को अनुभव न कर सका ।

८४. अमरकान्त ने अपने जीवन में कुछ ऐसी अशिष्ट, अनैतिक, अस्वाभाविक चेष्टाएं कीं जो उसके जीवन और समाज के लिए अशोभनीय और कलंक बन गईं । पठानिन की पुत्री सकीना से उसका प्रेमालाप अशोभनीय था । अमरकान्त का अपनी पत्नी सुखदा और एक मात्र पुत्र को छोड़ कर भागना कायरता पूर्ण व्यवहार था । अमरकान्त का त्यागमय जीवन भी अस्वाभाविक ढंग का है जो निराशापूर्ण है । प्रेमचन्द के शब्दों में " अब तक उसके जीवन का कोई लक्ष्य न था, कोई आदर्श न था, कोई व्रत न था । x x x x x x x वह एक प्रकार से उपयोगितावाद का उपासक था । इसी सिद्धान्त को मन में, यद्यपि अज्ञात रूप से, रखकर वह अपने कर्तव्य का निश्चय करता था । तथ्य चिन्तन का उसके जीवन में कोई स्थान न था । x x x x x x x उसमें स्थिरता न थी , संयम न था, इच्छा न थी । उसकी सेवा में भी दम्भ था, द्वेष था । उसने दम्भ में सुखदा की उपेक्षा की उस विलासिनी के जीवन में जो सत्य था, उस तक पहुंचने का उद्योग न करके वह उसे त्याग बैठा ।" (१)

८५. अन्त में जब अमरकान्त की पत्नी सुखदा स्वयं अपने विलासमय जीवन को त्याग कर लोक-सेवा के पथ पर अग्रसर होती है तो अमरकान्त का भटकता हृदय, निराशावादी मन, आशा और शक्ति का अनुभव करता

---

(१) " कर्मभूमि " - पृ०सं० -३७५

है और स्वत: सुखदा की ओर खिंच आता है । इस आत्मिक सामंजस्य से ही अमरकान्त जीवन का सुख और उसकी सार्थकता का अनुभव करता है । मन की स्वस्थता से अमरकान्त के मन में पिता के प्रति श्रद्धा का भाव उदय होता है । वह सोचता है — " जिसे उसने माया का दास और लोभ का कीड़ा समझ लिया था जिसे वह किसी प्रकार के त्याग के अयोग्य समझता था, वह आज देवत्व के ऊंचे सिंहासन पर बैठा हुआ था । प्रत्यक्ष के नशे में उसने किसी न्यायी, दयालु इश्वर की सत्ता को कभी स्वीकार न किया था । पर इन चमत्कारों को देखकर अब उसमें विश्वास और निष्ठा का जैसे एक सागर सा उमड़ पड़ा था । उसे अपने छोटे छोटे व्यवहारों में भी इश्वरीय इच्छा का आभास होता था । जीवन में अब एक नया उत्साह था, जीवन अब उसके लिए अन्धकारमय न था । दैवी इच्छा में अन्धकार कहां ?"(१) यही अमरकान्त का आदर्शपूर्ण जीवन है, जो विषाद की काली रेखाओं से गुजर कर सुख, सन्तोष और सेवा में रत हो जाता है । दैवी-इच्छा का ज्ञान होने पर वहआशावादी हो जाता है, स्नेह और वात्सल्य का उसमें उदय होता है । शील-निरूपण के इन्ही साधनों से प्रेमचन्द ने अमरकान्त के जीवन चरित्र को सजीव और स्वाभाविक रूप में चित्रित किया है ।

---

(१) " कर्मभूमि " — पृ०सं०- ३७६

विनय सिंह :

८६- विनय कुलीन घराने का नवयुवक है, जिसके चित्त में स्थिरता कम आवेश अधिक है। उच्च वर्ग की यह मूल विशेषता है कि वह अस्थिर बुद्धि के होते हैं भोग-विलास के मध्य उनकी विलक्षण बुद्धि क्षीण हो जाती है, उनमें मादकता का प्रवेश हो जाता है। सर्व गुण ग्राहकता, शान्त चित्त, सन्तोष यह उनकी स्थायी प्रवृत्ति नहीं रह पाती। स्वार्थ से उनका मन कलुषित होता है। विनय की माता जान्हवी उच्च अटारियों के दुर्गुणों से परिचित है, इसीलिए कठोर निर्मम के साथ अपने विनय को सच्चा देश सेवक बनाना चाहती है। आरम्भ से उसका लालन पालन अत्यधिक सादगी के साथ होता है। जान्हवी कहती है : "मैने बाल्यावस्था ही से उसे कठिनाइयों का अभ्यास कराना शुरू किया। x x x x x दस वर्ष की अवस्था तक केवल धार्मिक कथाओं द्वारा उसकी शिक्षा हुई x x x x और मुझे गर्व है कि विनय की शिक्षा-दीक्षा का भार जिस पुरुष पर रक्खा गया, वह इसके सर्वथा योग्य था।"[१] विनय को उसकी माँ एक आदर्श देश सेवक बनाना चाहती थी। माँ की आज्ञानुसार उसने ऐश्वर्य-वैभव का जीवन त्याग कर सेवा मार्ग अपनाया। लेकिन इतने कठोर अनुशासन में रहने पर भी मन की स्थिरता ने उसका साथ नहीं दिया इसीलिए विनय की बहन इन्दु कहती है : "इसीलिए की तुम अपने को धोखा दे रहे हो ; लेकिन वास्तव में तुम उससे गहरे पानी में हो, जितना तुम समझते हो। क्या तुम समझते हो तुम्हारा कई कई दिनों तक घर में न आना, नित्य सेवा-समिति के कामों में व्यस्त रहना, मि० सोफिया की ओर आँख उठाकर न देखना, उसके साये से भागना,

---

१. `रंगभूमि` पृ० सं०- ६१

उस अंतर्द्वन्द्व को छिपा सकता है, जो तुम्हारे हृदयतल में विकराल रूप से छिड़ा हुआ है ?"[१]

८७- इन्दु भाई का भेद स्पष्ट शब्दों में व्यक्त कर देती है। विनय की इस व्यथा का कारण उसपर कठोर निग्रह है। माँ पुत्र का सामान्य एवं स्वाभाविक विकास का ध्यान नहीं रखती। विनय की कोमल प्रवृत्तियों का ह्रास चाहती है, वह नहीं सोचती जीवन में सभी उद्वेगों का महत्वपूर्ण स्थान है, किन्तु उनमें संचार शक्ति की प्रेरणा का प्रश्न है। विनयसिंह सोफिया के सम्पर्क में आने पर, उससे प्रेम करने लगते है क्योंकि विनय ने सोफिया के अन्दर भी उन्हीं गुणों को पाया, जिन गुणों की प्रेरणा से वह स्वयं उठ रहा था। सोफिया के चरित्र के विषय में जान्हवी कहती हैं। "तुम सोफी वहीं, स्त्री के रूप में विनय हो ...... यदि धार्मिक बाधा न होती, तो .... विनय के विवाह का सन्देशा कभी का भेज दिया होता"[२] जान्हवी कट्टर सनातन-धर्मी है वह कल्पना भी नहीं कर सकती कि विधर्मी उसकी बहू बने। यद्यपि अपने बहू के सभी गुण सोफिया में मानती है, लेकिन धर्म एक ऐसी गहरी खाई है कि दो हृदयों को मिलने नहीं दे सकता इसका परिणाम यह होता है विनय और साथ ही सोफिया दोनो का दुखपूर्ण अन्त होता है। उनका जीवन भी मरण है और मरण तो चिरस्थायी शान्ति है ही। वह उन्माद की दशा में जीवित रहता है। यद्यपि पूर्णरूपेण वह अपने उद्वेगों पर नियन्त्रण रखता है। उसका प्रेम भी आदर्श प्रधान है। विनय कहता है : "मेरे प्रेम में वासना का लेश भी नहीं। मेरे जीवन को सार्थक बनाने के लिए यह अनुराग ही काफी है।"[३] यह कहते कहते विनय को जैसे अपनी कोई भूल याद आ गयी : "यह मत समझो कि मैं सेवा-धर्म त्याग कर रहा हूँ। नहीं ऐसा न होगा, मैं अब भी सेवा मार्ग का अनुगामी रहूँगा;

---

१. रंगभूमि-, पृ० सं० ८८,
२. रंगभूमि-, पृ० सं० ९२,
३. रंगभूमि-, पृ० सं० ९८,

अन्तर केवल इतना होगा कि निराकार की जगह साकार की, अदृश्य की जगह दृश्यमान की भक्ति करूंगा।"[१] विनय आदर्श-प्रेमी की भांति ही प्रारम्भ में वह आदर्श समाज सेवक भी है जो यथेष्ट साहस और कष्ट सहिष्णुता का परिचय देता है। लेकिन विनय के ये आदर्शात्मक गुण आवेगमय हैं। इसीलिए उनमें शिथिलता आ जाती है। मां का चाबुक पड़ने पर विनय पुन: सुषुप्त अवस्था से जैसे जाग उठता है। जान्हवी पुत्र का जब यह रंग-ढंग देखती है तो : "विकसित, शान्त मुख-मंडल तमतमा उठता है, मानों बाग में आग लग गयी"[२]

८८- विनय तथा उसकी प्रेयसी सोफिया दोनों कल्पनाओं की दुनिया में विचरते हैं। आदर्शों और सिद्धान्तों को लेकर चलते है। लेकिन इधर विनय में शिथिलता आती है तो मां का सहारा मिल जाता है। सोफिया को स्वयं अपने मन को संयत करना पड़ता है और विनय को पाने के लिए नाना त्रिया-चरित्र खेलने पड़ते हैं। सोफिया स्वयं अपने मन की व्यथा व्यक्त कर देती है जिसमें गहरी वेदना है और साथ ही मन की सच्चाई : "मैने बड़ा धोखा खाया, पहले मैंने समझा था, उनसे केवल आध्यात्मिक प्रेम करूंगी। अब विदित हो रहा है आध्यात्मिक प्रेम या भक्ति केवल धर्म जगत की ही वस्तु है। स्त्री-पुरुष में पवित्र प्रेम होना असम्भव है।"[३] सोफिया सज्ञानता से प्रत्येक स्थिति का अनुभव करती है और सोचती है : "यह भी जानती हूं कि यह प्रेम मुझे ज्ञान के ऊंचे आदर्श से गिरा रहा है। हमें जीवन इसलिए प्रदान किया गया है कि सद्‌विचारों और सत्कार्यों से उसे उन्नत करें और एक दिन अनन्त ज्योति में विलीन हो जाएं ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ यह सब जानते हुए भी पतंग की भांति दीपक पर गिर रही हूं। इसीलिए तो प्रेम वह विस्मृति है, जो संयम्, ज्ञान और धारणा पर पर्दा डाल देता है ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ जिसे कोई बलात् खींचें लिए जाता हो, उससे कहना कि तू मत जा, कितना बड़ा अन्याय है"[४]

---

१. रंगभूमि,- पृ० सं०- ९८,
२. रंगभूमि,- पृ० सं०- १००,
३. रंगभूमि,- पृ० सं०- १५८,
४. रंगभूमि,- पृ० सं०- १५८,

८६- प्रारम्भ में विनय अदम्य साहस और अपनी सच्ची सेवा-भक्ति का परिचय देता है। उसकी सेवावृत्ति ही जसवंतनगर में उसे लोकश्रद्धा का पात्र बना देती है। यहाँ सच्चा सेवक एक चोट से पलट जाता है। सोफिया को विद्रोहियों के हाथ में पाकर विनय का मानसिक-सन्तुलन बिगड़ जाता है। अब वह राज्य-द्रोही से जनता का द्रोही बन जाता है। जनता पर भयंकर अत्याचार करने में वह राज्य के हाथ का यन्त्र बन जाता है। अनेक निरपराधी व्यक्ति सन्देशमात्र से क्रूरतम यातनाओं के शिकार होते हैं। "नर हत्या और न्याय हत्या"।[१] में वह राज्य का दाहिना हाथ बन जाता है। विनय मनसा, वाचा, कर्मणा से राज्य का सहयोग दे रहा था। विनय में प्रमाद का रंग छा गया था। सेवा और उपकार के भाव हृदय से सम्पूर्णता मिट गए थे[२]

६०- प्रेमचन्द के शब्दों में : "स्वार्थ कामना मनुष्य को कितना पतित कर देती है"[३] विनय उसका प्रत्यक्ष प्रमाण था। वह सूफिया के पीछे अन्धा हो जाता है और उसको अपनी आत्मा तक का ध्यान नहीं रह जाता, उसके स्वार्थ में आत्मगौरव जैसे धुल जाता है। विनय को अपने नैतिक पतन और ग्लानि का अनुभव तब होता है, जब स्वयं उसकी प्रेयसी सोफिया ही उसको प्रताड़ना देती है : "वाह! आपका आदर-सत्कार कैसे करूं ? x x x x x मेरे कारण आपने रियासत में अन्धेर मचा दिया, सैकड़ो निरापराधियों का खून कर दिया, कितने ही घरों के चिराग गुल कर दिए x x x x रमणियों को वैधव्य की गोद में बैठा दिया और सबसे बड़ी बात यह कि अपनी आत्मा को, अपने सिद्धान्तों को, अपने जीवन के आदर्शों को मटियामेट कर दिया x x x x x x x इसका उद्देश्य केवल उस नीच निरंकुशता को तृप्त करना था, जो

---

१. रंगभूमि,- पृ० सं०- ३१२,
२. वही ,, ,, ,,
३. रंगभूमि,- पृ० सं०- ३२१,

तुम्हारे अन्त:स्थल में सेवा का रूप धारण किए हुए बैठी हुई है । मैंने तुम्हारी प्रभुताशीलता पर अपने को समर्पित किया था, बल्कि तुम्हारी सेवा, सहानुभूति और देशानुराग पर । मैने इसीलिए तुम्हें अपना उपास्य देव बनाया था कि तुम्हारे जीवन का आदर्श उच्च था"[१] ।

६१- माँ और प्रेयसी की ताड़ना से पुन: विनय अपने को संयत् रखने का प्रयत्न करता है, परन्तु विनय के हृदय का रिक्त स्थान सदैव तृप्ति के लिए व्याकुल रहता है । प्रेमचन्द के शब्दों में : "हम पहले मनुष्य हैं, पीछे देश सेवक"[२] इस अज्ञानता के परिणाम स्वरूप माँ की शुभ मंगल कामनाएँ, स्नेह, दुलार तपस्या सभी निष्फल होती है और अन्त मे भी विनय पांडेपुर की घटनास्थल पर आवेश में जनता के सम्मुख अपने गोली मार लेता है । विनय ने अपनी जाति के साथ और सबसे अधिक अपनी पूज्य माँ के साथ जो विश्वास-घात किया था उसका कलंक अपने माथे से मिटाने के लिए हत्या कर लेता है । परन्तु क्या आत्म हत्या कालिमा धो सकती है ? यह आवेश में की गयी आत्म-हत्या 'वीर मृत्यु' कदापि नहीं हो सकती । यद्यपि माँ अपने पुत्र की मृत्यु से सान्त्वना पाने का प्रयत्न करती है ।

---

१. रंगभूमि,- पृ० सं०- ३२८,
२. रंगभूमि,- पृ० सं०- ४६५,

गोबर :

६२- गोबर नवयुवक ग्रामीण-पात्र है जिसका जन्म ग्रामीण समाज की उन पृष्ठभूमियों में होता है, जब कि महत्वपूर्ण परम्पराएं रूढ़िवादी व्यवस्था के कारण निष्प्राण हो गयी हैं। जीवन का उल्लास हृदय की वृत्ति नहीं है, परिस्थितियों को भूलने का प्रयत्न है। उनकी परिस्थितियों ने उनके जीवन का रस निचोड़ लिया है और जीवन को निम्नतर स्तरों में जकड़ दिया है।

६३- गोबर का चरित्र दो भागों में विभाजित है। अर्द्ध भाग में उसके गांव के जीवन का उल्लेख है। बाद में युवा होने पर वह गांव छोड़ कर नगर चला जाता है और वहां पूंजीवादी सभ्यता के बीच आता है। प्रेमचन्द गोबर को वास्तविक गोबर ही के रूप में नहीं रखना चाहते थे, गांव से निकलकर उसमें चेतनता का प्रादुर्भाव होता है और वह गम्भीर नवयुवक के रूप में समाज के सम्मुख आता है। गांव मेंगोबर का जीवन अन्धकारमय, उत्तर-दायित्व हीन था। वह नहीं जानता जिसका हाथ पकड़ा है उसको निभाना उसका कर्तव्य है। वह झुनिया को माता-पिता के सहारे छोड़ कर भाग जाता है। उसके संकटों का उसे तनिक भी ख्याल नहीं। माता पिता को पंचो के सम्मुख डाड़ भरना पड़ता है। सभी कष्ट झेलते है, केवल मोहवश और गोबर जब शहर से लौटता भी है तो भी माता-पिता के प्रति कोई श्रद्धा भावना नहीं। गोबर शान जमाते हुए कहता है : "मेरा दो तीन रूपए रोज का घाटा हो रहा है, यह भी समझती हो। x x x x x x x और अबकि मैं झुनिया को भी लेता जाऊंगा"[१] मां ममता भरी दृष्टि से ताकती रह जाती है और जब नन्हें से बालक और झुनिया को भेजने में संकोच करती है तो गोबर कहता है :" परदेश में भी संगी-साथी निकल आते हैं, अम्मा। और यह तो स्वारथ का संसार है। जिसके साथ चार पैसे गम खाये वही अपना। खाली हाथ तो मां बाप भी नहीं पूछते।"धनिया

---

१. गोदान, पृ० सं० २२६,

पुत्र के कटाक्ष को सह नहीं पाती, सन्नाटे में आ जाती है ; मेरा ही पुत्र कितना बदल गया । गोबर पिता को भी फटकारता है :"तो फिर तुम्हीं देना । मैं तो अपने हाथों अपने पांव में कुल्हाड़ी मारूंगा नहीं । मेरा गधापन था कि तुम्हारे बीच में बोला-तुमने खाया है तुम भरो, मैं क्यों अपनी जान दूं"[१] गोबर अपनी उजड्डता,अहम्मन्यता, धृष्टता से गांव के मुखियों का अपमान करता है, उनका उपहास उड़ाता है और टोली बना कर उसका सरपंच बना घूमता है । गोबर अपनी इस अल्लहड़ता की प्रवृत्ति, असन्तोष, विद्रोह भावना को लिए गांव में भागा-भागा फिरता है । गोबर के इस स्वभाव से माता-पिता तथा ग्रामवासी सभी क्षुब्ध हो उठे हैं । कभी पिता को अपशब्द कहना, कभी आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था को कोसना यही उसका काम है ।

६४- गांव से लौटने पर गोबर मिल में मजदूरी करता है । साथ ही उसमें पशुता भी बढ़ती है, वह शराब पीने लगता है । अपनी व्यवस्था के अनेकों दोष उसमें घर कर जाते हैं । मनुष्य का लोप होता जाता है और पशुता बढ़ती जाती है । गोबर निर्द्वन्द्व रह कर भी सुखी नहीं, उसका जीवन सुधार के विपरीत और गिरता जाता है लेकिन इसका मूल कारण उसके स्वभाव की उत्तरदायित्व हीनता ही है, जिसका अनुभव गोबर को बाद में होता है । मां-बाप को वह असहाय अवस्था में छोड़कर आता है । समाज-व्यवस्था का विचार न कर माता-पिता को दोषी ठहराता है, यह उसके चरित्र की अपरिपक्वता थी लेकिन जब उसमें समझदारी का प्रवेश होता है तो वह कहता है "अब मैं कभी झुनिया को नहीं मारूंगा ।" उसकी त्यागमयी सेवा की उसे याद आती है । गोबर की आंख खुलती है तो झुनिया के सामने याचना भाव से कहता है : "आज बहुत चोट खा गया झुनिया । x x x x x कहा सुना माफ कर । तुझे सताया था, उसी का यह फल मिला"[२] झुनिया के उदात्त चरित्र से गोबर में परिवर्तन आता है । उसमें कटुता के स्थान पर नम्रता का भाव जागता है । झुनिया की सेवा का महत्व जब गोबर समझता है, तभी उसके अन्तर में गरुता और गम्भीरता जागती है । इस बार घर लौटने पर गोबर माता-पिता के साथ सौहार्द तथा दया भाव से बर्ताव करता है । वह समझता है कि सामाजिक-

---

१. गोदान, पृ० सं०- २२२,
२. गोदान, पृ० सं०- २८६,

परिस्थितियाँ ही पिता के दोष का कारण हैं । वह पिता से कहता है : "दादा अब कोई चिन्ता मत करो, सारा भार मुझपर छोड़ दो मैं अब हर महीने खर्च भेजा करूँगा, इतने दिन तो मरते खपते हो गए, कुछ दिन तो आराम कर लो, मुझे धिक्कार है कि मेरे रहते तुम्हें इतना कष्ट उठाना पड़े"[1] गोबर की बचकानी बुद्धि अब उससे विदा हो चुकी थी । उसकी अनुभव शीलता ने अनुमान कर लिया था : "अपना भाग्य खुद बनाना होगा, अपनी बुद्धि और साहस से .... कोई देवता, कोई गुप्त शक्ति उसकी मदद करने न आएगी"[2]

६५- ऐसा प्रतीत होता है गोबर के भावों में मानवता के पंख लगा दिए हैं । उसमें व्यक्तित्व के समझने की शक्ति आ गयी है । वह अपने पिछले दु:व्यवहारों के प्रायश्चित स्वरूप पिता से क्षमा याचना करता है और आर्द्र कंठ से पिता से अनुरोध करता है अब तुम लोग आराम करो । गोबर जो कि एक अल्लहड़ युवक था, वह परिस्थितियों की चक्की में पिस कर समझदार हो जाता है तथा माँ-बाप के प्रति अपने कर्तव्य को निभाने का प्रयत्न करता है । यही प्रेमचन्द के आदर्श का दृष्टान्त है, जिसको उन्होंने गोबर द्वारा प्रस्तुत किया है ।

---

१. गोदान, पृ० सं०- ३५५,

२. गोदान, पृ० सं०- ३५६,

भाग - २

प्रेमचन्द के नारी-पात्र

प्रेमचन्द के नारी-पात्र

१. प्रेमचन्द के सम्पूर्ण नारी पात्र चाहे वह किसी भी वर्ग के हों, उन सब के मूल में प्रेमचन्द एक ही आदर्श को लेकर चले हैं। वह है उन पात्रों का त्याग, सेवा तथा प्रेम की भावनाओं से अनुप्राणित आदर्श समाज जो कि आर्थिक सीमाओं से बहुत आगे है। प्रेमचन्द ने नारी-चित्रण में 'अर्थ' को विशेष महत्व नहीं दिया है। 'गोदान' में मालती कहती है — "धन ने आज तक किसी नारी के हृदय पर विजय नहीं पायी, और न कभी पायेगा।" (१) प्रेमचन्द के नारी-पात्र प्राय: सहनशील, त्यागी, सेवा का व्रत लिए हुए परिस्थितियों का सामना करते हैं।

२. साहित्य और नारी का सम्बन्ध शाश्वत है, उसकी उद्भावना विभिन्न रूपों में हुई है। साहित्य के अन्तर्गत नारी — कन्या, पत्नी, माता, वेश्या आदि अनेक रूपों में उभर कर सामने आती है। साहित्य में नारी के ये रूप समय, काल और परिस्थितियों के आघातों से सदा परिवर्तित होते रहे हैं। मध्यकाल तक साहित्य में नारी का उल्लेख केवल नायिका अथवा प्रेयसी के रूप में ही आता था। नारी के प्रति सहज जागरूकता आधुनिक-युग की देन है। आधुनिक युग में नारी का एक प्रबल रूप विकसित हुआ। नारी का यह रूप सुधारगत नारी का ही रूप था, जिसमें उसकी राग एवं उत्साह की वृत्तियों को प्रेरणा दी गयी। नारी भी पुरुष के समान स्वतन्त्र-चेतना-संग्राम में आगे बढ़ी। आधुनिक -युग से पूर्व नारी सदैव अबला, आश्रिता तथा उपेक्षिता ही समझी जाती रही

---

(१) गोदान-पृ०सं०-२४३

इस्लामी संस्कृति के आगमन के बाद तो नारी चहारदिवारी के भीतर बन्द हो गयी । प्रेमचन्द का कहना था नारी में दान व त्याग होना चाहिए यही उसकी सबसे बड़ी विभूति है । इसी आधार पर समाज का भवन खड़ा है ।

३. प्रेमचन्द नारी के प्रति आदर भाव रखते थे । उन्होंने नारी के दर्शन प्रेरक-शक्ति के रूप में किए और उसको पूर्ण-रूपेण जीवन-दायनी सृजनकर्त्ता कहा । प्रेमचन्द ने नारी स्वभाव का चित्रण विस्तृत रूप में किया है । उसमें समाज के प्रत्येक-वर्ग की नारी का चित्रण है, जिसमें शिक्षित-अशिक्षित, नागरिक-ग्रामीण, उच्च-मध्य-निम्न सभी वर्गों की नारियों का उल्लेख है । इसके साथ ही समाज द्वारा उपेक्षित तथा अपमानित नारियों का चित्रण भी अत्यन्त उदारवादी ढंग से हुआ है । प्रेमचन्द नारी की ओर अधिक व्यापक, उदार और क्षमापूर्ण दृष्टिकोण रखते थे । उन्होंने नारी को पुरुष के अभाव की पूर्ति, स्नेह का आगार, मानवता की पूर्ति, औदार्य की साक्षात् देवी, जगत की जननी एवं भगिनी के रूप में देखा और साहित्य में उसका प्रगटीकरण किया । स्त्री, पुरुष को सन्तुलित करने का माध्यम है । `गोदान` (१) की गोविन्दी, `सेवासदन` की सुभद्रा, (२) `गबन` (३) की जालपा, इसी प्रकार की नारियां हैं ।

नारी के विभिन्न रूप

कन्या का जन्म तथा परिवार में स्थान :

४. भारतीय समाज में कन्या यद्यपि बराबर से ही आदर के

---

(१) गोदान, पृ०सं० २६४, २६५,
(२) सेवासदन, पृ०सं० २७४
(३) गबन, पृ०सं० १५७

साथ पाली-पोसी जाती है, तथापि उसका जन्म सम्पूर्ण परिवार को गम्भीर बना देता है । उसकी पवित्रता और सुरक्षा के सम्बन्ध में अत्यन्त ऊंचे किन्तु कठोर भाव और उसके विवाह तथा उसके भावी जीवन की चिन्ता से समस्त कुटुम्ब और विशेषत: माता-पिता अत्यधिक ग्रस्त हो जाते हैं । कन्या किसी भी अपरिचित अनजान वर को सौंप दी जाती है, फिर विवाह-बन्धन को स्थायी रूप से अक्षुण्ण बनाए रखना कन्या का कर्त्तव्य हो जाता है । यह स्मृति माता-पिता के मन पर बोझ की तरह रहती है । इसीलिए कन्या और पुत्र के जन्म के समय भिन्न प्रकार से दोनों आगन्तुकों का स्वागत होता है । दोनों के लिए अलग-अलग विधियां, पद्धतियां अपनायी जाती हैं । इस प्रकार जन्म से ही कन्या का शोकमय आगमन और पुत्र की आशामय कल्पना ने एक विषम-स्थिति समाज में उत्पन्न कर दी थी । यद्यपि आधुनिक शिक्षा ने बहुत कुछ नारी की दयनीय स्थिति में सुधार उत्पन्न किए, फिर भी समाज की कठोर भावनाओं ने कन्या के प्रति अन्याय ही किया । प्रेमचन्द जागरूक कलाकार थे, इस असमानता को वे सहन नहीं कर सके । `कुसुम` ,`तैंतर` ,`आगापीछा` , `वेश्या`, कायर ` `विद्रोही`, `नयाविवाह` आदि आदि विभिन्न कहानियों में उन्होंने कन्याओं के साथ किए गए अत्याचार और समाज की पिशाच-लीलाओं का दिग्दर्शन कराया है । विवाह समाज की एक ऐसी बेड़ी है जिसमें अबोध, सुकुमार, बालिकाओं को बांध दिया जाता है न अवस्था का ध्यान रखा जाता है और न उन बालिकाओं की उमंगों की परवाह की जाती है । ` नरक का मार्ग` " नैराश्य लीला` कहानियों में प्रेमचन्द के विचारों का संकेत मिलता है । प्रेमचन्द विवाह को आत्मउत्थान का साधन मानते हैं ।

पत्नी :
----

५. प्रेमचन्द के वे नारी-पात्र महत्वपूर्ण स्थान पाते हैं, जिनकी रेखाएं पत्नी रूप में विशेष उभरी हैं । पत्नी के रूप में ` प्रेमाश्रम` की विद्या, श्रद्धा, शीलमणि,` सेवासदन` की सुभद्रा, `निर्मला` की निर्मला,

`प्रतिज्ञा` की प्रेमा, `कायाकल्प` की मनोरमा, `गोदान` की गोविन्दी आदि पत्नियां हैं। ये नारियां आदर्श पत्नी हैं। पति के दुर्व्यवहार का लेशमात्र भी चिन्ता न कर अपने सेवा मार्ग पर ये स्थिर रहती हैं। प्रेमचन्द पत्नी के विषय में लिखते हैं — " मरे ज़ेहन में औरत त्याग और वफा की मूर्ति है, जो अपनी बेज़बानी से, अपनीकुबर्नी से अपने को बिलकुल मिटा कर पति की आत्मा का एक अंश बन जाती है।" <<<<<<
आगे प्रेमचन्द फिर कहते हैं, " मैं आपसे किन शब्दों में कहूं कि स्त्री मेरी नज़रों में क्या है ? संसार में जो कुछ सुन्दर है, उसी की प्रतिमा को मैं स्त्री कहता हूं।" (१)

६. आदर्श-पत्नी के विषय में प्रेमचन्द लिखते हैं कि" ऐसी आत्म-विरोध-रहित पत्नी जो सतीत्व-शक्ति से आभासित हो —थ " मैं उसे मार भी डालूं तो भी प्रतिहिंसा का भाव उसमें न आए, अगर मैं उसकी आंखों के सामने किसी स्त्री को प्यार करूं, तो भी उसकी ईर्ष्या न जागे।" (२)
"मैं ऐसी बीवी नहीं चाहता, जिससे मैं आइंस्टीन के सिद्धान्त पर बहस कर सकूं या जो मेरी रचनाओं के प्रूफ देखा करे। मैं ऐसी पत्नी चाहता हूं, जो मेरे जीवन को पवित्र और उज्ज्वल बना दे, अपने प्रेम और त्याग से। (३)

---

(१) गोदान, पृ०सं० १४७
(२) वहीं , पृ०सं० १४८
(३) ,, ,, ,,

७. नारी पात्रों के चित्रण में कुछ ऐसी स्त्रियों के चित्र भी हैं जो साधारण पत्नी के रूप में प्रस्तुत हैं, इन नारी-पात्रों में यद्यपि ईर्ष्या एवं मान-भावना है पर वैसे ही त्याग और सेवा का इन्हें भी ज्ञान है। `वरदान` की प्रेमवती, `सेवासदन` की जाह्नवी, `निर्मला` की रंगीलीबाई, `गबन` की मानकी आदि इसी रूप से सम्बद्ध हैं।

८. प्रेमचन्द ने बार-बार प्रत्येक नारी पात्र के चित्रण से यह स्पष्ट कर दिया है कि वह प्रेम के अभाव में जीवित नहीं रह सकती। पत्नी पति के सम्पूर्ण प्रेम तथा विश्वास की भूखी होती है। पति मार्ग-भ्रष्ट हो, कुचाली हो, अवस्था के अनुसार अयोग्य हो, लेकिन नारी निरीह तथा परिस्थितियों से जूझने पर भी पति में लय होने का ही प्रयत्न करती है `प्रेमाश्रम` की विद्यावती, निर्मला की निर्मला, `गोदान` की गोविन्दी, `प्रतिज्ञा` की सुमित्रा, `गबन` की रतन आदि पति से अपमानित होती हैं लेकिन ये सभी पत्नियां विवशताओं को स्वीकार करते हुए सुधार की आशा से छोड़ दी गयी हैं।

माता

९. नारी के विभिन्न रूपों में मातृत्व रूप सबसे अधिक आदरणीय माननीय और महत्वपूर्ण है। वास्तव में नारी की पूर्णता मातृत्व-शक्ति में ही है। वन्ध्या, निपूता या मृतपुत्रा होना नारी के लिए कलंक है। समाज की दृष्टि में नारी हेय हो जाती। प्रेमचन्द ने भी नारी को केवल माता माना है। इसके उपरान्त वह जो कुछ है, वह सब मातृत्व का उपक्रम मात्र है। मातृत्व संसार की सबसे बड़ी साधना, सबसे बड़ी तपस्या

सबसे बड़ा त्याग और सबसे महान् विजय है । प्रेमचन्द लिखते हैं —
"संसार में जो कुछ है, मिथ्या है, निस्सार है । मातृ प्रेम ही सत्य है, अक्षय है, अनश्वर है ।" (१) माता का हृदय दया का आगार होता है । है उसे जलाओं तो भी उसमें दया की ही सुगन्ध निकलती है । पीसो तो दया का ही रस निकलता है । .... वह देवी है । विपत्ति की क्रूर लीलाएं भी उस स्वच्छ और निर्मल स्रोत को मलिन नहीं कर सकती" । (२)

वेश्या :

१०. "जब तक दुनिया में दौलत वाले रहेंगे, वेश्याएं भी रहेंगी ।" (३) प्रेमचन्द के हृदय और मस्तिष्क में सामाजिक चेतना की भावना समायी हुई थी । प्रेमचन्द को यह बात असह्य थी कि समाज के संगठन का आधार धन बने । वे जानते थे कि धन किस प्रकार सभी विकारों, दोषों, और पापों को उदित करने का साधन है । धन एक बड़ा अभिषाप बन कर हमारे समाज के क्षितिज पर छाया हुआ है । प्रेमचन्द लिखते हैं—
"जब धन जरूरत से ज्यादा हो जाता है, तो अपने लिए निकास का मार्ग खोजता है । यों न निकल पाएगा तो जुए में जाएगा, घुड़दौड़ में जाएगा, ईंट-पत्थर में जाएगा या ऐय्याशी में जाएगा" (४) धन के ही प्रताप से 'गोदान' के खन्ना हीरा ऐसी पत्नी गोविन्दी को कांच का

---

(१) मन्दिर, मान० भाग-५, पृ०सं०-१
(२) माता का हृदय, मान० भाग-५, पृ०सं० १०४,
(३) गोदान, पृ०सं० - ३३०,
(४) वही ,, २४०,

टुकड़ा समझते हैं । गोविन्दी में त्याग है, प्रेम है लेकिन खन्ना के रूपासक्त मन में अपनी विवाहित पत्नी गोविन्दी के लिए रत्ती-भर भी स्थान नहीं है । वह अभागे, हैं जो प्रेम और त्याग ऐसी पवित्र कृति की पत्नी पाकर भी, मालती के पीछे दीवाने हैं, जिस स्त्री से प्रेम ऐसी वस्तु की कोई आशा नहीं । खन्ना कहते हैं -" मैं तो केवल उसके रूप का पुजारी था । सांप में विष है, यह जानते हुए भी हम उसे दुध पिलाते हैं ।" जब नारी को अपने प्रेम और त्याग के बदले अपमान मिलता है तो वह विद्रोह कर उठती है, कभी अपने संस्कारों से, कभी समाज से । नारी अपने घर में सम्मानपूर्ण आश्रय न पाकर , या आर्थिक कष्टों से मजबूर होकर कभी-कभी मार्ग भ्रष्ट हो जाती है ।

११. प्रेमचन्द ने वेश्या-रूप में नारी जीवन की समस्या को ही लिया है । प्रेमचन्द का विश्वास था कि वेश्या-वृत्ति का कारण नारी का अपने यौवन काल की उमंगों का कुचला जाना है । इस प्रकार के संकेत उनकी विभिन्न कहानियों और सेवासदन की (सुमन) से मिलते हैं । 'नरक के मार्ग' में नारी-पात्र कहती है — " x x x x x मेरे अध: पतन का अपराध मेरे सिर नहीं , मेरे माता-पिता और उस बूढ़े पर है, जो मेरा स्वामी बनना चाहता था । x x x x x x x मैं फिर कहती हूं अब भी अपनी बालिकाओं के लिए मत देखो धन, मत देखो जायदाद, मत देखो कुलीनता, केवल वर देखो । x x x x x स्त्री सब कुछ सह सकती है, दारुण से दारुण दु:ख, बड़े से बड़ा संकट अगर नहीं सह सकती तो अपने यौवन-

काल की उमंगों का कुचला जाना ।" (१) `गोदान` में मेहता कहते हैं —" रोजी के लिए बहुत से जरिए हैं। मगर सेवा की भूख रोटियों से नहीं जाती । x x x x x x जब तक समाज की व्यवस्था ऊपरसे नीचे तक बदल न डाली जाए x x x x x मण्डली से कोई फायदा न होगा ।" (२)

१२. वेश्याओं की समस्या भारतीय समाज, विशेषकर नारी-जीवन की कदाचित सबसे गम्भीर समस्या है। वेश्या-वृत्ति अत्यधिक प्राचीन काल से किसी न किसी रूप में प्राय: प्रचलित रही है, लेकिन अपनी इन पद्धतियों के रूप और उद्भव के स्रोतों को बदलती रही है। वेश्यावृत्ति के मूल में विभिन्न कारण रहे हैं, अनमेल-विवाह, पति की मृत्यु के पश्चात् विधवा-नारी, आर्थिक आधारों से वंचित, परिवार द्वारा ताड़ित और पीड़ित, निराधार और एकाकी हो जाती थी । आधारहीन नारी समाज के छल-प्रपंच में फंस कर यदि इस नारकीय जीवन को स्वीकार कर ले तो असंगत नहीं प्रतीत होता । प्रेमचन्द से पूर्व उपन्यास लेखकों ने इस समस्या को समाज के कलंक के रूप में देखा । प्रेमचन्द प्रथम लेखक थे जिन्होंने वेश्या-समस्या को रूढ़िवादी ढंग से न विचार कर उदारवादी दृष्टिकोण से विचारा । प्रेमचन्द ने वेश्या-समस्या को नारी-जीवन की समस्या का अभिन्न अंग माना है और गम्भीर निदानों के संकेत दिए हैं। यद्यपि प्रेमचन्द हृदय परिवर्तन पर ही विश्वास करते थे । `वेश्या` कहानी में वेश्या (माधुरी अपनी दयनीय स्थिति, विवशता और सतीत्व अपहरण

---

(१) नरक का मार्ग, मान० भाग-३, पृ०सं०-३०,

(२) गोदान, पृ०सं०- ३२६,

की कथा स्वयं कहती है ,,,,,,,, कोई स्त्री स्वेच्छा से रूप का व्यवसाय नहीं करती । पैसे के लिए अपनी लज्जा को उघाड़ना तुम्हारे (पुरुष) समाज में कुछ ऐसे आनन्द की बात है, जिसे वेश्या शौक से करती है । तुम वेश्या में स्त्रीत्व का होना सम्भव से बहुत दूर समझते हो,,,,,,, तुम नहीं जानते कि प्रेम के लिए (उसके (वेश्या) के मन में कितनी व्याकुलता होती है और जब वह सौभाग्य से उसे पा जाती है, तो किस तरह प्राणों की भांति उसे संचित रखती है ।" `सेवासदन` की (सुमन) [१] `गवन` की (जोहरा) [२] `वेश्या` कहानी की माधुरी,[३] `आगा पीछा` की कोकिला और श्रद्धा,[४] ये सभी नारियां आश्रयहीन और आधार हीन होकर पथ-भ्रष्ट होती हैं और पुरुष इतना निर्लज्ज है कि उसकी दुरवस्था से अपनी वासना तृप्त करता है और इसके साथ ही इतना निर्दय कि उसके माथे पर पतिता का कलंक लगा कर उसे उसी दुवस्था में मरते देखना चाहता है । नारी समाज के प्रति प्रेमचन्द की अपार श्रद्धा थी , वे बड़ी दया और सहानुभूति से ही नारी-जीवन का निरीक्षण करते थे । इसीलिए (वेश्या) में वह लिखते हैं :" क्या वह (वेश्या) नारी नहीं है ? क्या नारीत्व के पवित्र मंदिर में उसका स्थान नहीं है ?,, ,, खैर पुरुष-समाज जितना अत्याचार चाहे, कर ले । हम असहाय है, आत्माभिमान को भूल बैठी हैं , लेकिन ...."[५]

---

(१) सेवासदन, पृ०सं० - ४८, ४६

(२) ~~कहानी~~ `गवन` पृ०सं०- ३००

(३) कहानी `वेश्या` मान०भाग-२, पृ०सं०-५१

(४) कहानी `आगामीछा` , मान०भाग-४, पृ०सं०-११४

(५) वेश्या, पृ०सं०-५४

१३. मनुष्य परिस्थितियों का दास होता है, जिस वायुमण्डल में पलता है, उसका असर भी अवश्य उस पर पड़ता है, लेकिन पाप के दलदल में फंसकर निकल आना गौरव की बात है। प्रेमचन्द नारी के इसी गौरवान्वित पद की रक्षा करते थे। नारी के अपहरण में प्रेमचन्द ने पूंजीवादी-व्यवस्था को दोषी ठहराया है, जिसमें स्त्री की स्वतंत्र सत्ता नहीं है, जिसमें वह केवल पुरुष के उपभोग की वस्तु मानी जाती है, जिससे पुरुष जब चाहे जैसा व्यवहार करे और ठुकरा दे। इस भयंकर पराधीनता का मार्मिक रूप प्रेमचन्द के उपन्यास-कहानियों में परिलक्षित हुआ है।

१४. सृष्टि के प्रारम्भ में स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध अविच्छिन्न था। दोनों एक दूसरे के पूरक थे। नारी के अभाव में पुरुष और पुरुष के अभाव में नारी की स्थिति कल्पनातीत थी। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नारी का कोई न कोई महत्वपूर्ण स्थान था। नारी पुरुष की जननी, पुत्री, भगिनी, सहचरी, पत्नी, प्रेयसी आदि आदि रूपों में सामान्य थी। लेकिन समय की गति-विधि ने मानव इतिहास में परिवर्तन उपस्थित किए, जिसका एक लम्बा इतिहास है।

हिन्दी साहित्यकारों ने भिन्न-भिन्न युगों में नारी को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से देखा और चित्रित किया। कभी वह योग साधना में सहायक, सृष्टि की विधायनी, पवित्र, स्नेह की आगार भगिनी के रूप में देखी गयी और एक समय ऐसा भी आया जब नारी को नितान्त भोग्य, श्रृंगार तथा कामिनी के रूप में देखा। नारी वीर और श्रृंगार दोनों रसों में प्रयुक्त हुई, कौन रूप अधिक विकसित हुआ, यह नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार नारी समय की गति-विधि के थपेड़े खाती, संकट और अत्याचारों से दबी, पराधीनता में जीवन व्यतीत कर रही थी। लेकिन आधुनिक युग

के कलाकारों ने चेतना, जागृति और औदार्य के चित्रपट पर नारी के सुन्दर चित्रों को अंकित किया । प्रेमचन्द पर अपने युग की मानवता, , स्वच्छन्दता, बुद्धिवाद और यथार्थवाद का पूर्ण प्रभाव था । वह स्वयं नारी में नवजीवन का सन्देश फुंकना चाहते थे । आज की नारी केवल कामिनी नहीं, उसमें बल, त्याग, साहस, ममत्व और प्रेरणा के स्रोत भी हैं । प्रेमचन्द ने नारी के इसी स्वरूप को अपने उपन्यास और कहानियों में अंकित किया । प्रेमचन्द ने नारी के चरित्र में स्वाभाविक दृष्टि से उज्ज्वल पक्ष को देखा । वे नारी-समाज के प्रति अपार श्रद्धा रखते थे । उन्होंने बड़ी दया और सहानुभूति से नारी जीवन का निरीक्षण किया । प्रेमचन्द ने यथार्थभूमि पर नारी जीवन की विषम समस्याओं को भी लिया है ।

१५. पाश्चात्य सभ्यता हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करती जा रही है । प्रेमचन्द का दृढ़ विचार था कि पाश्चात्य नारी अधिक से अधिक भोग कर सकती है, लेकिन सफल गृहणी नहीं बन सकती । 'शान्ति' 'मि०पदमा' 'उन्माद' आदि कहानियों में प्रेमचन्द अपने विश्वास को स्पष्ट करते हैं — " अंग्रेजी स्त्री अपनी रुचि के सिवा किसी की पाबन्द नहीं" (१) 'विश्वास' कहानी में मि० जोशी कहती हैं — " मेरी उच्च शिक्षा ने गृहिणी जीवन से मेरे मन में घृणा पैदा कर दी.... मैं गृहिणी की जिम्मेदारियों और चिन्ताओं

---

(१) उन्माद-मान० भाग २, पृ०सं० १२४

को अपनी मानसिक स्वाधीनता के लिए विष तुल्य समझती थी ××××××××× दाम्पत्य मेरी निगाह में तुच्छ वस्तु थी` (२) इसी प्रकार `शान्ति` (३) कहानी में प्रेमचन्द ने प्राच्य और पाश्चात्य सभ्यता का तुलनात्मक रूप प्रस्तुत किया है । हमारी भारतीय संस्कृति में ममता, स्नेह और विश्वास है, जिससे आत्मा को शान्ति मिलती है । `गोदान` में वीमन्स लीग (४) में दिया हुआ मि० मेहता का भाषण पाश्चात्य सभ्यता के गुण-दोष का विश्लेषण मात्र है ।

मेहता के शब्दों में प्रेमचन्द बोलते हैं ।

१६. प्रेमचन्द साहित्य को मानव-विकास का साधन मानते थे, मनुष्य को ऊंचा उठाना और मनुष्य के मन में ऊंचे विचार पैदा करना ही साहित्य का सच्चा प्रयोजन है । इसी प्रेरणा हेतु प्रेमचन्द ने समय की मांग समाजोपयोगी भावना तथा निजी व्यक्तित्व की संघर्षमयी-गरिमा, स्त्री-पुरुष को हिन्दी-कथा-साहित्य में युगान्तर रूप दिया । अतीत की ओर दृष्टिपात करते हुए प्रेमचन्द ने अनुभव किया कि हमारा समाज नाना प्रकार की कुरीतियों से जर्जरित हो उठा है, उसमें गति, संघर्ष, बेचैनी, चिन्ता, सौन्दर्य, सृजन सब भाव सो गए हैं , और अधिक सोना मृत्यु का

---

(२) विश्वास - मान० भाग -३, पृ० सं०-१५

(३) शान्ति, -मान० भाग०७, पृ०सं०,६२

(४) `गोदान` - पृ०सं०, १६३, १६४, १६५ ,

लक्षण है । इसी कसौटी पर प्रेमचन्द ने साहित्य के अन्तर्गत ऐसे स्त्री-पुरुष पात्रों की कल्पना की है ," जिनमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो जीवन की ऊंचाइयों का प्रकाश हो, जो हममे गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे ।" (१)

१७. प्रेमचन्द मनुष्य की पूर्णता और उसका विकास नारी की प्रेम-शक्ति में मानते थे । प्रेमचन्द की नारी-भावना, पवित्र, ज्योतिर्मयी, प्रेम-प्रकाशित, सेवा भार से दबी, त्याग की प्रतिमूर्ति है जिसको जितना ही जलाओ उतनी ही दया की सुगन्धि निकलती है । प्रेमचन्द ने प्रेम-रूपा त्यागमयी नारी को पुरुष से कहीं अधिक महत्व दिया है । प्रेमचन्द का विचार था कि नारी चरित्र में अवस्था के साथ मातृत्व का भाव दृढ़ होता जाता है । यहां तक कि एक समय ऐसा आता है, जब नारी की दृष्टि में युवक मात्र पुत्र तुल्य हो जाते हैं । उसके मन में विषय वासना का लेश भी नहीं रहता । किन्तु पुरुषों में वह अवस्था कभी नहीं आती । `उनकी विषय-वासना x x x x x x ग्रीष्म ऋतु की भांति x x x x x प्रचंड होती जाती है ।" (२) नया-विवाह` `गोदान` के मि० खन्ना और भोला आदि पात्र कामुक जीव हैं, जिनमें कर्तव्य का लेशमात्र भी अनुभव नहीं । ऐसे पात्रों की आत्मा नहीं होती, वह पशु की जिन्दगी जीते हैं ।

---

(१) साहित्य के उद्देश्य पृ०सं०-१६

(२) `मूल, मान०-४, पृ०सं०१८०

१८. प्रेमचन्द नारी की दूसरी कसौटी त्याग और सेवा में मानते हैं। नारी सेवा को ही अपने जीवन का सार्थक मानती है, यद्यपि पुरुष उसकीसेवा मयी भावना को भी ठुकरा देता है। `कायाकल्प` की रोहिणी मनोरमा, `प्रेमाश्रम` की विद्या, `गोदान` की गोविन्दी तथा `वेश्या` कहानी की लीला, `कुसुम` कहानी की कुसुम, `उन्माद` की वागेश्वरी, `जीवन के शाप` की शीरी आदि आदर्श पत्नियां, लेकिन पुरुष के लिए सेवा से अधिक महत्वपूर्ण वस्तु कामना तृप्ति में है। ऐसे पुरुषों के लिए रूप का महत्व सेवा से अधिक है।

१९. प्रेमचन्द ने नारी के विभिन्न रूप प्रस्तुत किए हैं, जिन सब के मूल में केवल एक ही भावना है — "स्त्री को जीवन में प्यार न मिले, तो उसका अन्त हो जाना ही अच्छा है।" (१) स्त्री की प्रेम-सुधा इतनी तीव्र होती है कि वह पति का स्नेह पाकर अपना जीवन सफल समझती है और इस प्रेम के आधार पर जीवन के सारे कष्टों को हंस-खेल कर सह लेती है लेकिन पुरुष इतना दुष्ट है कि समझता है कि विवाह ने एक स्त्री को उसका गुलाम बना दिया है। वह उस अबला पर जितना अत्याचार चाहे करे, कोई उसका हाथ नहीं पकड़ सकता। पुरुष जानता है स्त्री कुल-मर्यादा के बन्धनों से जकड़ी हुई है, उसके पास रोने के अलावा कोई साधन नहीं, इसीलिए पुरुष प्रधान समाज में अबलाओं पर इतने अत्याचार किए जाते हैं। प्रेमचन्द लिखते हैं — "स्त्रियों को धर्म और त्याग का पाठ पढ़ा पढ़ा कर हमने उनके आत्मसम्मान और आत्मविश्वास दोनों का ही अन्त कर दिया है।" (२)

---

(१) शान्ति - मान० भाग १, पृ०सं० ११४
(२) कुसुम - मान० भाग २, पृ०सं०-१३,

एक ओर तो हमने नारी जीवन को इतना अधम स्वीकार किया कि वह समाज के लिए बोझ बन गयी, दूसरी ओर हमारे समाज में ऐसे ऐसे स्वार्थ के दास पड़े हैं जो एक अबला का जीवन संकट में डाल कर, कन्या के पिता से अत्याचार पूर्ण दबाव डालकर अपना घर भरना चाहते हैं, ऊंचे ऊंचे पद प्राप्त करना चाहते हैं अपनी महत्वाकांक्षाएं फलीभूत होना देखना चाहते हैं। प्रेमचन्द का विश्वास था ऐसे दाम्पत्य जीवन सुखी नहीं हो सकते, जिनकी नींव स्वार्थ पर टिकी हो। उनका कहना था —
" सुखमय दाम्पत्य की नींव अधिकार साम्य पर ही रखी जा सकती है। इस वैषम्य में प्रेम का निवास हो सकता है, मुझे तो इसमें सन्देह है। हम आज जिसे स्त्री-पुरुषों में प्रेम कहते हैं, वह वही प्रेम है जो स्वामी को अपने पशु से होता है।" (१)

२०. प्रेमचन्द को नारी-हृदय के बल, सामर्थ्य,त्याग और क्षमता पर पूरा विश्वास था। 'प्रेम' नारी हृदय का चिर सत्य है। प्रेमचन्द लिखते हैं — " विचारवानों ने प्रेम को ही जीवन की और संसार की सबसे बड़ी विभूति मानी है x x x x x x x आदर्श में प्रेम ही हमारे जीवन का सत्य है x x x x x x प्रेम से शासन करना मानवता है, आतंक से शासन करना बर्बरता है। (२) प्रेम के अभाव हैं कौटुम्बिक जीवन में शिथिलता आ जाती है।

---

(१) कुसुम, मान० भाग २ - १८,
(२) बासी भात में खुदा का साझा, मान०-भाग २, १६६

प्रेमचन्द के विशिष्ट नारी-पात्र

जाह्नवी (मां)

२१. प्रेमचन्द के नारी-पात्रों में रानी जाह्नवी का विशिष्ट स्थान है । जीवन में नारी का झुकाव प्राय: राग अथवा कोमल पक्ष की ही ओर अधिक होता है, किन्तु रानी जाह्नवी के चरित्र में उत्साह वृत्ति का असाधारण प्रस्फुटन हुआ है । यही कारण है कि आदर्श राजपूत माता के रूप में रानी जाह्नवी कर्तव्य-निष्ठा एवं देश सेवा में अपने जीवन को लगा देती हैं । उसका विश्वास है कि अन्याय, अत्याचार एवं परतन्त्रता के पाश सेवा, बलिदान एवं त्याग से कटते हैं और माताओं द्वारा देश सन्तति के संस्कारों में इन मूल्यों की सचेष्ट संयोजना होनी चाहिए । इसी भावना से प्रेरित होकर वह आरम्भ से ही अपने मातृत्व को हृदय से अधिक बुद्धि के सांचे में ढालना आरम्भ करती है । एक स्थान पर रानी जाह्नवी कहती हैं : " x x x x x x मेरे कोख से भी कोई ऐसा पुत्र जन्म लेता जो अभिमन्यु, दुर्गादास और प्रताप की भांति जाति का मस्तक ऊंचा करता।[1] रानी जाह्नवी सात्विक, पवित्र, आदर्श गुणों से ढली वीर मां हैं । वह अपने पुत्र विनय को एक आदर्श देश सेवक बनाना चाहती है । इसी कारण शैशव से ही उसे कठिनाइयों के मार्ग पर अग्रसर करती है । विनय की शिक्षा-दीक्षा सब भारतीय-संस्कृति के आदर्श को लेकर होती है ।

---

(१) रंग भूमि , पृ० सं० ६१

२२. रानी जाह्नवी के तप और पुत्र के त्याग से विलासी पिता कुवर भरत सिंह भी बदल जाते हैं । रानी जाह्नवी कहती हैं : " उसके त्याग का फल यह हुआ, पिता को भी त्यागी बनना पड़ा × × × × × × त्यागी पुत्र का भोगी पिता अत्यन्त हास्यपद दृश्य होता । × × × × × × विनय ने उनकी काया ही पलट दी है । जन्म का विरागी है । पूर्व जन्म में अवश्य कोई ऋषि रहा होगा " (१) मातृरूप में जाह्नवी अनेक सन्तानाभिलाषी नहीं । वह अपने एकमात्र पुत्र विनय से आशा की तृप्ति चाहती है । वह कहती है :" जाति ~~से अनशन की~~ रक्षा के लिए उसे प्राण भी देना पड़े तो मुझे जरा भी शोक न होगा । शोक तब होगा, जब मै उसे ऐश्वर्य के सामने सिर-झुकाते या कर्त्तव्य के क्षेत्र में पीछे हटते देखूंगी ।" (२) जाह्नवी सैद्धान्तिक रूप से अपने को कर्त्तव्य पर मिटा देने वाली भारत की वीर मां है । लेकिन संस्कार विषयक दुर्बलता की भी जाह्नवी में कमी नहीं । पुत्र से वह त्याग की मांग करती है, किन्तु स्वयं वह आदर्शमय त्याग का जीवन नहीं व्यतीत करती । पुत्र को वह स्वालम्बी बनाना चाहती है ।" मैंने बाल्यावस्था से ही उसे कठिनाइयों का अभ्यास कराना शुरू किया । न कभी गद्दों पर सुलाती, न कभी कहारियों और दाइयों की गोद में जाने देती, × × × दस वर्ष की अवस्था तक केवल धार्मिक कथाओं द्वारा उसकी शिक्षा हुई । लेकिन स्वयं जाह्नवीनौकरों से मुक्त नहीं । इतना ही नहीं मिसेज सेवक के शब्दों में " भवन क्या था आमोद-विलास, रसज्ञता और वैभव का क्रीड़ास्थल था । संगमरमर के फर्श पर बहुमूल्य कालीन बिछे हुए थे । × × × × × × दीवारों पर मनोहर पच्चीकारी, कमरों की दीवारों पर बड़े बड़ेआमदकद

---

(१) रंगभूमि पृ०सं० -९०

(२) रंगभूमि पृ०सं०-९२

आईने, गुलकारी इतनी सुन्दर की आंखें मुग्ध हो जाएं, शीशे की अमूल्य अलभ्य वस्तुएं, प्राचीन चित्रकारों की विभूतियां, चीनी के विलक्षण गुलदान जापान, चीन, यूनान और ईरान की कला-निपुणता के उत्तम नमूने, सोने के गमले, लखनऊ की बोलती हुई मूर्तियां, इटली के बने हुए हाथीदांत के पलंग लकड़ी के नफीस ताक, दीवारगीर किश्तियां, आंखों को लुभानेवाली, पिंजड़ों में चहकती हुई, भांति भांति की चिड़िया, आंगन में संग मरमर का हौज और उसके किनारे संगमरमर की अप्सराएं ....' (१)
रानी जाह्नवी अपनी अमूल्य वस्तुओं, बाग बगीचों आदि तथा विनय-इन्दु की प्रशन्सा में अपनी दुर्बलता को प्रकट करती है। विनय के आचार-विचार सेवा-भक्ति और परोपकार - प्रेम की सराहना स्वयं करती है। अस्वाभाविकता की अंतिम सीमा प्रेमचन्द इन शब्दों में स्पष्ट करते हैं : ' रानी भी सोफिया से प्रेम कर सकती थीं, और करती थीं ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ पर अपनी बघू में वह त्याग और विचार की अपेक्षा लज्जाशीलता, सरलता, संकोच और कुल प्रतिष्ठा को अधिक मूल्यवान समझती थीं, सन्यासिनी बघू नहीं, भोग करने वाली बघू चाहती थीं।' (२) वस्तुत: जाह्नवी जिस पुत्रादर्श को मानती है वह स्वयं उनके जीवन में भी चरितार्थ होता, तभी स्वाभाविकता का प्रवेश होता, अब माता-पुत्र का जीवन असामान्य सा हो गया है।

२३. रानी जाह्नवी आदर्श मां के अतिरिक्त पतिपरायण पत्नी है जो समय समय पर अपनी पुत्री इन्दु को पति निष्ठा, पति सेवा, भक्ति

---

(१) रंगभूमि, पृ०सं० ४८
(२) रंगभूमि पृ०सं० ४५८

की शिक्षा देती है । पति-भक्ति में जाह्नवी का पूरा विश्वास है । वह इन्दु से कहती है " अगर फिर मेरे सामने मुंह से ऐसी बात निकाली, तो गला घोंट दूंगी । क्या तू उन्हें अपना गुलाम बना कर रक्खेगी ? तू स्त्री होकर चाहती है कि कोई तेरा हाथ न पकड़े, वह पुरुष होकर क्यों न ऐसा चाहे ? x x x x x x अगर तुझे उसकी बातें पसन्द नहीं आतीं, तो कोशिश कर पसन्द आएं । वह तेरे पतिदेव हैं, तेरे लिए उनकी सेवा से उत्तम और कोई पथ नहीं है ।" (१) इस प्रकार जाह्नवी पतिपरमेश्वर की उपासना में ही पत्नी का कल्याण एवं धर्म समझती है ।

२४. पुत्र की आदर्शमय एवं गौरवान्वित मृत्यु ने जाह्नवी के चरित्र में पुन: प्राण फूंक दिए । अपने पुत्र के जीवन काल में जो त्याग एवं बलिदान न कर सकी, वह अपने पुत्र की मृत्यु के बाद सम्पन्न हुए । शोक में उसका गौरव जाग उठता है, वह कहती है : " जाओ और विनय की भांति प्राण देना सीखो । दुनिया केवल पेट पालने की जगह नहीं है । देश की आंखें तुम्हारी ओर लगी हुई हैं । x x x x x x मत फंसो गृहस्थी के जन्जाल में, जब तक देश का कुछ हित न कर लो x x x x x बाल-बच्चों वालों से मेरा निवेदन है, अपने प्यारे बच्चों को चक्की का बेल न बनाओ x x x x x ऐसी शिक्षा दो कि जिए किन्तु जीवन के दास बन कर नहीं, स्वामी बन कर ।" (२) अपनी आत्मसम्मानप्रियता के कारण ही वह विनय सिंह की मृत्यु के पश्चात् दूने उत्साह से, कार्यक्षेत्र में उतर आयी । प्रेमचन्द के शब्दों में

---

(१) 'रंगभूमि' पृ०सं० ५५२
(२) रंगभूमि पृ०सं० ५५४

" उसके रोम रोम में असाधारण स्फूर्ति का विकास हुआ । वृद्धा-अवस्था के आलस्य-प्रियता यौवनकाल की कर्मण्यता में परिणत हो गयी, x x x x x x रनिवास छोड़ दिया, कर्मक्षेत्र में उतर आयी और इतने जोश से काम किया कि सेवकदल की जो उन्नति कभी प्राप्त नहीं हुई थी, वह अब हुई ।" (१) रानी जाह्नवी डा० गांगुली से कहती है : " मैं जानती थी कि x x x x जिनमें आत्मसम्मान का भाव जीवित है, उनके लिए वहां स्थान नहीं । " (२) इस प्रकार रानी जाह्नवी जो कार्य अपने पुत्र के जीवनकाल में न कर सकी वह अब सम्पूर्ण त्याग से सेवा को सक्रिय रूप में अपनाती है । थोड़ी बहुत असंगतियों के होने पर भी जाह्नवी का चरित्र यथेष्ट उदात्त विचारों से बना है । वह अपने पुत्र विनय को आदर्श सेवक बनाना चाहती है और उससे आशा रखती है वह जाति-सेवा के लिए प्राणोत्सर्ग भी कर दे । पुत्र की मृत्यु ने जाह्नवी के हृदय में गौरव और गर्व उत्पन्न कर दिया और इसी कारण पुत्र की मृत्यु के बाद सेवक-दल का संचालन स्वयं जाह्नवी ने किया और अपनी लगन निपुणता और कर्मण्यता का परिचय दिया । उसका आदर्श कर्म-क्षेत्र में अवतरित होकर उसके चरित्र को प्रभावात्मक बना जाता है । पति-व्रत-धर्म की उसकी यह शिक्षा अमर है ।" जाह्नवी अपनी पुत्री इन्दु से कहती है —" जो स्त्री अपने पुरुष का अपमान करती है, उसे लोक-परलोक कहीं शान्ति नहीं मिल सकती । (३) पति भक्ति का इससे अधिक और क्या विश्वास होगा ? जिसको प्रेमचन्द ने जाह्नवी के मुख से कहलाया है । जाह्नवी आदर्श माता, पत्नी दोनों है । इसी कारण प्रेमचन्द के विशिष्ट नारी पात्रों में जाह्नवी का उच्चतम स्थान है ।

---

(१) रंगभूमि पृ०सं० ५५२
(२) रंगभूमि पृ०सं० ५५४
(३) रंगभूमि पृ०सं० ५४५

सोफिया (प्रेमिका)

२५. सोफिया के चरित्र में ऐनी वेसेन्ट की छाया है, जैसा प्रेमचन्द ने स्वयं स्वीकार किया है । प्रेमचन्द ने `ज़माना` के सम्पादक दयानारायण निगम को अपने पत्र में लिखा था : "मैंने सोफिया का चरित्र मिसेज एनीबेसेन्ट से लिया है ।" श्री अमृतराय लिखते हैं : " उन्होने तो ऐनीवेसेन्ट को सोफिया का असल बतलाया है, लेकिन वह शायद ज्यादती है क्योंकि पूरा चरित्र किसी का भी नहीं है, केवल छायाएं उतर आयी हैं - जो कि स्वाभाविक भी था क्योंकि यही राजनीतिक आकाश के नक्षत्र थे और मुंशी जी स्पष्टमन से राजनीतिक उपन्यास लिख रहे थे ।" (१) यह सच है, प्रेमचन्द के विशिष्ट नारी पात्रों में सोफिया का चरित्र अत्यन्त मानवतावादी दृष्टिकोण से लिया गया है । `रंगभूमि` में सोफिया एक ऐसी पात्र है जिसके चरित्र में प्रेम, ओज, करुणा, विवेक, दया और उदार धार्मिकता के उज्ज्वलतम अंश सन्निहित हैं । सोफिया की मां कट्टर ईसाई लेडी है, लेकिन सोफिया के विचार उदारवादी हैं, यथार्थवाद से उसका कोई सरोकार नहीं । मिसेज़ सेवक बेटी सोफिया से कहती हैं : " हिन्दुओं के गपोड़े पढ़ने में तो तेरा जी लगता है, इश्वर वाक्य तो तेरे लिए जहर है । < < < < < < < आज तीन चौथाई दुनियां जिस महात्मा के नाम पर जान देती है < < < < < उससे यदि तेरा मन विमुख हो रहा है, तो यह तेरा दुर्भाग्य है । < < < < < < < तुझे ईश्वर ग्रन्थ के प्रत्येक शब्द पर ईमान लाना पड़ेगा, वरना तू अपनी गणना - प्रभु मसीह के भक्तों में नहीं कर सकती ।" (२) सोफिया के लिए बाइविल के प्रत्येक शब्द पर विश्वास

---

(१) ले० अमृतराय `कलम का सिपाही` प्रका० हंस, १९६२, प्र०संस्करण, पृ०सं० -३४२

(२) रंगभूमि, पृ०सं० - २७,२८ ,

करना असम्भव है । मिसेज़ सेवक अपनी पुत्री को विधर्मिणी और भ्रष्टा समझती हैं । वह कहती हैं : " मैं तुझे अपनी सन्तान नहीं समझती और तेरी सूरत से भी नफरत करती हूं x x x x यह कह कर उसकी मेज पर से बौद्ध-धर्म और वेदान्त के कई ग्रन्थ उठाकर बाहर फेंक दिए । इसी आवेश में उन्हें पैरों से कुचला ।" (१) सोफिया का जन्म ईसाई परिवार में हुआ है जो धार्मिक कट्टरता का अनुयायी है, लेकिन अध्ययन और मनन ने उसे उदार दृष्टिकोण का बना दिया है । इसीलिए वह हिन्दू धर्म की अनेक प्रवृत्तियों को श्रद्धा की दृष्टि से देखती है और ईसाईयत की अपनी शंकाओं की सबके सामने व्यक्त करते में हिचकिचाती नहीं । यद्यपि उसकी मां सोफिया की उपेक्षा करती है और फटकार देती है । मां के व्यवहार से क्षुब्ध होकर वह घर से निकल पड़ती है और रानी जाह्नवी के यहां आश्रय पाती है । यहां पर जाह्नवी के पुत्र विनय से वह प्रेम-सूत्र में बंध जाती है । लेकिन सोफिया का प्रेमादर्श बहुत ऊंचा है । वह प्रेम को वरदान रूप में ग्रहण करना चाहती है । इसी कारण वह अपने भाई प्रभु सेवक से कहती है, " ऐसे साधु-प्रकृति, ऐसे त्यागमूर्ति, ऐसे सदुत्साही पुरुष की प्रेम पात्री बनने में कोई लज्जा नहीं । अगर प्रेम प्रसाद पाकर किसी युवती को गर्व होना चाहिए, तो वह युवती मैं हूं । x x x x x x x x जिसके लिए मैं इतने दिनों तक शांत-भाव से धैर्य धारण किए हुए मन में तप कर रही थी । वह वरदान आज मुझे मिल गया है । (२) सोफिया के लिए प्रेम और वासना में उतना ही अन्तर है जितना कंचन और कांच में ।" प्रेम की सीमा भक्ति से मिलती है x x x x x प्रेम के लिए धर्म की विभिन्नता कोई बन्धन नहीं है । ऐसी बाधाएं उस मनोभाव के लिए हैं,

---

(१) रंगभूमि पृ०सं०-२८

(२) रंगभूमि पृ०सं०-६८

किया । विनय स्वयं स्वीकार करता है : " मेरे लिए तुमने अभी तक त्याग ही त्याग किए हैं, सम्मान, समृद्धि, सिद्धान्त एक की भी परवाह नहीं की(१) वस्तुत: उसने अपने प्रेमी के लिए त्याग और कष्ट का जीवन स्वीकार किया । विनय की मृत्यु के पश्चात् भी मां ने क्लार्क से उसके विवाह का प्रस्ताव किया । लेकिन सोफिया का अन्तरमन विनय को वर चुका था । इसलिए जब सोफिया की मां विवाह योजना द्वारा उसके एकनिष्ठ अनुराग की अखण्डता पर आघात करना चाहती है तो वह इस स्थिति से निवृत्त पाने के निमित्त गंगा की गोद में अपने को समर्पित कर देती है । मन की व्यथा लहरों में समा जाती है और सोफिया का ध्येय पूरा हो जाता है । सोफिया अपनी प्रणय-वेदना से यह सिद्ध कर देती है कि हृदयों का सम्बन्ध आन्तरिक होता है ।

२६. सोफिया के चरित्र में कोमलता के साथ ही ओज का भी अपूर्व संयोग है । यह ओज पहले आत्मनिर्भरता के रूप में लक्षित होता है घर के संकीर्ण-साम्प्रदायिक वातावरण से ऊब कर वह अपने पैरों पर खड़ी होने के लिए घर से निकल पड़ती है । (२) न्याय के लिए वह अपने पिता और राजा महेन्द्रकुमार के विरुद्ध सूरदास का पक्ष लेती है ।(३) उदयपुर पहुंचने पर उसने रियासत के अत्याचार और कुप्रबन्ध के विरुद्ध अपना आक्रोश प्रकट किया है । (४) उदयपुर में आन्दोलनकारियों का दल जब

---

(१) 'रंगभूमि' पृ०सं० १६५
(२) 'रंगभूमि' पृ०सं० ३३
(३) 'रंगभूमि' पृ०सं० २१३, २३५
(४) 'रंगभूमि' पृ० सं० २७५

राजभवन को आकर घेर लेता है, तो वह भीतर चुप नहीं बैठती । उत्तेजित जनता को आकर सम्बोधित करती है और चोट खाने के कारण घायल होकर गिर पड़ती है । (१) विनय के राजभक्त हो जाने पर वह राज्य के विरुद्ध क्रान्तिकारियों के दल में सम्मिलित हो जाती है । (२) उदयपुर से लौटने पर जब क्लार्क झोपड़ी के झगड़े में सूरदास को पिस्तोल की गोली से घायल कर देता है, तो सोफिया इस घटना को केवल एक दर्शक की भांति नहीं देखती वह फिटन से कूद कर गोरखों को चीरती हुई सूरदास के पास पहुंचती है । (३)

२७. सोफिया में ओज के अन्तर्गत प्रतिकार की भावना भी है इन्दु सोफिया से अभिमान से बात करती है : " तो तुम्हें पहले अपने पिता को ही सन्मार्ग पर लाना चाहिए था x x x x x x सोफिया ये कठोर शब्द सुन कर तिलमिला गयी x x x x x x x सुना करती थी अमीरों में स्थिरता नहीं होती । आज इसका प्रमाण मिल गया । लीजिए जाती हूं मगर इतना कहे जाती हूं कि चाहे पापा मेरा मुंह देखना भी पाप समझें, पर मैं इस विषय में कदापि चुप न बैठूंगी (४) इसका बदला वह सूरदास को जमीन लौटा कर लेती है । लेकिन ये सब भाव सोफिया के अस्थायी हैं । प्रेमचन्द ने सोफिया की सृष्टि अत्यन्त उदार और मानवता वादी दृष्टिकोण से की है जो विश्वव्यापी कर्म में विश्वास करती है और इसी

---

(१) रंगभूमि पृ०सं० ३०६
(२) रंगभूमि ,, ३२८
(३) रंगभूमि पृ०सं० ५०६
(४) रंगभूमि पृ०सं० २१४

सभी धर्मों को आदर भाव से देखती है । उसके लिए प्रेम वासना नहीं भक्ति है । विनय के प्रति उसकी प्रेम भावना में मानवीयता अधिक है । वह एक प्रकार से आत्मिक वरण है, जिसमें शारीरिक आकर्षण की स्थूलता नहीं । सोफिया के लिए " प्रेम भावनागत विषय है, भावना ही से उसका पोषण होता है भावना में ही वह जीवित रहता है और भावना ही में लुप्त हो जाता है ।" (१) सोफिया के लिए प्रेम भौतिक नहीं अध्यात्म है । इन्हीं उपादानों में सफलता के साथ सोफिया का चित्रण हुआ है ।

---

(१) रंगभूमि पृ०सं० २६५

सुखदा (पत्नी)
----

२८. सुखदा के चरित्र का संस्कार सर्वथा भिन्न परिस्थितियों में हुआ है । वह अपनी मां की एक मात्र सन्तान है, अतएव पुत्री होने पर भी पुत्र की भांति पाली गयी है । प्रारम्भ से ही उसमें त्याग की जगह भोग, शील की जगह तेज, कोमल की जगह तीव्र का संस्कार किया गया था. . . . . वह युवक प्रकृति की युवती और व्याही गयी युवती प्रकृति के युवक से " (१) सुखदा ने कभी अभाव न जाना था, जीवन की कठिनाइयां न सही थीं । वह जाने माने मार्ग को छोड़ कर अनजान रास्ते पर पांव रखते डरती थी । भोग-विलास को वह जीवन की सबसे मूल्यवान् वस्तु समझती थी । (२) इन गुणों के युक्त संयोग से उसमें कोमलता की जगह आत्माभिमान इतना बढ़ गया कि पति सेवा भी गुलामी समझने लगी । वह अपनी मां से कहती है : " जब वह मेरी बात नहीं पूछते, तो मुझे क्या गरज पड़ी है ! " . . . . मुझसे किसी की गुलामी न होगी । (३) प्रारम्भ में सुखदा का यही विलासिनी रूप अभिव्यक्त हुआ । किन्तु धीरे धीरे जटिल परिस्थितियों के सम्पर्क से सुखदा का आत्मिक-विकास होता है, पति के त्याग और विरक्ति से उसकी मनोवृत्तियों का परिष्कार होता है । सुखदा में आत्माभिमान जागृत होता है । सुखदा सतेज होकर अपने पति

---

(१) `कर्मभूमि` पृ०सं० ७
(२) `कर्मभूमि` पृ०सं० १३
(३) `कर्मभूमि` पृ०सं० २०

से कहती है : " डरते होंगे अपने भाग्य को रोयेंगी, क्यों ? . . . .
कष्ट सहने में या सिद्धान्त की रक्षा के लिए स्त्रियां कभी मर्दों से पीछे नहीं रहीं ।" (१) विलासिनी रूप में सुखदा अपने पति से बहुत दूर है : "विवाह हुए दो वर्ष हो चुके थे, पर दोनों में कोई सामंजस्य न था. . . . ..
दोनों के विचार अलग, व्यवहार अलग, संसार अलग । जैसे दो भिन्न जलवायु के जन्तु एक पिंजरे में बन्द कर दिए गए हों ।" (२)

२६. इसी प्रकार सुखदा की मानापमान की भावना भी बहुत तीव्र है । अमर कान्त जब उसे छोड़कर चला जाता है, तब उसकी सम्मान भावना को बड़ा आघात पहुंचता है । उसने सकीना से कहा था : " उन्होंने मेरा जो अपमान किया, उसे मैं अब भी क्षमा नहीं कर सकती.. . . . .
मुझसे वह जो चाहते थे, वही मैं भी उनसे चाहती थी. . . . .
लेकिन अब तो जब तक उनकी तरफ से हाथ नहीं बढ़ाया जाएगा, मैं अपना हाथ नहीं बढ़ा सकती. . . . . . औरत निर्बल होती है, इसीलिए उसे मानापमान का दुख भी ज्यादा होता है" (३) सुखदा ने अपमान और अनादर को सह लेना नहीं सीखा है । वह शान्ति कुमार से कहती है :
" मैं आपसे यह प्रेरणा करने नहीं आई हूं, और न यह चाहती हूं कि आप उनसे मेरी ओर से दया की भिक्षा मांगें ।" (४) सुखदा और स्पष्ट शब्दों में कहती है : " मैं उदार नहीं हूं, न विचारशील हूं । हां पुरुष के प्रति अपना धर्म समझती हूं . . . . मैं आपसे. . . . . पूछती हूं ऐसे पुरुष को, जो स्त्री के प्रति अपना धर्म न समझे क्या अधिकार है कि

---

(१) `कर्मभूमि` पृ०सं० ५०
(२) `कर्मभूमि` पृ०सं० ८
(३) कर्मभूमि पृ०सं० २४८-२४६

वह स्त्री से व्रतधारिणी की आशा रक्खे ? (१) सुखदा अपमान को पीने वाली स्त्री नहीं, वह अन्त तक अपमान का प्रतिकार करती है : अच्छी बात है, जाती हूं मगर याद रखिएगा, इस अपमान का नतीजा आप के हक में अच्छा न होगा । (२) सुखदा में असहनशीलता के साथ उत्तेजना है और प्रत्युत्तर देने में वह सदैव कठोरता का व्यवहार करती है । दृढ़ वह इतनी है कि प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपने निश्चय पर अडिग रहती है । नगर में हड़ताल कराने के लिए वांछित सहयोग न मिलने पर भी वह निश्चय से न फिरी । (३) सुखदा का यह सुधारगत मानवीय रूप है जो पति के वियोग से विकसित होता है । इस रूप के विकास से सुखदा का मन मन पुन: कोमल भावनाओं की ओर झुकता है । वह पाश्चात्ताप तथा समर्पण की राहसे अपने पति को भी प्राप्त करना चाहती है और अन्त में अपने ससुर से कहती है : " मैंने यहां एकान्त में खूब विचार किया है और मुझे अपना दोष स्वीकार करने में लेशमात्र भी संकोच नहीं है । आप एक क्षण भी न ठहरें । वहां जाकर अधिकारियों से मिले और उनके लिए जो कुछ भी हो सके करें । हमने उनकी विशाल आत्मा को भोग के बन्धनों में बांध कर रखना चाहा था x x x x x x x x मनुष्य पर जब प्रेम का बन्धन नहीं होता , तभी वह व्यभिचार करने लगता है । (४) सुखदा जब पति परायण हो जाती है तो कठोरता और गरिमा के स्थान पर ब माधुर्य खिल उठता है और अन्त में पति-मिलन में उसे ऐसा लगता है । "

---

(१) कर्मभूमि पृ० सं० २२५

(२) कर्मभूमि ,, २२४

(३) कर्मभूमि ,, २५३

(४) कर्मभूमि ,, ३३४-३३५

" आज उस रिक्त में जैसे मधु भर गया है । वह अपूर्णता जैसे पल्लवित हो गयी है । आज उसने पुरुष के प्रेम में अपने नारीत्व को पाया है, x x x आज उसकी तपस्या मानो फलीभूत हो गयी है ।" (२) भारतीय संस्कृति के अनुसार यही सर्वोत्तम दाम्पत्य-कल्पना है, जिसको प्रेमचन्द ने सुखदा के रूप में साकार किया है । विलासिनी सुखदा जितनी पति से दूर थी , त्याग और तपस्या से वह गरीबों की बस्ती बनाती है, उसमें भी जब लाख स्वार्थ रूपी बाधाएं आ खड़ी होती हैं तो वह ललकार कर कह ती है , समाचार पत्रों और आन्दोलनों से काम न चलेगा :------" नहीं, मैं इतनी सहनशील नहीं हूं, x x x x अब अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना पड़ेगा, x x x x x x x हमने आरजू मिन्नत से काम निकालना चाहा था, पर मालूम हुआ, सीधी उंगली से घी नहीं निकलता, हम जितना दबेंगे, ये बड़े आदमी हमें उतना ही दबाएंगे" लेकिन सुखदा अपने विश्वासों का प्रयोग हिंसात्मक ढंग से नहीं करती, उसका जन्म गांधी-युग में हुआ है । वह त्याग, बलिदान और सेवा में विश्वास करती है । वह कहती है" अभी सेवक में-विश्वास मैंने ऐसी कौन-सी सेवा की है कि लोगों को मुझपर विश्वास हो, x x x x x x मुझे त्याग करना पड़ेगा, x x x x x दस बीस आदमियों की आहुति देनी पड़ेगी, तब लोगों की आंखें खुलेंगी।" (२) ज्यों ज्यों सुखदा का विकास होता है, वह अनुभव करती है त्याग के बिना जनता नहीं प्रभावित हो सकती । वह मैना से कहती है : " मैं इस घर में रहकर और अमीरी का ठाट रख कर जनता के दिलों पर काबू नहीं पा सकती, मुझे त्याग करना पड़ेगा । (३) त्याग के साथ ही सेवा और दया

---

(१) `कर्मभूमि पृ० सं० २५६-२६३

(२) `कर्मभूमि` पृ० सं० २६६- २५६

के भाव भी अलक्षित रूप में उसमें प्रदर्शित होते हैं सुखदा अपने पति के निकट होती जाती है ।

३०. प्रेमचन्द ने सुखदा में क्रियाशीलता प्रकट की है यह उस युग-धर्म की मांग थी । युग के इसी राजनैतिक विद्रोह का आदर्शीकरण प्रेमचन्द सुखदा के चरित्र से करते हैं । सुखदा में असाधारण क्रियाशीलता तथा प्राण-वता है । हड़तालों के व्यस्त आयोजनों में वह अडिग भाव से कार्य करती है इसका विश्वास है कि" बिना तकलीफ उठाए आराम नहीं मिलता ।" (१) हड़ताल के लिए उस अकेली क्रियाशीलता देखकर जगन्नाथ कहता है :" बहू जी ने सेर का कलेजा पाया है । (२) नैना से वह कहती है" यह कायरों की नीति है, पुरुषार्थ वह है जो समय को अपने अनुकूल बनाए" (३) सुखदा अन्याय को सहन नहीं कर सकती । आरम्भ से वह इसका परिचय " मुन्नी" वाले काण्ड में देती है" अगर उसको फांसी हो गयी तो समझूंगी, संसार से न्याय उठ गया । उसने कोई अपराध नहीं किया । जिन दुष्टों ने उस पर ऐसा अत्याचार किया, उन्हें यही दराड मिलना चाहिए ।" (४) कल की सुखदामेंआज कितना अन्तर हो गया है ? भोग और विलास पर प्राण देने वाली रमणी आज सेवा और दया की मूर्ति बनी हुई है ।" (५) यही है सुखदा की विशिष्ठता जिसकी प्रेमचन्द ने सफलता के साथ प्रगट किया है ।

---

(१) कर्मभूमि पृ० सं० २६४

(२) कर्मभूमिं ,, २६७

(३) कर्मभूमि ,, २६८

(४) कर्मभूमि ,, ५५

(५) कर्मभूमि ,, २१६

निर्मला

३१. निर्मला नारी जीवन की एक करुण कहानी है जो अपने छोटे से जीवन में सब कुछ सहती है और अन्त में भी बिना किसी गीला के कहती है : " दीदी जी, × × × स्वामी जी ने हमेशा मुझे अविश्वास की दृष्टि से देखा , लेकिन मैंने मन में भी उनकी उपेक्षा नहीं की × × × × अधर्म करके अपना परलोक क्यों बिगाड़ती । पूर्व जन्म में न जाने कौन से पाप किए थे जिसका यह प्रायश्चित करना पड़ा । इस जन्म में कांटे बोती तो कौन गति होती ?" (१) निर्मला प्रारम्भ से ही दुखों का बोझ लेकर चलती है, उसके विवाह के समय उसके पिता की अकस्मात् मृत्यु हो जाती है, पिता की मृत्यु के कारण उसका विवाह अधिक उम्र वाले तोताराम से हो जाती है और यहीं से निर्मला का मानसिक असन्तोष प्रकट होने लगता है । एक ओर तो अनमेल - विवाह , दूसरे आर्थिक ह्रास और तिस पर गार्हस्थ्य-वैषम्य । सबने मिलकर निर्मला में वेदना की ही सृष्टि की । रुक्मिणी कहती है - " तुम्हारा बज्र का हृदय है महारानी ।" (२) नित्य-प्रति व्यंग्य वाणों की बौछार संशंकित दृष्टियों की ताक झांक , विभिन्न अपराधों का आरोपण और क्या नहीं निर्मला को सब सहन करना पड़ा । पर किसने समझा कि उसके हृदय में विप्लव की ज्वाला सी दहकती रहती थी, जिसकी असह वेदना ने उसे संज्ञाहीन कर रखा था" ? (३) प्रेमचन्द के शब्दों निर्मला की दशा उस पैखहीन

---

(१) " निर्मला " पृ०सं० २१४
(२) " निर्मला " पृ०सं० ८२
(३) " निर्मला " पृ०सं० ११४

पक्षी की तरह हो रही है जो सर्प को अपनी ओर आते देखकर उड़ना चाहता है पर उड़ नहीं सकता , उछलता है और गिर पड़ता है , पंख फड़ा फड़ा कर रह जाते हैं (१) निर्मला कभी अपने कर्त्तव्य से विमुख नहीं होती । पत्नी रूप में, गृहिणी के रूप में, विमाता, पुत्री, भगिनी एवं सहेली सभी-रूपों में वह अपने कर्त्तव्य को निभाने का प्रयत्न करती है लेकिन असफलता उसका साथ नहीं छोड़ती यही उसके जीवन की ट्रेजडी है जिसको प्रेमचन्द ने बहुत ही स्वाभाविक और सामान्य रूप में प्रस्तुत किया है । निर्मला की अभिव्यक्ति नारी-जीवन का एक करुणतम अध्याय है, जिसके अध्ययन के उपरान्त समाज के अन्यायपूर्ण कार्यों का लज्जास्पद चित्र देखने को मिलता है । निर्मला मृत्यु-शय्या पर अपना सन्देश कह जाती है : " निर्मला की सांस बड़े वेग से चलने लगी । फिर खाट पर लेट गयी और बच्ची की ओर ऐसी दृष्टि से देखा जो उसके जीवन की विपत्कथा की वृहत् आलोचना थी, वाणी में इतनी सामर्थ्य कहां ? x x x x x x बच्ची को आपकी गोद में छोड़े जाती हूं । अगर जीती जागती रहे तो किसी अच्छे कुल में विवाह कर दीजिएगा । x x x x चाहे कुंवारी रखिएगा , चाहे विष देकर मार डालिएगा पर कुपात्र के गले न मढ़िएगा , इतनी ही आपसे विनय है ।" (२)

---

(१) " निर्मला " पृ० सं० ८३
(२) " निर्मला " पृ० सं० २१३- २१४

३२. प्रेमचन्द भारतीय सामाजिक जीवन के महान व्याख्याकार थे, इसीलिए निर्मला का चित्रण अत्यन्त मर्मस्पर्शी रूप में हुआ है । निर्मला के चरित्र-माध्यम से हमारी ही बुराइयों एवं दुर्बलताओं का प्रस्तुतीकरण हुआ है । निर्मला ने बाल्यकाल की सुखद क्रीड़ाओं के बाद यौवन का स्वप्न-संसार बनाना भी न सीखा था कि दुर्भाग्य ने उसे एक वृद्ध विधुर के साथ पत्नी बना दिया जिसका शोकमय आभास उसको स्वप्न में दीख जाता है :" निर्मला इन्हीं शोकमय विचारों में पड़ी-पड़ी सो गयी और आंख लगते ही उसका मन स्वप्न-देश में विचरने लगा x x x x x x वह घोर चिंता में पड़ी हुई है कि कैसे वह नदी पार हो x x x x x x वह चिल्ला-चिल्ला कर रो पड़ती है x x x x ठहरो ! वह नाव तुम्हारे लिए नहीं x x x x x x तुम्हारे लिए यह टूटी नाव है x x x x यहां अकेली पड़ी रहने से नाव में बैठ जाना अच्छा है x x x x x लेकिन प्रतिक्षण वह डूबती जाती है । (२) प्रेमचन्द ने स्वप्न-दर्शन से निर्मला के जीवन की सम्पूर्ण व्याख्या थोड़े ही शब्दों में शुरू में ही स्पष्ट कर दी है । सोलह साल की निर्मला को तीन बच्चों के पिता पैंतीस वर्षीय तोताराम से बांध कर इतने में ही संतोष कर लिया जाता है कि " अगर लड़की के भाग्य में सुख भोगना बदा होगा तो जहां जाएगी सुखी रहेगी, दुख बदा होगा तो जहां जाएगी दुख भोगेगी । हमारी निर्मला को बच्चों से प्रेम है । उनके बच्चों को अपना समझेगी । x x x x x x x आप शुभ मुहूर्त देख कर टीका कर आएं ।" (३) जिस समाज में विवाह की यह रीति है वहां निर्मला ऐसी अभागी कन्याओं का

---

(१) निर्मला पृ०सं० - २१३, २१४

(२) निर्मला पृ०सं० - ७- ८

(३) निर्मला पृ०सं० - ४१

मी लोप नहीं हो सकता । निर्मला को प्रसन्न रखने के लिए पति तोताराम में जो स्वाभाविक कमी थी, उसको वह उपहारों से पूरा करना चाहते थे । लेकिन निर्मला को तोताराम के पास बैठने और हंसने बोलने में संकोच होता है । इसका कदाचित् कारण :" अब तक ऐसा ही एक आदमी उसका पिता था, जिसके सामने वह सिर फुका कर देह चुरा कर निकलती थी, अब इनकी अवस्था का एक आदमी उसका पति था ।" (१) निर्मला उसको प्रेम की वस्तु नहीं सम्मान की वस्तु समफती है । पति से निराश होकर उसका हृदय बालकों के लालन-पालन में व्यस्त रहना चाहता है किन्तु अतृप्त की वेदना बड़ी विषम है, ,,,,, उसे संज्ञाहीन सा कर रक्खा था ।" उसकी कामनाएं होम हो चुकी थीं, फिर मी पति का साहचर्य निभाती थी : " हृदय रोता था, पर मुख पर हंसी का रंग भरना पड़ता था" (२) निर्मला आत्मपीड़ा और मनोव्यथा का दुस्सह भार उठाती है लेकिन इसके बदले में उसे मिलता क्या है ? पति का तिरस्कार और सन्देह । वृद्ध पति की तृप्ति के लिए निर्मला को जो जो रूप भरने पड़ते हैं, वे उसकी विवशता की सच्ची व्याख्या हैं । निर्मला अपने जीवन-यज्ञ में तिल-तिल जल जाती है और पति महाशय असम्भव को सम्भव करने के विवेकहीन प्रयत्न करते हैं । मिथ्या वीरत्व और साहस की डींग मार कर वह वीते यौवन का चमत्कार दिखाना चाहते हैं, यहीं तक पति महाशय की तृप्ति का अन्त नहीं हो जाता । वह अपने मन का कलुष पुत्र और पत्नी के मध्य सन्देह उत्पन्न करके प्रकट करते हैं । तोताराम की सन्देहशीलता से सर्वगुणी, सुशील, सुकुमार मन्साराम को गृह-परित्याग करना पड़ता है । इसी प्रकार अभाव और दुरवस्थाओं ने पति - पत्नी दोनों

---

(१) 'निर्मला' पृ०सं० ४३

(२) 'निर्मला' पृ०सं० ८५

के जीवन को नारकीय बना दिया है और अन्त में पति अपने वृद्ध हाथों से अपनी युवती पत्नी निर्मला की चिता जला कर अपने अभिशप्त जीवन के शेष दिन व्यतीत करने के लिए रह जाता है । यही है निर्मला के बलिदान की अमर कहानी जो सदैव अपने जीवन को पुनीत भावनाओं से और निष्कलंकता से व्यतीत करने के असफल प्रयत्नों में खो जाती है ।

लौंगी (सेविका)

३३. लौंगी घर की लौंडी होती है, लेकिन जब लौंडी ही मालिक पर अपना प्रभाव जमा लेती है तो वही स्वामिनी बन कर रहती है । 'कायाकल्प' में प्रेमचन्द ने ऐसी ही एक लौंडी का चित्र प्रस्तुत किया है जो अपनी सेवाओं और त्याग से लौंगी के नाम पर स्वामिनी का पद और प्रतिष्ठा ग्रहण कर लेती है । स्वामी हरिसेवक के पुत्र गुरुसेवक सिंह से वह कहती है : " तो बच्चा सुनो, जब तक मालिक जीता है, लौंगी इसी घर में रहेगी और इसी तरह रहेगी, जब वह न रहेगा तो जो कुछ सिर पर पड़ेगी, झेल लूंगी । तो तुम चाहो लौंगी गली गली ठोकरें खाए, तो यह न होगा । मैं लौंडी नहीं हूं कि घर से बाहर जा कर रहूं । तुम्हें यह कहते लज्जा नहीं आती ? चार भांवरें फिर जाने से ही व्याह नहीं हो जाता । मैंने अपने मालिक की जितनी सेवा की है और करने को तैयार हूं, उतनी कौन व्याहता करेगी ? × × × × × × × नाम से कोई व्याहता नहीं होती, सेवा और प्रेम से होती है । (१) लौंगी प्रेमचन्द के विशिष्ट

---

(१) 'कायाकल्प' पृ०सं० ४८

नारी पात्रों में से एक है क्योंकि उसके चरित्र आदर्शात्मक हैं । उसमें प्रेम और वात्सल्य के मनोवेग हिलोरे ले रहे हैं । कर्त्तव्य, प्रेम और त्याग से अनुप्राणित उसका चरित्र नारीत्व के उज्ज्वल-पक्ष की मार्मिक झलकदिखाता है । वह हरिसेवक की व्याहता नहीं लेकिन व्याहता से भी अधिक हो गयी है । हरि-सेवक एक दिन भी उसके बिना रह नहीं सकते, वह कहती है :" अभी तो मेरा मालिक जीता है, भगवान उसे अमर करें ! x x x x x x जिसने जवानी में बांह पकड़ी वह क्या अब छोड़ देगा ? भगवान् को कौन मुंह दिखाएगा ?

३४. " लौंगी को देखो" - इस उपदेश-वाक्य के माध्यम से प्रेमचन्द ने लौंगी की सेवा भावना को अमरत्व प्रदान किया है । लौंगी ने अपनी स्नेहमयी सेवाओं से पिता, पुत्र, पुत्री सब को अपना बना लिया था । मनोरमा को " लौंगी से सच्चा प्रेम था । मातृ स्नेह का जो कुछ सुख उसे मिला था, ००० लौंगी से ही मिला था । x x x x x x अब भी लौंगी उस पर प्राण देती थी ।" (२) ठाकुर साहब की कितनी ही प्रताणना उसने सुनी है, अन्त में वह कहती है :" पच्चीस वर्ष के दाम्पत्य जीवन में उसने कभी इतना आनन्द न पाया था । निर्दय अविश्वास रह रह कर उसे तड़पाता रहा था उसे सदैव यह शंका बनी रहती थी कि यह डोंगी पार लगती है या मझधार ही में डूब जाती है । वायु का हल्का सा वेग, लहरों का हल्का सा आन्दोलन , नौका का हल्का सा कम्पन उसे भयभीत कर देता था ।" (३) लेकिन लौंगी ठाकुर साहब की तन-मन से सेवा करती है । ठाकुर साहब भी

---

(१) ' कायाकल्प ' पृ०सं० ४६

(२) ' कायाकल्प ' पृ०सं० ४६

(३) ' कायाकल्प ' पृ०सं० २७८

उसे बुरा-भला कहते हैं लेकिन उसके बिना एक घड़ी रह नहीं सकते, उनके विधुर जीवन में लौंगी ज्योति के समान दीप्तमान है । वही ठाकुर साहब को प्रेरणा देती है, संचारित करती है और रम्भा करती है । लौंगी लगन ब और विश्वास के साथ ठाकुर साहब की सेवा करती है और उन पर अपना अधिकार भी समझती है ।

३५. लौंगी अपना समस्त जीवन सुगृहिणी बन कर काट देती है, ळ उसके सामान्य व्यावहारिक जीवन में सौजन्य एवं दया है और है सहज साधारण धर्म, जिसको वह दैनिक जीवन में नित्य-प्रति सफलता के साथ निभाती है । उसकी उदारता का ही प्रताप है कि " नौकरों को वेतन न मिलने पर भी जाने ने देती थी ।" (१) लौंगी की व्यवहारकुशलता पग पग पर ब झलकती है । मनोरमा के विवाह पर अत्यन्त क्षुब्ध हो जाती है और कहती है " भाग्य पर भरोसा वह करते हैं जिनमें पौरुष नहीं होता , लड़की को डुबा दिया, कहते हैं भाग्य भी कोई चीज है ।" (२) झिनकू को जब ज्योतिषी के भेष में उसके सामने लाकर खड़ा किया जाता है तो वह बिफर उठती है : " एक बहुरूपिए को लाकर खड़ा कर दिया , ऊपर से कहते जोतसी है । ऐसी ही सूरत होती है जोतसी की ?" (३)

३६. प्रारम्भ में अवश्य प्रेमचन्द ने लौंगी की स्थूलता का उपहास किया है, लेकिन फिर धीरे धीरे मानवीय भावनाओं के निवास के साथ

---

(१) `कायाकल्प` पृ०सं० ११
(२) `कायाकल्प` पृ०सं० १४६
(३) `कायाकल्प` पृ०सं० १५१

यह भाव समाप्त हो जाता है । लौंगी के प्रति सच्ची श्रद्धा और भक्ति होती है और उसकी सच्ची सेवाओं और त्याग के प्रति नतमस्तक होना पड़ता है । लौंगी होकर भी उसने दिखा दिया कि नाम से ही कोई व्याहता नहीं होती, सेवा और प्रेम से होती है । प्रेमचन्द के इस नारी रूप में पत्नीत्व के सभी गुण हैं ।

३७. नारी होने के नाते लौंगी में पत्नीत्व और मातृत्व भाव प्रबल रूप में विकसित हो चुके हैं । वह जितनी सेवा ठाकुर साहब की करती है, उतनी व्याहता भी न कर सकेगी । इसीलिए पिता की मृत्य के पश्चात् गुरुसेवक सिंह कहता है :" हां बेसाही हो मैंने नहीं बेसाहा, मेरे बाप ने तो बेसाहा है । बेसाही न होती, तो तुम तीस साल तक यहां रहती कैसे ?. . . . दादा जी चाहते तो एक दर्जन व्याह कर सकते थे, कौड़ियों रखेलियां रख सकते थे । यह सब उन्होंने क्यों नहीं किया ?......... यह तुम्हारी सेवा की ही जंजीर थी, जिसने उन्हें बांध रक्खा था । नहीं तो आज हम लोगों का कहीं पता न होता. . . . . . तुम्हारे नाम के साथ मेरी और मेर बाबू जी की इज्जत बंधी हुई है ।" (१) लौंगी ने निर्लिप्त भाव से पति की सेवा की थी, वह धन की उपासक नहीं, मान की भूखी है । मनोरमा द्वारा जब उसे ज्ञात होता है" पिता जी ने सारी जायदाद तुम्हारे नाम लिख दी है" लौंगी को इस सूचना का तनिक भी असर नहीं होता, लौंगी की सेवा के आगे सम्पत्ति भी सिर से झुकाती है । वह गंभीर भाव से कहती है :" नोरा , तुम यह वसीयतनामा ले जाकर उन्ही को दे दो । मैं उनकी जायदाद की भूखी न थी,

---

(१) `कायाकल्प` पृ०सं० - २८०

उनके प्रेम की भूखी थी . . . . वह कागज फाड़ कर फेंक दो . . . .
गुरुसेवक अपने बाप का बेटा है , तो मुझे उसी आदर से रक्खेगा . . . .
गुरुसेवक के मुंह से `अम्मा` सुनकर मुझे वह खुशी होगी, जो संसार की
रानी बन कर भी नहीं हो सकती । " (२) शब्दों में :" रमणी का
हृदय सेवा के सूक्ष्म परमाणुओं से बना होता है । उसका प्रेम भी सेवा है,
उसका अधिकार भी सेवा है, यहां तक कि उसका क्रोध भी सेवा है ।" (३)
यही है लौंगी का साकार रूप जिसको प्रेमचन्द सफलता के साथ चित्रित
किया है । हरिसेवक अवरुद्ध कण्ठ से कहते हैं :" मैं बिल्कुल पागल हो गया
था, उस दशा में लौंगी ने मेरी रक्षा की । उसकी सेवा ने मुझे मुग्ध कर
दिया । उसे तुम लोगों पर प्राण देते देखकर उस पर मेरा प्रेम हो गया . .
. . . . मैं लौंगी के हृदय पर मुग्ध हो गया . . . . . गुरूसेवक की बिमारी में
. . . . इसके बचने की कोई आशा न थी . . . . यह लौंगी ही
थी जिसने उसे मौत के मुंह से निकाला । कोई माता अपने बालक की इतनी
सेवा नहीं कर सकती । जो उसके त्यागमय स्नेह को देखता . . . . . .
क्या वह लोभ-वश अपने को मिटाए देती थी ? लोभ में भी कहीं त्याग होता
है ? . . . . लौंगी ने मेरे भाग्य को रचा है । जो कुछ किया , उसी
ने किया , मैं तो निमित्तमात्र था । . . . . । (४)

---

(२) `कायाकल्प` पृ०सं० २८२
(३) `कायाकल्प` पृ०सं० २४६
(४) `कायाकल्प` पृ०सं० २७१

मालती (पाश्चात्य-शिक्षा-प्राप्त महिला)

३८. प्रेमचन्द के प्राय: पात्र अपने वर्ग के प्रतीक रूप में आभासित होते हैं, परन्तु फिर भी वे अपने विशिष्ट व्यक्तित्व भी रखते हैं। उनका अपना निजत्व भी फलकता है। यही अभिनत्व है । भिन्नत्व की प्रतीति उनके पात्र की अपनी विशेषता है। मालती का परिचय प्रेमचन्द इन शब्दों में करते हैं : ' नवयुग की साक्षात् प्रतिमा हैं। गात कोमल, पर चपलता कूट कूट कर भरी हुई। फिफक या संकोच का नाम नहीं, मेकअप में प्रवीण, बला की हाजिर जवाब, पुरुष मनोविज्ञान की अच्छी जानकार, आमोद प्रमोद को जीवन का तत्व समफने वाली, लुभाने और रिफाने की कला में निपुण, जहां आत्मा का स्थान है वहां प्रदर्शन, जहां हृदय का स्थान है वहां हाव-भाव, मनोंद्गारों पर कठोर निग्रह जिसमें इच्छा या अभिलाषा का लोप-सा हो गया।' (१) मालती की चरित्रगत प्रवृत्तियों में उस विदेशी शिक्षा का प्रभाव लक्षित है, जिसे उसने इंगलैण्ड में प्राप्त किया है। मालती का वाह्य प्रदर्शन परिचय के साथ होता है। उसका जीवन उपयोगितावाद पर टिका है।' मालती बाहर से तितली है, (लेकिन) भीतर से मधु मक्खी। उसके जीवन में हंसी ही हंसी नहीं है। केवल गुड़ खाकर कौन जी सकता है। x x x x x x वह हंसती है, इसलिए कि उसे इसके भी दाम मिलते हैं। उसका चहकना और चमकना इसलिए नहीं कि वह चहकने ही को जीवन समफती है, x x x x x इससे उसके कर्तव्य का भार कुछ हल्का होता है।' (२)

---

(१) 'गोदान' पृ०सं० ५६
(२) 'गोदान' पृ०सं० १५६

मालती का चरित्र दो मुखी है। मित्रों के मध्य वह हास-विलास आमोद-प्रमोद, आमोद-प्रमोद में मग्न रहती है, लेकिन घर में वह कर्तव्य परायण बाला है जो पिता के अपत्यता को सन्तोष के साथ निभाने का प्रयत्न करती है और अपनी बहनों को पढ़ाती है पिता के अपाहिज होने पर वह समस्त परिवार का पोषण करती है और प्रात: से रात्रि तक व्यस्त रहती है। (१)

३६. मालती की विलास-प्रियता का कारण उसके विलासी मित्र हैं जो भौंरे के समान चारों पहर उसके इर्द-गिर्द मंडराया करते हैं। अब तक जिन पुरुषों से उसका परिचय था वे उसकी विलासवृत्ति को ही उत्तेजित करते थे। (२) खन्ना के शब्दों में :` मैं तो केवल उसके रूप का पुजारी था < < < < < < < < गोविन्दी की सेवा और स्नेह तथा त्याग से मुझे उसी तरह अरुचि हो गयी थी, जैसी अजीर्ण के रोगी को मोहनभोग से हो जाती है। < < < < < < < फिर भी मैं पतंग की भांति उसके मुख-दीप पर प्राण देता था ` (३) लेकिन मालती जब मेहता ऐसे मनस्वी पुरुष के संसर्ग में आती है तो उसके चरित्र में परिवर्तन प्रकट होता है। (४) मालती के परिष्कृत जीवन में बुद्धि की प्रखरता और विचारों की दृढ़ता ही सबसे ऊंची वस्तु है। धन और ऐश्वर्य को वह केवल खिलौना समझती है। मालती परिहास के स्वर में खन्ना से कहती है :` मैं रूपवती हूं। तुम भी मेरे अनेक चाहने वालों में से एक हो वह मेरी कृपा थी कि जहां मैं औरों के

---

(१)`गोदान` पृ०सं० - १५७

(२)` गोदान` पृ०सं०-३०८

(३)`गोदान` पृ०सं० २३७

(४) गोदान पृ०सं० ३०८

उपहार लौटा देती थी, तुम्हारी सामान्य से सामान्य चीजें भी धन्यवाद के साथ स्वीकार कर लेती थी, x x x x x x अगर तुमने अपने धनोन्माद में इसका कोई दूसरा अर्थ निकाल लिया, तो मैं तुम्हें क्षमा करूंगी, x x x मगर यह समझ लो कि धन ने आज तक किसी नारी के हृदय पर विजय नहीं पायी ।` (१)

४०. मालती ग्रामीणों की सेवा में अपने को उत्सर्ग कर देती है । ग्रामीणों के त्यागमय जीवन के सामने उसको अपना विलासी जीवन तुच्छ और बनावटी प्रतीत होने लगता है । प्रेमचन्द लिखते हैं : ` आज उसके वह रेशमी कपड़े, जिन पर ज़री का काम था और वह सुगन्ध से महकता हुआ शरीर और वह पाउडर से अलंकृत मुख -मण्डल उसे लज्जित करने लगा । उसकी कलाई पर बंधी सोने की घड़ी जैसे अपलक नेत्रों से उसे घूर रही थी । उसके गले में चमकता हुआ जड़ाऊ नेकलस मानों उसका गला घोंट रहा था । इन त्याग और श्रद्धा की देवियों के सामने वह अपनी ही दृष्टि में नीची लग रही थी ।` (२) मेहता के बुद्धि-बल और तेजस्विता ने मालती में प्रेरणाशक्ति भर दी थी अब वह स्वयं अपना अब वह स्वयं अपना संस्कार करती चली जाती थी । मालती ने जीवन का नया आदर्श ग्रहण कर लिया था और उसी में अपने को लगा दि दिया था । मालती सेवा और त्याग के पथ पर अग्रसर होती है और इसके निर्वाह के लिए सफल प्रयत्न करती है । मालती अपनी कर्मशील मानवता के बल पर नारीत्व के उच्चादर्श में अपने को समर्पित कर देती है । प्रेमचन्द लिखते हैं :`मेहता ने जैसे उसे ठुकरा कर उसकी आत्मशक्ति को जगा दिया x x x x x x x x x उसके (मालती) परिष्कृत जीवन में बुद्धि की प्रखरता और विचारों

---

(१)`गोदान` पृ०सं० २४३
(२)`गोदान` पृ०सं० ३१०

की दृढ़ता ही सबसे ऊंची वस्तु थी । धन और ऐश्वर्य को तो वह केवल खिलौना समझती थी < < < < < रूप में भी उसके लिए विशेष आकर्षण तथा < < < < < उसको तो अब बुद्धि शक्ति ही अपनी ओर झुका सकतीथी, जिसके आश्रय में उसमें आत्मविश्वास जागे, अपने विलास की प्रेरणा मिले, अपने में शक्ति-संचार हो, अपने जीवन की सार्थकता का ज्ञान हो । मेहता के बुद्धि बल और तेजस्विता ने उसके ऊपर अपनी मोहर लगा दी थी और तब से वह अपना संस्कार करती चली आती थी < < < < < जीवन का नया आदर्श जो उसके सामने आ गया था, वह अपने को उसके समीप पहुंचाने की चेष्टा करती हुई और सफलता का अनुभव करती हुई, उस दिन की कल्पना कर रही थी वह और मेहता एकात्म हो जाएंगे (विवाह से नहीं विचारों से) और यह कल्पना (मालती) उसको और भी दृढ़ और निष्ठ बना रही थी ।(१)

४१. मालती की बढ़ती निष्ठा देखकर मेहता उस पर मुग्ध हो जाते हैं । मालती के बिना उन्हें अपना जीवन अपूर्ण ज्ञात होता है । किन्तु मालती आर्द्र होकर कहती है :` तुम जानते हो , तुमसे ज्यादा निकट संसार में मेरा कोई दूसरा नहीं < < < < < < < तुम मेरे पथ-प्रदर्शक हो, मेरे देवता हो, मेरे गुरू हो < < < < < < तुमने आकर प्रेरणा दी, स्थिरता दी < < < < < < < तुम्हारा प्रेम और विश्वास पाकर अब मेरे लिए कुछ भी शेष नहीं रह गया । यह वरदान मेरे जीवन को सार्थक कर देने के लिए काफी है, , यह मेरी पूर्णता है ।` (२) मालती पीड़ित मानवता के उद्धार के लिए मेहता जैसे साधकों की आवश्यकता का अनुभव करती है । वह गंभीरता से

---

(१) `गोदान` पृ०सं० ३१६
(२)` गोदान` पृ०सं० ३४०

कहती है :` जब तक ममत्व नहीं है, अपनत्व नहीं है, तब तक जीवन का मोह नहीं है।< < < < < < जिस दिन मन मोह में आसक्त हुआ< < < << उस क्षण हमारी मानवता का क्षेत्र सिकुड़ जाएगा< < < < < तुम जैसे विचारवान्, प्रतिभाशाली मनुष्य की आत्मा को मैं इस कारागार में बन्द नहीं करना चाहती< < < < < संसार को तुम जैसे साधकों की जरूरत है, जो अपनेपन को इतना फैला दें कि सारा संसार अपना हो जाए। (१)

४२. इस प्रकार प्रेमचन्द ने विलासिनी मालती को मानवता के उच्च शिखर पर पहुंचा दिया है, जहां पर पहुंच कर वह संसार के अन्याय, आतंक, भय, अन्ध-विश्वास, कष्ट-धर्म, स्वार्थ के निवारण में अपने को उत्सर्ग कर देती है। विलासिनी `सुखदा` का ही `मालती` और अधिक परिष्कृत रूप है जो एकात्म से सर्वात्म में अपने को मिटा देने का प्रयत्न करती है। मालती का यह चरितगत परिवर्तन अस्वाभाविक नहीं, मालती की प्रवृत्ति में ही त्याग और सेवा के अणु विद्यमान थे केवल उनको विकसित करने के लिए सहारे की आवश्यकता थी जो उसको मेहता से मिल गयी।

---

(१) `गोदान` पृ०सं० - १६०

गोविन्दी (पत्नी)

४३. प्रेमचन्द ने गोविन्दी के रूप में आदर्श पत्नीत्व रूप प्रस्तुत किया है । गोविन्दी सहनशील, पतिव्रता आदर्श भारतीय महिला है, उसके व्यक्तित्व का अंग अंग भारतीयता का परिचायक है । `वह अप्सरा न हो, पर रूपवती अवश्य है। गेहुंआ रंग, लज्जाशील आंखें, , , , गात कोमल, अंग-विन्यास सुडौल, , , , , , मुख पर एक प्रकार की अरुचि, जिसमें कुछ गर्व की झलक भी है, मानों संसार के व्यवहार और व्यापार को हेय समझती है ।` (१) इन शब्दों में प्रेमचन्द ने गोविन्दी के व्यक्तित्व की विशेषता व्यक्त की है जो भरतीयता को अपने में समेटे हुए है । गोविन्दी पति परायणता पत्नी है जिसके लिए पति की सर्वस्व है । वह प्रेम और निष्ठा से पति की सेवा किए जाती है जैसे द्वेष और मोह जैसी भावनाओं को उसने जीत लिया हो । गोविन्दी की आत्मा आडम्बरों और पाषण्डों से मुक्त होने के लिए सदैव लालायित रहती है । प्रेमचन्द लिखते हैं :` अपने सरल और स्वाभाविक जीवन में वह कितनी सुखी रह सकती थी, इसका वह नित्य स्वप्न देखती है` (२) तक उसके जीवन में सन्देह, बनावट, अशान्ति कांटा न बनेंगे । गोविन्दी के पति मि० खन्ना विलासी जीव हैं और साथ ही अपनी पत्नी के साथ अशिष्टता भी करते हैं । अक्सर क्रोध में अपशब्द भी कह बैठते हैं । किन्तु गोविन्दी दलिता और अपमानित होकर भी खन्ना की लौंडी है । ` उनसे लड़ेगी, जलेगी,। वह कती है :` सत्पुरुष धन के आगे सिर नहीं झुकाते, , , , , , अगर तुममे सच्चाई है, न्याय है, पुरुषार्थ है तो वे तुम्हारी पूजा करेंगे । (३)

---

(१) `गोदान` पृ०सं० -१८६
(२) `गोदान` पृ०सं० -१६०
(३)` गोदान` पृ०सं०-२६४

४४. भारतीय नारी सुसंगति तथा संस्कार-प्रभाव में विश्वास रखती है। गोविन्दी का भी यही प्रबल विश्वास है। खन्ना जब ठीक मार्ग पर आ जाते हैं तो वह कहती है : ` अब तुम्हारे लड़के आदमी बनेंगे` (२) आदर्श भारतीय सुगृहिणी ईश्वर-भीरु होती है और कर्म-अकर्म में विश्वास करती है। विपदाओं को भी ईश्वरीय प्रेरणा स्वरूप स्वीकार करके सहन करती है। गोविन्दी विपत्ति को तप का अवसर समझती है। वह पति से कहती है : ` सिद्धि प्राप्त करने में अगर कोई कष्ट भी हो तो उसका स्वागत करो। तुम इसे विपत्ति समझते ही क्यों हो ? क्यों नहीं समझते, तुम्हें अन्याय से लड़ने का यह अवसर मिला है। मेरे विचार में तो पीड़क होने से पीड़ित होना कहीं श्रेष्ठकर है।` (३) संक्षेपत: गोविन्दी अपनी त्यागवृत्ति से लखपती की पत्नी होकर भी विलास को तुच्छ समझती है। मातृत्व की वेदी पर अपने को बलिदान करती है। गोविन्दी के लिए त्याग ही सब से बड़ा अधिकार है। प्रेमचन्द के शब्दों में : ` वह इस योग्य है कि उसकी प्रतिमा बना कर पूजा की जाए।` (४) रोएगी, पर रहेगी उन्हीं की। उनसे पृथक जीवन की वह कोई कल्पना नहीं कर सकती। (५)

४५. एक बार विक्षुब्ध होकर खन्ना से दूर हो जाने की गोविन्दी कल्पना करती है लेकिन मेहता द्वारा उसकी सेवाओं और कर्तव्यों का समाधान हो जाता है। मेहता कहते हैं :` आप उसे खूब जानती हैं। वह एक लखपती की पत्नी है, पर विलास को तुच्छ समझती है, जो उपेक्षा और अनादर सह कर भी अपने कर्तव्य से विचलित नहीं होती, जो मातृत्व की वेदी पर

---

(२)`गोदान` पृ०सं० १६४

(३) गोदान पृ०सं०

(४) `गोदान` पृ०सं०

(५) गोदान पृ०सं० ३०० १६०

४६. भारतीय नारी सेवा, प्रेम और त्याग के सूक्ष्म -परमाणुओं से मिलकर बनी है, जिसकी सृष्टि घर में होती है । मेहता स्पष्ट करते हैं : ` घर आपका है और सदैव रहेगा । उस घर की आपने सृष्टि की है और प्राण जैसे देह का संचालन किया है । प्राण निकल जाए तो देह की क्या गति होगी ? < < < < < < < < माता का काम जीवन दान देना है । जिसके हाथों में इतनी अतुल शक्ति है, उसे इसकी क्या परवाह कि कौन रूठता है, कौन बिगड़ता है ।` (१) परवाह की कौन रूठता है, कौन बिगड़ता है गोविन्दी जिसने जीवन-भर पति से प्रताड़ना ही पायी थीं, पति को निराश, आहत और विकल देकर, सच्चे स्नेह में डूब जाती है और सात्वना के लिए अपने को समर्पित करने का प्रयत्न करती है । अनुराग और स्नेह में डूबी गोविन्दी के लिए अब पति का सम्मान दुगुना हो गया ।

---

(१) ` गोदान पृ०सं० १६५

(२) गोदान पृ०सं० २००

धनिया (ग्रामीण-पात्र)

४७. प्रेमचन्द के विशिष्ट नारी पात्रों में धनिया का प्रमुख स्थान है। वह दलित ग्रामीण समाज का प्रतिनिधित्व करती है। धनिया की उम्र अभी छत्तीस वर्ष की है किन्तु :' सारे बाल पक गए थे, चेहरे पर झुर्रियां पड़ गयीं थीं। सारी देह ढल गयी थी, वह सुन्दर गेहुंआ रंग संवला गया था और आंखों से भी कम सूझने लगा था।' (१) धनिया की इस दुर्दशा का कारण आर्थिक - परवशता है, वह विवश है आर्थिक-चिन्ताओं के कारण, कोई मुक्ति का मार्ग उसे नहीं सूझता, धनिया को जैसे अनुभव हो चुका हो : ' चाहे कितनी ही कतर-ब्योंत करो, कितना ही पेट तन काटो, चाहे चाहे एक एक कौड़ी को दांत से पकड़ो, मगर लगान बिवाक होना मुश्किल है।' (२) चिरस्थायी जीर्णावस्था ने उसके सारे सुख छीन लिए थे, लेकिन फिर भी वह हार नहीं मानती। उसकी छै सन्तानों में अब केवल तीन जिन्दा है। तीन लड़के बचपन में मर गए। उसका मन आज भी कहता था कि अगर उनकी दवा-दारू होती तो वे बच सकते थे, पर वह एक धेले की दवा न मंगा सकी थी इन दुरवस्थाओं ने धनिया में विद्रोह भर दिया है :' जिस गृहस्थी में पेट की रोटियां भी न मिले, उसकी खुशामद क्यों ?' उसका विचार था :' हमने जमींदार के खेत में काम किया है उसे जोता है, तो यह अपना लगान ही तो लेगा। उसकी खुशामद क्यों करें ? उसके तलवे क्यों सहलाएं ?' (३)

---

(१) 'गोदान' पृ०सं० -१
(२) 'गोदान' पृ०सं० - १
(३) 'गोदान' पृ०सं० - १

४८. जीवन की यथार्थताओं से धनिया विक्षुब्ध हो उठी है । वैसे भी वह उग्र स्वभाव की स्त्री है, वह दबना-झुकना नहीं जानती, टूट भले ही जाए अन्याय के प्रति विद्रोह का स्वर ही उसके चरित की महत्वपूर्ण विशेषता है । धनिया के घर गाय आने पर उसके देवर उस पर आक्षेप लगाते हैं कि साझे का रुपया दबा लिया , बस धनिया की अन्त: चेतना ऐसे तीव्र आघात को सह नहीं सकती, उसकी उग्र और प्रचंड प्रकृति चोट खाकर उत्तेजित हो जाती है । उसके विक्षुब्ध भाव सागर का उल्लेख प्रेमचन्द इन शब्दों में करते हैं : `डाढ़ीजारों के पीछे हम बर्बाद हो गए, सारी जिन्दगी मिट्टी में मिला दी, पाल पोस कर संडा किया, और अब हम बेइमान हैं । हीरा,सोभा और संसार को जो करना हो, कर लें, ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ ‹ मैंने हंडे भर असर्फियां छिपा लीं ।` (१) धनियां धनिया के प्रत्येक शब्द में उसका उद्वेलित हृदय मूर्त रूप धारण करता प्रतीत होता है । धनियां आवेश में अपने को भी भुला देती है और अपने क्रोध की भीषणता में अनाप-शनाप अथवा अपशब्द अपने पति को, देवरों को, सबको कह देती है । इतनी भीषणताओं , प्रचण्डताओं के मध्य भी धनिया की कोमल वृत्तियां नष्ट नहीं हुई हैं । परिस्थितियों की कठोरता ने उसे कठोर बना दिया है । निराश्रित झुनिया आपत्तिकाल में जब धनिया के पास आश्रय के लिए आती है तो धनिया का कोमल भाव जाग उठता है । लोकनिंदा, मानापमान सब कुछ जानकर भी वह गर्भवती झुनिया को देखकर आर्द्र हो उठती है और कहती है - `तू घर में बैठ, मैं देख लूंगी काका और भैय्या को । संसार में उन्हीं का राज नहीं है ।` (२) धनिया की यह कोमलता सिलिया के सम्बन्ध में भी प्रकट हुई है । मातादीन उसका अपमान करता है । वह अपने माता-पिता के घर पर

---

(१) `गोदान` पृ०सं० ४३

(२) `गोदान` पृ०सं० १२६

नहीं जाना चाहती । मातादीन उसे रखना नहीं चाहता । धनिया उस पर तरस नहीं खाती और उसे अपने घर पर आश्रय देती है । फुनिया को आश्रय देकर वह जुमाना सह लेती लेकिन पुन: वह प्रचंड हो उठती है :` पंचो , गरीब को सता कर सुख न पाओगे , इतना समझ लेना < < < < < < मुझसे इतना कड़ा जरीबाना इसलिए लिए जा रहा है कि मैंने अपनी बहू को कभी अपने घर में रक्खा । क्यों उसे घर से निकाल कर सड़क की भिखारिन नहीं बना दिया । यही न्याय है, ऐं ?` (१) धनिया तिलमिला उठती है :` यह पंच नहीं हैं, राक्षस हैं , पक्के राक्षस । हमारी जग जमीन छीन कर माल मरना चाहते हैं । डांड़ तो बहाना है । < < < < < तुम इन पिशाचों से दया की आसा रखते हो........ ` (२) अन्याय धनिया को तिल-तिल जला रहा है, f वह विवश है लेकिन फिर भी बिना बोले उससे रहा नहीं जाता अपना सारा आक्रोश अपने पति पर उतारती है : ` न हुक्का खुलता तो हमारा क्या बिगड़ जाता था । < < < < < < मैं कहती हूं, तुम इतने भोंदू क्यों हो ? < < < < < < < < ले दे के बाप दादों की निशानी एक घर बच रहा था। एक घर बच रहा था आज तुमने उसका भी वारा-न्यारा कर दिया < < < < < मैं पूछती हूं, तुम्हारे मुंह में जीभ न थी कि उन पंचों से पूछते, तुम कहां के बड़े धर्मात्मा हो, तुम्हारा तो मुहं देखना भी पाप है । (३) धनिया केवल समाज और पंचों की ही चुनौती नहीं देती, वह अन्याय के विरुद्धअपने पति से भी

---

(१) `गोदान` पृ०सं० १२६

(२) `गोदान` पृ०सं० १३०

(३) ` गोदान` पृ०सं ११४

नहीं डरती । पति की मार, डाट, फटकार का उत्तर वह अपशब्दों से, क्रोध की वीभत्सता से और प्रचंड उग्र रूप से देती है । अपनी दुर्दशा और पति के अन्याय को वह समाज के सामने सुना-सुना कर कहती है - "बड़ा वीर है तो किसी मर्द से लड़ । जिसकी बांह पकड़ कर लाया है, उसे मार कर बहादुर न कहलाएगा । तू समझता होगा, मैं इसे रोटी-कपड़ा देता हूं । आज से अपना घर संभाल । देख तो इसी गांव में तेरी छाती पर मूंग दल कर रहती हूं कि नहीं, और इससे अच्छा खाऊंगी, पहनूंगी । इच्छा हो देख ले ।" धनिया अन्याय के नाम पर किसी की भी बात बर्दास्त नहीं करती, चाहे वह उसका पति हो, पंच हो, देवर -देवरानी, लड़का-बहू, दरोगा-थानेदार कोई भी हो । सब को फटकार सुनाती है । धनिया सदैव ईंट का जवाब पत्थर से देती है । आत्म-सम्मान का भाव उसमें विशेष रूप में जागृत है । धनिया के चरित्र में मूल है कुण्ठित आत्म-सम्मान जिसने निरन्तर अपनी अभि-व्यक्ति एवं कार्यान्वयन का अवसर ढूंढ़ा है । अन्याय के प्रति धनियां की संपूर्ण विद्रोह भावना में आत्म-सम्मान की तीव्र भूख निहित है । जीवन के संघर्षों ने अन्तत: उसकी कमर तोड़ डाली पर वह अन्याय के आगे झुकी नहीं । यह सत्य है कि अन्याय ने उसकी प्राण-शक्ति पर आखिरी दम तक चोट करता रहा है । धनिया हार नहीं मानी, उसने झुकना नहीं सीखा ।

४६. धनिया के चरित्र का अन्य विशेष गुण है । अहम्बद्धता, होरी की सीधी सी सीधी बात पर वह बिगड़ उठती है लेकिन होरी भी व्यवहार-कुशल पति है, जब वह खुशामद करता है और धनिया की प्रशंसा करता है तो " धनिया के मुख पर स्निग्धता झलक पड़ी , मनभाय मुड़िया हिलाए वाले भाव से बोली , मैं उनके बखान की भूखी नहीं हूं । x x x x x x होरी ने स्नेह भरी मुस्कान के साथ कहा —मैंने तो कह दिया भैया, वह नाक पर मक्खी नहीं बैठने देती , गालियों से बात करती है x x x x x x लेकिन वह(भोला)

कहे जाए औरत नहीं, लक्ष्मी है' (१) होरी कहता है एक सांचा तो देती हैं दो सांचा । बिना मांगे वह मोती देने को तैयार है और मांगने पर भीख भी नहीं दे सकती । झुनिया को लेकर जब होरी आश्रय की बात कहता है तो तो कहती है : ' इस घर में आए, तो उसे लेकर जहां चाहे रहे' (२) वही धनियां जब मौका आता है तो आर्द्र कण्ठ से उसे सात्वना देती है : ' बेटी, तू चल कर घर में बैठ ।' (३)

५०. धनिया का सबसे महान् गुण, उसका पति-परायण होना है । वह होरी से लड़ती-झगड़ती सब कुछ है, लेकिन होरी के यह कहने पर : ' साढ़े पर पहुंचने की नौबत न आने पाएगी धनिया ।' (४) धनियां संतप्त हो उठती है : ' अच्छा रहने दो, मत असुभ मुंह से निकालो । तुमसे कोई अच्छी बात भी कहे तो लगते हो कोसने ।' धनियां इन निराश भरे शव्दों से आतंकित हो जाती है ।' होरी लाठी कन्धे पर रख कर घर से निकला तो धनिया द्वार पर खड़ी उसे देर तक देखती रही ।' (५) वह जैसे अपने नारीत्व से , सम्पूर्ण तप और वृत से, अपने पति को अभयदान दे रही हो । उसके अन्त: करण से जैसे आशीवादों का व्यूह सा निकल कर होरी को अपने अन्दर छिपाए लेता हो । विपन्नता के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह तृण था, जिसे पकड़े हुए वह सागर को पार कर रही थी । इसीलिए धनिया सतीत्व को नारी का एक-मात्र सम्पदा समझती है ।

---

(१)'गोदान' पृ०सं० २०
(२)'गोदान' पृ०सं० १०६
(३)'गोदान' पृ०सं० १३३
(४)'गोदान' पृ०सं० २
(५)' गोदान' वही ----

५१. गृहिणी रूप में धनिया का चरित्र ग्रामीण-जीवन की आदर्श स्वाभाविकता के साथ विचित्र है। गृहस्थी की विवशताओं को वह धैर्य के साथ फेलती है। वह मालकिन अवश्य है किन्तु होरी के शब्दों में -`इस मालकिन पन में गोबर की मां की जो दुर्गति हुई, वह मैं ही जानता हूं। बेचारी अपनी देवरानियों के फटे-पुराने कपड़े पहन कर दिन काटती थी, खुद सूखी व भूखी सो रही होगी लेकिन बहुओं के लिए जलपान तक का ध्यान रखती थी। अपने तन पर गहने के नाम पर कच्चा धागा भी न था, देवरानियों के लिए दो-दो चार - चार गहने बनवा दिए` (१) जब होरी भी उसके साथ कठोरता का व्यवहार करता है तो वह सोचती है : `इस घर में आकर उसने क्या नहीं फेला, किस-किस तरह पेट तन नहीं काटा, किस तरह एक-एक लत्ते को तरसी, किस तरह एक एक पैसा प्राणों की तरह सींचा, किस तरह घर-भर को खिलाकर आप पानी पीकर सो रही और आज इन सब बलिदानों का यह पुरस्कार।` (२) धनिया का सबसे महान् गुण, ईश्वर को नहीं भूलती, `भगवान बैठे यह अन्याय देख रहे हैं और उनकी रक्षा को नहीं दौड़ते। गज की और द्रोपदी की रक्षा करने दौड़ते। तब बैकुंठ से दौड़े थे। आज क्यों नींद में सोये हुए हैं।` इस प्रकार धनिया भी धर्म-भीरु है। पाप-दण्ड का लेखा-जोखा जानती है ईश्वर पर भरोसा करती है और टोने टोटके से डरती है। इसीलिए अपनी गाय को आंगन में बांधने से डरती है।

---

(१) गोदान` पृ० सं० १०६
वही ....

५२. घनिया का मातृत्व रूप भी खूब विकसित है। वह तीन सन्तानों की मां है। इस दृष्टि से वह एक सहज वत्सला एवं त्यागमयी जननी है जिसने कभी चार उंगली भी अपने बालकों पर नहीं उठाई। गोबर परदेस से घर आता है तो देखिए घनिया का मातृव रूप, उसके आगे स्वर्ग रानी भी लजा जाए। घनियां :` उसका सिर अपनी छाती से लगा कर मानों अपने मातृत्व का पुरस्कार पा गयी हो। उसका हृदय गर्व से उमड़ पड़ता है।

परिशिष्ट

परिशिष्ट

भाग - १ प्रकीर्ण- साहित्य

भाग - २ (अ) प्रेमचन्द के विचार

(ब) प्रेमचन्द का सन्देश

(स) प्रेमचन्द का मूल्यांकन

(द) सहायक- साहित्य

परिशिष्ट

प्रकीर्ण —— साहित्य

१. प्रेमचन्द उपन्यास और कहानी जगत के `सम्राट` थे, परन्तु उनके जीवन की इतिश्री इतने पर ही न थी । उन्होंने साहित्य-सृजन के अन्तर्गत सभी साहित्यिक-उपकरणों में प्रयोग एवं प्रयास किये, जिससे अधिक से अधिक साहित्यिक-प्रेरणा से जनता लाभान्वित हो सके । प्रेमचन्द की हार्दिक-अभिलाषा थी कि साहित्य के सहयोग से ऐसे मनुष्यों की सृष्टि हो जो साहसी, ईमानदार, स्वतन्त्रचेता मनुष्य हों, और जान पर खेलने वाले, जोखिम उठाने वाले, ऊँचे आदर्श वाले हों । इन्हीं आदर्शों से अनुप्राणित होकर प्रेमचन्द ने अपने उद्देश्यपूर्ति के लिए विविध-प्रसंग मानव-जीवन तथा समाज और राज्य से सम्बन्धित लिखे ।

साहित्यिक-लेख

२. प्रेमचन्द लिखते हैं — " साहित्य के तीन लक्ष्य हैं —— परिष्कृत, मनोरंजन, उद्घाटन । लेकिन मनोरंजन और उद्घाटन भी उसी परिष्कृत के अन्तर्गत आ जाते हैं, क्योंकि लेखक का मनोरंजन केवल भाड़ों का नक्कालों का मनोरंजन नहीं होता, उसमें परिष्कार का भाव छिपा रहता है । उसका उद्घाटन भी परिष्कृति का उद्देश्य सामने रख कर ही होता है । हम गुप्त मनोभावों को इसलिए नहीं दर्शाते कि हमें उनकी दार्शनिक विवेचना करनी है । बल्कि इसलिए कि हम सुन्दर को आकर्षक और असुन्दर को हेय दिखाना चाहते हैं । " (१)

---

(१) विनोदशंकर व्यास, पत्र १० सितम्बर, १९२९ लखनऊ ,
(प्रेमचन्द : चिट्ठी पत्री) हंस प्रकाशन, पृ०सं०-१८३, प्रथम संस्करण १९२९,

प्रेमचन्द ने इसी पवित्र और उद्देश्यपूर्ण लक्ष्य के आधार पर साहित्य में आदर्शात्मक जीवनियां, बच्चों के उत्थान के लिए बाल्य-साहित्य , स्त्री का समाज में पवित्र स्थान और आदर, सम्मान हेतु संघर्ष, व्यापक रूप में समाज, राजनीति आदि आदि महत्वपूर्ण विषयों पर अपने विचार प्रकट किए । प्रेमचन्द जीवन का अर्थ `जिन्दादिली` मानते थे । उनका कहना था कि `जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है` यही उत्साह शीलता, यही आशावादिता, वह साहित्य के माध्यम से भर देना चाहते थे । प्रेमचन्द का विचार था देश में पराधीनता के कारण जीवन-संग्राम इतना भीषण है कि हमारी सारी मानसिक और शारीरिक - शक्ति उसमें समाप्त हो गयी है । शुष्क और दुष्प्राह्य विषयों का अध्ययन करने की क्षमता हममें नहीं रह गयी । हम नए विचार ग्रहण तो करना चाहते हैं पर इस तरह की हमें परिश्रम या अध्ययन न करना पड़े । ऐसी परिस्थिति में विभिन्न साहित्यिक उपकरणों के आधार पर प्रेमचन्द ने स्वस्थ्य, उत्साह-वर्द्धक तथा चरित्र-उत्थान को ही अपने साहित्य का मुख्य विषय समझा । प्रेमचन्द मानते थे कि वर्तमान जलवायु मानव-विकास के अनुकूल नहीं है । इसलिए हमें अपनी प्रबल आशावादिता से इस नैराश्य-तिमिर को हटाना होगा । रोने के लिए हमारा घर ही क्या थोड़ा है कि हम अपने साहित्य-कुंज में आकर भी वही रोना धोना शुरू करें । प्रेमचन्द ने अपने साहित्यकार भाइयों से भी सदैव उत्साहशील और प्रगतिशील साहित्य का अनुरोध किया । प्रेमचन्द लिखते हैं — `हम इस समय विपत्ति के रोग में ग्रसित हैं । हमें ऐसी औषधि की जरूरत है जो यह दुख हरे, हमारे सन्ताप को मिटावे, इसे संभाले । और ऐसे साहित्य का उत्थान हमारे नवयुवकों द्वारा ही हो सकता है । (१) प्रेमचन्द का

---

(१) विविध प्रसंग भाग-३, पृ०सं०-४८, `चांद, सितम्बर १६२६ हंस प्रका०१६६२

विश्वास था कि साहित्य की प्रेरणा, साधना, सतत् परिश्रम तथा ईश्वरदत्त प्रतिभा, इन तीनों के समन्वय से मिल सकती है । प्रेमचन्द लिखते हैं ——
" साहित्य में हम शुद्ध साहित्यिक संस्कृति चाहते हैं, लाग लपेट कुछ भी नहीं" (२)

३- प्रेमचन्द ने साहित्य की उपयोगिता को सदैव सम्मुख रक्खा उसको विस्मृत नहीं किया । उनका विचार था साहित्य की सामग्री मनुष्य का जीवन है । साहित्य का जन्म उपयोगिता की भावना का ऋणी है, जो चतुर कलाकार है, वह उपयोगिता को गुप्त रखने में सफल होता है, जो इतना चतुर नहीं है वह उपदेशक बन जाता है । उपयोगिता — मानसिक, दार्शनिक व्यवहारिक या केवल विनोदात्मक, हो सकती है । मुख्य रूप से भावों की संस्कृति ही उसका गौरव है । प्रेमचन्द का तो यहां तक कहना था —— " जिस वाणी, पुस्तक या लेख में उपयोगिता का तत्व नहीं है, वह साहित्य नहीं — कुछ भी नहीं " (३)

साहित्य का प्रचार :

४- इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द का विचार था कि :" प्रान्तीय भाषाओं का सम्बन्ध ज्यादा घनिष्ट किया जाए । और हमारे संस्कारों का ऐसा समन्वय हो जाए कि हम राष्ट्रीय भाषा का ही नहीं राष्ट्रीय साहित्य का निर्माण कर सकें । हर एक प्रान्त में साहित्य की अपनी अपनी विशेषताएं हैं, इन विशेषताओं का सामंजस्य हो और साहित्य प्रान्तीयता के दायरे से निकल कर राष्ट्रीयता के क्षेत्र में पहुंच जाए । ....
भारत की आत्मा, अभि-व्यक्ति के लिए अपने साहित्यकारों की ओर देख रही है । दार्शनिक उसके विचारों को प्रकट कर सकता है, वैज्ञानिक उसके ज्ञान की वृद्धि कर सकता है ------- लेकिन उसका मर्म, उसकी वेदना, उसका आनन्द , उसकी अभिलाषा, उसकी महत्वाकांक्षा तो साहित्य की ही वस्तु है । बाहर की ताजी हवा और प्रकाश से वह वंचित है, और

---

(२) विविध-प्रसंग , भाग -३, पृ० सं० १२३,
(३) विविध-प्रसंग, भाग -३, पृ० सं० १२६,

कर अपने देश जाति के कल्याण की कामना हमारे भविष्य को निश्चय करेगी । प्रेमचन्द के युग में समसामयिक-साहित्य विश्रृंखलित सा था, प्रगति किसी निश्चित ध्येय अथवा आदर्श तक अभी निर्दिष्ट न हो सकी थी । इन्ही सब बातों के ज्ञान को आधार के रूप में प्रेमचन्द ने `लेखक-संघ` (१) की स्थापना की घोषणा की थी । लेखक-संघ के साथ ही, प्रेमचन्द के काल में लंदन में साहित्यकारों की एक नयी संस्था खुली । साहित्य में नयी स्फूर्ति और जागृति लाने के लिए ही यह नयी प्रेरणा का स्त्रोत था, जिसने विदेशों में जाकर विचार-विनिमय किया था । प्रगतिशील लेखक संघ
• 'The Indian Progressive Writers' Association'

(२) इसी उद्देश्य की पूर्ति थी । इस संस्था का आशय था ——
"भारतीय समाज में बड़े बड़े परिवर्तन हो रहे हैं । पुराने विचारों और विश्वासों की जड़ें हिलती जा रही हैं ---- एक नए समाज का जन्म हो रहा है । भारतीय साहित्यकारों का धर्म है कि वह भारतीय जीवन में पैदा होने वाली क्रान्ति को शब्द और रूप दें और राष्ट्र को उन्नति के मार्ग पर चलाने में सहायक हों । भारतीय साहित्य, पुरानी सभ्यता के नष्ट हो जाने के बाद से जीवन की यथार्थताओं से भाग कर उपासना और भक्ति की शरण में जा छिपा है । ---------- वह निस्तेज और निष्प्राण हो गया है ----- --- हमारे साहित्य में भक्ति और वैराग्य की भरमार के साथ थ- - - - - विचार और बुद्धि का बहिष्कार कर दिया गया है । इस सभा का उद्देश्य - - - - - - - - - - - - अप्रगतिशील वर्गों के आधिपत्य से निकाल कर उन्हें जनता के निकटतम संसर्ग में लाए और उसमें जीवन और वास्तविकता लायी जाए, जिससे हम अपने भविष्य को उज्ज्वल कर सकें ।" (३)

---

(१) विविध प्रसंग, भाग३, पृ०सं० १३३, हिन्दी लेखक संघ, सितम्बर १६३४,
(२) विविध प्रसंग, भाग३, पृ०सं० १३६, (जनवरी १६३६)
(३) लन्दन में भारतीय साहित्यकारों की एक नयी संस्था - जनवरी-१६३६,

प्रेमचन्द चाहते थे, भारतीय सभ्यता की परम्पराओं की रक्षा करते हुए अपने देश की पतनोन्मुखी प्रवृत्तियों की बड़ी निर्दयता से आलोचना करनी चाहिए और आलोचनात्मक तथा रचनात्मक कृतियों से उन सभी बातों का संचय करना चाहिए, जिससे हम अपनी मंजिल पर पहुंच सकें। प्रेमचन्द के सामने मुख्य प्रश्न थे —— जीविका, दरिद्रता, सामाजिक-अवनति और राजनीतिक पराधीनता का, लेकिन ये समस्याएं तभी समझ में आ सकती थीं जब लेखकों में क्रियात्मक-साहित्य रचना की प्रेरणा हो और साहित्य की बुद्धि की कसौटी पर कसने के लिए प्रोत्साहित करें, हमें हमें कर्मण्य बनाए और हममें संगठन की शक्ति लाए और जीवन को प्रगति की ओर ले चले। प्रेमचन्द नहीं हैं, उनका युग समाप्त हो गया है, लेकिन हम को अभी भी अपने भविष्य की उज्ज्वलता के लिए वर्तमान-काल में ऐसे ही साहित्य की आवश्यकता है। प्रेमचन्द का भाषण जो उन्होंने लखनऊ सभापति के आसन से सन् १६३६ में दिया था, साहित्य की प्रगति का सजीव उदाहरण है जिसकी आज भी २७ वर्ष बाद आवश्यकता है। प्रेमचन्द के युग की सभी समस्यायें आज भी वर्तमान हैं, यद्यपि हम लोग स्वतंत्र हैं। इसके साथ ही और भी नए नए जीवन के प्रश्न हैं, जिस पर स्पष्टत: पाश्चात्य-सभ्यता की छाप है, एक विकल पहेली के रूप में हमारे सभी प्राणियों के रक्त में विषाक्त रूप में संचार कर रहे हैं, जिनका नाश कोई राजनैतिक योजना नहीं, साहित्य के ही सृजन स्रोत से पवित्र हो सकता है।

७- मनुष्य को आदि से सुख और शान्ति की खोज रही है, और अन्त तक रहेगी। मानव सभ्यता और उसका साहित्य इसी खोज की कथा हैं। प्रेमचन्द का विश्वास था कि समाज के उद्धार का एक ही उपाय है, और वह है कर्मशील साहित्य की रचना। इसी तत्व को सम्मुख रख कर हम ममत्व, स्वार्थ और संघर्ष के पंजे से छूट सकते हैं। स्वार्थ का विलुप्त होना ही प्रेम

का प्रसार, है, उसी-भांति जैसे अन्धकार का हटना ही प्रकाश है । हिंसा और अप्रेम से दबा हुआ संसार पंगु हो रहा है । हिंसामय जनतन्त्र और हिंसामय एक तन्त्र में कोई विशेष अन्तर नहीं । प्रेमचन्द लिखते हैं —— ' अद्भौतिकवाद के तत्वोंसे संसार का उद्धार न होगा । उसमें अध्यात्मवाद की स्फूर्ति डालनी पड़ेगी । ×××××××××××× योरप का ईश्वरहीन सुखवाद ही आज संसार पर आधिपत्य जमारहुए है । ××××××××× लेकिन समाज में जो विषमता फैली हुई है, उसका कारण यही स्वार्थोपासना है ।' (१)

प्रेमचन्द स्वार्थ के स्थान पर परमार्थ की विजय चाहते थे । जिसकी जागृति में ऊंच-नीच, छोटे-बड़े का भेद भाव मिट जाए और अहिंसा और प्रेम का जयघोष सुनायी दे । प्रेमचन्द का यही विश्वास प्रेमचन्द को गांधी जी के निकट लाता है । लेकिन गांधी जी की अनुराग, भक्ति के प्रेमचन्द समर्थक न थे ।

समाज :

समाज से अर्थ प्रेमचन्द का ऐसे संगठन से था जो विभिन्न जाति भेदों को मिटाकर अपने में पुरुषार्थ उत्पन्न करे , जिससे जनता में एक से सद्भाव और सुरुचि जागे । प्रेमचन्द लिखते हैं —— ' हम इतने अकर्मण्य हो गए हैं, इतने पुरुषार्थहीन कि हमें अपने पुरुषार्थ से ज्यादा भरोसा आशीर्वाद पर है । एक प्रकार से हमारी विचार-शक्ति लुप्त हो गयी है ।' (२)

---

(१) विविध-प्रसंग भाग-३ पृ०सं०-१४२

(२) विविध-प्रसंग भाग-३ 'हिन्दू समाज के वीभत्स दृश्य, पृष्ठ संख्या-१५५-१५७,

९- प्रेमचन्द ने समाज की उन्नति में दूसरी बाधा 'अन्ध विश्वास' को बताया है। वह लिखते हैं —— ' हमारे इस अंध-विश्वास से अपना मतलब निकालने वालों के बड़े बड़े जत्थे बन गये हैं। x x x x x x जिनका पेशा है स्वार्थ से भोले भाले भक्तों को ठगें।' प्रेमचन्द लिखते हैं कि अन्ध-विश्वास की सीमा हिन्दू समाज में इतनी गहरी जड़ पकड़ गयी है कि हिन्दू समाज में पूजने के लिए केवल एक लंगोटी बांध लेने और देह में राख मल लेने की जरूरत है। x x x x x x जिस समाज में इतने मुफ्तखोरों का भार लदा हुआ है, उसका पनपना, जागना आसान खेल नहीं। ये मुफ्तखोर वैरागी बार बार यही प्रयत्न करते हैं कि समाज अंध विश्वास के गर्त में मूर्छित पड़ा रहे। चेतने न पावे xxxxxxxxxxxx राष्ट्र के उत्थान या जागृति में यह एक बहुत बड़ी बाधा है।'

१०- हिन्दू समाज का अन्य अभिषाप हमारे देवालयों में पल रहा है। जहां पर धर्मगुरुओं का जीवन सीधा-सादा, पवित्र और त्याग-तपस्या से पूर्ण रहना चाहिए वहां उनमें ढोंग, छल और कपट कूट-कूट कर भरा है। इसके साथ ही देश अथवा समाज के प्रति यदि कोई हितकर विचार उठाया जाता है तो ये रूढ़िवादी अपनी पुरानी लज्जाजनक स्वार्थ-साधन के लिए ऐसे कार्यों के विरुद्ध पूरी ताकत से आवाज लगा देते हैं। जनता द्वारा दिया हुआ धन जनता के ही विरोधी कार्यों में व्यय करते हैं। प्रेमचन्द लिखते हैं —— ' संसार के लिए उनका यह कार्य अनोखा है और कृतघ्नता का एक ज्वलंत उदाहरण है, पर वे अपनी परी शक्ति लगा कर भी देश को सत्य पथ पर जाने से रोक नहीं सकते, क्योंकि उनमें कोई बल नहीं है। शारीरिक, मानसिक, आत्मिक तथा नैतिक बल के भीषण अभाव ने ही उन्हें पतन के गहरे गर्त में गिरा दिया है। xxxxxxxxxxxx मन्दिरों के यह विधातागण नए युग की आवाज को नहीं सुन सकते। नए जमाने की जोरदार लहर के विरुद्ध खड़े होने में उन्हें सुख मिलता है।

पर यह निश्चित है कि यदि उन्होंने यही क्रम रक्खा .... तो वह दिन दूर नहीं, जबकि नवीन युग की प्रचंड शक्ति उनके अस्तित्व को मिटा देगी ।" (१)

११- प्रेमचन्द का विश्वास था कि समय की लहर बहुत बलवान होती है । बड़ी से बड़ी शक्ति द्वारा भी उसे रोका नहीं जा सकता । देश की दशा को भली-भांति देखते हुए धर्म के आडम्बरों, उनकी रूढ़ियों और राक्षसी नियमों से मुक्ति करके ही वे अपना, अपने धर्म का, अपने समाज तथा अपने देश का सबसे बड़ा हित कर सकेंगे और जनता के हृदयों में ऊंचा स्थान प्राप्त कर सकेंगे । इसलिए सब से अच्छा हम विकास और प्रगति की लहर को पहचानने और अपने को सुधार कर नवीन-युग के अनुकूल बनाएं । इसी में हमारा हित और कल्याण है । समाज के लिए यही प्रेमचन्द की अमृतवाणी थी, साहित्य-सन्देश था और उनका जीवन-चरित्र एक सीधे साधे सच्चे सतत् परिश्रमी व्यक्ति का व्यक्तित्व था, जिसमें जनमत तैयार करने की सच्ची लगन, प्रेरणा, अनुभूति और उदारता थी ।

स्वदेश के उद्गार

१२- प्रेमचन्द ने ऐसे युग में जन्म लिया था, जबकि राष्ट्रीयता की भावना वातावरण में व्याप्त हो गयी थी । अपने देश अथवा मातृ भूमि के प्रति उनके जो उद्गार थे वही इस युग की चुनौतियों के रूप में प्रतिध्वनित हुए ।

" दासता तथा दरिद्रता से - दोनों ही महान् कष्टदायक तथा अपमान जनक रोगों से रक्षा का एक मात्र उपाय, स्वदेशी को अपनाना है । मन से, वचन से, कर्म से, "स्वदेशी" हो जाना, एक कच्चा धागा भी विलायती

---

(१) विविध प्रसंग, भाग ३, "मन्दिरों पर एक दृष्टिपात" पृष्ठ संख्या-१६०,

न खरीदना, यही एक महामंत्र है, जिसको जप कर ब्रिटेन ने आधी दुनियां को अपने अधिकार में कर लिया । अमेरिका स्वर्ण-भूमि बन गया और जापान एशिया का ब्रिटेन बना हुआ है । इसी मंत्र का पाठ पहले भारत करता था, चीन करता था और दोनों अभ्युदय के पद पर बैठे हुए थे ।<<<<<<<<<<<< स्वदेशी की महानता शब्दों में नहीं समझी जा सकती उसके लिए अपने में कर्म जगाना होगा ।<<<<<<<<<< स्वदेशी को न अपनाना एक राष्ट्रीय दुर्गुण है । <<<<<<<<<<<<<< स्वदेशी एक धर्म है, एक कर्तव्य है ।" (१)

राजनीति की सफलता स्वदेशी आन्दोलन पर निर्भर थी, स्वदेशी आन्दोलन से तात्पर्य अपने देश की बनी वस्तुओं का इस्तेमाल था, जिससे समाज में राष्ट्रीय चेतना जागृत हो और बहुमत को कार्य मिले । जनता की समृद्धि और सभ्यता का यही उपचार था । इसलिए प्रेमचन्द ने अपने विचारों को विभिन्न श्रृंखलाओं के अन्तर्गत पिरोया । प्रेमचन्द का कहना था-" समूची राजनीति एक ओर स्वदेशी एक ओर"।

शिक्षा—— संस्कृति :

१३- शिक्षा और संस्कृति किसी सभ्य समाज की जागृति के चिन्ह हैं । सभ्यता का अर्थ आत्मा की सभ्यता, उसका आचार विचार, कला, संस्कृति से उद्भासित होता है । परन्तु वर्तमान युग में सभ्यता का अर्थ सुख-समृद्धि के अर्थ में लिया जाता है । उसका नैतिक पक्ष छूट सा रहा है। हमारी प्राचीन सभ्यता-संस्कृति, शिक्षा सर्वजन सुलभ, प्रजातांत्रिक थी । उसमें ज्ञान और उपासना का गंभीरता और सहिष्णुता का सम्मान राजा भी करता था और किसान भी करता था । उनके दार्शनिक विचार अलग अलग हों लेकिन सभ्यता की कसौटी एक थी । आधुनिक सभ्यता ने इसके विरुद्ध छोटे

---

(१) विविध प्रसंग, भाग ३, "स्वदेशी आन्दोलन" पृ०सं० - १६६,

बड़े में गहरी खाइयां खड़ी कर दी हैं । छोटे-बड़े, निर्धन धनवान का मतभेद बहुत तीव्र हो गया है । नम्रता को आज निर्बलता की स्वीकृति समझा जाता है । मीठा बोलना, सुन्दर आचरण, आंखों का शील-संकोच प्रेमचन्द के शब्दों में नई टकसाल के फेंके हुए सिक्के हैं । दया और प्रार्थना, संयम् और नर्मी को कायरता और पस्त हिम्मती समझा जाता है । xxxxxxxxxx मुरव्वत, इंसानियतऔर लिहाज x x x x x x ये गरीब और मजदूर लोगों के गुण हैं ।(१) प्रेमचन्द ने अपने विभिन्न लेखों के आधार पर हिन्दू-सभ्यता और उसकी लोकहित आदर्श भावना का ही प्रभुत्व स्वीकार किया है । वे लिखते हैं —— " क्या वे दिन कभी आएंगे जब हमारी पुरानी संस्कृति का अभ्युदय होगा । उस संस्कृति का जिसमें ग़रीबी कलंक न थी ।" (२)

१४. हिन्दुओं ने अपने धार्मिक आध्यात्मिक आदर्शों को सांसारिकता से दूर रख कर केवल नैतिकता और आध्यात्मिकता के आधार पर जन-साधारण की समृद्धि, लोकहित और मानव कष्टों और आपदाओं को दूर करने में जितनी सफलताएं प्राप्त की थीं, उन्हें आज की पश्चिमी सभ्यता ईर्ष्या की दृष्टि से देख सकती है । हमारी महान-आत्माओं ने नैतिक-बन्धनों की पाबन्दियों में अपने व्यक्तित्व और स्वार्थ की परवाह न की और इन्हीं कारणों से हम दुर्बल और दरिद्र बन गए ---------" लेकिन हम आज उस दरिद्र व्यक्ति के समान हैं जिसने अपनी सारी सम्पदा अच्छे कामों में खर्च कर दी हो । ऐसे व्यक्ति की बुद्धि पर हम आपत्ति कर सकते हैं, मगर उसके ऊंचे आदर्श,

---

(१) विविध प्रसंग, भाग १, पृ०सं० - १६६

(२) विविध प्रसंग, भाग ३, (नवम्बर-१९३१) पृ०सं०-३ १९८,

(३) विविध प्रसंग भाग १ " हिन्दू सभ्यता और लोकहित" पृ०सं०-१७५,

उसकी दानशीलता, उसके आत्मोत्सर्ग और उसके चारित्रिक साहस से इनकार नहीं कर सकते ।" (१) पाश्चात्य सभ्यता की दृष्टि में यह संकीर्णता हो लेकिन स्वयं पाश्चात्य सभ्यता परोपकार, उदार, सहानुभूति-शील गुणों को अपने में ग्रहण करने की चेष्टा कर रही है ।

१५- हिन्दू सभ्यता और संस्कृति के स्तंभ हमारे धार्मिक ग्रन्थ हैं । प्रेमचन्द ने इन प्राचीन संस्कृति साहित्य के ग्रन्थों की महिमा को सहर्ष स्वीकार किया है । और रामायण और महाभारत को दो महान् कृति माना है ।" रामायण और महाभारत हिन्दुओं के दो विशेष महाकाव्य हैं । हिन्दू जाति को उन पर जितना गर्व हो उचित है । x x x x x x विचारों की उच्चता, विषयों की पवित्रता, वर्णन कथा सौन्दर्य और करेक्टरों की महानता ने उसी जमाने से, जब कि ये पुस्तकें कवि के हृदय से निकली, संसार को आश्चर्य में डाल रक्खा है।" (१) इन्हीं कवियों की लेखनी का यह प्रसाद है कि असंख्य हिन्दुओं के लिए राम और कृष्ण का नाम मुक्ति का साधन बन गया । उन्होंने हमारी आंखों के सामने, कि हम उन्हें अपने जीवन का आदर्श बनाए, पूर्ण मनुष्य उपस्थित कर दिए हैं । प्रेमचन्द अपनी इसी आदर्शात्मक प्राचीन संस्कृति के प्रतिनिधि कलाकार थे जो बार-बार अपनी प्राचीन संस्कृति , सभ्यता शिक्षा, समाज का रूप साकार करके, हम में सेवा, सद्भावना, प्रेम, कर्तव्य का पाठ पढ़ाना चाहते थे । हमारी संस्कृति जो सनातन से चली आती है उसी के आधार पर हमें चलना होगा, क्योंकि संस्कृति केवल उन्हीं परिस्थितियों का समन्वय मात्र है । संस्कृति का जो रूप है वह इन्हीं परिस्थितियों का बनाया हुआ है । हमारी संस्कृति-कर्तव्य प्रधान , धर्म प्रधान, परमार्थ प्रधान, अहिंसाप्रधान, व्रत और नियम

---

(१) विविध प्रसंग भाग:१ 'हिन्दू सभ्यता और लोकहित' पृ०सं० १६५

(१) विविध प्रसंग भाग १, रामायण और महाभारत, पृ०सं०-१८३,

प्रधान संस्कृति है । उसमें व्यक्ति और समष्टि के सामंजस्य का ऐसा विधान है कि एक दूसरे का शत्रु न होकर सहायक ही बना रहे ।" हमारा विश्वास संघर्ष में नहीं सहयोग में है ।" (१)

नारी गौरव सम्बन्धी लेख :

१६- प्रेमचन्द ने अपने विभिन्न लेखों के आधार पर नारी के महत्व, उसकी शिक्षा-दीक्षा, विवाह, सन्तान, मान-अपमान, सुगृहणी अथवा वेश्या के दोषमुक्त जीवन पर प्रकाश डाला है । यों तो भारतीय नारी सदैव कुलदेवी समझी गयी है और उसे समाज में पुरुषों से ऊंचा पद प्राप्त है किन्तु अन्यान्य कारणों से उसका स्थान गौण हो गया है । पुरुष की मन्द बुद्धिता जिसने एक ओर पराधीनता की बेड़ी डाली, दूसरी ओर नारी जाति पर मनमाने अत्याचार करती गयी । ऊंच-नीच का ऐसा संक्रामक रोग फैला कि उसने समाज को छिन्न-भिन्न कर दिया और स्त्री-पुरुष में भेद डाल दिया । पुरुषों ने नारी जाति के स्वत्वों का अपहरण करना शुरू किया । लेकिन राष्ट्रीयता और सद्बुद्धि की जो लहर प्रेमचन्द के युग में आयी उसने एक बार फिर अपनी माताओं को ऊंचे पदर पर आरूढ़ होने का हक प्रदान किया । प्रेमचन्द का विश्वास था कि अब भी भारत की देवियाँ कर्तव्य की वेदी पर अपने को होम कर सकती हैं । भारतीय महिलाओं की नवीन जागृति ने यह सिद्ध कर दिया है कि वे समाज के क्षेत्र में पुरुषों से कितनी आगे निकल गयी हैं । विशेष कर उन बन्धनों से, जिनसे पुरुषों ने उन्हें जकड़ रक्खा था और उन पर शासन करते थे । उन बेड़ियों को तोड़ फेंकने में वह सफल सिद्ध हुई हैं ।

---

१. विविध प्रसंग भाग ३ पृष्ठ संख्या २०५ (प्रेमचन्द)

राष्ट्रभाषा का प्रश्न :

१७- शान्ति - व्यवस्था के लिए, राष्ट्र को एक सूत्र में बांधने के लिए एक भाषा की आवश्यकता होती है । यह समस्या आज की नवीन समस्या नहीं, प्रेमचन्द के समय में जब कि भारत दासता की बेड़ियों से मुक्त नहीं हुआ था, प्रेमचन्द ने भारत की राष्ट्रभाषा प्रश्न पर अनेक लेख, टिप्पणियां लिखीं और सदैव इस समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया ।

" भाषा ही राष्ट्र, साहित्य और संस्कृति का निर्माण करती है । आदर्शों की सृष्टि करती है । "प्रेमचन्द (२६ दिसम्बर-१९३२) कोई समय था; जब धर्म की एकता ही मनुष्यों के एकीकरण का मुख्य साधन थी और एक धर्म के मानने वाले बहुधा सामाजिक और सांस्कृतिक बातों में भी एक हो जाते थे । समाज और संस्कृति, जीवन और दृष्टिकोण सभी का उद्गम धर्म था । लेकिन नयीजागृति ने भी धर्म को उस ऊंचे स्थान से हटा दिया और उसकी जगह जिन व्यवस्थाओं को बिठाया उनमें भाषा ----- मुख्य है । आज हरेक कौम की अपनी एक भाषा है । " अभी हमारे यहां जो कुछ है वह प्रान्तीय है, उस पर राष्ट्र की छाप नहीं है । हमें शीघ्र ही ऐसा आयोजन करना होगा कि भारत की साहित्यिकप्रतिमा को एकत्रित कर सकें । x x x x x x x x x जब हमारी राष्ट्रभाषा होगी, हमारा राष्ट्रीय साहित्य होगा तभी अन्तर्राष्ट्रीय भाषाओं की मजलिस में हमें स्थान मिल सकेगा । " (१)

---

(१) विविध प्रसंग, भाग ३, बेराष्ट्र-भाषा का राष्ट्र - पृष्ठ संख्या - २९०, ६ अप्रैल १९३४,

१८. प्रेमचन्द भविष्य दृष्टा थे । उन्होंने आज से २७ वर्ष पूर्व ही उन सभी समस्याओं का अवलोकन अथवा अनुभूति प्राप्त कर ली थी, जो वर्तमान युग के मुख्य प्रश्न हैं ------ ? राष्ट्रभाषा के विषय में प्रेमचन्द का मत, उनके विचार, उनके लेख बार बार इस बात का उल्लेख करते हैं कि बिना एक राष्ट्रभाषा को जन्मदिए हुए, हम कभी भी सच्ची राष्ट्र की संस्कृति उत्पन्न न कर सकेंगे । भाषा और साहित्य संस्कृति का मुख्य अंग है । जब तक एक भाषा और एक साहित्य न हो, एक राष्ट्र की कल्पना नहीं हो सकती ।

हिन्दू-मुस्लिम एकता :

१९. हमारे देश पर गोरी सरकार की सदैव यह कोशिश रही कि हिन्दू-मुसलमानों में कितना वैमनस्य पैदा कर दिया जाए कि वे आपस में एक साथ सोच विचार न सकें । अंग्रेजी सरकार ने सदा से विच्छेद-नीति को प्रोत्साहन दिया । मुसलमान भाइयों को नौकरियों का प्रोत्साहन दिया गया । अछूत भाइयों से हिन्दुओं के अन्याय की शिकायत की गयी लेकिन इन सब में वास्तविक कारण यह था कि ब्रिटिश सरकार किसी भी प्रकार, किसी अंश अथवा रूप में भारत में अपनी सत्ता कम करना या छोड़ना नहीं चाहती थी । लेकिन गांधी जी का प्रयत्न वास्तविक रूप में `जनसत्ता` की स्थापना करना था । गांधी जी का यह विचार था कि हिन्दू मुसलिम झगड़ों का कोई प्रश्न ही नहीं है । " स्वराज्य के अधीन राजपद धन कमाने का साधन नहीं, प्रजा की सेवा का साधन होगा ।" (१) हमारी लड़ाई की तह में हमारी दरिद्रता का करुण क्रन्दन, हमारे रोग-शोक -

---

(१) विविध प्रसंग, भाग २, पृ०सं०-७५,

सन्ताप का वीभत्स चीत्कार छिपा हुआ है । क्या कभी यह भी सोचा गया है, कि काश मुसलिम -व्यापारी उन्नति पर होता, हिन्दू किसान खुशहाल होता ? प्रेमचन्द लिखते हैं — "हिन्दू-मुसलिम विरोध, दो भिखारियों का एक रोटी के टुकड़े के लिए कलह है । x x x x x x x x घर में मिट्टी के बर्तनों और तन पर मखमल का कोट पहने हुए मुसलमान बड़ी आजादी से मार काट पर उतारू हो जाता है x x x x x x पर जहां मुसलमान अमीर है, वहां विरले ही फगड़ा होते सुना गया है ।" (१)

२०. प्रेमचन्द ने अपने समय से प्रभावित होकर विभिन्न राजनैतिक विषयों पर उपयोगी टिप्पणियां लिखी थीं । यद्यपि दासता की बेड़ियों से छुटकारा मिल गया है और उस युग की पुकार की महत्ता भी क्षीण हो गयी है लेकिन अपनी स्वतन्त्रता को स्थायी रखने के लिए हमें पुन: उन सभी मनोवृत्तियों का गहनतम रूप से अध्ययन करना पड़ेगा जो `राजसत्ता` की महत्वाकांक्षा रही है । हमारी गुलामी का कारण केवल गोरी सत्ता ही नहीं थी । हमारे भारतीय महानुभाव जो आचार-विचार, रहन-सहन में तो विदेशी थे लेकिन रंग रूप में भारतीय,वह भारत में रहकर सोलहो आना गोरी-सत्ता के भक्त थे । उन्हें अपने पुरुषार्थ पर विश्वास न रह गया था । वे मन से, शरीर से, आत्म-सेवी थे, उनको लोकहित का भाव कपोलकल्पित अनुभव होता था । ऐसी मनोवृत्ति के लोगों को ललकारने के लिए प्रेमचन्द ने अनेक टिप्पणियां अपनी सम्पादकी हैसियत से लिखीं । प्रेमचन्द ने दृढ़ता और विश्वास के साथ साम्राज्यवादी प्रचारकों को ललकारा ।

---

(१)विविध प्रसंग भाग-२, १२ दिसम्बर १६३२, पृ०सं० १११

अशान्ति
------

२१. प्रेमचन्द ने देखा कि चारों ओर घोर अशान्ति का वातावरण फैला हुआ है । जिधर देखिए, जिसे देखिए वह उद्विग्न है, पीड़ित है, दुखी है । प्रेमचन्द लिखते हैं —— "जिन्दगी में कभी फ़ारागत नसीब न हुई , अब क्या नसीब होगी ××××××××× इससे बढ़ कर और क्या फेट (fate) हो सकता है । बेफ़िक्री में कुछ अमली क़ौमी ख़िदमत करता मगर वह आरज़ू न पूरी हुई, न होगी ।" (१)

२२. प्रेमचन्द ने अपने जीवन काल में अथक परिश्रम किया लेकिन कभी विश्राम की एक घड़ी नसीब न हुई प्रेमचन्द इस दुख का कारण किसी एक व्यक्ति को नहीं बल्कि समाज के पिछड़ेपन और उसकी कुरीतियों को समझते थे । इसके लिए ताकत भर सारे जीवन, उन्होंने कुछ न कुछ किया । 'कलम' ही उनका सब से बड़ा हथियार था, शान्ति-प्रिय जीव थे, संगठन की सामर्थ्य न थी, व्याख्यान देने से घबड़ाते थे । प्रेमचन्द ने कलम के सहारे क़ौम की , देश की, जाति की सेवा का बीड़ा उठाया । एक ओर प्रेमचन्द के रक्त में इतना उत्साह का संचार था कि मालूम नहीं वह देश के लिए क्या कुछ कर डालते, दूसरी ओर उनके वास्तविक जीवन की दशा यह थी । " ज़रा तबियत ठिकाने आ जाए तो काम शुरू करूं । गर्मी की कुछ कैफियत न पूछिए । कहलाने को तो साहबे मकान हूं और ख़ुदा के फ़ज़ल से मकान भी सारे गांव का महसूद है । मगर रहने काबिल एक कमरा नहीं । ×××××××××× सुबह के वक्त घंटा आध घंटा वक़ारदानी (२)

---

(१) पत्र:अजन्ता सिनेटोन लि०,बम्बई, ११ अगस्त१९३४,(चिट्ठीपत्री-भाग १ पृ० सं०-२०९)

(२) (पन्ने पलटना) पत्र: जून १९०५ पृ०सं०,४, (भाग-१)

कर लेता हूं <<<<<<<<<< (लेकिन इन कष्टों के बावजूद भी प्रेमचन्द लिखते हैं ——) अब बीच में छोड़ने वाले और होंगे । यहां तो जब एक बार बाहं पकड़ी तो ज़िन्दगी पार लगा दी ।" (१)

२३. प्रेमचन्द का संघर्ष किसी एक कारण से और किसी एक के साथ न था, वह विश्व-शान्ति के प्रणेता थे । प्रेमचन्द लिखते हैं —— " विश्व की अशान्ति की केवल एक दवा है । (चीन का उदाहरण प्रस्तुत करके वह लिखते हैं ——) उस समय चीन के कोने में एक ज्योति टिमटिमा रही थी । उसने चीन की दशा देखकर उसका निदान सोचा , उपाय सोचा, ढंग सोचा । हिंसा से कोई लाभ नहीं । हिंसा का उत्तर हिंसा से दिया जाता था । ज़ोर का जवाब ज़ोर से । क्रोध बुरी वस्तु है । क्रोधी को क्रोध पहले जलाता है । अविश आवेश और असन्तोष भी बुरा है । अपनी दुर्दशा पर रोना नहीं चाहिए । ईश्वर जो करता है भले के लिए करता है । -------------- इसलिए 'प्रेम' पूर्ण भाई चारे से, आत्मसंयम से, दूसरे के दुख दर्द में शरीक होने से । कनफ्यूशियस के यही महा उपदेश थे । वह बड़ा विनम्र महात्मा था । प्रत्येक महान आत्मा का आदर करना चाहिए । इसमें मानापमान का विचार नहीं करना चाहिए ।" (२)

२४. भारत ने जो सब से बड़ी गलती की थी, वह जनता को राजनैतिक वातावरण से बिलकुल अलग रखना था । इसका फल यह हुआ कि बड़े बड़े राजनैतिक-परिवर्तन हो गए और जनता ने किसी प्रकार भाग न लिया । प्रेमचन्द इतने दिनों के अनुभव से समझ गए थे कि अच्छे से अच्छा

---

(१) (पन्नेपलटना) पत्र : जून १९०५ पृ०सं० ४, (भाग-१)

(२) विविध-प्रसंग भाग — २, पृ०सं०-१९९, भारत १९६३ में ,

शासन विधान अथवा कोई भी विकास या प्रगति का कार्य यदि प्रजा की सामूहिक इच्छा पर आधारित नहीं है, यदि प्रजा का उसके बनाने में कोई भाग नहीं है, तो वह प्रजा से कोई सहायता पाने की आशा नहीं रख सकता। प्रेमचन्द का कहना था — "प्रजा में राजनैतिक चेतना लाना भारत का पहला कर्तव्य है।" (१) गांधी जी भी अपने कड़वे अनुभव से यह सोच रहे थे कि प्रजा में चेतना आ जाने के बाद स्वयं अपने अधिकारों की रक्षा करना सीख जाएगी। इसलिए गांधी जी ने जनपक्ष की सदा हिमायत की। 'हरिजन-आन्दोलन' का विकास इस चेतना का सबसे बड़ा प्रमाण है।

२५. प्रेमचन्द अच्छी तरह जानते थे कि हमारे राष्ट्र की आशा हमारे नवयुवकों पर है। इसलिए उन्होंने साहित्य-सृजन के साथ साहित्य-सृष्टिकर्ताओं को भी प्रोत्साहन दिया। प्रेमचन्द के युग में श्री जैनेन्द्रकुमार जी आपके आत्मीय मित्रों में से। प्रेमचन्द लिखते हैं — "अब आपके प्रश्न का जवाब कि 'परख' को मैं प्रसाद स्कूल के निकट क्यों समझता हूं। मैं तो कोई स्कूल नहीं मानता -------- शैली में जरूर कोई अन्तर है, मगर वह अन्तर कहां है, मेरी समझ में नहीं आता। आपकी शैली में स्फूर्ति - सजीवता कहीं अधिक है। चुटकियां, चुलबुलापन कहीं अधिक है। प्रसाद जी के यहां गंभीरता और कवित्व अधिक है। Realist (यथार्थवादी) इसमें से कोई भी नहीं है। इसमें से कोई भी जीवन को उसके यथार्थरूप में नहीं दिखाता, बल्कि उसके वांछित रूप में ही दिखाता है। मैं नग्न यथार्थवाद का प्रेमी भी नहीं हूं।" (२)

---

(१) विविध प्रसंग भाग-२, पृ०सं०-१६६, भारत १९६३ में,

(२) पत्र : १७ दिसम्बर १९३०, चिट्ठी-पत्री, भाग२, पृ०सं०-१४,

'साहित्य-सम्मेलन वालों ने मुझसे उपन्यास-कला पर एक लेख लिखने को कहा है, जो साहित्य-परिषद में पढ़ा जाए । मैंने तो लिख दिया, मुझे ऐसे लेखों की उपयोगिता में विश्वास नहीं । ----- जिनमें प्रतिभा है वह आप लिखने लगते हैं ---------- जिनमें प्रतिभा नहीं उन्हें लाख कला का उपदेश दीजिए कुछ नहीं कर सकते ।' (१)

२६. प्रेमचन्द की ये चन्द पंक्तियां, स्वयं उनकी प्रतिभा का नमूना है । थोड़े में वह कितनी सारगर्भित बात कह देते थे । प्रेमचन्द की कला की यह सब से बड़ी विशेषता थी कि थोड़े शब्दों में वह उपदेश, शिक्षा ज्ञान सब कुछ बता देते और बात न बिगड़ती थी । प्रेमचन्द ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से साहित्य के हर अंग को देखा परखा, वे एक पत्र में जैनेन्द्र जी को लिखते हैं — ' लेखक संघ की नियमावली तुम्हें मिली होगी, ... सहयोग सिद्धान्त पर प्रकाशन किया जाए और साहित्य का प्रचार बढ़ाया जाए तभी लेखकों को रोटी मिल सकती है । जब तक प्रचार नहीं बढ़ता, न प्रकाशन ही पनप सकेगा, न लेखक ही । मगर Cooperative Publication के लिए 'धन' कहां है --------- ?' (२)

२७. प्रेमचन्द ने इन चार लाइन की पंक्तियों में संघ के संपूर्ण कार्यों की आलोचना उपस्थित कर दी । संघ का सारा वाद-विवाद, विभिन्न लेखकों की उपस्थिति, शोर-गुल-गपाड़ा सब इतनी 'समझ' कि प्रथम धन की व्यवस्था करनी चाहिए समाप्त हो जाता है । प्रेमचन्द का विश्वास था कि साहित्य सृष्टि अनिश्चितसी चीज है । उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता । साहित्य के लिए मानसिक शान्ति और वातावरण की शांति अपेक्षित है जो कि वर्तमान स्थितियों में हाथ नहीं आती । प्रेमचन्द ने

---

(१) २८ नवम्बर, १९३४, अजंता सिनेटोन, बम्बई १२, पृ०सं०-५०, भाग-२,

(२) ७ फरवरी १९३५, १८६ सरस्वती सदन, बम्बई १४, पृ०सं०-५३, चिट्ठी-पत्री, भाग-२.

इतने संघर्षमय जीवन में रह कर लिखा और खूब ही लिखा, एक प्रचुर मात्रा में हम लोगों को साहित्यसृजन का मार्ग दिखा गए, फिर भी वह इस बात का पूरा पूरा अनुभव कर रहे थे, मन और वातावरण की शान्ति विशेष रूप से अपेक्षित है, इसके बिना साहित्य का कार्य सम्भव नहीं ।

२८. प्रेमचन्द को जीवन भर अर्थ-संकट से मुक्ति नहीं मिली, जबकि वह थोड़े पैसे में किसान का जीवन बिताना चाहते थे —— उनको सांसारिक सुखों की लालसा नहीं थी, लेकिन जीवन के साधारण खर्च के लिए भी उनको कभी पूरा नहीं पड़ा । वह लिखते हैं ——"दुनियां बेधड़क उत्साही लोगों के लिए बनी है, जो अपने मौकों का अधिक से अधिक लाभ उठा सकते हैं । x x x ×××× तुम मि० बिरला से मिलो और उनको हम लोगों के काम का महत्व समझाओ और बताओ कि कैसी कैसी परेशानियां हम लोग उठाते हैं । वह एक बड़े विज्ञापनदाता हैं । x x x x x x x x x हमको भी अपना संरक्षण क्यों नहीं दे सकते ? अगर तुम सोचते हो कि सुख-सुविधा और धन-सम्पत्ति अपने आप आ जाएगी और लक्ष्मी तुम्हारी प्रतिभा के कारण तुम पर इतनी रीझ जाएगी कि आकर तुम्हारे पैरों पर गिर पड़ेगी तो तुम धोखे में हो । या तो सन्यासी हो जाओ और सांसारिक अभिलाषाएं त्याग दो ।" (१)

२६. प्रेमचन्द स्वयं साहित्य-सृष्टा तो थे ही, वह दूसरों में साहित्य रचना की प्रेरणा पैदा करने वाले और नए लेखकों को प्रोत्साहित करने वाले साहित्यकार भी थे । प्रेमचन्द ने भारतेन्दु,बालमुकुन्द गुप्त और

---

(१) विविध-प्रसंग, भाग-३, पृ०सं०-४२६, मई-१६३३,

और महावीरप्रसाद द्विवेदी की शानदार परम्परा को उन्नत करने का पूर्ण प्रयत्न किया और सफलता भी प्राप्त की । प्रेमचन्द अपने समकालीन साहित्यकारों का विशेष सम्मान करते थे और अपने से पूर्व के साहित्यकारों के प्रति आदर का भाव रखते थे और श्रद्धा से उनके आदर्शों का अनुकरण करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं प्रदर्शित करते थे । प्रेमचन्द द्विवेदी जी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहते हैं — " हिन्दी साहित्य के अमर तपस्वी, पूज्य आचार्य, पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ,,,,,,,,,,, पर अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करते हैं । नवीन हिन्दी साहित्य के निर्माताओं में उनकी कीर्ति हमेशा चमकती रहेगी और इस मार्ग के पथिकों को जीवन और आशा प्रदान करती रहेगी । " (१)

सम्पादक : प्रेमचन्द

३०. प्रेमचन्द ने 'माधुरी' और आगे चल कर विशेष रूप से 'हंस' के द्वारा हिन्दी साहित्य की शक्तियों को बटोरने का भगीरथ प्रयत्न किया । प्रेमचन्द तटस्थ सम्पादक न थे । वह राष्ट्रीयता, संगठन, एकता, सहयोग, समझौता, शान्ति, सन्तोष, सेवा, त्याग, संयम् का पाठ पढ़ना चाहते थे । प्रेमचन्द स्वयं लिखते हैं — " हमने 'हंस' का आयोजन केवल राष्ट्र-भाषा और राष्ट्र-साहित्य के उद्देश्य से किया है । हमारा कोई व्यापारिक स्वार्थ इसमें नहीं है ,,,,,,,,, अनुमान कीजिए कि कनाड़ी, तामिल, बंगला, मराठी, गुजराती, उर्दू आदि भाषाओं की

---

(१) विविध-प्रसंग, भाग ३, पृ०सं०-४२६, मई १९३३

सामग्री हिन्दी में उपस्थित करने के लिए हमें कितना व्यय और कितना उद्योग करना पड़ा है और करना पड़ेगा । आप'हंस'के द्वारा सम्पूर्ण भारत के साहित्य से परिचित हो जाएंगे । प्रान्तीय-साहित्यों में जो कुछ श्रेष्ठ और सुन्दर है, वह आपको'हंस' द्वारा प्राप्त हो जाएगा । उसके साथ ही यह पूर्ववत् हिन्दी-साहित्य की अनूठी रचनाएं भी आपको मेंटकरता रहेगा । (१)

३१. प्रेमचन्द की लेखन शैली बहुत सरल, सुथरी, मुहावरेदार, प्रवाहपूर्ण होती थी । कलम रुकता न था । बनावट से आपको नफरत थी । आइने की भांति निर्मल थे । जो मन में था , वही मुख पर था, च चाहे किसी को बुरा लगे या भला । इसी स्वच्छन्दता के कारण कई बार उन पर आक्षेप किया गया, वह साहित्य में घृणा का प्रचार करते हैं । ब्राह्मणों के दुश्मन हैं । लेकिन प्रेमचन्द पर यह अनुचित सन्देह थे । प्रेमचन्द शान्ति की मूर्ति थे । सेवा और भक्ति से उनकी आत्मा को शान्ति मिलती थी, जहां त्याग और समर्पण के भाव राज्य करते हों वहां अनुचित आक्षेप भी ईश्वरीय प्रेरणा प्रतीत होने लगती है । उसी प्रेरणा की श्रृंखला की कड़ियां थीं, जिसने प्रेमचन्द को उनके लक्ष्य तक पहुंचाया । प्रेमचन्द के विचार उन्नत और परिष्कृत थे । उन पर ऐसे सारहीन सन्देह करना घोर अन्याय है ।

---

(१) विविध प्रसंग, भाग -३, पृ०सं०-५००, अगस्त-सितम्बर १९३५,

३२. प्रेमचन्द हिन्दू-मुसलिम एकता के परम भक्त थे । प्रेमचन्द एकता के महत्व को समझते थे और थोड़ी सी हानि उठा कर भी उसकी जड़ मजबूत करना चाहते थे । प्रेमचन्द लिखते हैं — " एकता बड़ा मधुर शब्द है । x x x x x x x यह समूची सृष्टि उस परमात्मा की इच्छा के परिणाम-स्वरूप उत्पन्न हुई है ।" (१)

३३. प्रेमचन्द का विचार था जो दुख है वह हमारी नियत में नहीं अविवेक में है । प्रेमचन्द १९३२, ३३ तक उच्चकोटि के साहित्यकारों में गिने जाने लगे थे । उनका जीवन साहित्य और साधना, तप का जीवन था । साहित्य उनका सर्वस्व था । उनकी चिन्ता, कल्पना, आकांक्षा विनोद सब का स्रोत एक था और वह साहित्य ही है । साहित्य प्रेमचन्द के लिए कीर्ति और धन का साधन था । पांडित्य — प्रदर्शन की उनकी मनोवृत्ति न थी । उनके हृदय में इसकी जड़ें उतनी गहरी थीं, जितनी हमारे जीवन में स्वार्थ और ममत्व की । प्रेमचन्द का स्वार्थ भी था तो केवल परमार्थ में ।

३४. प्रेमचन्द की सम्पादकीय टिप्पणियों में, विविध ज्ञान का भंडार है । ऐसा कोई विषय नहीं जिस पर प्रेमचन्द ने न लिखा हो । गहरे तात्त्विक विवेचन और साधारण से साधारण दैनिक जीवन की घटनाओं का उल्लेख आपकी सम्पादकीय टिप्पणियों में मिलता है । प्रेमचन्द यह कुल

---

(१) विविध प्रसंग, पृ०सं०-३९९, भाग-२, २८ नवम्बर, १९३२ "एकता"

काम विद्या और ज्ञान के केन्द्र में बैठकर नहीं, लमही गांव की एकान्त कुटिया में करते थे । साहित्य की वह छटा उसी कुटिया से निकल कर हिन्दी संसार को आलोकित कर देती थी । प्रेमचन्द सम्पादकीय पद से प्रत्येक लेखक की रचना आद्योपान्त पढ़ते थे उसकी भाषा का परिष्कार करते थे और चतुर कलाकार की भांति ज़रा से परिवर्तन से उस रचना का रूप निखार देते थे ।

३५. प्रेमचन्द साहित्य के सच्चे पारखी थे । जहां गुण देखते थे, बड़ी उदारता से उसका आदर करते थे । लेकिन इतना सब कुछ करने पर भी वह लिखते हैं —" हिन्दुस्तान का साहित्यिक जीवन बड़ा हौसला तोड़ने वाला है । जनता का कोई सहयोग नहीं मिलता । आप चाहे अपना दिल निकाल कर रख दें, मगर आपको पाठक नहीं मिलेंगे । शायद ही मेरी किसी किताब का तीसरा संस्करण हुआ हो । कुछ तो अभी पहले ही संस्करण में हैं । हमारे किसान गरीब हैं और अशिक्षित हैं, बुद्धिजीवी योरपीय साहित्य पढ़ते हैं ।" (१)

३६. प्रेमचन्द आशावादी थे । उन्होंने मौलिक रचनाएं लिखीं और मौलिक रचयिता उत्पन्न किए । उन्होंने अपनी लेखनी से आसान हिन्दी की, मुहावरेदार भाषा की, सहज, सबोध शैली की नींव डाली और उसमें ज्ञान का विस्तार किया । प्रेमचन्द की कला पर दिन पर दिन यथार्थवाद का रंग चढ़ता गया और उनका साहित्य राष्ट्रीय और जातीय उत्थान का साहित्य बन गया ।

---

(१) पत्र- ३१ अगस्त १९२८, पृ०सं०-२०६, (भाग-२)

जीवनी लेखक

३७. प्रेमचन्द उपन्यासकार थे । कहानी लेखक थे । सफल सम्पादक थे और साथ ही बड़े ही मनोयोग से अपने महान् पुरुषों की जीवनियां भी प्रस्तुत कीं । प्रेमचन्द जानते थे — "संसार का सच्चा परिचय केवल उन बडे लोगों के कारनामें हैं जो समय समय पर दुनिया मेंपैदा हुए × × × × × × और उन्हीं बड़े आदमियों की मिहनतों और सोच विचार का नतीजा है, वह तमाम चीजें जो हमारी प्रशंसा और सम्मान की अधिकारी हैं । [१] जिस दुनियां में हम रहते हैं, वह उन्हीं सज्जन लोगों के सुन्दर प्रयत्नों का फल है । हमारी आत्माएं जिनसे हमारा जीवन है, उन्हीं महान् आत्माओं के इशारे पर चलती हैं । हमारे विचार, हमारा सांस्कृतिक रूप, हमारे तौर-तरीके उसी सांचे में ढलते हैं जो ये महान् जीवन के लोग हमारे सम्मुख उपस्थित करते हैं ।

३८. प्रेमचन्द ने 'कलम, तलवार और त्याग' (भाग १-२) में कुछ महानुभावों की जीवनियां प्रस्तुत की हैं । इन सब महापुरुषों ने सुधार के लिए यत्न किये । इसी कारण उनका नाम अमर है । ये समाज सुधारक कटुवादी न थे । मुंह से जब निकलते थे मीठे वचन ही निकलते थे । वह किसी की निन्दा नहीं करते थे । नि:सन्देह सामाजिक-जीवन के सुधार के इन गुरुतर और महत्वपूर्ण प्रश्नों की हमने उपेक्षा की है और प्राचीन ऋषियों ने जो मार्ग बताया उससे विमुख हो गए हैं, यही हमारे संकटों का यथार्थ कारण है । प्रेमचन्द ने स्वामी विवेकानन्द की जीवनी में लिखा है —

---

(१) 'कलम, तलवार और त्याग', (भाग-१) पृ०सं०-१२३, (१६०८)

"धर्मगत राग-द्वेष का तो आपके स्वभाव में कहीं लेश भी न था । दूसरे धर्मों की निन्दा और अपमान को बहुत अनुचित मानते थे । ईसाई धर्म, इसलाम धर्म, बौद्ध धर्म सबको समान दृष्टि से देखते थे । × × × × × × अपने देशवासियों को सदा इस बात की याद दिलाते रहते थे कि आत्म-विश्वास ही महत्व का मूलमन्त्र है ।" (१)

३६. प्रेमचन्द की चेतना की यह नई गहराई है । यह जीवनी प्रेमचन्द के साहित्य के प्रारंभिक-काल में लिखी गयी थी । इस कारण उनके गम्भीर मानसिक क्रान्ति का पता देती है । देश में उस समय विचारों और राष्ट्रीयता की उथल-पुथल मची हुई थी और राष्ट्रीय-आन्दोलन को लोकमान्य तिलक का नेतृत्व मिल रहा था । प्रेमचन्द अपने विचारों की यात्रा में अपने लिए मार्ग प्रशस्त कर रहे थे । जीवनियां प्रेमचन्द के लिए सहारा थीं अपने उद्देश्य को व्यक्त करने के लिए । वर्तमान शिक्षा प्रणाली के विषय में लिखते हैं -- "शिक्षा जानकारी का नाम नहीं जो हमारे दिमाग में ठूंस दी जाती है, शिक्षा का प्रधान उद्देश्य मनुष्य के चरित्र का उत्कर्ष, आचरण का सुधार, पुरुषार्थ तथा मनोबल का विकास है ।" । प्रेमचन्द लिखते हैं कि स्वामी जी अपनी जाति को आचार-व्यवहार, रीति-रिवाज, साहित्य और दर्शन, सामाजिक जीवन, उसके पूर्व काल के महापुरुषों और पुनीत भारतभूमि सबको श्रद्धेय और सम्मान्य मानते थे ।

---

(१) कलम, तलवार और त्याग, (भाग -१) `स्वामी विवेकानन्द', पृ०सं०१११,

४०. प्रेमचन्द ने अपने देश के बालकों के लिए, उनके चरित्र-विकास के लिए विभिन्न वर्गों के महान् लोगों की जीवनियां लिखीं। प्रेमचन्द का विचार था कि बालकों के लिए राष्ट्र के सपूतों के चरित्र से बढ़कर उपयोगी साहित्य का कोई दूसरा अंग नहीं। इससे बालकों का चरित्र ही बलवान नहीं होता, उनमें राष्ट्र प्रेम और साहस का संचार भी होता है। राजपूताना में, तथा भारत भूमि के अन्य क्षेत्रों में बड़े बड़े शूर वीर ,महात्मा, हो गए हैं। उन्हीं के अनुपम आत्म त्याग, नि:स्वार्थ सेवा, भक्ति और चरित्र के लिए सदैव मानव जाति में स्मरणीय रहेंगे। इन वीरों में शौर्य के साथ हिंसा, द्वेषका भाव न था, कीर्ति का मोह न था, अभिमान न था। शेर होकर साधु से थे। इन्हीं कारणों से वीर रत्नों की जीवनियां बालकों के लिए आदर्श का उदाहरण हैं। भारत का भविष्य बालकों को निहार रहा है। भारत के भविष्य की आशा हमारे बालकों में है। प्रेमचन्द ने बालकों में रुचि जगाने के लिए सुन्दर श्रेष्ठ जीवनियां लिखीं जो स्मरणीय रहेंगी — प्रेमचन्द बालकों को स्वाधीन बनाना चाहते थे, जिससे बालक स्वच्छन्द रीति से अपना विकास कर सकें और उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सकें। वह आदर्श चरित्रों के प्रभाव से बालकों में सद्भाव उपजाना चाहते थे।

अनुवादक-
प्रेमचन्द
-----

४१. प्रेमचन्द का सदैव यह प्रयत्न रहता था कि विभिन्न देशों के सर्वोच्च साहित्य का अनुकरण हमारे लेखक करें। वह विश्व-वातावरण के कण कण से जो उपादेय है, सबको ग्रहण करके श्रेष्ठ साहित्य की रचना करने का प्रयत्न करते थे। `टालस्टाय की कहानियां`, जार्ज इलियट का

`साइलस मार्नर` अनातोले फ्रांस का `थायो गाल्सवर्दी का `स्ट्राइक` `जसटिस` `सिल्वर बोकार` आदि अनुवादों के पीछे प्रेमचन्द की सौहार्द-भावना कार्य कर रही थी । प्रेमचन्द सब साहित्यों के रस से अपने साहित्य को सींचना चाहते थे । प्रेमचन्द का विचार था कि मनुष्यों का कर्म केवल जीना नहीं, किन्तु प्रेमभाव से जीना है । टालस्टाय के ये शब्द :`सदैव वर्तमान काल ही उचित काल है । क्योंकि वर्तमान काल पर ही हमारा अधिकार है । (जो हम दूसरों से सीख सकें वही उक्ति है) ।‹ ‹ ‹ ‹ सर्वोत्तम कर्तव्य परोपकार में है । क्योंकि उपकार के लिए ही मनुष्य इस मृत्यु-लोक में जन्म लेता है ।`(१)१

४१. `साइलस मार्नर` अंग्रेजी का प्रसिद्ध उपन्यास है । यह मानव हृदय का अनूठा चित्र है । इसमें भावों की मार्मिकता अति उत्तम रीति से चरितार्थ की गयी है । प्रेमचन्द ने इसी भाव से प्रेरित होकर इसका रूपान्तर हिन्दी में उपस्थित किया । इसी प्रकार फ्रेंच साहित्य में अनातोले फ्रांस का नाम प्रसिद्ध है ।`थाया` फ्रांस की सर्वोत्तम रचनाओं में गिनी जाती है । इन रचनाओं के आधार पर प्राचीनकाल मूर्तिमान हो उठता है । हम वर्तमान में रह कर प्राचीनतम् आदर्शों और विचारों के संसार में विचरण करने लगते हैं । इस प्रकार प्राचीन युग का सुख-दुख, प्रकृति, दर्शन, विराग, शंका, माया सब का रस मिल कर एक हो जाता है । इतिहास तो केवल नामोल्लेख और तिथियों की तालिका है । साहित्य अपने समय की भाषा

---

(१) टालस्टाय की कहानियां, रूपान्तरकार-प्रेमचन्द पृ०सं०-१६१,
प्रकाशन-सरस्वती ,

और विचार व्यक्त करने का सफल साधन है । प्रेमचन्द सज्ञान चेतन कलाकार थे, इसी कारण उन्होंने अपने अनुवादों के द्वारा उन साहित्यों को अपने देश की जनता तक पहुंचाने का सफल प्रयास किया ।

नाटककार-प्रेमचन्द :

४३. प्रेमचन्द नाटककार भी थे । साहित्य के अन्य क्षेत्रों की भांति आप ने इस लेखन-कला में भी चेष्टा की । प्रेमचन्द लिखते हैं —

" मैंने कभी संजीदगी से नाटक लिखने की कोशिश नहीं की । मैंने एक दो कथानकों की कल्पना की जो मेरे विचार में नाटक के लिए अधिक उपयोगी हो सकते थे । नाटक का महत्व समाप्त हो जाता है, अगर उसे खेला न जाए । हिन्दुस्तान के पास रंगमंच नहीं है, विशेषत: हिन्दी और उर्दू के पास । रंगमंच के नाम पर मुर्दा पारसी स्टेज हैं , जसके नासे मुझे हौल होता है । इसके अलावा मैं कभी नाटक की टेकनीक और रंगमंच की कला के सम्पर्क में नहीं आया । इसलिए मेरे नाटक सिर्फ पढ़े जाने के लिए थे । x x x x x x x x मैं एक दो नाटक लिखूंगा, जहां तक आर्थिक सफलता की बात है, x x x x आर्थिक रूप से स्वतंत्र किसी प्रकार नहीं" (१)

४४. प्रेमचन्द ने जैसा स्वयं ही उल्लेख किया, अपने पत्र में, नाटक लिखे, लेकिन सफलता दोनों दृष्टियों में से - आर्थिक और साहित्यिक, किसी में भी नहीं मिली । इस असफलता का कारण केवल

---

(१)(पत्र:भाग २) सरस्वती सदन, दादर बम्बई-१४,२६ दिसम्बर, १९३४, पृष्ठ-संख्या-२३६ ,

प्रेमचन्द की ही असफलता न थी बल्कि पाठकों में एक तरह की मुर्दनी, उदासीनता, सुस्ती और बौद्धिक आलस्य छाया हुआ था । सस्ता-साहित्य की बिक्री बहुतायत में थी । प्रेमचन्द सामाजिक-विकास में विश्वास रखते थे । उनका उद्देश्य जनमत को शिक्षित करना था । समाज वह है जिसमें सब को समानाधिकार प्राप्त हो । विकास को छोड़ कर इस मंजिल पर पहुंचना कठिन था । जनता का चरित्र ही निर्णायक तत्व है । जिस लेखक के इतने महान् विचार हों उसको ग्रहण करने के लिए भी सामर्थ्य की आवश्यकता थी । अभी समाज इतना पुरुषार्थी, चरित्रवान, उत्साही, त्यागी नहीं बन सका था । यही प्रेमचन्द की असफलता का कारण था ।

<u>प्रेमचन्द के विचार</u>

१. मनुष्य के विचार उसके जीवन का दर्पण होते हैं, जीवन जिस प्रकार के कर्म-क्षेत्र में प्रवेश करता है वैसे ही उसके विचार बनते हैं। प्रेमचन्द के लिए " जिन्दगी मेरे लिए हमेशा काम न रही है, काम, काम, काम। मैं जब सरकारी नौकरी में था तब भी अपना सारा समय साहित्य को देता था। <<<<<<<<<<<< पस्ती के क्षण आते हैं, जब तब पैसे की समस्या आ खड़ी होती है वरना मैं अपने भाग्य से बहुत सन्तुष्ट हूं।" (१)

२. प्रेमचन्द के विचारों पर वाह्य-जगत और अन्तर्जगत दोनों का यथेष्ट प्रभाव था। महान्-व्यक्तित्व के साथ प्रेमचन्द ने परिपक्व विचार-धारा और कलाकार का हृदय पाया था। प्रेमचन्द की रचनाओं में कलात्मक गुण तो थे ही, उसके साथ ही साथ उन्होंने समाज के महत्व को भी प्रमुखता प्रदान की। मनुष्य समाज की एक इकाई है। उसका समाज में उतना ही महत्व है जितना कि अन्य समूह-प्राणियों का। इस कारण प्रत्येक मनुष्य के सुख-दुख, राग-द्वेष का समाज पर प्रभाव पड़ता है। प्रेमचन्द ने अपनी सहज-क्रियात्मक शक्ति के बल पर साहित्य-जगत में रचना का कार्य सम्पन्न किया , जो कलात्मक गुण से परिपूर्ण था। सामाजिक मूल्यांकन की दृष्टि से प्रेमचन्द अपने युग के समाज-पारखी और द्रष्टा सिद्ध हुए। उनको , अपने युग का और उस युग के समाज का यथार्थ ज्ञान था। वे भली प्रकार जानते थे कि हमारा समाज कुरूप-विकृत हो चुका है। ऊंच-नीच का भाव, आपसी

---

(१) अमृतराय , चिट्ठी-पत्री, भाग-२, प्रथम संस्करण, पृ०सं०-२३५,

कलह, मनमुटाव,एक दूसरे को क्षति पहुंचाने की भावना, एक को दबा कर स्वयं ऊपर बढ़ने की भावना, लालच, झूठ, अमानुषिक-व्यवहार इतने बढ़ गए हैं कि उनका प्रतिरोध करना कठिन हो गया है । प्रेमचन्द ने अपनी साहित्यिक प्रेरणा से जीवन के वातावरण को प्रभावित किया । प्रेमचन्द में सूझ-बूझ थी और मानवतावादी दृष्टिकोण , जिसके कारण उन्होंने सदैव सेवा, संयम, त्याग और संघर्ष को अपने साहित्य में स्थान दिया । प्रेमचन्द ने जिन पीड़ित वर्गों के साथ अपनी सहानुभूति प्रकट की, उनमें समाज के सभी वर्ग के शोषित प्राणी थे । प्रेमचन्द ने अपने युग के अनुरूप जैसा समाज को देखा, चित्रित किया ।

३. प्रेमचन्द ने साहित्य, समाज और राजनीति के आपसी सम्बन्ध को भली प्रकार समझ लिया था । वे जानते थे कि जब तक समाज उन्नत न हो, साहित्य की उन्नति सम्भव नहीं और जब तक मनुष्य रूढ़िगत विचारों को छोड़ कर नए विचारों को ग्रहण न करे, युग के ऐतिहासिक सत्य को न अपनाए, उसका अच्छा राजनीतिज्ञ, साहसी, देशभक्त और सेवक बनना सम्भव नहीं । साहित्य की उन्नति, उन्नत समाज में ही सम्भव है और अच्छा साहित्य समाज और राजनीति को अच्छा बनाने में सहायक होता है । प्रेमचन्द लिखते हैं -" साहित्य का उत्थान राष्ट्र का उत्थान है । (१)

४. प्रेमचन्द जिस सामाजिक व्यवस्था में रहते थे, उससे सन्तुष्ट नहीं थे । इसका कारण केवल अंग्रेजों की दासता ही न थी, बल्कि अपनी

---

(१) प्रेमचन्द : साहित्य के उद्देश्य: प्रथम संस्करण: १९५६, पृ०सं० २६

ही परम्परागत बन्धनों और अन्ध-विश्वास जनित प्रथाओं का मूल भूत रूप भी था । अधिकांश जनता अपढ़ और दरिद्र थी, अकथ परिश्रम करके भी सभी सुख साधनों से वंचित थी । उसे धर्म, जाति, रीति-रिवाज, कानून सबके नाम पर लूटा जाता था । ऐसी सामाजिक व्यवस्था से प्रेमचन्द को घृणा थी, जो केवल अन्याय, क्रूरता, शोषण पर पल रही हो । प्रेमचन्द लिखते हैं : "अगर स्वराज्य आने पर भी सम्पत्ति का यही प्रभुत्व रहे और पढ़ा लिखा समाज यों ही स्वार्थान्ध बना रहे तो ××××××× ऐसे स्वराज्य का न आना ही अच्छा । अंग्रेजी महाजनों की धन लोलुपता और शिक्षितों का स्वहित ही आज हमें पीछे डाल रहा है" (१) प्रेमचन्द हमेशा जनहित को सम्मुख रखते थे । वे जन-साधारण के लिए ही सुख और स्वराज्य की कामना करते थे । वे लिखते हैं " जिन बुराइयों को दूर करने के लिए आज हम प्राणों को हथेली पर लिए हुए हैं, उन्हीं बुराइयों को क्या प्रजा इसलिए सर चढ़ाएगी कि वे विदेशी नहीं स्वदेशी हैं ? कम से कम मेरे लिए तो ऐसे स्वराज्य का यह अर्थ नहीं है कि जोन की जगह गोविन्द बैठ जाए । (२) प्रेमचन्द समाज की ऐसी व्यवस्था चाहते थे जहां कम से कम विषमता को आश्रय मिल सके । प्रेमचन्द ने अपने एक भाषण में महात्मा गांधी के इस कथन का समर्थन किया है कि हमारे साहित्य का आदर्श जन-सेवा होना चाहिए ।" जो साहित्य केवल विलासिता का ही आदर्श अपने सामने रखता है, उसके संगठन करने की आवश्यकता ही क्या ? हम तो जन-सेवा के लिए ही साहित्य की सेवा करने में प्रवृत्त हुए हैं । ×××××××××××

---

(१) कफन, पृ०सं० १६२
(२) ,, ,, १६३

इसीलिए हम उसका महत्व मानते हैं। राष्ट्रीय एकता के बिना लोक-जीवन प्रसन्न, पुरुषार्थी और परिपूर्ण नहीं हो सकता।" (१) प्रेमचन्द के सम्पूर्ण साहित्य में यही भावना मिलती है। प्रेमचन्द के आदर्श पात्र लोक-जीवन के निर्माण में ही दत्त चित्त दीख पड़ते हैं। प्रेमचन्द साहित्य के द्वारा जीवन के उच्च आदर्शों को जगाना चाहते थे और सद्भावना से मानवता का बीजारोपण करना चाहते थे। प्रेमचन्द मनुष्य का साहित्य का आधार मानते थे। उनका विचार था, " जीवन परमात्मा की सृष्टि है , इसलिए अनन्त है, अबोध है, अगम्य है।साहित्य मनुष्य की सृष्टि है, इसलिए सुबोध है, सुगम है और मर्यादाओं से परिमित है।" (१)

५. जीवन क्या है ? यह एक ऐसी विवाद पूर्ण पहेली है कि उसका हल प्रत्येक युग में विवादग्रस्त रहा। हमारे ऋषि मुनियों ने आदि काल से जीवन के रहस्यों की खोज की। महात्मा गौतम बुद्ध यही समझने का प्रयास करते रहे कि इस जीवन में दु:ख क्यों है ? और इस दुख से मुक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है ? सांख्य दर्शन हो या वेदान्त, सभी का मूल उद्देश्य यही रहा कि इस जीवन का सार क्या है ? इस जीवन के उपरान्त भी मनुष्य का दूसरा जन्म होता है या नहीं ? अदृश्य क्या है ? जीवन के निर्माण और विघटन में उसका कितना हाथ है ? धर्म के प्रणेताओं ने जीवन निर्माण के लिए उपासना और सिद्धि के विभिन्न मार्ग बताए। इन्होंने संसार को वैराग्य वृत्ति से देखा और अनुभव किया कि संसार निस्सार है, माया है,

---

(१) प्रेमचन्द: साहित्य के उद्देश्य, प्रथम संस्करण, हंस प्रकाशन(१९५६)पृ०सं०२२४
(२) वही, २१ ,

उनके लिए जो कुछ था वह जीवन का उद्देश्य केवल ईश्वर भक्ति और भगवान भजन में मानते थे तथा निराकार में लीन होने में ही जीवन की सार्थकता समझते थे ।

धर्म
--

६. प्रेमचन्द धर्म के कटु आलोचक थे । उनका विचार था कि धर्म ढकोसला है, अन्ध-विश्वास है, दूसरों को लूटने की विद्या है । प्रेमचन्द ने धर्म की आड़ में क्रूरताओं के वीभत्स चित्र देखे थे । उनका कहना था कि धर्म ने हमारी भावना को आक्रान्त कर दिया है । मानव का हृदय, मस्तिष्क, क्रिया-कलाप, साहित्य-कला, दैनिक जीवन सभी कुछ ईश्वर और धर्म के प्रभाव से आक्रान्त हैं । विश्व का अधिकांश साहित्य धार्मिक है । धर्म के कारण ही महान् व्यक्तियों एवं प्रतिभाओं की विचार धारा को एक संकीर्ण मार्ग में स्थिर रक्खा ।मानवीय जीवन और मानवीय इतिहास में धर्म ने सदैव बाधाएं उपस्थित कीं । प्रेमचन्द लिखते हैं कि धर्म मानव मस्तिष्क की स्वतन्त्र-चेतना के लिए अवकाश नहीं देता । इस प्रतिबन्ध और मानसिक दासता ने मनुष्य को मानसिक रूप से निर्बल और निर्जीव बना दिया है । भाग्यवादिता इसी के लक्षण हैं । मनुष्य को पुरुषार्थ पर विश्वास नहीं रह जाता । धर्म के पुजारियों ने अपने स्वार्थ साधन के लिए धर्म को ही अवलम्बन माना । प्रेमचन्द का विश्वास था :" ईश्वर मन की एक भावना है । उसके लिए मन्दिरों , मसजिदों का या गिरजाघरों की आवश्यकता नहीं । वह घट-घट व्यापी है, एक एक अणु में उसकी ज्योति है । वह प्रजा की कमायी पर चैन करने वाला, राजा नहीं ।xxxxxxxxx जो लोग ईश्वर भक्ति की धुन में बड़े बड़े महल बनवाते हैं कि ईश्वर इसमें रहेगा ,वे असीम को चहार दिवारी में बन्द करके व्यापक ईश्वर का अपमान करते हैं और जो लोग उसकी प्रतिमा बना कर उसका श्रृंगार करते हैं, भोग लगाते हैं, विवाह करते हैं, उसके नाम की माला जपते हैं वह तो ईश्वर को खिलौना बना कर ऐसा पाप करते हैं जिसका कोई प्रायश्चित नहीं ।

ईश्वर की उपासना को केवल एक मार्ग है और वह है मन, वचन और कर्म की शुद्धता : अगर ईश्वर इस शुद्धता की प्राप्ति में सहायक है, तो शौक से उसका ध्यान कीजिए ।" (१)

७. प्रेमचन्द के विचार से धर्म, साहित्य, राजनीति और समाज सब का मूल उद्देश्य व्यापक ढंग से लोकहित संस्कृति को फलीभूत करना था । जन-साधारण का सुख, जन-हित की भावना, लोक-मंगल-कामना हो , प्रेमचन्द का अंतिम लक्ष्य और उद्देश्य था ।

---

(१) संकलनकर्ता अमृत राय, विविध प्रसंग, भाग ३, पृ० सं० १५४

प्रेमचन्द का सन्देश

१. प्रेमचन्द सीधे-सादे,सच्चे, स्नेही, सहृदयी, सजल जीव थे, जो मन, वचन, कर्म तीनों से मानव-हितैषी थे । मानव-जाति के प्रति प्रेमचन्द की सच्ची सहानुभूति थी । मनुष्य-मात्र से प्रेम करना उससे सौहार्द्र भाव रखने में ही अपने जीवन की सार्थकता समझते थे । धर्म-कर्म सब कुछ प्रेमचन्द के लिए मनुष्यों की सेवा में था । जीवन का सच्चा, सुख, सेवा और सन्तोष से प्राप्त होता है । मनुष्य मूर्खता वश अधिकारों के पीछे भागता है, यह नहीं जानता अधिकार के साथ अपयश भी जुड़ा है । इसीलिए प्रेमचन्द ने जीवन-पर्यन्त अधिकारों की चिन्ता नहीं की । उनका विश्वास था कि सबसे बड़े अधिकार सेवा लाभ से मिलते हैं । प्रेमचन्द चाहते तो सर्वमान्य, सरकारी पद पर होते । सुख-विलास की सभी सुविधाएं प्राप्त होतीं, जीवन चैन से व्यतीत होता, लेकिन प्रेमचन्द की आत्मा ने चंद चांदी के टुकड़ों पर अपने आप को न्यौछावर नहीं किया ।

२. प्रेमचन्द का सन्देश था "जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है, मुर्दादिल क्या ख़ाक जिया करते हैं ।"[1]

यही उत्साह शीलता, आशावादिता ही जीवन है और जीवन के प्रति मनुष्य का आकर्षण होना स्वाभाविक है । प्रेमचन्द ने जीवन क्या है ? इसकी भी व्याख्या की है । जीवन की वे वृत्तियां जिनका प्रकृति के साथ सामंजस्य बढ़ता है, जीवन के विकास में सहायक होती हैं । जिनसे सामंजस्य में बाधा उत्पन्न हुई, वे प्रवृत्तियां दूषित हैं , हमें पतन की ओर ले जाती हैं । प्रेमचन्द लिखते हैं -" हमारे जीवन का आदर्श स्वार्थ की अंधी उपासना नहीं, संसार की निधि को समेट कर अपनी थैली में भर लेना नहीं

१- विविध - प्रसंग , भाग - ३ प्रकाशन - हंस , सन् १९६२ , पृष्ठ संख्या ३९ ,

वरन् संसार में इस तरह रहना कि हमसे किसी को हानि न हो, किसी को कष्ट न हो, किसी का गला न दबे x x x x x x x हमारा विश्वास संघर्ष में नहीं, सहयोग में है । (१)

३. हमारी संस्कृति के दो सूत्र "अहिंसा परमोधर्म:" और "वसुधैव कुटुम्बकम्" मूल तत्वरहे हैं, जिसको गांधी जी के युग तक विश्रृंखलित होने पर भी, कुछ महान पुरुष अपने जीवन का आदर्श मानते रहे और गांधी जी तो अहिंसा के पुजारी ही थे, उनकी तो सारी लड़ाई अहिंसा के बल पर थी । प्रेमचन्द का विश्वास था कि अपनी संस्कृति की प्राप्ति के लिए रूढ़िग्रस्त समाज को अन्धविश्वास , प्रमाद,पराधीनता से मुक्त करना होगा । सत्य को पहचानना होगा, तभी हम सुखी रह सकते हैं और विकास के पद पर अग्रसर हो सकते हैं । प्रेमचन्द धर्म को जीवन मानते थे । उनका विश्वास था" हिम्मतें मर्दां, मददे खुदा" (२)

४. साहित्य समय की आत्मा होता है । प्रेमचन्द ने अपने साहित्य के द्वारा मनुष्य को कर्मयोगी और संघर्षशील होने का सन्देश दिया, रूढ़िग्रस्त मान्यताओं से हट कर उन्नति की एक अलग राह खोजने की प्रेरणा दी । प्रेमचन्द इकबाल से बहुत प्रभावित थे । क्योंकि इकबाल ने भी मनुष्य को कर्मशील होने का सन्देश दिया है -" अमल से जिन्दगी बनती है, जन्नत भी जहन्नुम भी" प्रेमचन्द लिखते हैं : " हमें उसकला की आवश्यकता है, जिसमें

---

(१) वहीं, पृ०सं० २०५,

(२) अमृतराय (संकलनकर्ता) चिट्ठीपत्री, भाग-१, पृ०सं०४,

कर्म का सन्देश हो और हज़रते इक़बाल के साथ हम भी कहते हैं —
'रम्ते हयात जोई जुज़दर तपिश नयाबी' अर्थात् अगर तुझे जीवन के रहस्यों की खोज है, तो वह तुझे संघर्ष के सिवा और कहीं नहीं मिलने का।' (१)

५. प्रेमचन्द ने इसी हिम्मते मरदां से जीवन व्यतीत किया था और फिर जन संघर्ष में पड़ कर उन्होंने अपने जीवन को राष्ट्रीय जीवन में मिला दिया था। इसमें सन्देह नहीं कि प्रेमचन्द अन्तर्राष्ट्रीयता के परिचायक थे। वह मानव संस्कृति और जीवन का बहुत ऊंचा आदर्श उपस्थित करना चाहते थे। प्रेमचन्द लिखते हैं -' समाज का संगठन आदिकाल से आर्थिक भित्ति पर होता आ रहा है × × × × × × × × यह जो प्राणी प्राणी में भेद है, फूट है, वैमनस्य है, ××××× इसका कारण अर्थ के सिवा और क्या है ? × × × × × × जब तक सम्पत्ति मानव समाज के संगठन का आधार है, संसार में अन्तर्राष्ट्रीयता का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता। राष्ट्रों राष्ट्रों की, भाई भाई की, स्त्री-पुरुष की लड़ाई का कारण यही सम्पत्ति है। संसार में जितना अन्याय और अनाचार है, जितना द्वेष और मालिन्य है, जितनी मूर्खता और अज्ञानता है, उसका मूल रहस्य , यही विष की गांठ है। जब तक सम्पत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार रहेगा, तब तक मानव समाज का उद्धार सम्भव नहीं।' (२)

---

(१) प्रेमचन्द, साहित्य के उद्देश्य, पृ०सं०११

(२) विविध प्रसंग, भाग२, पृ०सं०-३३५,

६. प्रेमचन्द मानव समाज में आदर्श और धर्म की प्राप्ति चाहते थे । वह ऐसे संघटन की रचना करना चाहते थे, जहां समानता केवल नैतिक बन्धनों पर ही आश्रित न रहकर अधिक ठोस रूप प्राप्त कर सके । यही आदर्श प्रेमचन्द के साहित्य का सन्देश था ।

" आदमी अगर धन या नाम के पीछे पड़ा है तो समझ लो कि अभी तक वह किसी परिष्कृत-आत्मा के सम्पर्क में नहीं आया ।" (१)
प्रेमचन्द का सारा जीवन संघर्षों में व्यतीत हुआ, अर्थाभाव के कारण उनकी साधारण शिक्षा भी पूरी नहीं हो सकी, लेकिन धन का अभाव प्रेमचन्द को उनके निश्चय से डिगा नहीं सका । उनके हृदय में विकास और उन्नति की एक भावना थी, आगे बढ़ने की उत्कट अभिलाषा थी, जिसने उन्हें कभी चैन से बैठने नहीं दिया । प्रेमचन्द जीवन-पर्यन्त परिस्थितियों से लड़ते रहे और उनसे ऊपर उठने का सतत् प्रयत्न करते रहे । प्रेमचन्द की अभिलाषा थी :
" भगवान् मुझे सदैव मनहूसी से बचाए । मनहूसियत से मेरा मन घुटने लगता है ।(२)
`सूरदास` प्रेमचन्द का सबसे बड़ा कर्मयोगी पात्र है । जीवन की कठिनाइयों और बाधाओं का हंसते हंसते सामना करना , उससे भागना नहीं, यही सूरदास की टेक थी —

" तू रंगभूमि में आया, दिखलाने अपनी काया, क्यों धर्मनीति
को तोड़े, भाई क्यों रण से मुंह मोड़े ।"

---

(१) गोदान- पृ०सं० -३०८,
(२) नवनीत, "बिखरे मोती, फरवरी-१९५६, पृ०सं० ४६ ,

प्रेमचन्द का मूल्यांकन

१. जन-प्रिय लेखकों में गोस्वामी तुलसीदास के पश्चात् प्रेमचन्द का ही प्रमुख स्थान है । प्रेमचन्द ने अपनी विभिन्न कलाकृतियों के आधार पर भारतीय मानस में प्रेरणा , उनमें जीने के लिए शक्ति और अभिलाषा प्रदान की । प्रेमचन्द ने साहित्य के माध्यम से जनता के हृदय, उसकी कोमल भावनाओं, उनके सुख-दु:ख, सम्वेदनाओं आदि सभी पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया था । जनजीवन पर प्रेमचन्द की गहरी छाप थी । वह अपनी सहानुभूति, संवेदनशीलता, कल्पना, ज्ञान, सभी के सहारे भारत की पीड़ा, कष्ट, निराशा, दु:ख सब का निवारण करना चाहते थे । प्रेमचन्द ने अपनी प्रतिभा, स्वाधीनता, कर्मठता, त्याग-तपस्या, पारदर्शिता और लोक कल्याण-कारी भावनाओं से हिन्दी साहित्य और जनता की सेवा की । उनकी साहित्यिक -कृतियों का हमारे समाज के सांस्कृतिक-जीवन पर गहरा प्रभाव है । प्रेमचन्द का साहित्य जन जीवन का साहित्य है । उसमें जनता के पुन-रुत्थान का सन्देश है । अवसादग्रस्त पराभूत, निराश्रित भारतीय जनता प्रेमचन्द के साहित्य से सांत्वना पाती है । क्योंकि प्रेमचन्द का आदर्श था " सन्तोष से मीठा संसार में कोई वस्तु नहीं ।" (१)

२. प्रेमचन्द को शैशव में ही जिन्दगी की सारी कटुता, नीरसता, गरीबी, और परवशता का अनुभव हो गया था । अत: उनकी आंखों में व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की सारी कुरूपताएं समा गयी थीं । जीवन की कठोर सच्चाइयों को उनके जीवनपर ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा था

---

(१) रंगभूमि पृ०सं०-१४

जीवन की कठोर सच्चाइयों का उनके जीवन पर [illegible] गहरा प्रभाव पड़ा था कि वर्तमान की वस्तुस्थिति के सहारे उन्होंने भविष्य को भी आशापूर्ण बनाने का प्रयास किया । प्रेमचन्द कलम के सिपाही थे, वही उनका अवलम्ब था, अनुभूति और प्रतिभा उनको ईश्वर प्रदत्त थी, देश भक्ति और समाज-भक्ति के प्रति उनका राग,विराग एक-सा था । भक्ति और मानवता के प्रेमचन्द समानरूप से उपासक थे । प्रेमचन्द की एक प्रारंभकि कहानी है, उसमें अपने देश के प्रति उनके महान् उद्गार हैं । (१)

३. प्रेमचन्द मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखना चाहते थे । वे हिन्दुओं और मुसलमानों में कादिर और मनोहर (२) का भ्रातृ भाव लाना चाहते थे, `बोझ` (३)के समान मनुष्यों से स्नेह करने वाला इन्सान । हिन्दू-मुसलिम एकता के विषय में प्रेमचन्द लिखते हैं —— " हमको यह मानने में कोई संकोच नही है कि इन दोनों सम्प्रदायों में कशमकश , सन्देह और घृणा की जड़ें इतिहास में हैं । x x x x x x x (एक लम्बे इतिहास की भूमिका देने के पश्चात् प्रेमचन्द लिखते हैं) ज़िद से ज़िद पैंदा होती है x x x x x x इस सत्य को स्वीकार कर लेने में ही हमारा उद्धार है । हमें आशा है अब हम ज्याद संयम, ज्यादा विचार, ज्यादा नम्रता से काम लेंगे और हिन्दू

(१(`यही मेरी मातृभूमि है` मान०भाग-६, पृ०सं०-३
(२) प्रेमचन्द प्रेमाश्रम, पृ०सं०—
(३) कहानी " बोझ " मान० भाग- पृ०सं०—

मुसलिम मैत्री की केवल राजनैतिक आवश्यकता नहीं समझेंगे, बल्कि उसे अपने कर्म का एक तत्व बना लेंगे ।" (१)

४. प्रेमचन्द का साहित्य धर्म, न्याय, नीति, मानवता, मर्यादा, सुशासन, सुव्यवस्था, स्वाधीनता, प्रगति और विकास का जयघोष प्रतीत होता है । प्रेमचन्द के लिए धर्म का अर्थ संसार में मेल और एकता पैदा करना है । (२) वह लिखते हैं : "आत्मा को भी धर्म ने बांध रक्खा है प्रेम को भी जकड़ रक्खा है । यह धर्म नहीं, धर्म का कलंक है ।" (३) प्रेमचन्द प्रेम में विश्वास करते थे । मनुष्य का अन्तर यदि प्रेम की ज्योति से प्रकाशित हो और सेवा का आदर्श उसके सम्मुख हो, तो जीवन की सरलता अवश्यम्भावी है । विचारवान् प्रेम को ही जीवन और संसार की सबसे बड़ी विभूति मानते हैं । गांधी जी प्रेम को जीवन का सत्य मानते थे, उनका कहना था कि प्रेम से शासन करना मानवता है । मनुष्य ने अभी धन और कर्म के आधार पर अपने राज्य स्थापित किए और बढ़ाए , साधारण जन-समुदाय काल्पनिक सुख की आशा में ही सन्तोष करता रहा । प्रेमचन्द ने सर्व प्रथम धर्म के विरुद्ध खड्ग हस्त होकर, उसकी कुरीतियों, विषमताओं, ऊंच-नीच के भेद-भाव, संघर्ष रूढ़ियों आदि की कड़ी आलोचना की ।" ईश्वर के नाम पर जो प्रत्येक धर्म में स्वांग हो रहा है, उस स्वांग की जड़ खोदना, ईश्वर की सच्ची सेवा है ।(४)

---

(१) प्रेमचन्द : मनुष्यता का अकाल : (विविध प्रसंग -भाग२) पृ० सं० ३६५

(२) कर्मभूमि- पृ०सं० ६२

(३) वही .... ,

(४) प्रेमचन्द : विविध - प्रसंग : भाग ३, पृ० सं० - ११४

(संकलनकर्ता : अमृतराय)

५. प्रेमचन्द ने अपने युग की मर्यादाओं से बंध कर साहित्य-सृजन नहीं किया, वह स्वतन्त्रचेता कलाकार थे, उनको अपने युग में ही लोगों को बल और प्रेरणा देनी थी, अन्याय के विरुद्ध लड़ने और न्याय के लिए प्रोत्साहित करना था। प्रेमचन्द ने अपने युग की सामाजिक परिस्थितियों की उपेक्षा नहीं की बल्कि अपने साहित्य में उसी सत्य की स्थापना की जो युग के साथ सत्य प्रतीत हो। प्रेमचन्द लिखते हैं : " देवता हमेशा रहेंगे और हमेशा रहे हैं। x x x x x x लेकिन x x x x x देवता वह है जो न्याय की रक्षा करे और उसके लिए प्राण दे दे " (१) प्रेमचन्द हमेशा जनहित को सम्मुख रखते थे। वे जन साधारण के लिए ही सुख और स्वराज्य की कामना करते थे। उनके युग में (१६०५ - १६३६) तक क्रान्ति का युग रहा। प्रेमचन्द ने जनता की बड़ी बड़ी भीड़ों के जन समूह को देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करते देखा, भूखे, नंगे, खाली पेट स्वतन्त्रता-संग्राम में जूझ रहे थे , जबकि अमीरों की दुनियां इनका उपहास उड़ाती थी। प्रेमचन्द को जनता की शक्ति पर पूर्ण विश्वास था, उनकी राजनैतिक कहानियों में जनता उन्मत्त हो उठती है।" कल के रक्तपात की स्मृति, हर्ष और मुबारकवाद में जुलूस निकालना आवश्यक था। लोग कहते हैं, जुलूस निकालने से क्या होता है ? इससे यह सिद्ध होता है कि हम जीवित हैं, अटल हैं और मैदान से हटे नहीं हैं। हमें अपनी हार न मानने वाले आत्माभिमानियों का प्रमाण देना था। हमें यह दिखना था कि हम गोलियों और अत्याचारों से भयभीत होकर अपने लक्ष्य से हटने वाले नहीं, हम उस व्यवस्था का अन्त करके रहेंगे , जिसका आधार स्वार्थपरता और खून पर है। (२)

---

(१) अमृतराय, प्रेमचन्द स्मृतिग्रन्थ, हंस प्रकाशन, पृ०सं०-२६३,

(२) जेल, मान- भाग-७, पृ०सं०-१५,

६. प्रेमचन्द के लिए 'स्वराज्य' केवल अंग्रेजों से लोहा लेना ही न था। वह 'स्वराज्य' को जन समुदाय की चित्तवृत्ति मानते थे। उनका कहना था पराधीनता का आतंक हृदय से निकल जाए, बस यही स्वराज्य है, भय ही पराधीनता है और निर्भयता ही स्वराज्य है, स्वराज्य संग्राम के स्थान पर त्याग-तपस्या, बलिदान के साथ थी। हिंसा और क्रोध को त्यागना होगा। प्रेमचन्द लिखते हैं — 'मनोवृत्ति का यह परिवर्तन ही हमारी असली विजय है। हमें किसी से लड़ाई करने की जरूरत नहीं, हमारा उद्देश्य केवल जनता की सहानुभूति प्राप्त करना है। उसकी मनोवृत्तियों को बदल देना है। जिस दिन हम इस लक्ष्य पर पहुंच जाएंगे, उसी दिन स्वराज्य सूर्य उदय होगा।' (१) प्रेमचन्द जीवन की पवित्रता में विश्वास करते थे। हमारा जीवन जितना पवित्र होगा, उतना ही हमारा शुद्ध सानिध्य होगा। प्रेमचन्द लिखते हैं 'बड़प्पन सूट-बूट और ठाट-बाट से नहीं, x x x x x जिसकी आत्मा पवित्र हो वही ऊंचा है।'

७. प्रेमचन्द महान् लेखक थे। वे इसी उद्देश्य से साहित्य-सृजन करते थे कि जीवन का रहस्य मनुष्य मात्र को समझाया जाए, ताकि वे अपने जीवन को सुखी और स्वस्थ बना सकें और उन्नति का मार्ग प्रशस्त हो जाए। प्रेमचन्द लिखते हैं — 'उन्नति से हमारा तात्पर्य उस स्थिति से है, जिससे हममें दृढ़ता और कर्मशक्ति उत्पन्न हो xxxxxx हम देखें कि किन अन्तर्बाह्य कारणों से हम इस निर्जीवता और ह्रास की अवस्था को पहुंच गए हैं और उन्हें दूर करने की कोशिश करें।' (३)

---

(१) जुलूस मान भाग ७, पृ०सं० ५३
(२) पत्नी से पति , ... , पृ०सं०-२६
(३) प्रेमचन्द : साहित्य के उद्देश्य, पृ०सं० १० ,

८. प्रेमचन्द महान् लेखक के साथ जनता के प्रतिनिधि थे । उन्होंने जनता को समझने और उससे सीखने का प्रयत्न किया । प्रेमचन्द की साहित्यिक विधा ने जनता की मूक भावनाओं को शब्दों में डाला और उनका सम्पूर्ण साहित्य जनता की आवाज बन गया । प्रेमचन्द के साहित्य में जन-वाणी काज्य-घोष है और उनके द्वारा वे हमारी सांस्कृतिक-परम्परा को आगे बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुआ । प्रेमचन्द के उच्चादर्श ऐतिहासिक विकास को आगे बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं । प्रेमचन्द सत्य की विजय का विश्वास लेकर मन में चले थे और अपना यही महान् विश्वास हमको विरासत में छोड़ गए । जब इस विश्वास की विजय होगी तभी सेवा और त्याग का आदर्श मनुष्य का जीवन मंत्र बनेगा और हमारी संस्कृति महान् तम् होगी और विकास पाएगी । प्रेमचन्द हमारी नई और जनवादी संस्कृति के अग्रदूत हैं । प्रेमचन्द ने कहा था " माई जान ! सिर्फ रूपया कमाना ही आदमी का उद्देश्य नहीं है । मनुष्यत्व को ऊपर उठाना और मनुष्य मात्र के मन में ऊंचा विचार पैदा करना भी उसका कर्तव्य है ,,,,,,, और जिसके हाथ में भगवान ने कलम और कलम की तासीर दी है उसका कर्तव्य तो और भी बढ़ जाता है । (१)

९. प्रेमचन्द प्रेम, पवित्रता, प्रकाश की जो व्याख्या करना चाहते थे, वह पूरी न हो सकी थी । जीवन और जगत का जो संगीत उन्होंने शुरू किया था वह अधूरा था । सुदर्शन जी के शब्दों में —

" बड़े शौक से सुन रहा था ज़माना ।
तुम्हीं सो गए दास्तां कहते कहते ।। "

---

(१) अमृतराय : प्रेमचन्द स्मृति अंक, पृ०सं० २३४

(२) वही,

सहायक - साहित्य

लेख

(१६०३-१६३६ — तिथि और प्रकाशन : स्थान)

लेख :	प्रकाशन स्थान :	प्रकाशन तिथि :
	१६०३	
ओलिवर क्रामवेल	आवाज़े ख़ल्क़	२४ सितम्बर
	१६०४	
	१६०५	
कृष्ण कुंवर	ज़माना	फरवरी
`आइने क़ैसरी` और `महारिबाते-अज़ीम`	,,	अप्रैल
देशी चीज़ों का प्रचार कैसे बढ़-सकता है।	,,	जून
महारानी विक्टोरिया की जीवनी	,,	अगस्त
स्वदेशी आन्दोलन	आवाज़े ख़ल्क़	नवम्बर
	१६०६	
हाल की कुछ किताबें	ज़माना	फरवरी
`शरर` और `सरशार`	उर्दू-ए मुअल्ला	—
कुछ नई किताबें	ज़माना	अक्तूबर

१६०७

चित्रकला	ज़माना	मार्च
टामस गैन्सबरो	ज़माना	सितम्बर

१६०८

समीक्षाएं	ज़माना	फरवरी
तुर्की में वैधानिक राज्य	,,	अगस्त

१६०६

संयुक्त प्रान्त में आरंभिक शिक्षा-	ज़माना	मई जून
जुलेखा	,,	अगस्त
अकबर की शायरी पर एक नज़र-	,,	—
गालियां	,,	दिसम्बर

१६१०

भारतीय चित्र कला	ज़माना	अक्तूबर

१६११

१६१२

हिन्दू सभ्यता और लोक हित	ज़माना	मार्च
रामायण और महाभारत	,,	मई-जून

१६१३

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र	ज़माना	जनवरी
मजनूं	,,	जनवरी

१९१४

कालिदास की कविता	ज़माना	अगस्त

१९१५

१९१६

हँसी	ज़माना	फरवरी

१९१७

कवि बिहारी	ज़माना	अप्रैल
पैके अब्र (मेघदूत का अनु०)	,,	,,
केशव	,,	जुलाई

१९१८

१९१९

पुराना ज़माना : नया ज़माना	ज़माना	फरवरी
`स्वदेश` का सन्देश	स्वदेश	बसन्त पंचमी (संवत् १९७५)

१९२०

१९२१

१६२२

उपन्यास रचना	माधुरी	२३ अक्तूबर
प्राचीन मिस्र जाति के धर्म तत्व	माधुरी	मार्ग शीर्ष (१६७८ सं)

१६२३

नया वर्ष	मर्यादा	बैशाख सं० १६७६
विभाजक रेखा	,,	,,
रूस और जर्मनी की सन्धि		,,

१६२४

मनुष्यता का अकाल	ज़माना	फरवरी

१६२५

उपन्यास	समालोचक	जनवरी
वर्तमान आन्दोलन के रास्ते में रुकावट।	ज़माना	दिसम्बर
कर्बला	माधुरी	१ जनवरी

१६२६

गल्पांक का प्रस्ताव	चांद	दिसम्बर
प्रेमचन्द की प्रेमलीला का उत्तर	समालोचक	शरद सं० १६८३

१६२७

१६२८

गुरुकुल कांगड़ी में तीन दिन	माधुरी	अप्रैल २८

१६२६

१६३०

स्वराज्य से किसका अहित होगा	हंस	अप्रैल
आज़ादी की लड़ाई	-	,,
दमन	-	मई १
डन्डा	-	जून
अगर तुम क्षत्रिय हो		नवम्बर
स्वराज्य संग्राम में किसकी विजय हो रही है		नवंबर
पिकेटिंग आर्डीनेंस		नवम्बर
उर्दू में फ़िर औनियत[१]	ज़माना	दिसम्बर
बच्चों को स्वाधीन बनाओ		अप्रैल

१६३१

स्वराज्य आन्दोलन पर आक्षेप		जनवरी
बम्बई के एक मजिस्ट्रेट का भ्रम		,,

---

१. "मिस्र के बादशाह (फिरौन) से ; जिसने घमण्ड के मारे ख़ुदाई का दावा किया था और जिसे हज़रत मूसा ने शाप दिया था ।

कांग्रेस जिन्दाबाद	हंस	फरवरी
कांग्रेस		मार्च
स्वराज्य मिलकर रहेगा		मई
गोरी जातियों का प्रभाव क्यों कम हो रहा है		जून
देश की वर्तमान परिस्थिति		,,
महात्मा जी की विजय यात्रा		सितम्बर
नया प्रेस बिल		,,
सरकारी खर्च में किफायत		अक्तूबर
बंगाल आर्डीनेन्स		दिसम्बर
गोल मेज सभा का विसर्जन		,,
नवयुग		मार्च
मिर्जापुर कोन्फ्रेन्स में एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव		अप्रैल
राज-कर्मचारियों का पक्षपातपूर्ण व्यवहार		,,
स्वार्थांधता की पराकाष्ठा		,,
पृथक् और संयुक्त निर्वाचन		जून
गोल मेज परिषद् में गोलमाल		अक्तूबर
हिन्दू-मुसलिम एकता		नवम्बर
साहित्यिक क्लबों की आवश्यकता		जून
मानसिक पराधीनता		जनवरी
राष्ट्रीय कार्यों में गुलामी		अप्रैल
अंग्रेजी भाषा का रोग		सितम्बर
फौजी कालेज की आयोजना		,,
नवीन और प्राचीन		नवम्बर
संयुक्त प्रान्त के दो कान्वोकेशन		दिसम्बर

मि० हरविलास शारदा का नया कानून	हंस	जनवरी
नारी जाति के अधिकार		फरवरी

१६३२

दमन की सीमा	अप्रैल
अछूतपन मिटता जा रहा है	मई
पर्दा थोड़े दिनों का मेहमान है	,,
मि० एच० एन० ब्रेल्स फोर्ड के भारतीय अनुभव	,,
आर्डिनैन्स बिल का असेम्बली में विरोध	५ अक्तूबर
नवयुग	अक्तूबर-नवम्बर
पंजाब पुलिस विभाग की रिपोर्ट	२६ अक्तूबर
पुलिस प्रशंसा	२८ अगस्त
हवाई जहाज से गोलाबारी	२६ अक्तूबर
बेगम आलम की ओजस्विनी अपील	,,
आर्डिनैन्स की अवधि	३१ अक्तूबर
पूना का ईसाई सम्मेलन	७ नवम्बर
प्रान्तीय कौन्सिलों में दूसरा मेम्बर	१४ नवम्बर
महात्मा जी की स्वाधीनता	२१ नवम्बर
बर्मा में राष्ट्रीयता की विजय	२८ नवम्बर
राष्ट्र संघ पर डा० परांजपे का भाषण	दिसम्बर
आर्डिनैन्स बिल पास	१२ दिसम्बर
इन्गलैन्ड का विश्वासी पुलिस मैन	१२ दिसम्बर
बंगाल में आतंकवाद	१६ दिसम्बर
गोल मेज में क्या हो रहा है ?	१२ दिसम्बर
लंदन में क्या होगा ?	१२ दिसम्बर

गोल मेज़ सभा का विसर्जन	२ जनवरी
नए नए सूबों की सनक	दिसम्बर
देसी रजवाड़े	६ फरवरी
ओटावा सम्मेलन का आशीर्वाद	१२ सितम्बर
इंग्लैन्ड के लिबरल मेम्बरों का पद त्याग	५ अक्तूबर
मि० चर्चिल जनतंत्र के विरोध में	२६ अक्तूबर
आस्ट्रेलिया से गेहूं की आमदनी	२६ अक्तूबर
जापान का आर्थिक-संकट	३१ अक्तूबर
मि० लायड जार्ज जर्मनी के पक्ष में	३१ अक्तूबर
अमेरिका की धमकी	७ नवम्बर
अमेरिका के कर्जदार	२१ नवम्बर
सोवियत रूस की उन्नति	२८ नवम्बर
बेईमानी भी राजनीति है	५ दिसम्बर
ईरान का तेल	१६ दिसम्बर
साम्प्रदायिक मताधिकार की घोषणा	२२ अगस्त
अब हमें क्या करना है ?	२६ अगस्त
हिन्दू सभा की निष्क्रियता	५ अक्तूबर
मौलाना शौकत अली की गहरी सूझ	५ अक्तूबर
मुसलिम-सर्वदल-सम्मेलन	१६ अक्तूबर
राष्ट्रीयता की विजय	२६ अक्तूबर
स्व० मौलाना मुहम्मद अली का फ़ारमूला	२६ अक्तूबर
एकता-सम्मेलन	३१ अक्तूबर
आशा का केन्द्र	७ नवम्बर
एकता-सम्मेलन	१४ नवम्बर
कराची महिला सम्मेलन : लेडी अब्दुल-कादिर का भाषण	१४ नवम्बर

सिन्ध का समझौता हंस	२१ नवम्बर
एकता के विरुद्ध सम्प्रदाय वादियों का- -शोर गुल	२८ नवम्बर
एकता	,, ,,
समझौता या हार	५ दिसम्बर
प्रयाग सम्मेलन	दिसम्बर
मुसलिम जनता में एकता-सम्मेलन का- -समर्थन	१२ दिसम्बर
महान् तप	१६ दिसम्बर
हमारा कर्तव्य	२६ सितम्बर
काशी का कलंक	५ अक्तूबर
हरिजनो के मन्दिर प्रवेश का प्रश्न	१४ नवम्बर
अछूतों को मन्दिरों में जाने देना पाप है।	२१ नवम्बर
महात्मा जी का उपवास	५ दिसम्बर
हरिजन बालकों के लिए छात्रालय	५ दिसम्बर
दिल्ली के म्युनिसिपल चुनाव में अछूत मेम्बर	१६ अक्तूबर
कानपुर म्युनिसिपल चुनाव	१२ दिसम्बर
हमारे युवकों का कर्तव्य	१२ दिसम्बर
पावन तिथि	२६ दिसम्बर
नई परिस्थिति में ज़मींदारों का कर्तव्य	२६ अगस्त
ज़मींदारों की ज़ायदाद की रक्षा	१२ अक्तूबर
किसानों की कर्ज़ा कमेटी के प्रस्ताव	१२ अक्तूबर
आराज़ी की चकबन्दी	१६ अक्तूबर
हतभागे किसान	१६ दिसम्बर
काशी म्युनिसिपल बोर्ड	२१ नवम्बर
युक्त प्रान्तीय कौन्सिल के सदस्यों से	२८ नवम्बर

काशी म्युनिसिपल बोर्ड	हंस	५ दिसम्बर
काशी म्युनिसिपल बोर्ड का निर्वाचन		१६ दिसम्बर
जागरण का नया रूप		२२ अगस्त
'जागरण' और प्रेस से एक एक हज़ार की जमानत		१२ दिसम्बर
खेद प्रकाश		२६ दिसम्बर
साहित्यिक सन्निपात		दिसम्बर
परितोष		मार्च
स्वदेशी की आड़ मे लूट		१६ अक्तूबर
प्रयाग की स्वदेशी प्रदर्शनी		३१ अक्तूबर
स्वदेशी पर मालवीय जी		,, ,,
भारतीय चीनी के कारखानों का अन्याय		७ नवम्बर
असली और नकली स्वदेशी चीज़े		१४ नवम्बर
स्वामी श्रद्धानंद और भारतीय-शिक्षा प्रणाली	शुद्धि समाचार, श्रद्धानंद बलिदान अंक	जनवरी, फरवरी
सवाक् फिल्मों के दिन गिने हुए हैं	हंस	२६ अगस्त
जाग्रति- १		५ सितम्बर
जाग्रति- २		सितम्बर
देहली के जामेया मिल्लिया की रिपोर्ट		नवम्बर
सर पी० सी० राय का युवकों को आदेश		नवम्बर
इलाहाबाद यूनीवर्सिटी के नए -वाइसचान्सलर		नवम्बर
स्कूलों में स्वास्थ्य परीक्षा		दिसम्बर

१९३३

अलवर नरेश	हंस	२६ मई
महाराजा अलवर का सन्यास		,,
बर्मा सम्बन्धी निर्णय		६ फरवरी
बर्मा का प्रथक्करण		१७ अप्रैल
बर्मा की असली आवाज़		२६ मई
मार्च का बजट		१३ फरवरी
महात्मा जी का पत्र		१३ फरवरी
राजनैतिक नेताओं की रिहाई		१३ फरवरी
सरतेज का मत		१३ फरवरी
पाहिट पेपर का मसविदा		२० फरवरी
सर सेम्युएल का उत्तर		२० फरवरी
कलकत्ता कांग्रेस		२७ फरवरी
ऐसम्बली की अवधि		२० मार्च
आने वाला श्वेत पत्र		२० मार्च
सादा और सफेद		२७ मार्च
सफेद कागज़ पर अभी और भी सफेदी चढ़ेगी		१० अप्रैल
अविश्वास		१७ अप्रैल
भारत के विरुद्ध प्रचार		२४ अप्रैल
आर्थिक स्वराज्य		२४ अप्रैल
हमारी गुलामी बढ़ेगी		२४ अप्रैल
रिज़र्व बैंक		१ मई
जापान के माल का बहिष्कार		१ मई
मि० सुब्बारोया का वक्तव्य		मई
महात्मा जी का सफल तप		,,
महात्मा जी की अपील पर सरकार का जवाब		१४ मई
दक्षिण अफ्रीका का नया चुनाव		२६ मई

मेरठ के मुकदमें का फैसला	हंस	१३ अगस्त
जापान की व्यापारिक सफलता का रहस्य		१३ अगस्त
मुंगेर में कांग्रेसी उम्मीदवारों की विजय		१३ अगस्त
कलकत्ता कारपोरेशन का प्रस्ताव		२१ अगस्त
भारत १६८२ में		
बेंत मारने की सजा		२१ अगस्त
भीषण सत्य		२८ अगस्त
महात्मा जी की रिहाई		२८ अगस्त
मालवीय जी की चुनौती		२८ अगस्त
गोरे गोरे हैं, काले काले हैं		४ सितम्बर
वाइसराय का भाषण		४ सितम्बर
हमारी क़ौमी पार्लियामेन्ट की क़ौम परवरी		११ सितम्बर
असेम्बली में भूकम्प		११ सितम्बर
गवर्नर बम्बई की शिकायत		१८ सितम्बर
राजकुमारों के रहने योग्य		१८ सितम्बर
रुई वालों की भी सुनी जाए		१८ सितम्बर
जापान भारत संवाद		२ अक्तूबर
ब्रिटेन के लिए असह्य		२ अक्तूबर
पिछली मर्दुमशुमारी		२ अक्तूबर
ज्वाइन्ट सेलेक्ट कमेटी में पदाधिकारियों को आश्वासन		६ अक्तूबर
मि० लांसबरी का बाल-बहलावन		६ अक्तूबर
कांग्रेस के बेकार वालन्टियर		६ अक्तूबर
शिमले में विगडुम		६ अक्तूबर
कांग्रेस और सोशलिज्म		६ अक्तूबर
कांग्रेस का नया प्रोग्राम		१६ अक्तूबर
पं० जवाहर लाल नेहरू की आर्थिक व्यवस्था		१६ अक्तूबर

मि० चर्चिल के मौलिक प्रस्ताव	हंस	३० अक्तूबर
हलवाई की दुकान		१३ नवम्बर
श्री जवाहर लाल नेहरू का व्याख्यान		२० नवम्बर
हिन्दू सोशल लीग का फ़तवा		११ नवम्बर
विदेशी राजनीति		६ फरवरी
अशान्ति		२७ फरवरी
जर्मनी का भविष्य		२० मार्च
यह डिक्टेटरी का युग है		२७ मार्च
मसोलिनी शान्ति व्यवस्थापक के रूप में		२७ मार्च
सहयोग या संघर्ष		३ अप्रैल
अमेरिका फिर गीला हो गया		३ अप्रैल
जर्मनी में यहूदियों पर अत्याचार		१० अप्रैल
जापान के हौसले		१० मई
जापान और चीन		मई
संसार की दोरुखी प्रगति		मई
जन सत्ता का पतन		१ मई
आर्थिक संघर्ष		८ मई
सच्ची राजनीति		२२ मई
"हुआ पेकू"		२२ मई
भावी महासमर		२२ मई
लंदन का आर्थिक-सम्मेलन		१२ जून
ईरान से ब्रिटेन की सन्धि		१६ जून
नेक नीयति		३ जुलाई
आयरलैन्ड की स्थिति		२१ अगस्त
अमेरिका में कृषक-विद्रोह		४ ,,
रूस में समाचार पत्रों की उन्नति		२१ ,,

मुसलिम लीग का अधिवेशन	४ दिसम्बर
डा० इक़बाल का जवाब पं० जवाहर लाल को	११ दिसम्बर
साम्प्रदायिक-समस्या का राष्ट्रीय समन्वय	१८ दिसम्बर
सनातन धर्म का प्रचार	२३ जनवरी
अस्पृश्यों की महत्वाकांक्षा	,, ,,
मन्दिर प्रवेश और सरकार	३० जनवरी
श्री देवदास गांधी का उपदेश	,, ,,
श्री देवरुखकर की हार	१० अप्रैल
महात्मा जी का व्रत	८ मई
महान् तप	१५ मई
मन्दिर प्रवेश और हरिजन	२९ मई
कानपुर को बधाई	१९ जून
महात्मा गांधी फिर अनशन कर रहे हैं	२१ अगस्त
बरेली में हरिजन सभा	१८ सितम्बर
क्या हरिजन आन्दोलन राजनैतिक है ?	१८ दिसम्बर
काशी में मन्दिर प्रवेश बिल का समर्थन	१९ मार्च
हड़ताल	३० जनवरी
ज़बर्दस्ती	८ मई
महाजन और किसान	३ जुलाई
किसानों का कर्ज़ा	१० जुलाई
शक्कर सम्मेलन	१७ जुलाई
अवध के किसानों का संघ	७ अगस्त
कृषि सहायक बैंकों की ज़रूरत	,, ,,
काशी में ज़मींदारों की सभा	२५ सितम्बर
छोटे ज़मींदार या बड़े ?	६ नवम्बर
बस्ती में ईख संघ सम्मेलन	१३ नवम्बर
किसान सहायक कानूनों की प्रगति	४ दिसम्बर

जमींदारों ने फिर मुंह की खाई	हंस	१६ मार्च
काशी म्युयनिसिपल बोर्ड का निर्वाचन		६ जनवरी
काशी म्युनिसिपैलिटी		६ फरवरी
सरकारी बोर्ड		१३ फरवरी
काशी म्युनिसिपल बोर्ड		२० फरवरी
वाटर वर्क्स की लावर वाही		२० फरवरी
काशी म्युनिसिपल बोर्ड		२७ फरवरी
काशी म्युनिसिपल बोर्ड		२० मार्च
काशी म्युनिसिपल बोर्ड		१७ अप्रैल
श्री रामेश्वर सहाय सिनहा		१४ मई
नया कर्जा		२२ मई
शाबाश : काशी म्युनिसिपैलिटी		१३ अगस्त
बनारस की म्युनिसिपैलिटी		१८ सितम्बर
काशी की सरकारी म्युनिसिपैलिटी		१३ नवम्बर
सरकारी प्रबन्ध की बात		१७ अप्रैल
स्थानीय संस्थाओं में वैमनस्य		१६ जून
पुलिस को एक सबक		२६ जून
पंजाब की म्युनिसिपैलिटियां		२ अक्तूबर
`जागरण` का दाम पांच पैसे		१० अप्रैल
`जागरण` का पहला वर्ष		१३ अगस्त
साहित्य की प्रगति		मार्च
जीवन और साहित्य में घृणा का स्थान		दिसम्बर
सम्पादकों के पुरस्कार		फरवरी
शान्ति निकेतन में		जनवरी
मेरी रसीली पुस्तकें		जून

सोवियत रुस में प्रकाशन	हंस	फरवरी
दुखी जीवन		बैशाख १९९०
अभिनंदन ग्रन्थ और साधारण जनता		जुलाई
सम्पादन कला—विद्यालय की आवश्यकता		जुलाई
तुलसी जयंती या तुलसी पुन्य तिथि		
तुलसी-स्मृति-तिथि-कैसे मनाई जाए		जुलाई
साहित्यिक गुंडापन)		अगस्त
इन्टरव्यु क्या है ?)		
मगर यहां क्या हुआ ?)		
पुस्तकालय-आन्दोल		सितम्बर
पत्रों के ग्राहकों का आपत्तिजनक व्यवहार		मई
जापान में पत्रों का प्रचार		फरवरी
अखिल भारतवर्षीय संघ		जून
तस्वीर के दो रुख		२७ मार्च
अभिवादन		अगस्त
राहु के शिकार		अगस्त
अजमेर में श्री दयानंद निर्वाण अर्द्ध शताब्दी		अक्तूबर
महात्मा जी का बौद्ध मिशनरी के जवाब		१६ अक्तूबर
स्थानीय राम कृष्ण सेवाश्रम		२० नवम्बर
शक्कर मिलों की धूम		२७ मार्च
स्वदेशी		१२ जून
भारतीय कपड़ा और भारतीय रुई		३ जुलाई
शक्कर पर एक्साइज़ ड्यूटी		३ जुलाई
बरपाव क्यों रखा जाए ?		१६ अक्तूबर
ग्राहकों का बलिदान-मिलमालिकों के लिए		६ नवम्बर
मि० मोदी की उदारता		१३ नवम्बर

गोरखपुर में शिक्षा-सम्मेलन	हंस	जनवरी
सम्पादक सम्मेलन		फरवरी
संयुक्त प्रान्त में शिक्षा का प्रचार		मई
दरिद्रों का शान्ति-निकेतन		जून
फेल होने वाले लड़के		जुलाई
काशी में मंत्री का शुभागमन		अगस्त
लखनऊ विश्वविद्यालय		,,
भारत में लाल साहित्य		,,
फिल्म संसार में एक नई योजना		सितम्बर
ब्राडकास्टिंग देहातों में		,,
प्रयाग में राम लीला		,,
एक उचित परामर्श		,,
शिक्षा का नया आदर्श		,,
भारत में प्रेस		अक्तूबर
प्रयाग की रामलीला बन्द		,,
जटिरु यंग के दौरे		,,
हिन्दी साहित्य के ईश्वर की छीछालेदर		१३ नवम्बर
कारमाइकेल लाइब्रेरी की हीरक जयन्ती		२० नवम्बर
सिनेमा और युवक		११ दिसम्बर
सर पी० सी० राय का दीक्षान्त भाषण		१८ दिसम्बर
सर तेज बहादुर सप्रू का भाषण		२५ दिसम्बर
कायस्थ कानफ्रेन्स		जनवरी
एक उपयोगी प्रस्ताव		जनवरी
सर हरि सिंह गौड़ का तलाक बिल		मार्च
लखनऊ की वेश्याओं में नई जाग्रति		अप्रैल
एक दुखी बाप		,,

हंस

औरतों का क्रय-विक्रय	मई
वेश्या-वृत्ति	जुलाई
अभागिनी विधवा	जुलाई
महिला विद्यालयों में बिहारी सतसई	सितम्बर
प्रयाग में महिला व्यायाम मन्दिर	,,
विधवाओं के गुजारे का बिल	अक्तूबर
महिला-सम्मेलन में सन्तान निग्रह	नवम्बर
तृतीय दक्षिण भारत हिन्दी प्रचारक सम्मेलन	जनवरी
हिन्दी ज्ञान यात्री मंडल की हिन्दी भाषियों से अपील	३ अप्रैल
हिन्दुस्तानी ऐकाडेमी	१० अप्रैल
तिमाही या त्रैमासिक	१३ नवम्बर
एक हिन्दी साहित्य विद्यालय की जरुरत	२५ दिसम्बर

१९३४

रियासतों का संरक्षण ऐक्ट	१६ अप्रैल
हमारे देशी नरेशों का पतन्	जून
झाबुआ नरेश का निर्वासन	सितम्बर
बेकार बैठने से कौन्सिल में जाना अच्छा है	१ जनवरी
युवकों में राष्ट्र प्रेम	१५ जनवरी
रियासतों की रक्षा का बिल	२२ ,,
भारत व्यापी भूकम्प	२२ ,,
वह प्रलयंकर दिवस	जनवरी
प्रकृति का तांडव	२९ जनवरी

कारखाना में हथियारों की जरूरत	हंस	२३ अप्रैल
आने वाला चुनाव और कांग्रेस		२३ अप्रैल
पोर्चुगीज़ पूर्वी अफ्रीका		२३ अप्रैल
कांग्रेस की विधायक योजना		३० अप्रैल
कांग्रेस की आर्थिक-योजना		३० अप्रैल
सरकार को मुबारक-बाद		३० अप्रैल
रादरमियर की हाय-हाय		७ मई
असेम्बली का विसर्जन		७ मई
स्वराज्य पार्टी		७ मई
कांग्रेस कमेटी क्या करेगी ?		१४ मई
चुनाव चुथौअल		अगस्त
आतंकवाद का उन्मूलन		सितम्बर
स्वराज्य के फायदे		
समाजवाद का आतंक		१५ जनवरी
काशगर और मुस्लिम विप्लव		५ फरवरी
भावी समर तथा जापान		,, ,,
मजूरदल का डिक्टेटरशिप से विरोध		१२ फरवरी
रूस और जापान में तनाव		१६ अप्रैल
योरप में लड़ाई के बादल		१६ अप्रैल
अंग्रेजी फ़ैसिस्ट दल की नीति		,, ,,
रूस में भी पूंजीवाद		२३ अप्रैल
हिटलर की तानाशाही		जुलाई
वौन हिंडनबर्ग का स्वर्गवास		~~सितम्बर~~ अगस्त
फ्रान्स की तैयारी		सितम्बर
भाई परमानंद की सन्देह-दृष्टि		१ जनवरी

मुसलिम छात्रों से	हंस	२२ जनवरी
काश्मीर में फिर दंगा हुआ		१२ फरवरी
सर्वदल सम्मेलन का विरोध		,, ,,
साम्प्रदायिकता और स्वार्थ		१९ फरवरी
साम्प्रदायिकता का ज़हर महिलाओं में		२६ मार्च
साम्प्रदायिक बटवारा		२१ मई
सरकारी नौकरियां और साम्प्रदायिकता		जुलाई
क्या हम वास्तव में राष्ट्रवादी हैं ?		८ जनवरी
बिहार मन्दिर-सम्मेलन		२९जनवरी
इस हिमाकत की भी कोई हद है		१४ मई
जमींदारों की दुर्दशा		२२ जनवरी
देहातों पर दया दृष्टि		,, ,,
आगरा ज़मींदार सम्मेलन		१२ फरवरी
निरक्षरता की दुहाई		२६ फरवरी
यू० पी० कौन्सिल में कृषकों पर अन्याय		२६ फरवरी
किसान सहायक ऐक्ट		१६ अप्रैल
बम्बई के मजूरों की हड़ताल		७ मई
नागपुर म्युनिसिपैलिटी का सराहनीय काम		७ मई
'जागरण' की समाधि		२१ मई
सम्पादन कला की शिक्षा		सितम्बर
साहित्य का उत्थान या पतन		अगस्त
एक सार्वदेशिक साहित्य संस्था की आवश्यकता		फरवरी
हिन्दी लेखक संघ		सितम्बर
विदेश यात्रा और प्रायश्चित		जनवरी
अच्छी और बुरी साम्प्रदायिकता		जनवरी
जाति भेद मिटाने की एक आयोजना		फरवरी

हंस

रुस में धर्म विरोधी आन्दोल	मार्च
हिन्दू समाज के वीभत्स दृश्य- १	मार्च
हिन्दू समाज के वीभत्स दृश्य- २	२६ मार्च
हिन्दू समाज के वीभत्स दृश्य- ३	अप्रैल
शरणार्थी की धूम	१२ फरवरी
आल इन्डिया स्वदेशी संघ	१२ मार्च
डा० टैगोर बम्बई में	जनवरी
साम्प्रदायिकता और संस्कृति	१५ जनवरी
हवा का रुख	२८ जनवरी
जर्मनी में नाच पर बन्दिश	१२ फरवरी
स्वामी सत्यदेव पाठशाला	१६ फरवरी
भारतीय-कला की आत्मा	२६ जनवरी
पत्रकारों के लिए सन्तोष की बात	३० अप्रैल
त्यौहारों दंगे	,, ,,
भारत में गुरु-प्रथा	अक्तूबर
कुमारी शिक्षा का आदर्श	जनवरी
महिलाओं की शिक्षा पर पं० जवाहर लाल नेहरू	जनवरी
रुस का नैतिक-उत्थान	फरवरी
वैवाहिक लेन देन और कानून	अप्रैल
क्या स्त्रियों का पैजामा पहनना जुर्म है?	मई
सन्तान निग्रह और प्राकृतिक नियम	मई
नारियों के साथ अन्याय क्यों	मई
लेडी अब्दुल कादिर का राष्ट्र भाषा प्रेम	१ जनवरी
काश्मीर की ऐसम्बली में उर्दू	२८ जनवरी
तेईसवें हिन्दी साहित्य सम्मेलन पर एक दृष्टिपात	२ अप्रैल

हंस

प्रथम दिवस		२ अप्रैल
दूसरा दिन		,, ,,
तीसरा दिन		,, ,,
चौथा दिन		,, ,,
बेराष्ट्रभाषा का राष्ट्र		६ अप्रैल
हिन्दी का दावा		२३ अप्रैल
उपभाषाओं का उद्धार		,, ,,
हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी		अप्रैल

१९३५

अमर कवि गेटे का अपमान		नवम्बर
हल्दी की गांठ वाला पंसारी	भारत	११ अगस्त
क्या यह लेखिकाओं के साथ पक्षपात है?		अक्तूबर
लेखकों को बर्नार्ड शा का उपदेश		फरवरी
साहित्य-सम्मेलन एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव		मई
इन्दौर-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन		
भारतीय साहित्य और पं० जवाहर लाल नेहरू		नवम्बर
राष्ट्रभाषा कैसे समृद्ध हो ?		नवम्बर
`त्रिवेणी` से हमारा नम्र निवेदन		,,
पटना का हिन्दी-साहित्य परिषद्		अक्तूबर
हिन्दी लेखक संघ का एक वर्ष		दिसम्बर
कोढ़ पर खाज		१६ जून
स्वास्थ्य और शिक्षा		मार्च
महात्मा जी की जयन्ती		अक्तूबर
दक्षिण भारत में हमारी हिन्दी प्रचार यात्रा		फरवरी-मार्च
सरहदी सूबे में हिन्दी और गुरुमुखी का बहिष्कार		दिसम्बर
हिन्दुस्तान की क़ौमी ज़बान		,,
हिन्दुस्तानी ऐकाडेमी का सालाना जलसा		,,

१६३६

राशिद-उल-खैरी की सामाजिक कहानियां	इस्मत	जुलाई
पं० जवाहर लाला जी की निराशा	हंस	जनवरी
हिन्दी में पुस्तकों का प्रकाशन		जून
बिहार-प्रान्तीय-साहित्य-सम्मेलन, पूर्णिय		मार्च
हिन्दी साहित्य के विधालय		अप्रैल
भारतीय-साहित्य-परिषद		,,
प्रगतिशील लेखक संघ		,,
लंदन में भारतीय-साहित्यकारों की एक-नई संस्था		जनवरी
साहित्य-सम्मेलन के विषय		,,
प्रयाग महिला विधापीठ की साहित्यिक प्रगति		फरवरी
प्रयाग महिला विधापीठ की नई योजनाएं		अप्रैल
राष्ट्र लिपि		
हिन्दुस्तानी एकैडेमी का वार्षिक सम्मेलन		फरवरी
दिल्ली में हिन्दुस्तानी सभा		अप्रैल
श्री कृष्ण और भावी जगत[१]		

---

१. विविध-प्रसंग, (भाग-३) पृ० सं० १४०

क हा नी
(१६०७-१६३६ : तिथि और प्रकाशन : स्थान)

क्रम	कहानी	प्रकाशन : स्थान	प्रकाशन : तिथि
	१६०७		
१-	दुनिया का सबसे अनमोल रत्न	ज़माना	
	१६०८		
२-	सांसारिक प्रेम और देश प्रेम	ज़माना	अप्रैल
३-	शोक का पुरस्कार	सोज़ेवतन्	१६०६ से
४-	शेख मख़मूर	,,	पूर्व
	१६०६		
	१६१०		
५-	पाप का अग्नि कुंड	ज़माना	मार्च
६-	शिकार	,,	जून
७-	रानी सारंधा	,,	सितम्बर
८-	बड़े घर की बेटी	,,	दिसम्बर
	१६११		
६-	विक्रमादित्य का तेग़ा	ज़माना	जनवरी
१०-	राजा हरदौल	,,	अप्रैल
११-	आखरी मंजिल	,,	सितम्बर
१२-	ग़रीब की हाय	,,	अक्तूबर

१९१२

१३-	आल्हा	ज़माना	जनवरी
१४-	ममता	,,	फरवरी
१५-	नसीहत का दफ़्तर	,,	जून
१६-	राजहट	,,	सितम्बर

१९१३

१७-	त्रिया चरित्र	ज़माना	जनवरी
१८-	अमावस की रात	,,	अप्रैल
१९-	धर्म संकट	,,	मई
२०-	मिलाप	,,	जून
२१-	अन्धेर	,,	जुलाई
२२-	सिर्फ एक आवाज़	,,	सितम्बर
२३-	बांका ज़मींदार	,,	अक्तूबर
२४-	अमृत	उर्दू प्रेम पच्चीसी	— १९१४ के पूर्व
२५-	कर्मों का फल	,,	
२६-	नमक का दरोगा	,,	
२७-	नेकी	,,	

१९१४

२८-	अनाथ लड़की	ज़माना	जून
२९-	खून सफेद	,,	जुलाई
३०-	शिकारी राजकुमार	,,	अगस्त
३१-	अपनी करनी	,,	अक्तूबर
३२-	पछतावा	,,	नवम्बर

१६१५

३३-	स्मृति	ज़माना	फरवरी
३४-	ग़ैरत की कटार	,,	जुलाई
३५-	बेटी का धन	,,	नवम्बर
३६-	सौत	सरस्वती	दिसम्बर

१६१६

३७-	दो भाई	ज़माना	जनवरी
३८-	सज्जनता का दंड	सरस्वती	मार्च
३६-	पंच परमेश्वर	,,	जून
४०-	घमंड का पुतला	ज़माना	अगस्त
४१-	जुगनू की चमक	,,	अक्तूबर
४२-	धोखा	,,	नवम्बर

१६१७

४३-	मर्यादा की वेदी	ज़माना	जनवरी
४४-	ज्वालामुखी	,,	मार्च
४५-	उपदेश	,,	मई
४६-	ईश्वरीय न्याय	सरस्वती	जुलाई
४७-	महातीर्थ	ज़माना	सितम्बर
४८-	दुर्गा का मन्दिर	सरस्वती	दिसम्बर
४६-	कप्तान साहब	ज़माना	,,

६८-	लाल फीता	ज़माना	जुलाई
६९-	प्रारब्ध	—	अक्तूबर
७०-	त्यागी का प्रेम	मर्यादा	नवम्बर
७१-	बूढ़ी काकी	—	—
७२-	जिहाद	बोध विकास	

१९२२

७३-	मूठ	मर्यादा	जनवरी
७४-	हार की जीत	,,	मई
७५-	स्वत्व रक्षा	माधुरी	जुलाई
७६-	अधिकार चिंता	,,	अगस्त
७७-	चकमा	—	नवम्बर
७८-	पूर्व संस्कार	माधुरी	दिसम्बर
७९-	लोक मत का सम्मान	साहित्य	आषाढ़

१९२३

८०-	परीक्षा	चाँद	जनवरी
८१-	राजभक्त	माधुरी	फरवरी
८२-	नैराश्य लीला	चाँद	अप्रैल
८३-	बौड़म	—	,,
८४-	गृहदाह	—	जून
८५-	आप बीती	माधुरी	जुलाई
८६-	हजरत अली	प्रभा	,,
८७-	आभूषण	माधुरी	अगस्त
८८-	कौशल	चाँद	,,
८९-	सत्याग्रह	माधुरी	दिसम्बर
९०-	वैर का अंत	सरस्वती	अप्रैल

१६२४

६१-	सैलानी बन्दर	माधुरी	फरवरी
६२-	वज्रपात	,,	मार्च
६३-	नबी का नीति निर्वाह	सरस्वती	मार्च
६४-	मुक्ति मार्ग	माधुरी	अप्रैल
६५-	मुक्ति धन	,,	मई
६६-	सौभाग्य के कोड़े	—	जून
६७-	निर्वासन	चांद	,,
६८-	क्षमा	माधुरी	,,
६६-	नैराश्य	चांद	जुलाई
१००-	भूत	माधुरी	अगस्त
१०१-	दीक्षा	,,	सितम्बर
१०२-	उद्धार	चांद	,,
१०३-	शतरंज के खिलाड़ी	माधुरी	अक्तूबर
१०४-	सवासेर गेहूं	चांद	नवम्बर
१०५-	विनोद	माधुरी	,,
१०६-	तैतर	चांद	दिसम्बर

१६२५

१०७-	डिग्री के रुपए	माधुरी	जनवरी
१०८-	धिक्कार	चांद	फरवरी
१०६-	नरक का मार्ग	,,	मार्च
११०-	सभ्यता का रहस्य	माधुरी	,,
१११-	मन्दिर और मस्जिद	,,	अप्रैल
११२-	विश्वास	चांद	,,
११३-	भाड़े का टट्टू	माधुरी	जुलाई
११४-	माता का हृदय	चांद	,,

११५-	स्वर्ग की देवी	—	सितम्बर
११६-	चोरी	माधुरी	,,
११७-	दंड	चांद	अक्तूबर

१९२६

११८-	शूद्रा	चांद	जनवरी
११९-	लैला	सरस्वती	,,
१२०-	प्रेम सूत्र	,,	अप्रैल
१२१-	मंत्र	माधुरी	फरवरी
१२२-	कजाकी	,,	अप्रैल
१२३-	लाछन	,,	अगस्त
१२४-	तांगे वाले की बढ़	ज़माना	सितम्बर
१२५-	राम लीला	माधुरी	अक्तूबर
१२६-	निमंत्रण	सरस्वती	नवम्बर
१२७-	बहिष्कार	चांद	दिसम्बर
१२८-	हिंसा परमो धर्मा	माधुरी	,,

१९२७

१२९-	बड़े बाबू	बहारिस्तान	फरवरी (खाके परवाना (गुप्त धन)
१३०-	शादी की वजह	ज़माना	मार्च
१३१-	सती	माधुरी	,,
१३२-	कामना तरु	,,	अप्रैल
१३३-	सुजान भगत	,,	मई
१३४-	मन्दिर	चांद	,,
१३५-	मांगे की घड़ी	माधुरी	जुलाई

१३६-	आत्म संगीत	माधुरी	अगस्त
१३७-	ऐक्ट्रेस	,,	अक्तूबर

१९२८

१३८-	मोटे राम शास्त्री	माधुरी	जनवरी
१३९-	अग्नि समाधि	विशाल भारत	,,
१४०-	मंत्र	,,	मार्च
१४१-	दो सखियाँ	माधुरी	मई
१४२-	पिसन हारी का कुँआ	,,	जून
१४३-	सुहाग का शव	,,	जुलाई
१४४-	दरोगा जी	,,	अगस्त
१४५-	अभिलाषा	,,	अक्तूबर
१४६-	विद्रोही	,,	नवम्बर
१४७-	आगा पीछा	,,	दिसम्बर
१४८-	बोहनी	भारत	—
१४९-	इस्तीफा	भारतेन्दु	दिसम्बर

१९२९

१५०-	प्रायश्चित	सरस्वती	जनवरी
१५१-	कुच्चड़	माधुरी	फरवरी
१५२-	गुल्ली डन्डा	हंस	,,
१५३-	फातिहा	विशाल भारत	मार्च
१५४-	न्याय	माधुरी	,,
१५५-	पर्वत यात्रा	,,	अप्रैल
१५६-	माँ	,,	जुलाई

१५७-	कानूनी कुमार	माधुरी	जुलाई
१५८-	अलग्योझा	,,	अक्तूबर
१५९-	घर जमाई	,,	नवम्बर
१६०-	घासवाली	,,	दिसम्बर
१६१-	कवच	विशाल भारत	,,

१६३०

१६२-	दो कब्रे	माया	जनवरी
१६३-	धिक्कार	माधुरी	फरवरी
१६४-	सुभागी	,,	मार्च
१६५-	जुलूस	हंस	,,
१६६-	समरयात्रा	,,	अप्रैल
१६७-	पत्नी से पति	माधुरी	,,
१६८-	शराब की दुकान	हंस	मई
१६९-	पूस की रात	माधुरी	,,
१७०-	मैकू	हंस	जून
१७१-	आहुति	,,	नवम्बर

१६३१

१७२-	उन्माद	माधुरी	जनवरी
१७३-	लांछन	,,	फरवरी
१७४-	जेल	हंस	,,
१७५-	ढपोर संख	,,	मार्च
१७६-	डिमोन्स्ट्रेशन	प्रेमा	अप्रैल
१७७-	होली का उपहार	माधुरी	,,

१७८-	आखरी हीला	हंस	अप्रैल
१७९-	प्रेरणा	विशाल भारत	मई
१८०-	प्रेम का उदय	हंस	जून
१८१-	आखरी तोहफा	चन्दन	अगस्त
१८२-	शाप (सैरे दरवेश)	हंस	,,
१८३-	तावान	,,	सितम्बर
१८४-	दूसरी शादी	चन्दन	,,
१८५-	स्वामिनी	विशाल भारत	,,
१८६-	दो बैलों की कथा	हंस	अक्तूबर
१८७-	सद्गति	मानसरोवर	,,
१८८-	लेखक	हंस	नवम्बर
१८९-	सौत (२)	विशाल भारत	दिसम्बर

१९३२

१९०-	चमत्कार	माधुरी	मार्च
१९१-	गिला	हंस	अप्रैल
१९२-	कुत्सा	जागरण	जुलाई
१९३-	झांकी	,,	अगस्त
१९४-	ठाकुर का कुंआ	,,	,,
१९५-	कुसुम	चांद	अक्तूबर
१९६-	बेटों वाली विधवा	,,	नवम्बर
१९७-	डामुल का कैदी	हंस	,,

१९३३

१९८-	कायर	विशाल भारत	जनवरी
१९९-	नेउर	हंस	जनवरी
२००-	वेश्या	चांद	फरवरी

२०१-	रसिक सम्पादक	जागरण	मार्च
२०२-	बालक	हंस	अप्रैल
२०३-	ज्योति	चाँद	मई
२०४-	कैदी	हंस	जुलाई
२०५-	ईदगाह	चाँद	अगस्त
२०६-	दिल की रानी	,,	नवम्बर

१६३४

२०७-	शान्ति	भारतेन्दु	फरवरी
२०८-	नशा	चाँद	,,
२०६-	मनोवृत्ति	हंस	मार्च
२१०-	जादू	,,	मई
२११-	रियासत का दीवान	,,	,,
२१२-	दूध का दाम	,,	जुलाई
२१३-	पं० मोटे राम की डायरी	जागरण	,,
२१४-	मुफ्त का यश	हंस	अगस्त
२१५-	बासी भात में खुदा का साझा	,,	अक्तूबर
२१६-	बड़े भाई साहब	,,	नवम्बर
२१७-	खुदाई फौजदार	चाँद	,,

१६३५

२१८-	स्मृति का पुजारी	हंस	अप्रैल
२१६-	देवी	चाँद	,,
२२०-	जीवन का शाप	हंस	जून
२२१-	ग्रह नीति	चाँद	अगस्त
२२२-	पैपु जी	माधुरी	अक्तूबर
२२३-	लाद्दरी	हंस	--

२२४-	मेरी पहली रचना	हंस	दिसम्बर

१९३६

२२५-	दो बहनें	माधुरी	अगस्त
२२६-	रहस्य	हंस	सितम्बर
२२७-	कफ़न	जामिया	

१९३७

२२८-	क्रिकेट मैच	ज़माना	जुलाई

प्रकाशन तिथि अज्ञात है—

२२९-	मनावन	उर्दू प्रेम पच्चीसी	
२३०-	मुबमुक बिमारी	प्रेम बत्तीसी	
२३१-	वासना की कड़ियाँ	,,	
२३२-	होली की छुट्टी	नादे राह	
२३३-	नादान दोस्त	खाके परवाना	
२३४-	प्रतिशोध	प्रेम चालीसी	
२३५-	देवी (२)	,,	
२३६-	खुदी	खाकेपरवाना	
२३७-	बड़े बाबू	,, (गुप्त धन)	(बहारिस्तान फरवरी २७- कलम का सिपाही)
२३८-	राष्ट्र का सेवक	प्रेम चलीसी	
२३९-	आखरी तोहफा	आखरी तोहफा (गुप्त धन)	चन्दन (अगस्त १९३१) (कलम का सिपाही)
२४०-	कातिल	,,	

२४१- बोहनी प्रेमचालीसी (गुप्त धन)

२४२- बन्द दरवाज़ा ,,

२४३- त्रिशूल ,,

२४४- स्वांग वारदात

२४५- कोई दुख न हो तो बकरी खरीद लो ,,

उल्लेख प्राप्त है --

२४६- मरहम

२४७- सौतेली मां

२४८- दहेज

२४९- गुमी

२५०- संकट

कहानियां जिनकी प्रकाशन तिथि और पत्रिका अज्ञात है ।

२५१- अनुभव (मान० भाग-१)

२५२- मोटर के छींटे

२५३- मि० पद्मा

२५४- नया विवाह

— (मान० भाग-२)

२५५- स्त्री और पुरुष

२५६- आधार

२५७- एक आंच की कसर

२५८- परीक्षा

२५९- बाबा जी का भोग

— (मान० भाग-३)

२६०- तगादा }
२६१- मृतक भोज } (मान० भाग ४)

२६२- आँसुओं की होली }
२६३- सती } (मान० भाग ५)

२६४- दुराशा[1] — (मान० भाग ६)

२६५- बैंक का दिवाला }
२६६- विस्मृति }
२६७- सुहाग की साड़ी } (मान०भाग- ७)
२६८- नाग पूजा }

२६९- बोध }
२७०- सच्चाई का उपहार }
२७१- विध्वंस }
२७२- दुःसाहस } (मान० भाग- ८)
२७३- गुप्त धन }
२७४- अनिष्ट शंका }

२७५- जुरमाना }
२७६- काश्मीरी सेब[2] }
२७७- जीवन सार[3] } कफन
२७८- तथ्य }
२७९- प्रेम की होली }
२८०- यह भी नशा, वह भी नशा ।

---

१. प्रहसन
२. संस्मरण
३. आत्मकहानी

कहानी पात्रों

की

गणना

(केवल हिन्दी कहानियों पर आधारित)

योग— १५६९

कहानी पात्रों की गणना

					सामाजिक कहानियाँ	पारिवारिक कहानियाँ	मनोवैज्ञानिक कहानियाँ	राजनीतिक कहानियाँ	ऐतिहासिक कहानियाँ	ग्रामीण कहानियाँ	योग
नागरिक	स्त्री	शिक्षित	उच्च		४०	१	२	६	४	–	५३
			मध्य		६९	८	१४	२२	४	–	११०
		अशिक्षित	मध्य		६५	८	३	–	–	–	७६
			निम्न		२२	२	५	४	३	–	३६
	पुरुष	शिक्षित	उच्च		९३	६	६	२१	३३	–	१५९
			मध्य		२५९	२३	३६	६९	१६	–	४०३
		अशिक्षित	निम्न		७४	३	१०	३०	९	–	१२६
ग्रामीण	स्त्री		जमींदार		५	–	–	–	–	५	११
			किसान		६	११	३	–	२	२५	४७
			मध्य		२	६	–	–	–	२१	२९
			निम्न		८	१०	३	–	–	१८	३९
	पुरुष		जमींदार		१२	–	१	–	–	१४	२७
			किसान		१०	११	९	८	३	४०	८१
			मध्य		११	६	२	४	–	२६	४९
			निम्न		१४	६	१०	४	–	३०	६४
			डाकू		२	–	–	–	–	१	३
			बालक		५६	११	२	१२	–	४५	१२६
			साधु		२५	–	३	१	१०	७	४६
			वेश्या		१०	–	–	–	१	–	११
			पशु		५	१	१	–	१	७	२५
	स्त्री		रानी		–	–	–	–	१४	–	१४
	पुरुष		राजा		–	–	–	–	३७	–	३७
			योग		७८८	११३	११०	१८१	१३७	२४०	१५४९

क्र०सं०	कहानी	नागरिक							ग्रामीण												
		स्त्री				पुरुष			स्त्री				पुरुष								
		शिक्षित		अशिक्षित		शिक्षित		अशिक्षित													
		उच्च	मध्य	मध्य	निम्न	उच्च	मध्य	निम्न	जमींदार	किसान	मध्य	निम्न	जमींदार	किसान	मध्य	निम्न	डाकू	बालक	साधु	वेश्या	पशु
१	कुसुम		कुसुम				नवीन युवक (पति) मित्र														
२	वेश्या		लीला				दया कृष्ण श्रृंगार सिंह													माधुरी	
३-	मोटर के छींटे	मेम साहब				साहब तीसरे साहब	पंडित जी अनन्त दर्शक गण	ड्राइवर													
४	मि० पदमा		पद्मा विद्यालय की बालिका				मि० प्रसाद वकील प्रोफेसर रईस डाक्टर											पद्मा की (बालक)			
५-	विद्रोही		तारा	चाची मा			कृष्णा " पिता " चाचा " विमल														
६-	उन्माद		जेनी	मां बागेश्वरी		लार्ड बावरि मि० कावर्ड	मनहर नाथ " पिता														
७-	रियासत का दीवान			सुनीता		पोलीटिकल एजेन्ट राजा सनिया	महाराष्ट्र मेहता जय कृष्ण	नौकर मजदूर			कन्या साहू की				साहूकार						
८-	बासी भात में खुदा का साझा			गौरी		दीना नाथ का स्वामी	दीना नाथ मित्र (नास्तिक)	चपरासी										पुत्र (लिंग)			
९-	जीवन का शाप	शीरी बानू	गुलशन			शापुर जी	कावस जी [illegible] जी													गौहर	
१०-	डामुल का कैदी	प्रमिला		पत्नी (गोपी) दादी मां बिन्ती		सेठ खूबचन्द केशव राम बैरिस्टर लाला देवराज	मैनेजर गोपी												पुजारी	[illegible]	
११-	गृह नीति			मां बहू			बेटा											पुत्र			
१२-	कानूनी कुमार		मि० बोस लेडी लेयर आचार्य मि० कानूनी कुमार				[illegible] मि० ईश्वर [illegible]												[illegible]		

	विधवा									फूलमती सीता चार बहुएँ						
२	अलगोझा								पन्ना झुनिया मुलिया			महतो भोला रग्घू लछमन खन्नू केदार				
३	स्वामिनी								राम प्यारी राम दुलारी झुनिया			शिवदास बिरजू मथुरा		जोरू	तीन बच्चे	मुन्ना गाय
४	घर जमाई								सास गुमानी माँ (हरिधन) बुआ " सालियाँ "			हरिधन दो साले बाप		[illegible]	दो लड़के	
५	ज्योति										बूटी मैना रूपिया धनिया			[illegible] मोहन सोहन	बच्चा	
६	बड़े भाई साहब														दो भाई	
७	सौत										रजिया } पत्नी दसिया } रामू पड़ोसिन			रामू		
८	झाँकी			बहन, माँ पति		सेठ घूरे मल	मैं जयदेव आचार्य [illegible] का शिष्य	भिखारी							पुत्र पुत्री	
९	गुल्ली डण्डा					डिप्टी साहब	मैं, [illegible] मतई, मोहन दुर्गा [illegible]	गया								
१०	धिक्कार		लालिता की माँ	चाची माँ (मानी की मानी)			बंशीधर गोकुल [illegible]									

							वैश्य									
१२	शिकार	वसुधा (रानी)			मुनिया	खुद डाक्टर कुंवर गजराज सिंह	मैनेजर बैंक, मैनेजर	शोफर							राजकुमार	
१३	जिला		पत्नि				पति									
१४	खूचड़			पत्नि			कुन्दनलाल सम्बन्धी				मेहरी कुजड़िन					
१५	सौत		गोदावरी गोमती				प० देवधर									
१६	शान्ति		गोपा सुनीता			मदारीलाल केदार नाथ	देवनाथ मैं									

मनोवैज्ञानिक कहानियाँ

		नागरिक								ग्रामीण								
		स्त्री				पुरुष				स्त्री	पुरुष							
		शिक्षित		अशिक्षित		शिक्षित		अशिक्षित										
		उच्च	मध्य	मध्य	निम्न	[illegible]	मध्य	निम्न	किसान	निम्न	जमींदार	किसान	मध्य	निम्न	साधु	बालक	[illegible]	[illegible]
१३	मनो वृत्ति	नवयौवना (पति बसन्त)	पति (बसन्त लाल)		वृद्धा		बसन्त हाकिम वकील डा० श्याम नाथ जयराम दास										पृ ८१	
१४	मुफ्त का यश		पत्नि			हाकिम	मैं, मित्र मौलवी साहब बल्देव सिंह मोहम्मद खलील दरोगा पुत्र बलदेव											
१५	प्रेरणा						सूर्य प्रकाश इन्स्पेक्टर प्रिंसिपल मैं (शिक्षक) मोहन, शिक्षक	चपरासी										
१६	अभिलाषा		पत्नि		पान वाले की पत्नि		पति	पान वाला										
१७	प्रेम का उदय						दरोगा	सिपाही										
१८	स्मृति के पुजारी		पत्नि (स्वर्गीय मि० इन्दु)				हरीलाल जी मैं											

राजनीतिक कहानियाँ

क्रम संख्या	कहानी	नागरिक						ग्रामीण				
		पुरुष			स्त्री			पुरुष				
		शिक्षित		अशिक्षित	शिक्षित		अशिक्षित					
		उच्च	मध्य	निम्न	उच्च	मध्य	निम्न	मध्य	निम्न	किसान	साधु	बालक
१	मैकू		कांग्रेस वालंटियर ठेकेदार	कादिर मैकू								
२	जुलूस		शम्भुनाथ, कैलाश इब्राहीम, बीरबल दीनदयाल	मैकू		मिट्ठन बाई विधवा स्त्री बुढ़िया, जुलूस की औरतें						शिशु
३	शराब की दुकान		सब इन्सपेक्टर दुकानदार, दरोगा जयराम, मेम्बर महाशय, सभापति जे० पी० सक्सेना	बूढ़ा शराबी, कल्लू चम्मू खानसामा चौधरी दाढ़ी वाला		मि० सक्सेना						
४	पत्नी से पति	मि० सेठ साहब बहादुर	मंत्री सभापति	अन्धा	गोदावरी							
५	जेल		पति (मृदुला) मान (पुत्र) कांग्रेस के मंत्री			मृदुला क्षमा देवी सास						
६	दुस्साहस		मैकूलाल, थानेदार ईदू, रामबली बैचन स्वामी धनानन्द मौ० जामिल	अलगू झिनकू								
७	आहुति		आनन्द विश्वम्भर मंत्री			रूपमणि						
८	होली का उपहार		[illegible]शिम, मैकूलाल अमरकान्त, तीन वालन्टियर ज्वाला दत्त, पुलिस सबइंसपेक्टर			सुखदा पारसी लेडी	बुढ़िया					
९	यह मेरी मातृभूमि है	मैं			पत्नी							पाँच पुत्र
९ (अ)	बौड़म							[illegible] मंत्री			साधु	लड़का
१०	सुहाग की साड़ी	कुँवर रतनसिंह		रामटहल	श्रीमती गौरा		केसर					

क्रम संख्या	कहानी	नागरिक						ग्रामीण				
		पुरुष			स्त्री			पुरुष				
		शिक्षित		अशिक्षित	शिक्षित		अशिक्षित					
		उच्च	मध्य	निम्न	उच्च	मध्य	निम्न	मध्य	निम्न	किसान	साधु	बालक
११	आदेश विरोध	दयाकृष्ण, राजा भक्त बहादुर सिंह काका सुक्ख बालकृष्ण मेहता			राजेश्वरी मेहता मनोरमा							
१२	उपदेश	देवरत्न शर्मा	बाबूलाल वकील कोकिला सिंह जुल्फिकार अली खाँ	नौकर, कहार रसोइया, सईस मुख्तार, सिपाही						शिवदीन रामदास हरखू		
१३	माँ		आदित्य प्रकाश (पुत्र) रजिस्ट्रार	ग्वाला		करुणा	भिखारिन					
१४	अनुभव	जिलाधीश	पति, ज्ञान बाबू सी० आई० डी० सिपाही प्रिन्सपल			पत्नी (निराश्रित) पत्नी (ज्ञानबाबू)						
१५	क़ैदी	आइवन रोमनाफ	जेलर		हेलन (प्रेमिका)							
१६	तावान		कांग्रेस कमेटी का प्रधान स्वयंसेवक (धर्मपुरुष) छकौड़ी मल			स्वयंसेवक (महिला) अम्बा (छकौड़ी) वृद्ध माता						पाँच बालक
१७	कुत्सा		महाशय (मैं) तीन मित्र			पद्मा देवी उर्मिला देवी श्यामा देवी भगवती देवी						
१८	विचित्र होली	राम उजागर मल मि० ए० बी० क्रास	शेर नूर अली	साइस, मेहतर अर्दली, भिश्ती ग्वाला, धोबी								
१९	सत्याग्रह	हिज एक्सलेन्सी राय हरनन्द राजा लाल चन्द मौ० महबूब अली सेठ गोबर मल	मजिस्ट्रेट मोटे राम जी मंत्री	सिपाही खोन्चे वाला		स्त्री (मोटेराम)						
२०	चकमा	चन्दू मल	कांग्रेस के प्र० मंत्री इन्सपेक्टर वालिन्टियर्स दीमुनीम, दरोगा	सिपाही								
२१	समरयात्रा		समाजवादियों का जत्था नायक, दरोगा	कान्सटेबिल			नोहरी		[illegible], कालेखाँ ग्रामसेवक	चौधरी कोदई [illegible] (पुत्र) [illegible], गजनसिंह		

		नागरिक								ग्रामीण						
		स्त्री				पुरुष				स्त्री		पुरुष				
		शिक्षित			अशिक्षित	शिक्षित			अशिक्षित							
क्रम सं०	कहानी	रानी	उच्च	मध्य	निम्न	राजा	उच्च	मध्य	निम्न	किसान	निम्न	किसान	निम्न	साधु	वेश्या	पशु
११	दिल की रानी	६०	हबीब पत्नी यजमानी			तैमूर	यजदानी वजीर (तैमूर)		चौबदार बन्दी सिपाही							
१२	वज्र पात					मोहम्मद शाह नादिर शाह शाहजादा	वजीर मोहम्मद साहब सेनापति									
१३	शतरंज के खिलाड़ी		बेगम मिर्जा की		लौंडी	वाजिद अलीशाह	मिर्जा सज्जाद अली रोशन अली मीर सवार अफसर									
१४	परीक्षा	शाही बेगमें				नादिर शाह	महल का दरोगा									
१५	राज भक्त	राजा की पत्नी मां बच्चे				नासिरुद्दीन बख्तावर सिंह	५ अंग्रेज २-४ हिन्दुस्तानी कम्पनी का रेजीमेन्ट रोशनुद्दौला [illegible]	कोतवाल								
१६	धोखा	प्रभा	उमा			राजा हरिश्चन्द्र	राजा देवी चन्द									
१७	जुगनू की चमक	चन्द्र कुंवरि			भाभी	रणजीत सिंह कुंवर दिलीप सिंह [illegible] बहादुर सिंह विक्रम सिंह सुरेन्द्र	[illegible] स्वामी [illegible] जनरल [illegible] सिंह कुंवर [illegible] सिंह [illegible] सिंह		सन्तरी मल्लाह सिपाही							
१८	पाप का अग्नि कुण्ड	राजनन्दिनी दुर्गा कुंवरि		वृजविलासिनी		पृथ्वी सिंह [illegible] सिंह दुर्गा सिंह	राजपूत									[illegible]
१९	मर्यादा की वेदी	मीरा प्रभा			नादिर बदीरा	राव साहब कुमार [illegible]										

पात्रों का विवरण

ग्रामीण

गोदान (१९३६)

व्यवसाय	अप्रशिक्षित निम्न	व्यवसाय	स्त्री: जमींदार वर्ग	सम्बन्ध	किसान वर्ग	सम्बन्ध	निम्न वर्ग	सम्बन्ध	पुरुष: जमींदार	किसान	मध्य	व्यवसाय	निम्न
१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५
									अमर पाल सिंह	होरी महतो			
	गजड़ू		पत्नी }	अमर पाल सिंह	धनिया	पत्नी होरी की			कुं० दिग्विजय सिंह	पुत्र गोबर	पटेश्वरी	पटवारी	
	अलादीन इक्के वाला		कन्या		रूपा, सोना	पुत्री				भाई हीरा	कुड़क अमीन	कारकुन	
	माली				स्त्री	भोला की				भोला	नोखेराम		
					दो बहुएँ	" "				मंगरू			
					दुलारी					दातादीन			
					झुनियाँ (विधवा)	भोला की पुत्री				कामता			
					पुत्र बधू	" " "				जग्गी			
					मुन्नी	हीरा				शोभा			
					पण्डिताइन					दमणी			
					पत्नी, बहन }	कुदई				पुत्र दमणी			
					माता					जियावन			
					कन्या					मातादीन			
					कलिया					पण्डित			
					पत्नी	मातादीन				कुदई			
					युवती, लड़का					हरखू			
					पामी					गौरी			
					चमारिन					मथुरा			
										विश्वम्भर			
										झिंगुरी सिंह			

—प्रेमचंद का साहित्य—

निबन्ध	कहानी सं०	उपन्यास	संपादकीय	नाटक	जीवनी	बाल साहित्य	अनुवाद	रूपान्तर
१	२	३	४	५	६	७	८	९
१- कुछ विचार २- साहित्य का उद्देश्य	१- सप्त सरोज -(७ क०) २- नव निधि -(९ क०) ३- प्रेम पूर्णिमा -(१५ क०) ४- प्रेम पच्चीसी -(२५ क०) ५- प्रेम प्रसून -(१२ क०) ६- प्रेम द्वादशी -(१२ क०) ७- प्रेम प्रमोद -(१७ क०) ८- प्रेम प्रतिमा -(१९ क०) ९- अग्नि समाधि -(८ क०) १०- प्रेम तीर्थ -(१२ क०) ११- पाँच फूल -(५ क०) १२- प्रेम चतुर्थी -(४ क०) १३- सप्त सुमन -(७ क०) १४- प्रेम पंचमी -(५ क०) १५- समर यात्रा -(११ क०) १६- प्रेरणा -(१२ क०) १७- कफ़न -(१४ क०) १८- नारी जीवन की क० (१५) १९- सर्व श्रेष्ठ क० (१२ क०) २०- प्रेम पीयूष -(११ क०) २१- दो बहनें और अन्य क० (४) २२- ग्राम जीवन की क० (१२ क०) २३- लैला - (५ क०) २४- बेटों वाली विधवा - (४ क०)	१- असरारे मआबिद २- हम खुर्मा व हम सबाब (प्रतिज्ञा) ३- रूठी रानी ४- कृष्णा ५- जलवए ईसार (वरदान) ६- सेवा सदन ७- प्रेमाश्रम ८- रंगभूमि ९- निर्मला १०- कायाकल्प ११- गबन १२- कर्मभूमि १३- गोदान १४- मंगल सूत्र (अपूर्ण)	१- आदर्श कहानियाँ (१२ क० संग्रह) २- गल्प समुच्चय (१२ क० संग्रह) ३- गल्प रत्न (१२ क० संग्रह) ४- टॉलस्टाय की क० (२१ क० संग्रह) ५- विज्ञान वार्ता (२६ नि० संग्रह)	१- कर्बला २- संग्राम ३- प्रेम की वेदी	१- दुर्गादास २- 'कलम, तलवार और त्याग, (भाग १) १- राणा प्रताप सिंह २- रणजीत सिंह ३- राणा जंग बहादुर ४- अकबर महान ५- स्वामी विवेकानन्द ६- राजा मानसिंह ३- 'कलम, तलवार और त्याग (भाग २) १- राजा टोडरमल २- श्री गोपाल कृष्ण गोखले ३- गैरी बाल्डी ४- मौ० वहीदुद्दीन 'सलीम' ५- डा० सर रामकृष्ण भंडारकर ६- बदरुद्दीन तैयब जी ७- सर सैयद अहमद खाँ ८- मौ० मुहम्मद इस्माइल खाँ... ९- रेनाल्ड्स ४- शेख सादी	१- राम चर्चा (जी०) २- कुत्ते की कहानी ३- जंगल की कहानियाँ ४- मनमोदक (क० संग्रह) (अप्राप्य है)	१- Justice न्याय (जॉन गॉल्सवर्दी) २- Silver Box : चाँदी की डिबिया (जॉन गॉल्सवर्दी) ३- अहंकार - अनातोल फ्रांस का अनुवाद 'थायस' ४- हड़ताल - गॉल्सवर्दी के 'स्ट्राइक' का अनुवाद ५- पिता के पत्र पुत्री के नाम (जवाहर लाल नेहरू)	१- सुखदास - जार्ज इलियट के अमर उपन्यास 'साइलस मार्नर' का रूपान्तर २- आज़ाद कथा - रतन नाथ सरशार की विराट् कार्यकृति 'फ़िसाने आज़ाद' का हिन्दी रूपान्तर

शीला गुप्त